

मेरे समकालीन

अपने समयके राजनीतिज्ञों तथा
सामान्य लोकसेवकोंके
महात्मा गांधी
द्वारा लिखित
संस्मरण

१९५१

सस्ता साहित्य मंडल • नई दिल्ली

प्रकाशक

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

पहली बार १९५१

मूल्य

अजिल्द साढे चार रुपये

सजिल्द पाँच रुपये

मुद्रक

जे० के० गर्मा

इलाहाबाद लाँ जर्नल प्रेस

इलाहाबाद

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक गांधी-साहित्यका सातवा भाग है। इसमें गांधीजीकी उन रचनाओंका संग्रह किया गया है, जिनमें उन्होंने अपने समयके बड़े-से-बड़े नेतासे लेकर सामान्य जन-सेवक तककी सेवाओंका अत्यंत मार्मिक रूपमें स्मरण किया है। अपने बहुतसे सम्माननीय नेताओंके नामों और कार्योंसे हम सब परिचित हैं, लेकिन इसी दुनियामें ऐसे भी लोग हैं, जो चुपचाप अपने सेवा-कार्यमें सलग्न रहते हैं और जिनके नामका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। गांधीजीने ऐसे दर्जनो मूक सेवकोंको इस संग्रहके लेखोंमें वाणी प्रदान की है। जहां लोकमान्य तिलक, गोखले, मोतीलाल नेहरू आदि सुविख्यात नेताओंको उन्होंने अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है, वहां निरक्षर वालीअम्मा, मोतीलाल दरजी, केलप्पन आदि दर्जनो लोकसेवकोंकी महान सेवाओंको भी बड़े गर्व और गौरवके साथ याद किया है। इस प्रकार उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि जिन्हें छोटा मानकर प्रायः उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा जाता है, वे वस्तुतः छोटे नहीं हैं और उनकी सेवाओंका भी उतना ही मूल्य है, जितना किसी भी महान नेताकी सेवाका। इस दृष्टिमें यह संग्रह अद्वितीय है।

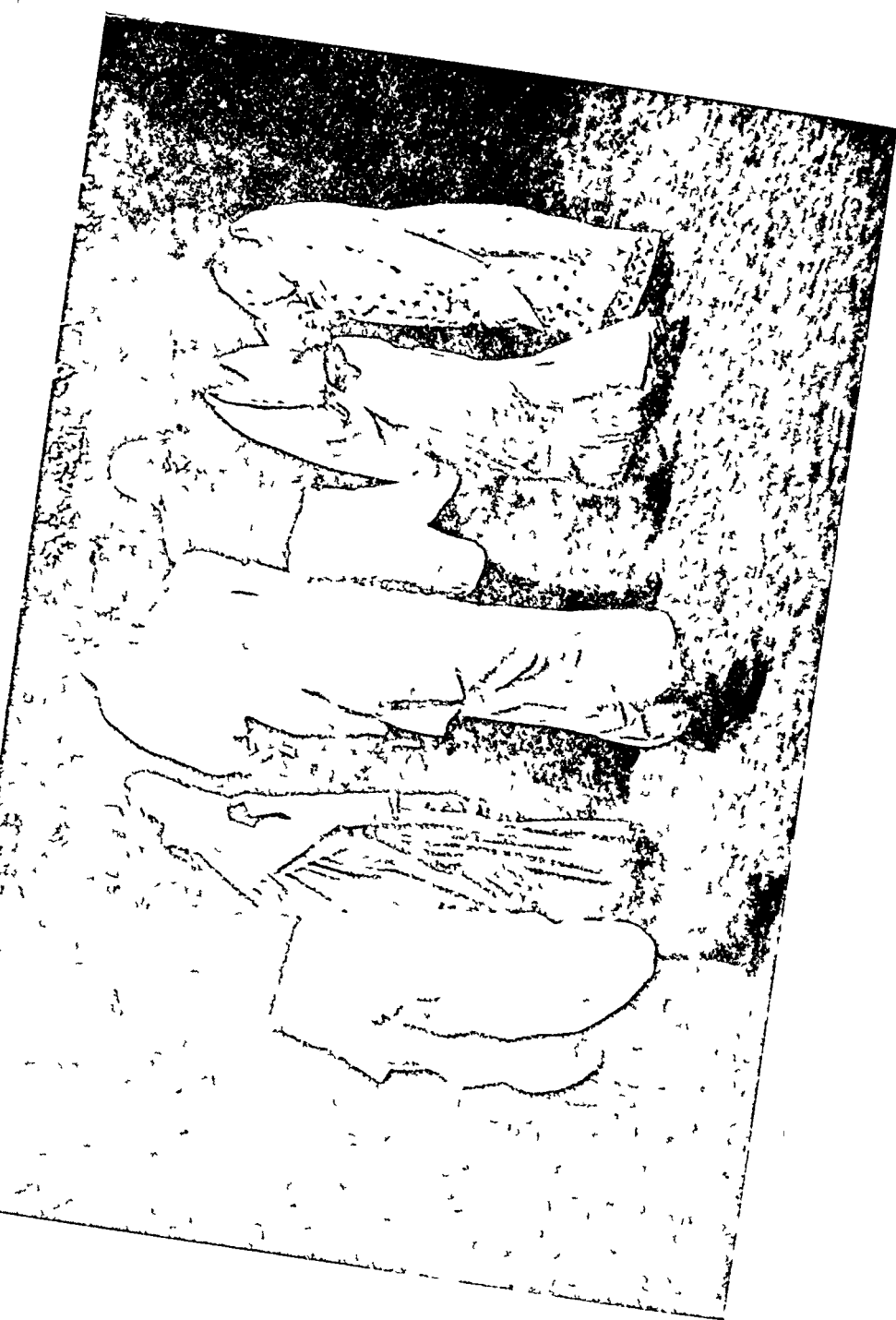
पुस्तकका मकलन और मपादन हिन्दीके सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकरने किया है। उनकी सावधानी और प्रयत्नके बावजूद यदि कुछ सगत सामग्री छूट गई हो अथवा कहीं कोई चूक रह गई हो तो पाठक कृपया उसकी सूचना हमें दे दें, जिसमें अगले संस्करणमें उसका सुधार किया जा सके।

—मन्त्री

संकेत-निर्देश

हि० न०	}	=	हिंदी नवजीवन
हि० न० जी०			
प्रा० प्र०		=	प्रार्थना प्रवचन
द० अ० स०		=	दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास
ह० से०		=	हरिजन सेवक
का० क०		=	वापूकी करावास-कहानी
म० डा०		=	महादेवभाईकी डायरी
य० इ०		=	यग इडिया
आ०	}	=	आत्म-कथा
आ० क०			
य० म०		=	यरवदा मंदिरसे
दी० श्री०		=	दीनबधु श्रीएडूज
इ० ओ०		=	इडियन ओपीनियन
ह०		=	हरिजन

(इनके अतिरिक्त जिन अन्य साधनोसे सामग्री इकट्ठी की गई है, उनका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है ।)



आमुख

प्रसिद्ध गायक श्रीदिलीपकुमार रायसे बातचीत करते हुए सन् १९३४ मे गाधीजीने कहा था—“जीवन समस्त कलाओसे श्रेष्ठ है। मैं तो समझता हूँ कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवनकी भूमिकाके बिना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है। कलाके मूल्यका आधार है जीवनको उन्नत बनाना। जीवन ही कला है।”^१ साहित्यको इस दृष्टिमे कलामे अलग नहीं किया जा सकता। जीवनसे इतना अटूट संबंध हो जानेके बाद वह नितान्त सरल और सुगम हो जाता है। कदाचित् ऐसे ही साहित्यको दृष्टिमे रखकर गाधीजीने इन्ही श्रीरायसे कहा था—“वही काव्य और वही साहित्य चिरजीवी रहेगा जिसे लोग सुगमतासे पा सकेंगे, जिसे वे आमानीमे पचा सकेंगे।” ऐसे साहित्यका सृजन वही कर सकता है जिनने साहित्यके विषयसे साक्षात्कार कर लिया है अर्थात् जो उसे जीता है। इसीको गाधीजीकी भाषामे यों कह सकते हैं कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही साहित्यिक है। इस दृष्टिसे वे एक ऊँचे साहित्यिक थे। निस्संदेह वे एक साहित्यिकके नाते आगे नहीं आये और न उन्होंने कभी कवि, कथाकार या आलोचक होनेका दावा ही किया, परंतु फिर भी जहां तक जीवनी-साहित्य, आत्मकथा, शब्द-चित्र और सस्मरण आदिका संबंध है उनकी पूजी सहज ही उन्हें प्रथम श्रेणीके लेखकोमे ला बैठाती है।

उनकी आत्मकथा (अथवा सत्यके प्रयोग) एक अपूर्व ग्रंथ है। वह सभी दृष्टियोंमे इस क्षेत्रमे स्थापित सभी परंपराओंको खड-खड करनेवाली क्रांतिकारी पुस्तक है। उनके घोर-से-घोर विरोधी भी उसकी महानताको मुक्त कंठसे स्वीकार करते हैं।

^१हिन्दी नवजीवन, १० फरवरी १९२४

वस्तुतः गांधीजीने सच्चे अर्थोंमें 'आत्मकथा' लिखी है। जीवनमें यदि कुछ गोपनीय रह जाता है तो आत्मकथा अधूरी है। सत्य और अहिंसा-के परीक्षण करनेवाला वैज्ञानिक अधूरी आत्मकथा नहीं लिख सकता। जिस प्रकार उन्होंने अपना विश्लेषण करते समय सत्यको नहीं छोड़ा है उसी तरह दूसरोंके बारेमें लिखते समय उन्होंने अहिंसाको अपना आधार बनाया है। इसलिए उनके साहित्यमें जहां उनकी पारदर्शिता की दृष्टिका चमत्कार है वहां वह मानवके सहज सौंदर्य सहानुभूतिसे भी आप्लावित है। जब कभी उन्होंने किसीके बारेमें लिखनेके लिए कलम उठाई है अपनी सरल, सुवोध और मुगठित भाषामें उस वर्ण्य व्यक्तिका बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण चित्र उतार कर रख दिया है।

वे कभी लिखनेके लिए ही किसीका जीवनवृत्त या सम्मरण लिखने बैठे हो, यह तो उनके लिए सम्भव नहीं था, परन्तु अपने बहुवर्षी सार्वजनिक जीवनमें उन्हें असंख्य छोटे और बड़े व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आना पड़ा था। केवल भारत ही नहीं, दक्षिण अफ्रीकामें भी अनेकानेक देशी और विदेशी व्यक्तियोंसे उनका सम्बन्ध रहा था। बहुतोंसे वह नवध अति प्रगाढ़ और आत्मीयतासे छलकता हुआ था। बहुतोंके साथ उन्होंने अपने सघर्षमय जीवनके अनेक वर्ष बिताए थे। कुछके साथ वे कुछ ही दिन रहे थे। उनमें अनेक उनसे बड़े थे, जिनसे उन्होंने बहुत-कुछ सीखा था। बहुतसे उनसे प्रेरणा लेते थे और उन्हें अपना आराध्यदेव मानते थे। बहुतमें उनके विरोधी भी थे, जिनसे उन्हें टक्कर लेनी पड़ती थी। ऐसे भी लोग थे जिनसे उनका कोई विशेष सम्बन्ध तो नहीं था, पर किन्हीं विशेष कारणोंसे गांधीजीको उन व्यक्तियोंमें रुचि थी। इन सब व्यक्तियोंमें जाति, लिंग, वर्ण या वर्गका कोई भेद नहीं था। उनमें राजनीतिके धुरधुर पंडित और साधारण स्वयं-सेवक, धर्माचार्य और श्रद्धालु भक्त, सम्राट और मेवक, पूजापति और मजदूर, विद्रोही और प्रतिनिष्ठावादी सभी थे। सभीके बारेमें उन्होंने समान भाव और समान रूपमें लिखा है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है लिखनेके ये अवसर कभी पूर्व योजनाके अनुसार नहीं आये । उस बहुवधी व्यस्त जीवनमें न जाने कब किस पर लिखना पड़ जाए, यह कोई नहीं जानता था । फिर भी ऐसे अवसर बहुत आते थे और साधारणतया उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है

१—गांधीजी अपने सहयोगियों, समाजके मूक सेवको या किसी रूपमें प्रयात व्यक्तियोंकी मृत्युपर समवेदना और श्रद्धाजलिके रूपमें लिखा करते थे ।

२—जब उनके सहकर्मियों और सहयोगियोंपर आक्षेप होते थे तब उनका निराकरण और समाधान करनेके लिए उन्हें लिखना पड़ता था ।

३—राष्ट्रीय महासभाके सभापति पदके लिए चुने जानेवाले व्यक्तिके बारेमें चुनावसे पूर्व या पश्चात् वे कभी-कभी लिखते थे ।

४—अपने आंदोलनमें भाग लेनेवालों और उनके विरोधियोंके विषयमें उन आंदोलनके दौरानमें वे लिखते थे ।

५—‘आत्मकथा’ और ‘दक्षिण अफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास’ आदि पुस्तकोंमें तत्संबंधी व्यक्तियोंका वर्णन आया है ।

६—अनेक व्यक्तियोंके जन्म-दिन या जयंती आदिके अवसरपर पत्रोंको सदेग और शुभकामनाके रूपमें उन्होंने लिखा है ।

७—कभी-कभी विगुह संपादकीय कर्तव्यको निवाहनेके लिए लिखना पड़ता था ।

८—निजी पत्रोंमें व्यक्तियोंकी चर्चा आ जाती थी ।

यदि उनके साहित्यका काल-क्रममें अध्ययन किया जाय तो एक बात ज्ञात होगी कि शुरुमें वे व्यक्तियोंके बारेमें अधिक लिखते थे, परंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया यह लेखन कम होता गया । जबसे उन्होंने ‘हरिजन’ पत्रोंका प्रकाशन किया तबसे तो हरिजन सेवकोंको छोड़ कर और किसीके बारेमें वे उन पत्रोंमें नहीं लिखते थे । इन पत्रोंको छोड़कर पुस्तकादि लिखनेका समय अब उनके पास नहीं रहा था ।

फिर भी इस अवधमे गाधीजीके एक गुणकी बात विशेष उल्लेखनीय है। वे प्रत्येक सपर्कमे आनेवाले व्यक्तिसे, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, विरोधी हो या सहयोगी, अधिक-से-अधिक आत्मीयता स्थापित करनेकी चेष्टा करते थे। वे उसकी मानव-सुलभ भावनाओंको छू कर उससे बातें करते थे। सबसे पहले वे मानव थे और दूसरोंको भी मानव समझते थे। और यह सब था अहिंसाके कारण। इस दृष्टिसे उनके स्मरण अध्ययन की वस्तु है।

प्रस्तुत संग्रह 'मेरे समकालीन' में गाधीजी द्वारा लिखे गये इसी प्रकारके स्मरण—शब्द-चित्र और लेख—सकलित किये गए हैं। यह सकलन इस दृष्टिसे नई चीज है। अवतक गाधीजीके लेखों और भाषणोंके अनेकानेक संग्रह विभिन्न भाषाओंमें प्रकाशित हुए हैं। परन्तु उन सबका विषय गाधीजीके विचारों और मान्यताओंसे अवध रखता है। जिन असंख्य व्यक्तियोंके सपर्कमें वे आए उनके बारेमें गाधीजीके क्या विचार थे, यह जाननेकी अभीतक किसीने चेष्टा नहीं की। इस सकलन द्वारा उसी अभावको दूर करनेका प्रयत्न किया गया है।

जैसे वे सरल और सशक्त भाषा लिखनेमें लासानी थे वैसे ही वे शब्द-चित्र खींचनेमें भी बहुत कुशल थे। एक तो अपने जीवनके प्रति निर्दिष्ट वैज्ञानिक दृष्टिकोण (सत्य)के कारण, दूसरे विभिन्न विचार और व्यवहारके इतने अधिक व्यक्तियोंके सपर्क में आनेके तथा मानवता (अहिंसा) में अपनी आस्थाके कारण उनकी परख बड़ी सही और खरी हो गई थी, और जब दृष्टि पारदर्शी हो जाती है तो वर्णन स्वतः ही सजीव और मार्मिक हो जाता है।

सन् १९२९ में प० जवाहरलाल नेहरूके लिए उन्होंने जो कुछ लिखा था वह शब्दोंमें एक अपूर्व चित्र है—“बहादुरीमें कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देशप्रेममें उनसे आगे कौन जा सकता है ? कुछ लोग कहते हैं कि वह जल्दबाज और अधीर है। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहाँ उनमें एक वीर योद्धाकी तेजी और अधीरता है वहाँ एक राज-

नीतिज्ञका विवेक भी है । वह स्फटिक मणिकी भाति पवित्र है, उनकी सत्यशीलता सदेहसे परे है । वह अहिंसक और अनिदनीय योद्धा है । राष्ट्र उनके हाथमे सुरक्षित है ।”

दक्षिण अफ्रीकाके श्री थम्बी नायडूका चित्र देखिये “उनकी बुद्धि भी बड़ी तीव्र थी । नवीन प्रश्नोको वे बड़ी फुर्तीके साथ समझ लेते थे । उनकी हाजिर-जवाबी आश्चर्यजनक थी । वे भारत कभी नहीं आये थे, फिर भी उसपर उनका अगाध प्रेम था । स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमे भरा हुआ था । उनकी दृढता चेहरेपर ही चित्रित थी । उनका गरीर बड़ा मजबूत और कसा हुआ था । मेहनतसे कभी थकते ही न थे । कुर्सी पर बैठकर नेतापन करना हो तो उस पदकी भी शोभा बटा दे, पर साथ ही हरकारेका काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीतिसे वे कर सकते थे । मिर पर बोझा उठाकर बाजारसे निकलनेमे थम्बी नायडू जरा भी न शरमाते थे । मेहनतके समय न रात देखते, न दिन । कोमके लिए अपने सर्वस्व की आहुति देनेके लिए हर किमीके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे ।” (पृष्ठ ३२९)

पर इन शब्द-चित्रोमे कोई यह न समझ ले कि गांधीजी विशेषणोंका ही प्रयोग करना जानते थे । वैसे वे जब विशेषणोका प्रयोग करते थे तो दिल खोलकर करते थे । कुमारी श्लेजीन, नारणदास गांधी, मगनलाल गांधी, महादेव देसाई आदिके रेखा-चित्र इस बातके प्रमाण हैं । परंतु किमी भी व्यक्तिकी दुर्बलता उनसे छिपी नहीं रहती थी और अवसर आनेपर वे उमी स्पष्टतासे उसे प्रकट कर देते थे, जिस प्रकार उसके गुणोपर प्रकाश डालते थे । सत्यका पुजारी व्यक्तित्वका अधूरा चित्रण कर ही नहीं सकता । ऊपर जिन थम्बी नायडूका शब्द-चित्र दिया गया है, उन्हीके बारेमे उसी चित्रमे गांधीजीने आगे लिखा है—“अगर थम्बी नायडू हृदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमे क्रोध न होता तो आज वह वीर पुरुष ट्रान्सवालमे काछलियाकी अनुपस्थितिमे आसानीसे कौमका

नेतृत्व ग्रहण कर सकता था । ट्रान्सवालके युद्धके अत तक उनके क्रोधका कोई विपरीत परिणाम नहीं हुआ था, वल्कि तबतक उनके अमूल्य गुण जवाहिरोके समान चमक रहे थे, पर बादमे मैंने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रबल शत्रु सावित हुए और उन्होंने उनके गुणोको छिपा दिया ।” (पृष्ठ ३२९)

सरोजिनी नायडूका चित्र उन्होंने एक ही वाक्यमे उतार दिया है — “सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढ़िया कर लेती हैं, मगर सच्ची सस्कृति-की कीमत देकर ।” (पृष्ठ ३३५)

जिन महादेव भाईके लिए वे स्वप्नमे भी अधीर रहते थे, उनके वारेमे भी उन्होंने लिखा है

“महादेवकी मैं भाटकी तरह स्तुति करता हू मगर मेरा मन उसकी शिकायत भी करता है ।” (पृष्ठ ३१५)

वस्तुतः किसी भी व्यक्तिका ठीक-ठीक विश्लेषण करनेमे उन्हें अद्भुत कुशलता प्राप्त थी । कम-से-कम और नपे-तुले सार्यक जब्दोमे वे वर्ण्य व्यक्तिके अदर और बाहरका चित्र कागजपर उतार कर रख देते थे ।

“सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए, लोकमान्य समुद्रकी तरह । गोखले गगाकी तरह । उसमे मैं नहा सकता था । हिमालय पर चढ़ना मुश्किल है, समुद्रमे डूबनेका भय रहता है, पर गगाकी गोदीमे खेल सकते हैं, उसमे डोगीपर चटकर तैर सकते हैं । (पृष्ठ १७८)

“शिष्य होना परम पवित्र, पर व्यक्तिगत भाव है । मैंने १८८८ मे दादाभाईके चरणोमे अपनेको समर्पित किया, पर मेरे आदर्शसे वे बहुत दूर थे । मैं उनके पुत्रके स्थानपर हो सकता था, उनका शागिर्द नहीं हो सकता था । शिष्यका दर्जा पुत्रसे ऊँचा है । शिष्य, पुत्र रूपसे दूसरा जन्म ग्रहण करता है । शिष्य होना अपनी स्वकीय प्रेरणासे समर्पित करना है । जस्टिस रानडेसे मुझे भय लगता था । उनके सामने मुझे बयान करनेका भी साहस नहीं होता था । बदरुद्दीन तैयबजी पिताकी

तरह प्रतीत हुए। उन्होंने मुझे सलाह दी कि फिरोजशाह मेहता और रानडेके परामर्शसे काम करो। सर फिरोजशाह तो हमारे सरक्षक बन गये। इसलिए उनकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य थी। जो कुछ वे कहते, मैं चुपचाप स्वीकार करता। ववईके उस शेरने मुझे आज्ञापालनका मर्म सिखाया। उन्होंने मुझे अपना गार्गिद नहीं बनाया। उन्होंने आजमाइग भी नहीं की।

“जिस समय मैं उनसे (लोकमान्य तिलकसे) मिला, वे अपने साथियोंसे घिरे बैठे थे। उन्होंने मेरी बातें सुनी और कहा—“आपका भाषण सार्वजनिक सभामें होना जरूरी है। पर आप जानते हैं कि यहां दलबंदी है। इससे ऐसा सभापति चाहिए जो किसी दल-विशेषका न हो। यदि इसके लिए आप डाक्टर भांडारकरसे मिलें तो उत्तम हो।” मैंने उनकी सलाह स्वीकार की और लौट आया। सिवा इसके कि स्नेहमय मिलापके भाव प्रदर्शित करके उन्होंने मेरी घबराहट दूर की, नहीं तो लोकमान्यका उस समय मुझपर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। डाक्टर भांडारकरने मेरा उसी तरह स्वागत किया जिस तरह गुरु शिष्यका करता है। उनके चेहरेसे विद्वत्ता टपक रही थी। मेरे हृदयमें श्रद्धाका ज्वार उमड़ आया, पर गुरु-भक्तिका भाव फिर भी न भरा। वह हृदय-सिंहासन उस समय भी खाली रह गया। मुझे अनेक धीर-वीर मिले, पर राजा-की पदवी तक कोई न पहुंच सका।

“पर जिस समय मैं श्रीयुत गोखलेमें मिलने गया, बातें एकदम बदल गईं। यह मिलन ठीक उसी प्रकार हुआ था जैसे दो चिर विछोही मित्रों या माता और पुत्रका होता है। उनकी नम्र आकृति देखकर मेरा हृदय शांत हुआ। दक्षिण अफ्रीका तथा मेरे सवधमें उन्होंने जिस तरह पूछताछ की उससे मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया। उनसे विदा होते समय मैंने अपने दिलमें कहा—“वस, मेरे मनका आदमी मिल गया।” १९०१ में दूसरी बार दक्षिण अफ्रीकासे लौटा। इस बार

मेरी घनिष्टता और भी प्रगाढ़ हो गई। उन्होंने अपने हाथमें मेरा हाथ लेकर पूछना शुरू किया—“किस तरह रहते हो ? क्या कपड़े पहनते हो ? भोजन कैसा होता है ?” मेरी माता भी इतनी तत्पर नहीं थी। मेरे और उनके बीचमें कोई अंतर नहीं था। यह चक्षुराग था, अर्थात् प्रथम दर्शनसे ही हृदयमें प्रगाढ़ प्रेमका अकुर जम गया था। (पृष्ठ २०३)

इस उद्धरणमें गांधीजीने भारतके तत्कालीन नेताओंका जो तुलनात्मक चित्रण उपस्थित किया है वह उनकी पारदर्शनी दृष्टि, उनकी विश्लेषण शक्ति, उनकी तीव्र और प्रखर अनुभूति को स्पष्ट करता है। गोखले-के चित्रमें कितनी आत्मीयता है। वह उनके अपने मानवतासे छलकते हुए हृदयकी भांकी है। श्री जवाहरलाल नेहरूने अपने जीवन-चरितमें गांधीजीके विचारोंकी अच्छी खासी आलोचना की है, पर सब कुछ कहकर उन्होंने लिखा है—“लेकिन वे अपने भारतको अच्छी तरह जानते हैं।” इसी तरह और लोगोंको भी उनसे मत-भेद हो सकता है, पर वे मानेंगे कि गांधीजी व्यक्तिको पहचानते थे। गोखलेसे उनका बहुत-सी बातोंपर मतभेद था, परंतु उन्हींके शब्दोंमें “पर इससे हम लोगोंमें किसी तरहका अंतर नहीं आ सका।” आही नहीं सकता था, क्योंकि अहिंसाका पुजारी प्रेमके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता और प्रेमकी शर्त है मित्रता, दासता नहीं।

लोकमान्य तिलकसे उनके मतभेदकी बात सब जानते हैं। उनके जीवनकालमें और मृत्युके बाद गांधीजीने उन मतभेदोंको कभी कम करके बताने या भुलानेकी चेष्टा नहीं की, पर इसी कारण वे लोकमान्यका सही मूल्यांकन करनेमें नहीं भिभके। उनकी मृत्यु पर उन्होंने लिखा—

“लोकमान्य बालगंगाधर तिलक अब ससारमें नहीं हैं। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे ससारसे उठ गए। हम लोगोंके समयमें ऐसा दूसरा कोई नहीं जिसका जनतापर लोकमान्य जैसा प्रभाव हो। हजारों देश-वासियोंकी उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह

अपूर्व थी। यह अक्षरशः सत्य है कि वे जनता के आराध्यदेव थे, प्रतिमा थे, उनके वचन हजारों आदमियों के लिए नियम और कानून से थे। पुष्पो में पुष्प-सिंह ससार से उठ गया। केशरी की घोर गर्जना विलीन हो गई।”

अनुभूतिकी तीव्रता और वास्तविकता का और भी सुंदर चित्रण उनके स्मरणों में हुआ है। घटनाओं और वार्तालाप के द्वारा उन्होंने वर्ण्य व्यक्तिकी बाहरी और आंतरिक सुंदरता-कुस्पता की रेखाओं को इस प्रकार उभार दिया है कि इसके पूर्ण परिपाक के साथ-साथ व्यक्तिका संपूर्ण चित्र हृदय पर पत्थर की लीक बन जाता है। कस्तूरवा गांधी, बाला-सुंदरम्, देशबुद्धास, घोपाल बाबू तथा वामती देवी आदिके स्मरण इस दृष्टि से बहुत ही सुंदर बने हैं

“मैं घोपाल बाबू के पास गया। उन्होंने मुझे नीचे से ऊपर तक देखा। कुछ मुस्कराये और बोले “मेरे पास कारकुन का काम है। करोगे?”

मैंने उत्तर दिया—“जरूर करूंगा। अपने बस भर सब कुछ करने के लिए मैं आपके पास आया हूँ।”

“नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसी को कहते हैं।”

कुछ स्वयंसेवक उनके पास खड़े थे। उनकी ओर मुखातिव होकर कहा—“देखते हो, इस नवयुवक ने क्या कहा?”

फिर मेरी ओर देखकर कहा, “तो लो यह चिट्ठियों का ढेर देखते हो न कि सैकड़ों आदमी मुझसे मिलने आया करते हैं। अब मैं उनसे मिलूँ या जो लोग फालतू चिट्ठियाँ लिखा करते हैं उन्हें उत्तर दूँ। इनमें बहुतेरी तो फिजूल होगी, पर तुम सबको पढ़ जाना। जिनकी पहुँच लिखना जरूरी है उनकी पहुँच लिख देना और जिनके उत्तर के लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना।”

उनके इस विश्वास से मुझे बड़ी खुशी हुई। श्री घोपाल मुझे पहचानते न थे। मेरा इतिहास जानने के बाद तो कारकुन का काम देने में उन्हें जरा शर्म मालूम हुई, पर मैंने उन्हें निश्चित कर दिया—“कहा मैं

और कहा आप । यह काम सौंपकर मुझपर तो आपने एहसान ही किया है, क्योंकि मुझे आगे चलकर कांग्रेसमें काम करना है ।”

घोपालवावू बोले, “सच पूछो तो यही सच्ची मनोवृत्ति है, परन्तु आजकलके नवयुवक ऐसा नहीं मानते । पर मैं तो कांग्रेसको उसके जन्मसे जानता हूँ । उसकी स्थापना करनेमें मि० ह्यूमके साथ मेरा भी हाथ था ।”

हम दोनोंमें खासा सवध हो गया । दोपहरके खानेके समय वह मुझे साथ रखते । घोपालवावूके बटन भी ‘वेरा’ लगाता । यह देखकर ‘वेरा’ का काम खुद मैंने लिया । मुझे वह अच्छा लगता । बड़े-बूढ़ोंकी ओर मेरा बड़ा आदर रहता था । जब वह मेरे मनोभावोंसे परिचित हो गये तब अपना निजी सेवाका सारा काम मुझे करने देने थे । बटन लगवाते हुए मुह पिचकाकर मुझसे कहते—“देखो न, कांग्रेसके सेवकोंको बटन लगाने तक की फुरसत नहीं मिलती, क्योंकि उस समय भी वे काममें लगे रहते हैं ।” इस भोलेपनपर मुझे मनमें हँसी तो आई, परन्तु ऐसी सेवाके लिए मनमें अरुचि विलकुल न हुई ।”

वासती देवीका देगवन्धुकी मृत्युके बाद, जो चित्र गांधीजीने खींचा है वह बहुत ही मानवीय, बहुत ही करुण और बहुत ही यथार्थ है

“वैधव्यके बाद पहली मुलाकात उनके दामादके घर हुई । उनके आसपास बहूतरी बहने बैठी थी । पूर्वाश्रममें तो जब मैं उनके कमरेमें जाता तो खुद वही सामने आती और मुझे बुलाती । वैधव्यमें मुझे क्या बुलाती । पुतलीकी तरह स्तम्भित बैठी अनेक बहनोंमेंसे मुझे उन्हें पहचानना था । एक मिनिट तक तो मैं खोजता ही रहा । मागमें सिंदूर, ललाटपर कुकुम मुहमें पान, हाथमें चूड़िया और साडी पर लैस, हँस-मुख चेहरा इनमेंसे एक भी चिह्न मैं न देखू तो वासन्ती देवीको किस तरह पहचानूँ ? जहाँ मैंने अनुमान किया था कि वे होगी वहाँ जाकर बैठ गया और गौरसे मुख-मुद्रा देखी । देखना असह्य हो गया । छातीको पत्थर बनाकर आश्वासन देना तो दूर ही रहा । उनके मुखपर सदा शोभित हास्य आज कहा था ?

मैंने उन्हें सात्वना देने, रिभाने और वातचीत करानेकी अनेक कोशिश की। बहुत समयके बाद मुझे कुछ मफलता मिली। देवी जरा हँसी। मुझे हिम्मत हुई और मैं बोला, “आप रो नहीं सकती। आप रोओगी तो सब लोग रोवेंगे। मोना (बड़ी लडकी) को बड़ी मुश्किलसे चुपकी रखा है। देवी (छोटी लडकी) की हालत तो आप जानती ही हैं। सुजाता (पुत्रवधू) फूट-फूटकर रोती थी, सो बड़े प्रयाससे शांत हुई है। आप दया रखियेगा। आपसे अब बहुत काम लेना है।”

“वीरागनाने दृढतापूर्वक जवाब दिया—“मैं नहीं रोऊंगी। मुझे रोना आता ही नहीं।”

“मैं इसका मर्म समझा, मुझे सतोष हुआ। रोनेसे दुःखका भार हल्का हो जाता है। इस विधवा बहनको तो भार हल्का नहीं करना था, उठाना था। फिर रोती कैसे। अब मैं कैसे कह सकता हूँ—“लो चलो, हम भाई-बहन पेटभर रो ले और दुःख कम कर ले।”

×

×

×

“वासती देवीने अबतक किसी के देखते, आसूकी एक बूद तक नहीं गिराई है। फिर भी उनके चेहरे पर तेज तो आ ही नहीं रहा है। उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है कि मानो भारी बीमारीसे उठी हो। यह हालत देखकर मैंने उनसे निवेदन किया कि थोड़ा समय बाहर निकलकर हवा खाने चलिए। मेरे साथ मोटरमें तो बैठी, पर बोलने क्यों लगी। मैंने कितनी ही बातें चलाई—वे सुनती रही, पर खुद उसमें बरायनाम गरीक हुईं। हवा खोरीकी तो, पर पछताई। सारी रात नीद न आई। “जो बात मेरे पतिको अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनीने की। यह क्या शोक है।” ऐसे विचारोंमें रात हो गई।

×

×

×

“वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खीलते हुए तेलके कड़ाहमें भटकता था और मुझ जैसे दूर रहकर देखनेवाले

उसके दुःख की कल्पना करके कापते थे । सती स्त्रियो, अपने दुःखको तुम सभालकर रखना । वह दुःख नहीं, सुख है । तुम्हारा नाम लेकर बहुतेरे पार उतर गए हैं और उतरेगे । वासती देवीकी जय हो ।” (पृष्ठ ५५७)

भावनाकी अतिरजनाने इस कर्ण चित्रको कितना सगक्त बना दिया है । लेकिन जहा उन्होंने अपने युगके महापुरुषोपर लिखा, वहा लुटावन, फकीरी और चार निडर युवक जैसे अनेक साधारण व्यक्तियोंको भी नहीं छोडा है । ये कुछ वानगीके चित्र हैं । पुस्तक ऐसे चित्रोसे भरी है । ये चित्र किसी उद्धोषित साहित्यिकके द्वारा नहीं लिखे गए, बल्कि एक ऐसे मानव द्वारा लिखे गये हैं जिसका समस्त जीवन ‘जीनेकी कला’के, सत्यके प्रयोग करनेमे बीता था, जिसने जीना सीखते-सीखते जिलाना (अहिंसाको) सीख लिया था, जो सबसे पहले और सबसे पीछे मॉत्र मनुष्य था और ऐसा मनुष्य ही मनुष्यको नहीं पहचानेगा तो कौन पहचानेगा ।

चित्र इतने ही नहीं हैं । प्रयत्न करनेपर जितनी सामग्री मिल सकी वह इस पुस्तकमे दे दी गई है, पर हम जानते हैं कि अभी बहुत गेप है । अपने पाठकोसे हमारी प्रार्थना है कि यदि वे ऐसी किसी सामग्रीके बारेमे जानते हो तो हमें सूचना देनेकी कृपा करे । उनके सुभावोका हम कृतज्ञता-पूर्वक स्वागत करेंगे ।

इस पुस्तकके सकलनमे जिन मान्य व प्रिय वधुओंने मुझे सहायता दी है, उनका मैं हृदयसे आभारी हूँ । डा० युद्धवीर सिंह और जैन पुस्तकालय, दिल्लीका मैं विशेष रूपसे आभारी हूँ । ‘नवजीवन’के अनेक अलभ्य अंक उनके पास न मिल जाते तो संग्रह एकदम अधूरा रह जाता ।

पो० बाँ० ११६७, दिल्ली
रवीन्द्र-जयती, ९ मई १९५१ }

—विष्णु प्रभाकर

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१ हकीम अजमल खाँ	१	१७ श्रीनिवास आयगर	३८
२ सोरावजी गापुरजी		१८ एम० रगाम्बामी	
अडाजनिया	४	आयगर	३९
३ माधव श्रीहरि अणे	९	१० मीर आलम	४०
४ डॉ० मुरनार अहमद		२० अरुणा आमफअली	४०
असारी	१०	२१ डा० मुहम्मद इकवाल	४१
५ ग्वाजा अब्दुलमजीद	१३	२२ जयचंद्र इद्रजी	४२
६ शेख अब्दुल्ला	१५	२३ इमाम माह्व	४३
७ डा० भीमराव अम्बेड-		२४ उर्मिला देवी	४४
कर	१८	२५ मी० एफ० एड्ज	४५
८ वी अम्मा	२०	२६ वैद्यनाथ ऐय्यर	५०
९ राजकुमारी अमृतकोर	२४	२७ कवीन	५०
१० अरविन्द घोष	२५	२८ अहमद मुहम्मद	
११ लार्ड अविन	२६	कादिलिया	५३
१२ अली-बन्धु	२७	२९ अलवर्ट कार्टगइट	६१
१३ हाजी वजीरअली	३२	३० राजामाह्व काला-	
१४ मी० पी० रामस्वामी		काकर	६३
अय्यर	३३	३१ हर्वर्ट किचन	६४
१५ जनरल यू आग-माग	३७	३२ जे० मी० कुमारपा	६४
१६ अब्दुलकलाम आजाद	३८		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
३३ आचार्य जे० बी०		५५ सतीशचन्द्र दाम गुप्त	१४६
कृपलानी	६५	५६ गोपालकृष्ण गोखले	१५०
३४ वेकट कृष्णय्या	६७	५७ घोपाल	२०५
३५ तात्यासाहब केळकर	६८	५८ चक्रैया	२०७
३६ केलकर (आइस		५९ विन्स्टन चर्चिल	२०८
डाक्टर)	७०	६० सी० वार्ड० चिन्ता-	
३७ केलप्पन	७१	मणि	२१२
३८ हरमेन कैलेनवेक	७२	६१ जगदीशन्	२१३
३९ कोट्स	८१	६२ हीरजी जयराम	२१४
४० मणिलाल कोठारी	८५	६३ श्रीकृष्णदास जाजू	२१६
४१ धर्मनिन्द कौसवी	८६	६४ मोहम्मद अली जिन्ना	२१६
४२ सरदार खडगसिंह	८८	६५ छोटेलाल जैन	२१८
४३ डा० एन० बी० खरे	८९	६६ पुरुषोत्तमदाम टडन	२२१
४४ नारायण मोरेस्वर खरे	९०	६७ काउट लियो टाल्स्टाय	२२४
४५ खान अब्दुलगफ्फार खाँ	९१	६८ अमृतलाल वि० ठक्कर	२३७
४६ आदमजी मियाखान	१०२	६९ एस० बी० ठकार	२४०
४७ गगावहन	१०३	७० द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर	२४१
४८ लाला गगाराम	१०४	७१ रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२४३
४९ सर गगाराम	१०५	७२ जनरल डायर	२५६
५० कस्तूरबा गांधी	१०६	७३ मिस डिक	२५८
५१ नारणदास गांधी	१३१	७४ रेवरेड डुड नीडू	२६०
५२ मगनलाल खुशाल-		७५ श्री जोसेफ डोक	२६०
चन्द गान्धी	१३४	७६ श्रीमती तारावहन	२६३
५३ हरिलाल गांधी	१४३	७७ लोकमान्य बाल गगा-	
५४ डा० गिल्डर	१४५	धर तिलक	२६७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
७८ अब्बास तैयबजी	२७९	१०१ जयप्रकाश नारायण	३३६
७९ बदरुद्दीन तैयबजी	२८१	१०२ निवारणबाबू	३४०
८० डॉक्टर दत्त	२८२	१०३ भगिनी निवेदिता	३४१
८१ गोपबन्धुदाम	२८३	१०४ कमलों नेहरू	३४२
८२ देगवन्धु चित्तरजन		१०५ जवाहरलाल नेहरू	३४३
दास	२८३	१०६ मोतीलाल नेहरू	३५३
८३ दासप्पा	३०३	१०७ सुगौला नैयर	३५७
८४ मनोहर दीवान	३०५	१०८ वल्लभभाई पटेल	३५८
८५ गोपाल कृष्ण देवधर	३०५	१०९ विठ्ठलभाई जे० पटेल	३६६
८६ दुर्गाबेन देसाई	३०६	११० विजयालक्ष्मी पण्डित	३७३
८७ प्रागजी देसाई	३०८	१११ नागेश्वरराव पन्तलु	३७३
८८ भूलाभाई देसाई	३०९	११२ पेस्तनजी पादशाह	३७४
८९ महादेव देसाई	३१०	११३ जी० परमेश्वरन्	
९० जयरामदास दौलत		पिल्ले	३७५
राम	३१७	११४ पुरुषोत्तम (बाप्	
९१ आनदशकर ध्रुव	३१७	गायधनी)	३७६
९२ नटेशन	३१८	११५ सरदार पृथ्वीसिंह	३७७
९३ गुलजारीलाल नन्दा	३१९	११६ हेनरी पोलक	३८०
९४ चार निडर नवयुवक	३१९	११७ फकीरी	३८७
९५ दादाभाई नवरोजी	३२२	११८ रेवरेड चार्ल्स	
९६ हरदयाल नाग	३२६	फिलिप्स	३८८
९७ नागप्पा	३२७	११९ जमनालाल बजाज	३८८
९८ थवी नायडू	३२८	१२० बहादुरजी	४००
९९ पी० के० नायडू	३३०	१२१ ब्रजलाल	४०१
१०० श्रीमती सरोजिनी		१२२ अब्दुलबारी	४०२
नायडू	३३१		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१२३ वाल्डविन	४०३	१४६ लेडी, माउटवेटन	४४०
१२४ वालासुदरम्	४०४	१४७ माता-पिता	४४०
१२५ धनश्यामदास विटला	४०७	१४८ दो माताये	४४५
१२६ ब्रजकिशोर	४०८	१४९ वी० पी० माधवराव	४४६
१२७ ए० डब्ल्यू० वेकर	४११	१५० गोविन्द मालवीय	४४६
१२८ एनी वेमन्ट	४१३	१५१ मदनमोहन मालवीय	४४७
१२९ सुरेन्द्रनाथ वैनर्जी	४१४	१५२ हसन मिरजा	४५५
१३० जनरल बोया	४१६	१५३ मीरावहन	४५६
१३१ मुभाषचन्द्र बोस	४१७	१५४ रामास्वामी मुदालि-	
१३२ भगवान्दास	४२४	यर	४६१
१३३ गोकुलभाई भट्ट	४२५	१५५ नरोत्तम मुरारजी	४६२
१३४ भसाली	४२६	१५६ आतिकुमार मुरारजी	४६३
१३५ बडे भाई	४२७	१५७ वेगम मुहम्मदअली	४६३
१३६ रामकृष्ण भाडारकर	४२९	१५८ मेरीमैन	४६४
१३७ गोपीचन्द भार्गव	४३०	१५९ फिरोजशाह मेहता	४६६
१३८ दो सच्चरित्र भारत-		१६० डा० मेहता	४६८
वासी	४३१	१६१ मेहरवावा	४७१
१३९ मजहरुलहक	४३२	१६२ रेम्जे मैक्डोनल्ड	४७२
१४० किशोरलाल मशरू-		१६३ मोतीलाल	४७४
वाला	४३३	१६४ भील-नेता मोती-	
१४१ जमशेद महता	४३५	लाल	४७५
१४२ ब्रजलाल महता	४३५	१६५ हसरत मोहानी	४७७
१४३ दाऊद महमद	४३६	१६६ एन० जी० रगा	४७८
१४४ बाई फातमा महेताव	४३७	१६७ रविशकर	४७९
१४५ लुई माउटवेटन	४३७	१६८ अब्दुर रहीम	४७९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१६९ चक्रवर्ती राजगोपाला- चार्य	४८०	१९० वालीग्रम्मा आर० मनु- स्वामी मुदिलायर	५५१
१७० राजेन्द्रप्रसाद	४८९	१९१ वासन्ती देवी	५५२
१७१ महादेव गोविन्द रानडे	४९१	१९२ गणेशशंकर विद्यार्थी	५५७
१७२ रमाबाई रानडे	४९१	१९३ विनोबा भावे	५५८
१७३ श्रीमद राजचन्द्रभाई	४९२	१९४ रगद्रुक विलियम्स	५६१
१७४ आचार्य रामदेव	५१२	१९५ स्वामी विवेकानन्द	५६२
१७५ रामसुन्दर	५१३	१९६ वेरस्टेन्ट	५६४
१७६ कालीनाथ राय	५१७	१९७ अल्वर्ट वेस्ट	५६४
१७७ दिलीपकुमार राय	५१७	१९८ स्वामी श्रद्धानन्द	५६९
१७८ प्रफुल्लचन्द्र राय	५१८	१९९ कुमारी इलेजीन	५८४
१७९ रिच	५१९	२०० आईनर	५८९
१८० आचार्य सुशील रुद्र	५२०	२०१ ओलिव आईनर	५९०
१८१ पारसी रुस्तमजी	५२३	२०२ सुल्तान गहरियार	५९१
१८२ सोरावजी रुस्तमजी	५२९	२०३ जॉर्ज वर्नार्ड शा	५९२
१८३ जोसेफ रॉयपेन वैरि- स्टर	५३०	२०४ श्रीनिवास शास्त्री	५९२
१८४ लाला लाजपतराय	५३१	२०५ खुगालगाह	५९९
१८५ लाटन	५४३	२०६ पीर महबूबशाह	६००
१८६ लुटावन	५४३	२०७ जनरल गाहनवाज	६०१
१८७ लाजरस	५४५	२०८ राजकुमार शुक्ल	६०२
१८८ टी० एम० वर्धसि और जी० रामचन्द्रन्	५४६	२०९ स्टोक्म	६०५
१८९ ए० एस० वाडिया	५४७	२१० जनरल स्मट्म	६०५
		२११ सापुरजी सकलात- वाला	६०८
		२१२ सत्यपाल	६०९

विषय

पृष्ठ

२१३	तोताराम सनाढ्य	६११
२१४	तेजवहादुर सप्रू	६१२
२१५	सम्पूर्णानन्द	६१३
२१६	साकरवाई	६१३
२१७	साडर्स	६१५
२१८	वी० डी० सावरकर	६१५
२१९	अप्टन सिक्लेयर	६१७
२२०	सिंह	६१८
२२१	श्रीकृष्ण सिन्हा	६१८
२२२	सिमडज	६१९
२२३	मुखदेव	६२१
२२४	उमर सुभानी	६२२

विषय

पृष्ठ

२२५	हसन शहीद सुहरा- वर्दी	६२४
२२६	अब्दुल्ला सेठ	६२४
२२७	विलियम विल्सन हटर	६२८
२२८	हरवत सिंह	६२९
२२९	एमिली हावहाउस	६३०
२३०	हास्किन	६३३
२३१	नारायण हेमचद्र	६३४
२३२	अकबर हैदरी	६३९
२३३	सेम्युअल होर	६४०
२३४	हार्निमैन	६४१

मेरे समकालीन

हकीमजीके स्वर्गवाससे मैंने न सिर्फ एक बुद्धिमान और दृढ़ साथी ही खोया है, बल्कि एक ऐसा मित्र खोया है जिसपर मैं आड़े अवसरोंपर भरोसा कर सकता था। हिन्दू-मुसलिम एकताके बारेमें वे हमेशा ही मेरे रहबरे थे। उनकी निर्णय-शक्ति, गभीरता और मनुष्य-प्रकृतिका ज्ञान ऐसे थे कि वे बहुत करके सही फैसला ही किया करते थे। ऐसा आदमी कभी मरता नहीं है। यद्यपि उनका शरीर अब नहीं रहा, मगर उनकी भावना तो हमारे साथ बराबर रहेगी और वह अब भी हमें अपना कर्तव्य पूरा करने-को बुला रही है। जबतक हम सच्ची हिन्दू-मुसलिम एकता पैदा नहीं कर लेते, उनकी याद बनाये रखनेके लिए हमारा बनाया कोई स्मारक पूरा हुआ नहीं कहा जा सकता। परमात्मा ऐसा करे कि जो काम हम उनके जीतेजी नहीं कर सके, वह उनकी मीतसे करना सीखे।

हकीमजी कोरे स्वप्नदृष्टा ही नहीं थे। उन्हें विश्वास था कि मेरा स्वप्न एक दिन पूरा होगा ही। जिस तरह तिव्वी कॉलेजके द्वारा उनका देशी चिकित्साका स्वप्न फला, उसी तरह अपना राजनैतिक स्वप्न भी उन्होंने जामिया मिलियाके जरिए पूरा करनेकी कोशिश की। जबकि जामिया मरणासन्न हो रही थी, उस समय हकीम साहबने प्रायः अकेले ही उसे अलीगढ़से दिल्ली लानेका सारा भार उठाया। मगर जामियाको हटानेसे खर्च भी बढ़ा। तबसे वे अपनेको जामियाकी आर्थिक स्थिरताके लिए खास तौरपर जिम्मेवार मानने लगे थे। उसके लिए धन जमा करनेमें सबसे मुख्य मनुष्य वे ही थे, चाहे वे अपने ही पाससे दे या अपने दोस्तोंसे चन्दे दिलवाएँ। इस समय जो स्मारक देश तुरत ही बना सकता है, और जिसका बनाया जाना अनिवार्य है, वह है जामिया मिलियाकी आर्थिक स्थितिको पक्की कर देना। (हि० न०, ५१२८)

. . .

..

.

एक जमाना था, शायद सन् १५की सालमें, जब मैं दिल्ली आया था, हकीम साहबसे मिला और डाक्टर असारीसे। मुझसे कहा गया कि

हमारे दिल्लीके वादगाह अग्रेज नहीं है, बल्कि ये हकीम साहब है। डाक्टर असारी तो बड़े वुजुर्ग थे, बहुत बड़े सर्जन थे, वैद्य थे। वे भी हकीम साहबको जानते थे, उनके लिए उनके दिलमें बहुत कद्र थी। हकीम साहब भी मुसलमान थे, लेकिन वे तो बहुत बड़े विद्वान् थे, हकीम थे। यूनानी हकीम थे, लेकिन आयुर्वेदका उन्होंने कुछ अभ्यास किया था। उनके वहां हजारों मुसलमान आते थे और हजारों गरीब हिंदू भी आते थे। साहूकार, धनिक मुसलमान और हिंदू भी आते थे। एक दिनका एक हजार रुपया उनको देते थे। जहातक मैं हकीम साहबको पहचानता था, उन्हें रुपएकी नहीं पड़ी थी, लेकिन सबकी खिदमतकी खातिर उनका पेंगा था। वह तो बादशाह-जैसे थे। आखिरमें उनके बाप-दादा तो चीनमें रहते थे, चीनके मुसलमान थे, लेकिन बड़े शरीफ थे। जितने हिंदू लोग मेरे पास आए, उनसे पूछा कि आपके सरदार यहा कौन हैं ? श्रद्धानदजी ? श्रद्धानदजी यहा बड़ा काम करते थे। लेकिन नहीं, दिल्लीके सरदार तो हकीम साहब थे। क्यों थे ? क्योंकि उन्होंने हिंदू-मुसलमान सबकी सेवा ही की। यह सन् '१५के सालकी बात मैंने कही। लेकिन बादमें मेरा ताल्लुक उनसे बहुत बढ़ गया और उनको और पहचाना। (प्रा० प्र०, १३ ६ ४७)

कल हकीम अजमल खाँ साहबकी वार्षिक तिथि थी। वह हिंदु-स्तानके हिंदू, मुसलमान, सिख, क्रिस्टी, पारसी, यहूदी सबके प्रिय थे। वह पक्के मुसलमान थे, मगर वह इस खूबसूरत देशके रहनेवाले, सब लोगोकी समान सेवा करते थे। उनकी मेहनतकी सबसे बढ़िया यादगार दिल्लीका मशहूर तिव्वी कॉलेज और अस्पताल था। वहापर हर श्रेणीके विद्यार्थी पढते थे और वहा यूनानी, आयुर्वेदिक और पश्चिमी डाक्टरी सब सिखाई जाती थी। सांप्रदायिकताके जहरके कारण यह सस्था भी, जिसमें किसी तरह सांप्रदायिकताको स्थान न था, बढ़

हो गई है। मेरी समझमें इसका कारण इतना ही हो सकता है कि इस कालेजको बनानेवाले हकीम साहब मुसलमान थे, फिर वे चाहे कितने ही महान् और भले क्यों न रहे हो, और भले ही उन्होंने सबका मान सपादन क्यों न किया हो। उस स्वर्गवासी देशभक्तकी स्मृति अगर हिंदू-मुस्लिम फिसादको दफन नहीं कर सकती तो कम-से-कम इस कालेजको तो नया जीवन दे ही दे। (प्रा० प्र०, २६ १२ ४७)

: २ :

सोराबजी शापुरजी अडाजनिया

नवीन वस्तीवाला कानून भी सत्याग्रहमें शामिल कर लिया गया।

इस कानूनमें एक यह भी धारा थी कि ट्रांसवालमें आनेवाले नवीन आदमीको यूरोपकी किसी भी एक भाषाका ज्ञान होना जरूरी है। इसलिए कमेटीने किसी ऐसे ही आदमीको ट्रांसवालमें लानेको सोचा, जो अंग्रेजी जानता हो, पर पहले कभी ट्रांसवालमें न रहा हो। कितने ही भारतीय उम्मीदवार खड़े हुए, पर कमेटीने उनमेंसे सोराबजी शापुरजी अडाजनियाकी प्रार्थनाको ही बतौर कसौटी (टेस्ट केस)के मान्य किया।

सोराबजी पारसी थे। नामसे ही स्पष्ट है। सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोंकी जन-संख्या सीसे ज्यादा नहीं होगी। पारसियोंके विषयमें दक्षिण अफ्रीकामें भी मेरा वही मत था जो मैंने भारतवर्षमें प्रकट किया है। ससार भरमें एक लाखसे ज्यादा पारसी नहीं होंगे, परन्तु इतनी छोटी-सी जाति अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर रही है, अपने धर्मपर दृढ़ है और उदारतामें ससारकी एक भी जाति उसकी बराबरी नहीं कर सकती। इस जातिकी उच्चताके लिए इतना ही प्रमाण काफी होगा।

अनुभवसे ज्ञात हुआ कि सोरावजी उसमें भी रत्न थे । जब वह लडाईमें शामिल हुए तब मैं उनको वैसे ही मामूली तोरपर जानता था । लडाईमें शामिल होनेके लिए उन्होंने पत्र-व्यवहार किया था और उससे मेरा खयाल भी अच्छा हो गया था । मैं पारसी लोगोके गुणोका तो पुजारी हूँ, परन्तु एक कौमकी हैसियतसे उनमें जो खामिया है उनसे मैं न तो अपरिचित था और न श्रव ही हूँ । इसलिए मेरे दिलमें यह सन्देह जरूर मौजूद था कि शायद सोरावजी परीक्षामे उत्तीर्ण नहीं हो सकेंगे । पर मेरा यह नियम था कि सामनेवाला मनुष्य जब इसके विपरीत बात कर रहा हो तब ऐसे शकपर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए । इसलिए मैंने कमेटीसे यह सिफारिश की कि सोरावजी अपने पत्रमें जो दृढता जाहिर कर रहे हैं उसपर हमें विश्वास कर लेना चाहिए । फल यह हुआ कि सोरावजी प्रथम श्रेणीके मत्याग्रही साबित हुए । लम्बी-से-लम्बी कैद भोगनेवाले सत्याग्रहियोंमें वह भी एक थे । इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने तो सत्याग्रहका इतना गहरा अध्ययन कर लिया था कि उसके विषयमें वह जो कुछ भी कहते, सबको सुनना पड़ता । उनकी सलाहमें हमेशा दृढता, विवेक, उदारता, गान्ति आदि गुण प्रकट होते । विचार कायम करनेमें वह जल्दी तो कदापि नहीं करते थे और एक बार विचार कायम कर लेनेपर वह कभी उसे बदलते भी नहीं थे । जितने श्रोतोंमें उनमें पारसीपन था, और वह उनमें ठूस-ठूसकर भरा हुआ था, उतना ही भारतीयपन भी था । सकीर्ण जाति-अभिमान जैसी वस्तु तो उनमें किसी दिन भी नहीं पाई गई । लडाई खतम होनेपर डा० मेहताने अच्छे सत्याग्रहियोंमेंसे किसीको इंग्लैंड भेजकर बैरिस्टर बनानेके लिए एक छात्रवृत्ति दी थी । उसके लिए योग्य छात्र चुननेका काम मुझपर ही रक्खा गया था । दो तीन सुयोग्य भारतीय थे । पर समस्त मित्र-मंडलको, दृढता तथा स्थिरतामें सोरावजीके मुकाबलेमें खड़ा होने योग्य, कोई नहीं मिला, इसलिए उन्हींको चुना गया । ऐसे एक भारतीयको इंग्लैंड भेजनेमें मुख्य उद्देश्य यही था कि वह लौटकर

दक्षिण अफ्रीकामे मेरे बाद मेरा स्थान ग्रहण कर जातिकी सेवा कर सके । कीमका आशीर्वाद और सम्मान लेकर सोरावजी इंग्लैंड पहुँचे । वैरिस्टर हुए । गोखलेसे तो उनका परिचय दक्षिण अफ्रीकामे ही हो चुका था । पर इंग्लैंड जानेपर उनका सबध और भी दृढ़ हो गया । सोरावजीने उनके मनको हर लिया । गोखलेने उनसे यह आग्रह भी किया कि जब कभी वह भारतमें आवे तब 'भारत-सेवक-समिति'के सभ्य जरूर होवे । विद्यार्थीवर्गमें वह बड़े प्रिय हो गए थे । प्रत्येक मनुष्यके दुखमें वह भाग लेते । इंग्लैंडके न तो आडम्बरकी उनपर जरा भी छाप पड़ी और न वहाके ऐशो-आरामकी । वह जब इंग्लैंड गये तब उनकी उम्र ३० सालसे ऊपर थी । उनका अंग्रेजीका अध्ययन ऊँचे दर्जेका न था । व्याकरण वगैरह सब भूलभाल गये थे । पर मनुष्यके उद्योगके सामने ये कठिनाइयाँ कब खड़ी रह सकी हैं ? शुद्ध विद्यार्थी-जीवन व्यतीतकर, सोरावजी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होते गये । मेरे जमानेकी वैरिस्टरकी परीक्षा आजकलकी परीक्षाकी तुलनामें कुछ आसान थी । इसलिए आजकलके वैरिस्टरोंको अधिक अभ्यास करना पड़ता है, पर सोरावजी पीछे नहीं हटे । इंग्लैंडमें जब एम्ब्युलैन्स कोरकी स्थापना हुई तब उसका आरम्भ करनेवालोंमें वह भी थे और आखिर तक उसमें रहे । इस दलको भी सत्याग्रह करना पड़ा था । उसमेंसे कई फिसल गये थे, पर फिर भी जो अटल रहे, उनमें सोरावजी अग्रगण्य थे । यहापर मुझे यह भी कह देना चाहिए कि इस दलको सत्याग्रहमें भी विजय ही मिली थी ।

इंग्लैंडमें वैरिस्टर होकर सोरावजी जोहान्सबर्ग गये । वहापर उन्होंने सेवा और वकालत दोनों साथ-ही-साथ शुरू कर दी । दक्षिण अफ्रीकासे मुझे जो पत्र मिले उनमें सोरावजीकी तारीफ सभी करते थे । वह अब भी वैसे ही सादा मिजाज है, जैसे पहले थे, आडम्बर जरा भी नहीं है । छोटे-से-बड़ेतक सबसे हिल-मिलकर रहते हैं । मालूम होता है, परमात्मा जितना दयालु है, उतना ही शायद निठुर भी है । सोरावजीको

तीव्र क्षयने असा और कौमका नवीन प्रेम सम्पादनकर उसे दुखमे रोती हुई छोड़कर वह चल बसे । इस तरह परमात्माने कौमके दो पुरुष-रत्न छीन लिये—काछलिया^१ और सोरावजी ।

पसन्दगी ही करनी हो तो मैं इन दोमेंसे किसे प्रथम पद दू ? पर मैं तो इस तरहकी पसन्दगी ही नहीं कर सकता । दोनों अपने-अपने क्षेत्रमे अप्रतिम थे । काछलिया गुद्ध मुसलमान और उतने ही शुभ भारतीय भी थे, उमी प्रकार सोरावजी भी गुद्ध पारसी और माथ ही उतने ही गुद्ध भारतीय थे ।

यही सोरावजी पहलेपहल सरकारको नोटिस देकर केवल 'टेम्प्ट' अर्थात् कसौटीके लिए ट्रासवाल आये । सरकार इसके लिए जरा भी तैयार नहीं थी । इसलिए वह एकाएक यही निष्चय नहीं कर सकी कि सोरावजीके माथ क्या करना चाहिए । सोरावजी तो जाहिरा तौरपर सरहद लाघकर ट्रासवालमे आ धमके । परवाने जाचनेवाले सरकारी अधिकारी उनको जानते थे । सोरावजीने कहा—“मैं केवल इमी हेतुसे ट्रासवालमे प्रवेश कर रहा हू कि देखू, सरकार मेरा क्या करती है । यदि आप मेरी अग्रेजीकी परीक्षा लेना चाहे तो सवाल कीजिए । और अगर गिरफ्तार करना हो तो यह खडा हू, गिरफ्तार कर लीजिए ।” अवि-कारीने कहा, “मुझे यह मालूम है कि आप अग्रेजी जानते हैं । इसलिए परीक्षा तो कुछ लेना-लिवाना है नहीं और न आपको गिरफ्तार करनेके लिए मेरे पास कोई हुक्म ही है । इसलिए जहा जाना हो, आप सुखपूर्वक जाइए । यदि आपको गिरफ्तार करना आवश्यक मालूम हुआ तो आप जहा कही जावेगे, सरकार स्वयं आपको गिरफ्तार कर लेगी ।”

इस तरह सोरावजी तो अकृतिपत रूपसे और अचानक जोहान्सवर्ग तक आ पहुँचे । हम सबने उनका बड़े हर्षके साथ स्वागत किया । किसीको

यह आशातक नहीं थी कि सरकार सोरावजीको ट्रांसवालके सरहद्दी स्टेशन वाक्सरस्टसे जरा भी आगे बढ़ने देगी ।

सरकारकी गफलतके कारण कहिए या जान-बूझकर निश्चित की हुई उसकी पहली नीतिके अनुसार कहिए, सोरावजी जोहान्सबर्ग तक आ पहुँचे । इधर न तो स्थानीय अधिकारीको इस विषयमें कुछ खयाल था कि सोरावजीके जैसे मामलेमें क्या करना चाहिए और न ऊपरसे ही उसे कोई सूचना मिली थी । सोरावजीके इस तरह एकाएक जोहान्सबर्ग पहुँच जानेसे कीमका उत्साह खूब बढ़ गया । कितने ही युवक तो यही समझ गये कि सरकार हार गई और शीघ्र ही उसे सुलह भी करनी होगी । पर यह स्वप्न अधिक देरतक न टिका । शीघ्र ही उन्हें इस बातको ठीक विपरीत सिद्ध होते हुए देखना पड़ा, बल्कि उन्होंने तो यह भी देख लिया कि सुलह होनेसे पहले शायद अनेक युवकोंको अपना बलिदान देना होगा ।

सोरावजीने अपने पहुँचते ही आनेकी खबर वहाके पुलिस सुपरि-टेडेंटको देकर लिखा—“नवीन वस्तीवाले कानूनके अनुसार मैं अपनेको ट्रांसवालमें रहनेका हकदार मानता हूँ ।” इसका कारण बताते हुए उन्होंने अपना अंग्रेजी भाषाका ज्ञान लिखाया । यह भी लिखा कि यदि अधिकारी उनकी अंग्रेजीकी परीक्षा लेना चाहे तो उसके लिए भी वह तैयार है । इस पत्रका कोई उत्तर न मिला । पर इसके कई दिन बाद उन्हें एक समन मिला । मामला अदालतमें पेश हुआ । न्यायालय भारतीय दर्शकोसे खचाखच भर गया था । मामला शुरू होनेसे पहले, न्यायालयमें आये हुए भारतीयोंको वही अहातेमें एकत्रकर उनकी एक सभा की गई, जिसमें सोरावजीने एक जोशीला भाषण दिया । भाषणके अंतमें उन्होंने यह प्रतिज्ञा की—“पूरी जीत होनेतक जितनी बार जेलमें जाना होगा, मैं जानेको तैयार हूँ और जितने भी सकट आवेंगे उन सबको भेलनेको तैयार हूँ ।” अबतक इतना समय गुजर चुका था कि मैं सोरावजीको

अच्छी तरह जानने लग गया था । मैंने अपने मनमें यह भी समझ लिया था कि अवश्य ही सोरावजी एक गुद्ध रत्न सिद्ध होंगे । मुकदमा शुरू हुआ । मैं वकीलकी हैसियतसे खड़ा हुआ । समनमें कितने ही दोष थे । उन्हें दिखाकर मैंने सोरावजीपरसे समन उठा लेनेके लिए अदालतसे प्रार्थना की । सरकारी वकीलने अपनी दलीले पेश की, पर अदालतने मेरी दलीलोको स्वीकार कर समन हटा लिया । कौम मारे हर्षके पागल हो गई । सच पूछा जाय तो उसके इस तरह पागल होनेके लिए कारण भी था । दूसरा समन निकालकर फौरन ही सोरावजीपर पुन मुकदमा चलाने की हिम्मत तो सरकारको किस तरह हो सकती थी ? और हुआ भी यही । इसलिए सोरावजी सार्वजनिक कामोंमें लग गये ।

पर यह छुटकारा हमेशाके लिए नहीं था । कौमने सरकारकी खामोशीका अत देखनेके लिए एक ऐसा नवीन काम कर डाला जिससे उसे अपनी खामोशी अलग रखकर सोरावजीपर फिर मुकदमा चलाना पड़ा । (द० अ० स० १९२५)

: ३ :

माधव श्रीहरि अणे

ऊर्ध्व बाहुविरोम्येष नैव कश्चिच्छृणोति मे ।

धर्मादर्थश्च कामश्च सधर्म किं न सेव्यते ॥

“मैं ऊंचा हाथ करके पुकारता हूँ, पर मेरी कोई सुनता नहीं । धर्म में ही अर्थ और काम समाया हुआ है, ऐसे सरल धर्म का लोग क्यों सेवन नहीं करते ?”

वापूजी अणे पिछले गनिवारको दिल्लीमें कुछ मिनटके लिए मेरे

पास आ गए थे । हम साथ-साथ काम कर रहे हो या देखनेमें विरोधी दिशामें जा रहे हो, वापूजी अणें मेरे प्रति हमेशा प्रेम-भाव रखते हैं, इसलिए जब कभी उन्हें समय मिलता है, राम-राम कर जाते हैं, विचारोंका विनिमय कर जाते हैं और कभी-कभी तो उनके पास श्लोकोका जो भंडार भरा पड़ा है उसमेंसे कुछ वानगी भी दे जाते हैं । दिल्लीमें जब वे मुझसे मिलने आये तब कांग्रेसमेंसे मेरे एकदम निकल जानेका उन्होंने कुछ विरोध-सा किया, मगर दरअसल तो उन्होंने मुझे इसपर वधाई ही दी । “कांग्रेसको या किसीको भी अब आपको नाराज नहीं करना चाहिए । आप तो अपने रास्ते जाएं । आपने अंग्रेजोंके प्रति जो लिखा है, वह मैंने देखा है । वे लोग सुननेवाले नहीं, पर आपको इससे क्या पड़ी है ? आपका काम तो जिसको आप धर्म मानते हैं, वह सबको सुनानेका ही है । देखो न, अडीके समय कांग्रेसने ही आपकी न सुनी । स्वयं व्यासकी किसीने नहीं सुनी तो किसी दूसरेकी तो बात ही क्या है । महाभारत जैसा ग्रंथ लिखकर अन्तमें उन्होंने एक श्लोक लिखा है, जो ‘भारत-सावित्री’के नामसे प्रख्यात है ।” यह कहकर ऊपर लिखा श्लोक मुझे सुनाया । यह श्लोक सुनाकर उन्होंने मेरी श्रद्धाको दृढ़ किया और बताया कि मैंने जो मार्ग पसन्द किया है वह दुर्गम है । (ह० से०, १३ ७ ४०)

: ४ :

डा० मुख्तार अहमद अंसारी

आगामी वर्षके लिए डा० अंसारीका महासभाके अध्यक्ष-स्थानके लिए चुनाव होना प्रायः निश्चित-सा है । राष्ट्रीय क्षितिजपर इस चुनावमें आपत्ति करनेवाला कोई नहीं है । डा० अंसारी जितने अच्छे मुसलमान

है, उतने ही अच्छे भारतीय भी हैं। उनमें धर्मोन्मादकी तो किसीने शका ही नहीं की है। वर्षोंतक वे एक साथ महासभाके सहमत्री रहे हैं। हाल हीमें एकताके लिए किये गए उनके प्रयत्नोंको तो सब कोई जानते हैं और सच्ची बात तो यह है कि अगर वेलगावमें मैं, कानपुरमें श्रीमती सरोजिनी नायडू और गोहाटीमें श्रीयुत श्रीनिवास आयंगर मार्गमें न आते तो इनमेंसे किसी भी अधिवेशनके अध्यक्ष डा० असारो ही चुने जाते, क्योंकि जब ये चुनाव हो रहे थे तब उनका नाम प्रत्येक आदमीकी जवानपर था, परन्तु कुछ खास कारणोंमें डा० असारोका हक आगे बढ़ा दिया गया और अब ज्ञात होता है कि विधिने उनके चुनावको इसीलिए आगे ढकेल दिया था कि वे ऐसे मौकेपर आवें जब देशको उनकी सबसे अधिक जरूरत हो। अगर हिन्दू-मुसलिम एकताकी कोई योजना दोनों पक्षोंको ग्रहण करने योग्य मालूम हो तो नि सन्देह डा० असारो ही उमें महासभाके द्वारा कर ले जा सकते हैं। अकेली यही बात (सर्व-सम्मतिसे और हृदयसे एक मुसलमानको अपना अध्यक्ष चुनना) हिन्दुओंकी ओरसे इस बातका साफ प्रमाण होगा कि हिन्दू एकताको दिलसे चाहते हैं, और राष्ट्रीय विचारोंवाले मुसलमानोंमें डा० असारोकी अपेक्षा साधारणतया मुसलमान जनतामें अधिक आदृत कोई नहीं है। इसलिए मेरे खयालसे तो यही अच्छा है कि अगले सालके लिए डा० असारो ही राष्ट्रीय महासभाके कर्णधार हों, क्योंकि केवल किसी योजनाको मजूर कर लेना ही हमारे लिए काफी नहीं है। दोनों पक्षों द्वारा उसे मजूर करानेकी वनिस्वत उसे कार्यमें परिणत करना शायद कही अधिक जरूरी है। और यदि हम मान लें कि दोनों पक्षोंका समाधान करनेवाली एक योजना मजूर हो भी गई तो उसपर अमल करते समय बराबर सावधानीकी आवश्यकता होगी। डा० असारो ही ऐसे कामके लिए सबसे अधिक योग्य पुरुष हैं। इसलिए मैं आशा करता हू कि सभी प्रान्त एकमतमें डा० असारोके नामको ही उस सर्वोच्च सम्मानके लिए

सूचित करेंगे जो कि राष्ट्रीय महासभाके अधीन है। (हि. न , २१ ७ २७)

‘हरिजन’में उन सब महान् पुरुषोंकी मृत्युपर, जो इस ससारसे सिधार जाते हैं, साधारणतया मैं लिखता नहीं हूँ। ‘हरिजन’ एक विशेष प्रवृत्तिसे सबध रखनेवाला पत्र है। आम तौरपर उन्हीं व्यक्तियोंके स्वर्गवासके विषयमें इसमें लिखा जाता है जिनका कि हरिजनकार्यके साथ विशेष-रूपसे सम्बन्ध होता है। श्री कमला नेहरूके स्वर्गवासपर मैंने ‘हरिजन’में जो नहीं लिखा उसमें मुझे खास तौरपर अपने ऊपर पावदी लगानी पड़ी। ऐसा करके मैंने करीब-करीब अपने साथ जुल्म किया। मगर डॉ॰ असार्रीके स्वर्गवासपर मुझे कोई ऐसा आत्मनिग्रह करनेकी जरूरत नहीं। कारण यह है कि वे निस्सदेह हकीम अजमल खाकी तरह ही हिंदू-मुस्लिम-ऐक्यके एक प्रतिरूप थे। कड़ी-से-कड़ी परीक्षाके समय भी वे अपने विश्वाससे कभी डिगे नहीं। वे एक पक्के मुसलमान थे। हजरत मुहम्मद माह्वकी जिन लोगोंने जरूरतके वक्त मदद की थी, वे उनके वशज थे और उन्हें इस बातका गर्व था। इस्लामके प्रति उनमें जो दृढता थी और उसका उन्हें जो प्रगाढ़ ज्ञान था उस दृढता और उस ज्ञानने ही उन्हें हिंदू-मुस्लिम-ऐक्यमें विश्वास करनेवाला बना दिया था। अगर यह कहा जाय कि जितने उनके मुसलमान मित्र थे उतने ही हिन्दू मित्र थे तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। सारे हिन्दुस्तानके काविल-से-काविल डॉक्टरोंमें उनका नाम लिया जाता था। किसी भी कोमका गरीब आदमी उनसे सलाह लेने जाय, उसके लिए बेरोकटोक उनका दरवाजा खुला रहता था। उन्होंने राजा-महाराजाओं और अमीर घरानोंसे जो कमाया वह अपने जरूरतमद दोस्तोंमें दोनों हाथोंसे खर्च किया। कोई उनसे कुछ मागने गया तो कभी ऐसा नहीं हुआ कि वह उनकी जेब खाली किये वगैर लौटा हो। और उन्होंने जो दिया उसका कभी हिसाब नहीं रखा। सैकड़ों पुरुषों और स्त्रियोंके लिए वह एक भारी सहारा थे। मुझे इसमें

तनिक भी सदेह नहीं कि सचमुच वह अनेक लोगोको रोते-विलखते छोड़ गये हैं। उनकी पत्नी वेगम साहिबा तो ज्ञानपरायणा है, यद्यपि वह हमेशा बीमार-सी रहती है। वह इतनी बहादुर है और इस्लामपर उनकी इतनी ऊँची श्रद्धा है कि उन्होंने अपने प्रिय पतिकी मृत्युपर एक आसू भी नहीं गिराया। पर जिन अनेक व्यक्तियोंकी मैं याद करता हू वे ज्ञानी या फिलाँसफर नहीं हैं। ईश्वरमे तो उनका विश्वास हवाई है, पर डॉ० असारीमें उनका विश्वास जीवित विश्वास था। इसमे उनका कोई कसूर नहीं। डॉक्टर साहबकी मित्रताके उनके पास ऐसे अनेक प्रमाण थे कि ईश्वरने जब उन्हें छोड़ दिया तब डॉक्टर साहबने उन्हें सहायता पहुँचाई। पर उन्हें यह क्या मालूम था कि डॉक्टर साहब भी उनकी मदद तभीतक कर सके, जबतक कि सिरजनहारने उन्हें ऐसा करने दिया। जिस कामको वह जीवित अवस्थामे पूरा नहीं कर सके, ईश्वर करे, वह उनकी मृत्युके बाद पूरा हो जाय। (ह० से०, १६ ५ ३६)

: ५ :

ख्वाजा अब्दुल मजीद

ख्वाजा अब्दुलमजीद आज मुझसे मीठा भगडा करनेके लिए आए थे। वह अलीगढ यूनिवर्सिटीके ट्रस्टी हैं। उनके पास काफी बड़ी जायदाद है, फिर भी उनका मन तो फकीर है। मैं जब वहा जाता था उन्हीके यहा खाना खाता था। उस जमानेमे स्वामी सत्यदेव (परि-ब्राजक) मेरे साथ रहते थे। उन्होंने हिमालयकी यात्रा की थी। ईश्वरने आज उनकी आखे छीन ली हैं। उस समय वह बहुत काम करनेवाले थे। उन्होंने मुझसे कहा, "मैं तेरे साथ भ्रमण करूँगा, पर तू

मुसलमानके साथ खाता है, तो मैं तो नहीं खाऊंगा ।” यह सुनकर ख्वाजा साहबने कहा, “अगर उनका धर्म ऐसा कहता है तो मैं उनके लिए अलग इतजाम करूंगा ।” ख्वाजा साहबके दिलमें यह नहीं आया कि यह स्वामी गांधीके साथ आया है तो क्यों नहीं मेरे यहा खाया । पुराने दिन फिर वापस आएंगे, जब हिंदू-मुसलमानोंके दिलोंमें एकता थी । ख्वाजा साहब अब भी राष्ट्रीय मुसलमानोंके प्रेसीडेंट हैं । दूसरे भी जो राष्ट्रीय भावनावाले मुसलमान लडके उन दिनोमें अलीगढसे निकले थे वे आज जामियाके अच्छे-अच्छे विद्यार्थी और काम करनेवाले बने हुए हैं । यह सब सहाराके रेगिस्तानमें द्वीप समान है । ख्वाजा साहब ऐसे हैं कि उनको कोई मार डालेगा तो भी उनके मुहसे बद्दुआ न निकलेगी । ऐसे लोग भले ही थोड़े हो, पर हमें तो अपनापन कायम रखना ही चाहिए । (प्रा० प्र०, ६४४७)

आप लोग देख रहे हैं कि मेरी दाहिनी ओर ख्वाजा साहब बैठे हुए हैं । इनके बारेमें एक बार मैं आपको पहले सुना चुका हू कि किस प्रकार मैं स्वामी सत्यदेवके साथ इनके घर पहुंचा था और सत्यदेवजी मुसलमानके हाथका पानीतक नहीं पी सकते थे । लेकिन तब भी ख्वाजा साहबने बुरा नहीं माना और उदार स्वागत किया । उस समय ये अलीगढ यूनिवर्सिटीके ट्रस्टी थे । बादमें असहयोग आंदोलनमें शरीक होनेके लिए इन्होंने ट्रस्टीपन छोड़ दिया । जहातक मुझे याद है, जब मैं वहा गया तब वहा लीगकी मीटिंग हो रही थी । मैंने वहा पूछा था कि यहा भी कोई सत्याग्रही मिलेगा या नहीं ? मौ० मुहम्मदअली और मौ० शौकत-अली तब नजरबंद थे और उनके कैद होनेके बारेमें वहा सब मायूस हो रहे थे । तब ख्वाजा साहबने मुझसे कहा था कि आपको ढाई सत्याग्रही मिल सकते हैं । उनमें एक तो थे इवेव कुरेशी, जो काफी प्रख्यात और बहादुर जवान थे । दूसरे साहब भी जो वहा मौजूद थे, पक्के सत्याग्रही थे । एक बार लोगोंने उन्हें मारा और उनके हाथमें दो जगह चोटें आईं, तब

भी वे शात रहे और ताकत होनेपर भी मार सहन की, लेकिन जवाबमे हमला नहीं किया। इन दोनोंका परिचय करानेके बाद खाजा साहबने कहा था कि आधा सत्याग्रही मैं हूँ। और तबसे खाजा साहब मेरे सगे भाईकी तरह बनकर रहे हैं। (प्रा० प्र०, १२ ६ ४७)

: ६ :

शेख अब्दुल्ला

(काश्मीरमे) शेख अब्दुल्ला साहब हैं। 'शेरे-काश्मीर' उसको कहते हैं, याने बाघ है, सिंह है। वह बड़ा तगड़ा है। आपने उसका चित्र तो देखा ही होगा। मैं तो उसको पहचानता भी हूँ। उसकी बेगमको भी पहचानता हूँ। बेगम तो आज यहाँ पड़ी हैं। एक आदमीसे जितना हो सकता है वह वे कर रहे हैं। वे कोई लड़नेवाले तो हैं नहीं। यो तो काश्मीरमे तगड़े मुसलमान पड़े हैं, तगड़े हिंदू भी पड़े हैं, राजपूत और सिख भी पड़े हैं। तो उसने तय कर लिया है कि जितना हो सकता है वह करेगा। वह तो मुसलमान है। काश्मीरमे मुसलमानोंकी बड़ी आबादी है। यहाँसे तो ये लोग बढ़कर जाते हैं, लेकिन वहाँके मुसलमान क्या करे और क्या न करे। मानाकि हम तो यहाँ जाहिल बन गए हैं, यहाँ कहो या पाकिस्तानमे कहो, कोई पागलपन बाकी नहीं रखा है। क्या वहाँ वे लोग भी जाहिल बन जाय और जिनको काटना है उनको काटे, औरतोंको काटे, बच्चोंको काटे, इस बुरे हालसे मरे? यह हाल काश्मीरका हो तो प० जवाहरलाल नेहरू और मन्त्रिमंडलके सभी सदस्योंने सोचा कि कुछ-न-कुछ तो किया जाय, तो इतने आदमी भेज दिये। वे क्या करे? इतना ही करे कि आखिरी दम तक लड़ते रहे और लड़ते-लड़ते मर जाय। जो लड़नेवाले

या शस्त्रधारी होते हैं उनका यही काम होता है कि वे आगे बढ़ते हैं और हमला करनेवालोंको रोक लेते हैं । वे मर जाते हैं, लेकिन पीछे तो कभी हटते नहीं हैं । इसका क्या परिणाम होगा, वह तो ईश्वर ही जानता है । लेकिन पुरुषार्थ करना तो हमारा काम है । वह हम करे । तो इन १५०० आदिमियोंने पुरुषार्थ किया । लेकिन कब, जब वे श्रीनगरके बचानेमें सारे-के-सारे कट जाते हैं । पीछे श्रीनगरके साथ काश्मीर भी बच जायगा । इसके बाद क्या होगा ?

यही होगा न, कि काश्मीर काश्मीरियोका होगा । शेख अब्दुल्ला जो कहते हैं वह तो मैं संपूर्णतया मानता हू कि काश्मीर काश्मीरियोका है, महाराजाका नहीं । लेकिन महाराजाने इतना तो कर लिया है कि उन्होंने शेख अब्दुल्लाको सब कुछ दे दिया और कह दिया है कि तुमको जो कुछ करना है सो करो । काश्मीरको बचाना है तो बचाओ । आखिर महाराजा तो काश्मीरको बचा नहीं सकते । अगर काश्मीरको कोई बचा सकता है, तो वहा जो मुसलमान है, काश्मीरी पंडित है, राजपूत है और सिख है वे ही बचा सकते हैं । उन सबके साथ शेख अब्दुल्लाकी मोहब्बत है, दोस्ती है । हो सकता है कि शेख अब्दुल्ला काश्मीरका बचाव करते-करते मर जाते हैं, उनकी जो बेगम है वह मर जाती है, उनकी लडकी भी मर जाती है और आखिरमें काश्मीरमें जितनी औरतें पड़ी हैं, वे सब मर जाती हैं, तो एक भी बूद पानी मेरी आखोंमेंसे आनेवाला नहीं है । अगर लडाई होना ही हमारे नसीब में है तो लडाई होगी । दोनोंको ही लडना है या किस-किसके बीच होगी, यह तो भगवान ही जानता है । हमला-वरोकी पीठपर अगर पाकिस्तानका बल नहीं है या पाकिस्तानका उसमें कोई उत्तेजन नहीं है, तो वे वहा कैसे टिक सकते हैं, यह मैं नहीं जानता । लेकिन माना कि पाकिस्तानकी उत्तेजना नहीं है, तो नहीं होगी । जब काश्मीर-के लोग लडते-लडते सब मर जायगें तो काश्मीरमें कौन रह जायगा ? शेख अब्दुल्ला भी चले गए, क्योंकि उनका सिंहपन, बाघपन तो इसीमें

है कि वे लडते-लडते मर जाते हैं और मरते दम तक उन्होंने काश्मीरको बचाया, वहाके मुसलमानोको तो बचाया ही, उसके साथ वहाके सिख और हिंदुओको भी । वे ठेठ मुसलमान हैं । उनकी वीवी भी नमाज पढती है । उन्होंने मयूर कठसे मुझे 'ओज अबिल्ला' सुनाया था । मैं तो उनके घर पर भी गया हू । वे मानते हैं कि जो हिंदू और सिख यहा है वे पहले मरे और मुसलमान पीछे, यह हो नहीं सकता । वहा हिंदू और सिखकी तादाद कम है, तो भी क्या हुआ । अगर गेख अब्दुल्ला ऐसे हैं और उनका असर मुसलमानोपर है तो हमारा सबका क्षेम है । (प्रा० प्र०, २६ १० ४७)

आपने यह भी देख लिया होगा कि गेख अब्दुल्ला साहब भी यहा आ गए हैं । जितने काश्मीरके लोग हैं वे तो सब उनको 'शेरे-काश्मीर' कहते हैं । और वह है भी ऐसा ही । बहुत काम उन्होंने कर लिया है और सबसे आला दर्जेका काम तो उन्होंने यह किया कि काश्मीरमे जितने हिंदू, मुसलमान और सिख रहते हैं उन सबको अपने साथ ले लिया है । तादादमे तो मुसलमान बहुत अधिक हैं और हिंदू और सिख तो मुट्ठीभर हैं, ऐसा हम कह सकते हैं, लेकिन तो भी उनको अपने साथ लेकर वे चलते हैं । वे खुश न रहे ऐसा कोई काम वे नहीं करते । पीछे हमने देखा कि वे यहा आने हुए जम्मू भी चले गए थे । जम्मूमे हिंदुओकी तरफसे ज्यादातिया हुई है और काफी ज्यादातिया हुई है । उनका पूरा-पूरा वयान तो हमारे अखबारोमे नहीं आया । महाराजा साहब भी वहा चले गए थे और उनके नए प्रधान मंत्री भी । तब वहा दो प्रधान मंत्री हैं क्या, या कुछ और हैं, मजाकमे मैं उनसे पूछ रहा था । उन्होंने कहा कि मुझको भी यह पता नहीं, मगर इतना तो है कि मैं वहाका इतजाम कर रहा हू, दो हो या एक हो । तो वे भी जम्मूमे चले गए थे । जम्मूमे जो कुछ हुआ, वह महाराजाने करवाया था उनके जो नए प्रधान मंत्री हैं उन्होंने करवाया, इसका तो मुझको पता नहीं, लेकिन वहा हुआ और हमारे लिए यह बड़ी शर्मनाक

वात है कि हम ऐसा करे । शेख अब्दुल्लाने यह सब देखकर भी अपना दिमाग विगडने नहीं दिया और जम्मूमे जो हिंदू पडे है उन्होंने भी उनका साथ दिया । (प्रा० प्र०, २७.११ ४७)

: ७ :

डा० भीमराव अम्बेडकर

डा० अम्बेडकरके प्रति और अछूतोका उद्धार करनेकी उनकी इच्छा-के प्रति मेरा सद्भाव और उनकी होशियारीके प्रति आदर होनेके बावजूद मुझे कहना चाहिए कि वे इस मामलेमे बड़ी भयकर भूल कर रहे है । उन्हें कडवे अनुभवोमेसे गुजरना पडा है, शायद इस कारण अभी उनकी विवेक-वृद्धि इस चीजको नहीं समझ पा रही है । ऐसे शब्द कहते हुए मुझे दुःख होता है । मगर यह न कहू तो प्राणोसे प्यारे इन 'अछूतो' के हितोके प्रति मैं वफादार नहीं रह सकता । सारी दुनियाके राज्यके लिए भी मैं उनके हकोकी कुरवानी नहीं करूंगा । डा० अम्बेडकर तमाम हिंदु-स्तानके 'अछूतो' की तरफसे बोलनेका दावा करते हैं, मगर उनका यह दावा सही नहीं है, यह बात मैं पूरी जिम्मेदारीके साथ कहता हू । उनके कहनेके अनुसार तो हिंदू-समाजमे फूट पड जायगी । इसे शांतिसे देखते रहना मेरे लिए संभव नहीं है । (१३ ११ ३१ को लदनमे अल्पमत समिति-की आखिरी बैठकमे दिये गए भाषणसे)

वाते उसने बहुत मीठी की । उसमे सिद्धांत तो नहीं है, मगर ये सारी वाते सीधे ढगसे की । उसने यह भी कहा कि मुझे राजनैतिक सत्ता चाहिए थी सो मिल गई । अब मुझे तो राष्ट्रीय काम करना है । अब मैं आपके

काममें रोडे नहीं अटकाऊगा । एम० सी० राजा वहामे जाकर आर्डिनेम विलका समर्थन करे, वैसा मुझमें नहीं हो सकता । मैंने तो अपने आदमियोंसे कह दिया—अब तुम मुझमें इस काममें बहुत आगा न रखना । अब मुझे अपनी शक्ति देगके काममें खर्च करनी होगी । मगर आप बाहर निकलकर देगका काम शुरू करे तब ही । योही कुछ नहीं हो जायगा ।

अपने वारेमें कहा—कहा जाता है कि सरकार मुझे रुपया देती है । मेरे जैसा भिखारी कोई नहीं । तीन सालसे मेरी कुछ भी कमाई नहीं । यह काम करते हुए मुझे अपना रुपया खर्च करना पड़ता है और मेरे मुकदमोका काम कम होता है । सार्वजनिक कामके लिए समय भी जाता है और रुपया भी खर्च होता है । थोड़े-थोड़े मुकदमे मिलते हैं, उनसे अपना गुजर चलाता हूँ । आज भी सावतवाडीमें एक मुकदमा है । वहा जाते हुए रास्तेमें उतर गया हूँ । (म० डा०, भाग २, १७ १० ३२)

इसमें (अम्बेडकरमें) त्यागशक्ति है । कुरवानी करनेकी शक्ति है । यह दावानल तो नुलगेगा ही । हम हिंदू यदि सच्चे होंगे तो यरवदा-समझौतेकी तो स्वर्णभस्म बना सकेंगे, नहीं तो चार करोड अस्पृश्य सारे हिंदुस्तानका भक्षण कर जायेंगे । (म० डा०, भाग २, ३ १२ ३२)

गत मई मास (सन् १९३६) में लाहौरके 'जात-पात-तोडक मडल' का वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था और डा० अम्बेडकर उसके सभापति चुने गये थे । लेकिन डा० अम्बेडकरने उसके लिए जो भाषण तैयार किया वह स्वागत-समितिको अस्वीकार्य प्रतीत हुआ, जिसके कारण वह अधिवेशन ही नहीं किया गया । यह बात विचारणीय है कि स्वागत-समितिका अपने चुने हुए सभापतिको इसलिए अस्वीकार कर देना कहातक उचित है कि उनका भाषण उमें आपत्तिजनक मालूम पड़ा । जाति-प्रथा और हिंदू-शास्त्रोके विषयमें डा० अम्बेडकरके

जो विचार है उन्हें तो समिति पहलेसे ही जानती थी । यह भी उसे मालूम था कि वह हिंदू-धर्म छोड़नेका विलकुल स्पष्ट निर्णय कर चुके हैं । डा० अम्बेडकरने जैसा भाषण तैयार किया उससे कमकी उनसे उम्मीद ही नहीं की जा सकती थी । लेकिन समितिने, ऐसा मालूम पड़ता है, एक ऐसे व्यक्तिके मौलिक विचार सुननेसे जनताको वचित कर दिया, जिसने कि समाजमें अपना एक अद्वितीय स्थान बना लिया है । भविष्यमें वह कोई भी वाना क्यों न धारण करे, मगर डा० अम्बेडकर ऐसे आदमी नहीं हैं जो अपनेको भूल जाने देंगे ।

डा० अम्बेडकर स्वागत-समितिसे यो हार जानेवाले नहीं थे । उसके इन्कार कर देनेपर, उसके जवाबमें उन्होंने उस भाषणको अपने ही खर्चसे प्रकाशित किया है । उन्होंने आठ आने उसकी कीमत रखी है, लेकिन मैं उनसे कहूंगा कि वह उसे घटाकर दो आना या कम-से-कम चार आना कर दे तो ठीक होगा ।

यह भाषण ऐसा है कि कोई सुधारक इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता । रुढ़िचुस्त लोग भी इसे पढ़कर लाभ ही उठायेगें । लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि भाषणमें ऐतराज करने लायक कोई बात नहीं है । इसे तो पढ़ना ही इसलिए चाहिए, क्योंकि इसमें गहरे ऐतराजकी गुजाइश है । डा० अम्बेडकर तो हिन्दू-धर्मके लिए मानो एक चुनौती हैं । हिंदूकी तरह पलने और एक जवरदस्त हिंदू द्वारा शिक्षित किये जानेपर भी, सवर्ण कहे जानेवाले हिंदुओं द्वारा अपने और अपनी जातिवालोके साथ होने-वाले व्यवहारसे वह इतने निराश हो गये हैं कि वह न केवल उन्हें, बल्कि उस धर्मको भी छोड़नेका विचार कर रहे हैं जो उनकी तथा और सबकी संयुक्त विरासत है । उस धर्मको माननेका दावा करनेवाले एक भागके कारण सारे धर्मसे ही वह निराश हो गये हैं ।

लेकिन इसमें अचरजकी कोई बात नहीं है, क्योंकि किसी प्रथा या संस्थाका निर्णय कोई उसके प्रतिनिधियोंके व्यवहारसे ही तो कर सकता

है। अलावा इसके, डा० अम्बेडकरको मालूम पडा है कि सवर्ण हिंदुओंके विनाल बहुमतने अपने उन सहधर्मियोंके साथ, जिन्हे उन्होंने अस्पृश्य गृमार किया है, न केवल निर्दयता या अमानुषिकताका ही व्यवहार किया है, बल्कि अपने व्यवहारका आधार भी अपने शास्त्रोंके आदेशको बनाया है और जब उन्होंने शास्त्रोंको देखना गुत् किया तो उन्हें मालूम पडा कि सचमुच उनमें अस्पृश्यता और उसके लगाये जानेवाले तमाम अर्थोंकी काफी गुजाडग है। शास्त्रोंके अव्याय और श्लोक उर्द्धवृत्त कर-करके उन्होंने तिहेरा दोपारोप किया है (१) उनमें निर्दय व्यवहार करनेका आदेश है, (२) ऐसा व्यवहार करनेवालोंके व्यवहारका धृष्टता-पूर्वक समर्थन किया गया है, और (३) परिणामस्वरूप यह अनुसधान किया गया है कि यह समर्थन शास्त्र-विहित है।

ऐसा कोई भी हिंदू, जो अपने धर्मको अपने प्राणोंसे अधिक प्यारा समझता है, इस दोपारोपकी गभीरताकी उपेक्षा नहीं कर सकता, और फिर इस तरह निराग होनेवाले अकेले डा० अम्बेडकर ही नहीं है। वह तो उनमेंके एक ऐसे व्यक्तिमात्र है जो इस बातके प्रतिपादनमें कोई समझौता नहीं करना चाहते और ऐसे लोगोंमें वे सबसे योग्य हैं। निश्चय ही इन लोगोंमें वह अत्यंत जिही स्वभावके हैं। ईश्वरकी कृपा समझो जो बड़े नेताओंमें ऐसे विचारके वही अकेले हैं और अभी भी वह एक बहुत छोटे अल्पमतके ही प्रतिनिधि हैं। मगर जो कुछ वह कहते हैं, कम या ज्यादा जोगके साथ वही बातें दलित जातियोंके और नेता भी कहते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि दूसरे—जैसे, राववहादुर एम० सी० राजा और दीवान-वहादुर श्रीनिवासन्—हिन्दू-धर्म छोड़नेकी धमकी नहीं दते, पर उसीमें इतनी गुजाडग देखते हैं कि जिससे हरिजनोंके विनाल जन-समूहको जो शर्मनाक कष्ट भोगना पड रहा है उसकी क्षति-पूर्ति हो जायगी।

पर उनके अनेक नेता हिंदू-धर्मको नहीं छोड़ते, इसी बातसे हम डा० अम्बेडकरके कथनकी उपेक्षा नहीं कर सकते। सवर्णोंको अपने विश्वास

और आचरणमें सुधार करना ही पड़ेगा । इसके अलावा, सवर्णोंमें जो लोग अपने ज्ञान और अनुभवके आधारपर शास्त्रोंकी प्रामाणिक व्याख्या कर सकें उन्हें शास्त्रोंके यथार्थ आशयका भी स्पष्टीकरण करना होगा । डॉ० अम्बेडकरके दोषारोपसे जो प्रश्न उठते हैं, वे ये हैं

(१) शास्त्र क्या है ?

(२) आज जो-कुछ छपा हुआ मिलता है वह सभी क्या शास्त्रोंका अभिन्न भाग है, या उनके किसी भागको अप्रामाणिक क्षेपक मानकर छोड़ देना चाहिए ?

(३) इस तरह काट-छाटकर जिस अंशको हम स्वीकार करें वह अस्पृश्यता, जाति-प्रथा, दर्जेकी समानता, सहभोज और अतर्जातीय विवाहोंके सवधमें क्या कहता है ? इन सब प्रश्नोंकी अपने निबधमें डॉ० अम्बेडकरने योग्यतापूर्वक छानबीन की है । (ह० से०, ११ ७ ३६)

अम्बेडकर साहबसे तो दूसरी आशा ही नहीं थी । वह मेरा हमेशा विरोधी रहा है । वह मुझे मार भी डाले तो मुझे अफसोस न होगा । (का० क०, २० ६ ४२)

: ८ :

बी अम्मा

यह मानना मुश्किल है कि बी अम्माका देहात हो गया है । बी अम्माकी उस राजसी मूर्तिको या सार्वजनिक सभाओंमें उनकी बुलद आवाजको कौन नहीं जानता । बुढ़ापा होते हुए भी उनमें एक नवयुवकी

शक्ति थी। खिलाफत और स्वराज्यके लिए उन्होंने अथक यात्राएँ की। इस्लामकी कट्टर अनुयायिनी होते हुए भी उन्होंने देख लिया था कि इस्लामका कार्य, जहातक मनुष्यके बस की बात है, भारतकी आजादीपर आधारित है। इसी निश्चयके साथ उन्होंने यह भी महसूस कर लिया था कि हिन्दुस्तानकी आजादी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और खादीके बिना असम्भव है। इसलिए वे अविराम एकताका प्रचार करती थी। यह उनके लिए एक अटल सिद्धांत हो गया था। उन्होंने अपने तमाम विदेशी और मिलके कपड़ोंका परित्याग कर दिया था और खादी इस्तेमाल करती थी। मौलाना मुहम्मदअली मुभ्मे कहते हैं कि वी अम्माने उन्हें यह हुक्म दे रखा था कि मेरे जनाजेपर सिवा खादीके और कुछ न होना चाहिए। जब-जब मुभ्मे उनके विछीनेके नजदीक जानेका सौभाग्य प्राप्त होता तब-तब वे स्वराज्य और एकताकी बातें पूछती। उनके बाद ही प्रायः वे खुदा-तालासे दुआ करती—“या खुदा, हिंदुओं और मुसलमानोंको ऐसी अक्ल बख्श कि जिससे ये एकताकी जरूरतको समझे और रहम करके स्वराज्य देखनेके लिए मुभ्मे जिंदा रहने दें।” इस बहादुर और भद्र आत्माकी याद-गारको बनाए रखनेकी सबसे अच्छी रीति यही है कि हम सर्व-सामान्य कार्योंके प्रति उनके उत्साह और उमंगका अनुकरण करें। हिंदू धर्म भी बिना स्वराज्यके उतना ही सकटमें है जितना कि इस्लाम। परमात्मा करे कि हिंदुओं और मुसलमानोंको इस प्रारम्भिक बातकी कदर करनेकी वी अम्मा जैसी बुद्धि दें। परमात्मा उनकी आत्माको शांति और अली-भाइयोंको उनके सौंपे कार्यको जारी रखनेकी शक्ति दें।

वी अम्माकी मृत्युकी रातके उस गभीर और प्रभावकारी दृश्यका वर्णन किये बिना मैं नहीं रह सकता। उस समय मुभ्मे उनके पास ही रहनेका सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। यह सुनते ही कि अब वे अपने जीवनकी अन्तिम सासे ले रही हैं मैं और सरोजिनी देवी वहाँ दौड़े गये। उनके कुटुम्बके कितने ही लोग आसपास जमा थे। उनके डाक्टर और हितचिंतक

डा० असारि भी मौजूद थे । वहा रौनेकी आवाज नही सुनाई देती थी, अल-वत्ते मौ० मुहम्मदअलीके गालोपरसे आसू जरूर टपक रहे थे । वडे भाईने बडी कठिनाईसे अपने शोकावेगको रोक रक्खा था । हा, उनके चेहरेपर एक असाधारण गभीरता अलवत्ते थी । सब लोग अल्लाका नामोच्चार कर रहे थे । एक सज्जन अत समयकी प्रार्थना गा रहे थे । 'कामरेड प्रेस' वी अम्माके कमरेके इतना पास है कि आवाज सुनाई दे सकती है । परंतु एक मिनिटके लिए वहाके काममे गडबड नही हुई और न मौलानाने ही अपने सपादकीय कर्तव्योमे रुकावट आने दी । और सार्वजनिक काम तो कोई भी मुलतवी नही किया गया । मौलाना शौकतअलीने तो सपने तकमे न सोचा था कि मैं अपना रामजस कालेज जाना मुलतवी करुंगा । वे एक सच्चे सिपाहीकी तरह मुजफ्फरनगरके हिंदुओको दिये गए निश्चित समयपर उनसे मिले हालाकि वी अम्माकी मृत्युके बाद उन्हे तुरत ही वहासे चला जाना पडा था । यह सब जैसा कि होना चाहिए था वैसा ही हुआ । जन्म और मरण, ये दो भिन्न-भिन्न दशाए नही है, बल्कि एक ही दशाके दो भिन्न-भिन्न स्वरूप है । न मृत्युसे दुखी होनेकी जरूरत है, न जन्मसे खुशी मनानेकी । (हि० न०, २३.११.२४)

: ६ :

राजकुमारा अमृतकौर

आज मैं सोचता हू और यह समझनेकी बात है कि एक क्रिस्टी वहन—उसे आप जानते है—राजकुमारी अमृतकौर, वह तो हेल्थ मिनिस्टर (स्वास्थ्य-मन्त्री) है, जितने लोग कैपोमे पडे है, हिंदू-मुसलमान, सबके लिए वह कुछ करना चाहती है । मगर उसे किसीका सहारा न मिले तो

वह क्या कर सकती है ? वह पक्षपात तो कर नहीं सकती । जो कुछ हो सकता है सबके लिए करती है । वह थोड़ी क्रिस्टी भी है, थोड़ी मुसलमान भी है, थोड़ी हिंदू भी, इसलिए उसके सामने सब धर्म एक समान है । वह चली गई और उसके साथ लडकिया भी गईं, वे सब तो सेवाके लिए गई थी । सेवामे डर क्या ? लेकिन उन्होंने मुझको सुनाया कि वहा जो हिंदू, सिख पडे है वे कहते है कि खबरदार, तुम मुसलमानोकी सेवा करनेके लिए जाती हो तो यहासे भागना होगा । जब मैंने यह सुना तो हँस दिया । वह कहनेकी बात थी, कुछ करना थोडे ही था । (प्रा० प्र० २७ ६ ४७)

: १० :

अरविन्द घोष

अरविन्दबाबूके वारेमे मैं कुछ भी कहनेमे असमर्थ हूँ । इतना तो अवश्य कबूल करना पडेगा कि अरविन्दबाबूकी छायाके नीचे रहनेवाले दो सौ आदमियोमे ऐसे लोग है जिनके जीवनमे उनके सहवासके कारण बडे परिवर्तन हुए हैं । प्रत्येक अपने-अपने स्वभावके अनुसार अनुकरण करता है । (२८५ ३५को वोरसदसे लिखे एक पत्रसे)

...

अरविन्दका आश्रम क्या चीज है यह भी तो आपको जानना चाहिए । यो तो वहा लोगोकी एक धारा चल रही है । वहा हमेशा काफी लोग जाते हैं । उनके काफी भक्त हैं, हिंदू क्या, मुसलमान क्या, किसीके लिए वहा घृणा तो है ही नहीं । सर अकबर हैदरी, अब तो वह मर गए,

प्रतिवर्ष वहा जाते थे, उसका तो मैं गवाह हूँ । श्रीअरविन्द तो दीनभक्त हैं, किसीसे मिलते नहीं हैं । ऊपरसे उनका दर्शन हुआ तो हुआ, नहीं हुआ तो नहीं, लेकिन लोग जाते थे । उनके पास यह रहते हैं । इनके दिलमें भी ऐसी कोई घृणा नहीं है । तो इतना तो हम सीख ले कि हमारे दिलमें क्यों घृणा होनी चाहिए । (प्रा० प्र०, २६ १०.४७)

: ११ :

लार्ड अरविन्द

आज अरविन्दपर हॉनिमैनका लेख है । इसने उसे चालाक मौकापरस्त बताया है ।

["यह चालाक अवसरवादी है । अपनी असंगतताओं तथा सिद्धांतों और नीतिके परिवर्तनोंको सच्चेपनके आग्रह और सचार्डके दभी स्वांगके मोटे पर्देके नीचे ढकना चाहता है ।

“वह एक बार साइमन कमीशनके हिमायतीके रूपमें खड़ा हुआ, फिर नरम दलवालोंका विरोध देखकर झुक गया । एक बार उसने सविनयभंगकी लड़ाईकी लाठी और आर्डिनेंससे कुचलनेकी कोशिश की । बादमें कांग्रेसका जोर देखा तो झुक गया । उसकी सचार्डकी बातोंसे अरुचि होती है । अब ये बंद हो जाय तो ही अच्छा । अगर वह गोलमेज परिषदको फिर जिंदा करा दे तो जरूर उसकी सचार्डके बारेमें विचार किया जायगा ।”]

मैं इस विचारका नहीं । इस आदमीमें सचार्ड है, इस अर्थमें कि उसमें उखाड़-पछाड़ नहीं, दावपेच नहीं । वह सीधी-सादी बात करने-वाला है । साइमनके समय उसे वह बात अच्छी नहीं लगती थी, मगर

उसने विचार कर लिया कि अनुदार दलके नाते जो नीति अपना ली गई है उसके खिलाफ न जाया जाय । उसके खरेपनकी भी हद है और वह हद यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य अखण्ड रहे । उसे खतरा हो तो वह वचनभगका भी विरोध नहीं करेगा । वह ब्रिटिश साम्राज्यको ईश्वरकी एक अद्भुत कृति मानने वाला है—जैसा कि हर एक अनुदार दलवाला मानता है—और उसी दृष्टिसे वह सब चीजोंको देखता है । मगर वह खरा हो या न हो इससे क्या सरोकार ? हमारा तो वास्ता इस बातसे है कि हमें जो चाहिए वह मिलता है या नहीं । (म० डा०, भाग १, १६७ ३२)

: १२ :

अली-बन्धु

(मौलाना गौकत अली और मुहम्मद अली)

गौकतअली सरल और मिलनसार आदमी है, पर कट्टर है और किसीका उन्हे भय या दवाव नहीं है । (य० इ०, २३.६ २०)

मौ० गौकतअली तो बड़े-से-बड़े गूरवीरोमसे एक है । उनमें बलिदानकी अद्भुत योग्यता है और उसी तरह खुदाके मामूली-से-मामूली जीवको चाहनेकी उनकी प्रेम-शक्ति भी अजीब है । वे खुद इस्लामपर फिदा है, पर दूसरे धर्मोंसे वे घृणा नहीं करते । मौ० मुहम्मदअली इनका दूसरा शरीर है । मौ० मुहम्मदअलीमें मैंने बड़े भाईके प्रति जितनी अनन्य निष्ठा देखी है उतनी कही नहीं देखी । उनकी बुद्धिने यह बात तय कर ली है कि हिंदू-मुसलमान एकताके सिवा हिंदुस्तानके छुटकारेका कोई रास्ता नहीं ।

उनका 'पैन इस्लामवाद' हिंदू विरोधी नहीं है। इस्लाम भीतर और बाहरसे शुद्ध हो जाय और बाहरके हर किस्मके हमलोसे सगठित होकर टक्कर ले सके ऐसी स्थिति देखनेकी तीव्र आकाक्षापर कोई कैसे आपत्ति कर सकता है ? कोकोनाडाके उनके भाषणका एक हिस्सा बहुत ही आपत्तिजनक बताकर मुझे दिखाया गया था। मैंने मौलानाका ध्यान उसपर खींचा। उन्होंने उसी दम स्वीकार किया कि हा, वास्तवमें यह भूल हुई। कुछ दोस्तोंने मुझे सूचना दी है कि मी० शीकतअलीके खिलाफत-परिपद्वाले भाषणमें कितनी ही बातें आपत्तिजनक हैं। यह भाषण मेरे पास है, परंतु उसे पढ़नेका मुझे समय नहीं मिल पाया। यह मैं जरूर जानता हू कि यदि उसमें सचमुच कोई ऐसी बात होगी जिससे किसीका दिल दुखी हो तो मी० शीकतअली ऐसे लोगोमें पहले व्यक्ति हैं जो उसको ठीक करनेके लिए तैयार रहते हैं।

यह बात नहीं कि अलीभाई दोपोसे खाली हो। मैं खुद भी दोपोसे भरपूर हू। इससे इन भाइयोकी दोस्तीकी खोज करने और उसकी कीमत समझनेमें हिचकिचाता नहीं। अगर उनके अदर कुछ ऐव है तो उनसे ज्यादा गुण भी है और मैं उनके ऐवोके रहते हुए भी उन्हें चाहता हू।

यदि हमसेसे बहुतेरे लोग पूर्णताको पहुंचे हुए होते तो हमारे अदर भगडे होते ही क्यों ? पर हम सब अपूर्ण प्राणी हैं और इसीसे हम सबको एक दूसरेकी अनुकूल बातें खोजकर और ईश्वरपर भरोसा रखकर ध्येयके लिए मरना चाहिए। (हि० न०, १६.२४)

..

..

जिस समय खेडाका आदोलन जारी था, उसी समय यूरोपका महा-समर भी चल रहा था। उसके सिलसिलेमें वायसरायने दिल्लीमें नेताओंको बुलवाया था। मुझे भी उसमें हाजिर रहनेका आग्रह किया था। मैं यह पहले ही लिख चुका हू कि लार्ड चेम्सफोर्डके साथ मेरा मैत्री-संबंध था।

मैंने आमत्रण सजूर किया और दिल्ली गया, किंतु इस सभामे शामिल होनेमे मुझे एक सकोच था। इसका मुख्य कारण यह था कि उसमे अली-भाइयो, लोकमान्य तथा दूसरे नेताओको नही बुलाया गया था। उस समय अली-भाई जेलमे थे। उनसे मैं एक-दो बार ही मिला था। सुना उनके बारेमे बहुत-कुछ था। उनके सेवा-भाव, बहादुरीकी स्तुति सभी कोई किया करते थे। हकीम साहबके साथ भी मेरा परिचय नही हुआ था। स्व० आचार्य रुद्र और दीनबन्धु एड्जुके मुहसे उनकी बहुत प्रशंसा सुनी थी। कलकत्तावाले मुस्लिम-लीगके अधिवेशनमे श्वेव कुरेशी और वैरिस्टर रवाजासे मेरी मुलाकात हुई थी। डाक्टर अंसारी और डाक्टर अब्दुर्रहमानसे भी परिचय हो चुका था। भले मुसलमानोकी सोहबत मैं ढूढता था और उनमे जो पवित्र तथा देगभक्त समझे जाते थे उनके सपर्कमे आकर उनकी भावनाए जाननेकी मुझे तीव्र इच्छा रहती थी। इसलिए मुझे वे अपने समाजमे जहा कही ले जाते, मैं बिना कोई खीच-तान कराए ही चला जाता था। यह तो मैं दक्षिण अफ्रीकामे ही समझ चुका था कि हिंदुस्तानके हिंदू-मुसलमानोमे सच्चा मित्राचार नही है। दोनोके मन-मुटावको मिटानेका एक भी मौका मैं योही जाने नही देता था। झूठी खुशामद करके या स्वत्व गवाकर किसीको खूग करना मैं जानता ही नही था, किंतु मैं वहीसे यह भी समझता आया था कि मेरी अहिंसाकी कसौटी और उसका विनाश प्रयोग इस ऐक्यके सिलसिलेमे ही होनेवाला है। अब भी मेरी यह राय कायम है। प्रतिक्षण मेरी कसौटी डंगवर कर रहा है। मेरा प्रयोग आज भी जारी है।

इन विचारोको साथ लेकर मैं बर्दके बंदर पर उतरा था। इसलिए इन भाइयोका मिलाप मुझे अच्छा लगा। हमारा स्नेह बढ़ता गया। हमारा परिचय होनेके बाद तुरत ही सरकारने अली-भाइयोको जीते-जी ही दफन कर दिया था। मौलाना मुहम्मदअलीको जव-जव इजाजत मिलती, वह मुझे बँतूल जेलसे या छिंदवाडा जेलसे लवे-लवे पत्र लिखा

करते थे । मैंने उनसे मिलने जानेकी प्रार्थना सरकारसे की, मगर उसकी इजाजत न मिली ।

अली-भाइयोके जेल जानेके बाद मुस्लिम-लीगकी सभामें मुझे मुलसमान भाई ले गये थे । वहा मुझसे बोलनेके लिए कहा गया था । मैं बोला । अली-भाइयोको छुड़ानेका धर्म मुसलमानोको समझाया ।

इसके बाद वे मुझे अलीगढ कालेजमें भी ले गये थे । वहा मैंने मुसलमानोको देशके लिए फकीरी लेनेका न्यौता दिया था ।

अली-भाइयोको छुड़ानेके लिए मैंने सरकारके साथ पत्र-व्यवहार चलाया । इस सिलसिलेमें इन भाइयोकी खिलाफत-सबधी हलचलका अध्ययन किया । मुसलमानोके साथ भी चर्चा की । मुझे लगा कि अगर मैं मुसलमानोका सच्चा मित्र बनना चाहू तो मुझे अली-भाइयोको छुड़ानेमें और खिलाफतका प्रश्न न्यायपूर्वक हल करनेमें पूरी मदद करनी चाहिए । खिलाफतका प्रश्न मेरे लिए सहल था । उसके स्वतंत्र गुण-दोष तो मुझे देखने भी नहीं थे । मुझे ऐसा लगा कि उस सबधमें मुसलमानोकी माग नीति-विरुद्ध न हो तो मुझे उसमें मदद देनी चाहिए । धर्म-के प्रश्नमें श्रद्धा सर्वोपरि होती है । सबकी श्रद्धा एक ही वस्तुके वारेमें एक ही-सी हो तो फिर जगत्में एक ही धर्म हो सकता है । खिलाफत-सबधी माग मुझे नीति-विरुद्ध नहीं जान पड़ी । इतना ही नहीं, बल्कि यही माग इंग्लैंडके प्रधानमंत्री लॉयड जार्जने स्वीकार की थी, इसलिए मुझे तो उनसे अपने वचनका पालन कराने भरका ही प्रयत्न करना था । वचन ऐसे स्पष्ट शब्दोंमें थे कि मर्यादित गुण-दोषकी परीक्षा मुझे महज अपनी अंतरात्माको प्रसन्न करनेकी ही खातिर करनी थी । (आ० १६२७)

उन्हें (मौ० शौकतअलीको) उर्दू कवियोंके बढिया वचन जवानी याद । जब वे ये वचन सुनाते थे और उस जमानेमें जो बातें करते थे, उस

वक्त भी वे ईमानदार थे । आज भी ईमानदार हैं । मुझे कभी ऐसा नहीं लगा कि वे झूठ बोलते या धोखा देते थे । आज वे मानते हैं कि हिन्दू विश्वासपात्र नहीं हैं और उनके साथ लड़ लेनेमें ही कौमका भला है । यह मनोदग्ग वुरी है । मगर कौमकी सेवा उनके दिलमें है, उनका कोई स्वार्थी हेतु नहीं है । ऐसे ईमानदार आदमी बहुत मौजूद हैं ।

(म० डा०, भाग १, ४७३२)

स्व० मौलाना शीकतअलीके स्मारकके वारेमें मैंने कई तजवीजे पढी हैं । ज्योही मुझे मौलानाकी मृत्युके वारेमें मालूम हुआ, जिसकी कि अभी विल्कुल ही आगा नहीं थी, मैंने कुछ मुसलमान मित्रोंको उनके साथ अपने अन्तस्तलकी समवेदना प्रकट करते हुए लिखा । उनमेंसे एक मित्रने लिखा है

“ . . मैं यह जानता हू कि मौ० शीकतअली अपने खास ढंगसे सच्चा हिंदू-मुस्लिम समझौता करानेके लिए सचमुच चिंतित थे । स्वर्गमें उनकी आत्माको यह जानकर कि उनका एक जीवन उद्देश्य आखिर-कार पूरा हो गया, जितनी शांति मिलेगी उतनी किसी दूसरे कामसे नहीं । ऐसे भी लोग हो सकते हैं, जिन्हें कि इसमें सदेह हो, लेकिन मौलानाको और उनका दिमाग किस तरह काम करता था इसको अच्छी तरह जानकर, जैसा कि मैं उन्हें जानता था, मैं भरोसेके साथ इस बातकी ताईद कर सकता हूँ । ”

कभी-कभी जो वे जोगमें आकर खिलाफ बोल जाते थे, उसके वावजूद मौलानाके दिलमें एकता और शांतिके लिए वही तमन्ना थी जिसके लिए कि वह खिलाफतके दिनोमें बड़े मोहक ढंगसे बोलते व काम करते थे । मुझे इसमें कोई शक नहीं कि उनकी यादगारमें हिंदू और मुसलमान दोनों ही कौमोका एकताके लिए हुआ संयुक्त निश्चय ही सबसे सच्चा स्मारक होगा । खाली कागजी एकताका निश्चय नहीं, बल्कि दिली एकता-

का, जिसका आधार शक और वेष्टेवारी नहीं, बल्कि आपसका विश्वास होगा। कोई दूसरी एकता हमें नहीं चाहिए और इस एकताके बिना हिंदुस्तानके लिए सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकती।

(ह० से०, १७ १२ ३८)

आप लोगोंने जो इतनी शांति रखी इसके लिए आपको धन्यवाद है। पहले इतनी शांति नहीं हुआ करती थी। इससे साफ है कि पिछले तीन दिन जो हुआ उससे हमने धर्म नहीं खोया है। यदि आदमी शांतिसे न रहे, कभी अपने विचारोंको भीतरसे न देखे, जीवनभर दोड़-दगलमें ही रहे और हर वक्त गरम बना रहे तो वह उस शक्तिको पैदा नहीं कर सकता, जिसे शौकतअली साहब 'ठंडी ताकत' कहा करते थे। मुहम्मदअली साहब भी कहते थे कि हमें अंग्रेजोंसे लड़कर स्वराज्य लेना है और हमारी लड़ाई होगी तकलीकी तोपोंसे और कुकुडियोंके गोलोंसे। वह तो जितना विद्वान था, उतना ही कल्पनाएँ दौड़ानेवाला था। (प्रा० प्र०, ५ ४ ४७)

: १३ :

हाजी वजीर अली

हाजी वजीर आधे मलायी कहे जा सकते हैं। उनके पिता भारतीय मुसलमान थे और माता मलायी थी। उनकी मादरी जवानको डच कह सकते हैं, पर उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा भी यहाँतक प्राप्त कर ली थी कि वे अंग्रेजी और डच दोनों अच्छी तरह बोल सकते थे। अंग्रेजीमें भाषण करते वक्त उन्हें कहीं भी ठहरना नहीं पड़ता था। अखबारोंमें पत्र वगैरह लिखनेकी आदत भी उन्होंने कर ली थी। ट्रान्सवाल ब्रिटिश एसोसियेशनके

वे मेम्बर थे और बहुत दिनसे सार्वजनिक हलचलोमे भाग लेते आए थे । हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह बोल सकते थे । एक मलायी महिलाके साथ उनका विवाह हुआ था और उससे उनकी प्रजाका बड़ा विस्तार था ।

(द० अ० स०, पृष्ठ १७१)

: १४ :

सी० पी० रामस्वामी अय्यर

मैंने अखवारोमे सर सी० पी० रामस्वामीका ऐलान देखा । वे बड़े विद्वान व्यक्ति हैं । ऐनी वेसेटके गिण्य रहे हैं । जब मैं हरिजन-यात्रामे था तब उनके निमंत्रणपर उनके यहा त्रावनकोरमे मेहमान बनकर गया था । लडने नहीं, पर मिलकर काम करनेको गया था । उनसे यह बात सुनकर अच्छी नहीं लगती । अगर अखवारमे गलती हो तो वे मुझे माफ करे, सही हो तो मेरी बातपर गौर करे । उन्होंने कहा है कि पंद्रह अगस्तसे जब हिंदुस्तान स्वतंत्र होगा तब त्रावनकोर आजाद हो जायगा । और उनकी वह आजादी ऐसी है कि आजसे ही त्रावनकोरकी स्टेट कांग्रेसके लिए सभावदी कर दी गई है । खबर यहातक है कि सी० पी० रामस्वामीने उन लोगोको त्रावनकोर छोडकर चले जानेके लिए कहा है जो त्रावनकोरकी स्वतंत्रताकी मुखालफतमे हो । और यह आज्ञा वे सज्जन दे रहे हैं जो खुद त्रावनकोरके नहीं, बल्कि मद्रासके रहनेवाले हैं । वे किस तरह ऐसा कहते हैं ।

ब्रिटिश राजमे आजतक त्रावनकोरको अंग्रेज शाहगाहीको सलामी देनी पडती थी तो अब हिंदुस्तानके प्रजातंत्र सधमे वह मनमानी कैसे कर सकता है ? वह अब हमारा राज्य है यानी भारतके प्रजाकीय राज्यको उसे (त्रावनकोरको) अपना ही राज्य समझना चाहिए । मैंने बताया है

कि प्रजाकीय राजमें राजा और मेहतरकी कीमत एक-सी रहनेवाली है। मनुष्यके नाते दोनोकी कीमत एक ही रहेगी, पर दोनोकी बुद्धिमत्तामें भेद हो सकता है। अगर त्रावनकोरके महाराजाके पास बड़ी अकल है तो उन्हें उसे लोगोकी सेवामें लगाना चाहिए। अगर प्रजाको कुचलनेमें वे अपनी बुद्धि दौड़ाते हैं तो उनकी वह अकल फिजूलकी है। अपनी सारी रैयतको कुचलकर ओर मार डालकर क्या त्रावनकोर नरेश निरी जमीन-पर राज करेंगे ? (प्रा० प्र०, १३.६ ४७)

कल मैंने त्रावनकोरके दीवान सर सी० पी० रामस्वामीकी बात आप लोगोको सुनाई थी। आजकल तो तार और रेडियोका जमाना है। उनके कानोतक मेरी वह बात पहुंच गई और उन्होंने एक लवा-चौड़ा तार मेरे पास भेज दिया है। उन्होंने बहुतसे खुलासे किये हैं, पर त्रावनकोर-कांग्रेस-कमेटीको सभा करने और जुलूस निकालनेकी इजाजत नहीं दी है। उसके बारेमें वे कुछ नहीं बोले हैं। इसमें मुझे बुराई नजर आती है। यह लक्षण अच्छे नहीं है। वे कहते हैं कि त्रावनकोर तो सदासे आजाद रहा है।

सर सी० पी० रामस्वामी तो मेरे दोस्त रहे हैं, सब बात सही, लेकिन मेरा लडका ही क्यों न हो, सही बात कहनेसे मैं क्यों रुकू ? हिंदुस्तान जब आजाद होता है तब अगर वे यही कहते हैं कि त्रावनकोर आजाद है तो इसका मतलब यह है कि वे आजाद हिंदसे लडना चाहते हैं।

मैं तो उनसे कहूंगा कि आप तख्तपरसे नीचे उतरिए और त्रावनकोरके लोगोके खादिम बनकर रहिए। जब अंग्रेजोंने आपसे एक बार राज्य छीन लिया और कुछ पैसे लेकर तथा अपनी रैयतको कुचलनेका आपको अधिकार देकर वह राज आपको लौटा दिया तो उसमें इतनी फस्रकी बात क्या थी ? फस्रकी बात तब है जब आप जनताको अपना मालिक माने। वैसे तो हिंदुस्तान गिरा नहीं है और अगर वह अपनी

परेशानीमें पड़ा है तो यह ग़राफ़तकी बात नहीं है कि आप जो आदमी गिर पड़ा है उसको ऊपरसे लात धर दे । हिंदुस्तानके एक-चौथाई और तीन-चौथाई ऐसे दो टुकड़े होते हैं तो उन टुकड़ोंकी बातसे आपका कोई संबंध नहीं । आप शरीफ़ बने और समझे । (प्रा० प्र०, १४ ६ ४७)

आज फिर मेरे पास त्रावनकोरके दीवान सर रामस्वामीका लवा-चौड़ा तार आया है, जिसमें मुझे समझानेकी कोशिश की गई है कि उनके साथ वहाके ईसाई आदि भी हैं । पर ऐसे तारसे मुझे बुरा लगता है । कड़वी चीज़को मीठी बनानेसे वह मीठी नहीं बन जाती । मूलसे ही इनकी बात बुरी है । 'आ जाओ, हम तो आजाद हैं ।' 'आप किससे आजाद है ?' रैयतसे ? लोग इस तरह भारतसे आजाद होकर करेगे क्या ? आप इस तरह घुमा-फिराकर बात न करे । सीधी बात करे कि हिंदुस्तानके साथ हम हैं, तब ही आप अपने राजाके प्रति सच्चे वफ़ादार हैं, नहीं तो बेवफ़ा हैं । (प्रा० प्र०, १७ ६ ४७)

सर सी० पी० कहते हैं कि गांधी और कांग्रेस सरहद्दी सूवेको तो आजादी देनेको तैयार है, परंतु त्रावनकोरको नहीं । इतना बड़ा विद्वान होकर भी वह कितनी ग़लत बात करता है । यदि त्रावनकोर अलग हुआ तो हैदराबाद, काश्मीर और इंदौर आदि सब अलग हो जायेंगे । इस तरहसे तो हिंदुस्तानके अनेक टुकड़े हो जायेंगे । इसके अलावा फ़्रांटियरके खान हिंदुस्तानसे पृथक् नहीं होना चाहते । वे कहते हैं कि हम पाकिस्तानमें नहीं जायेंगे । तब फिर क्या वे हिंदुस्तानमें हिंदुओंकी गुलामी करेंगे ? उनपर कांग्रेससे पैसा खानेका इत्जाम लगाया जाता है । कांग्रेस यदि इस तरहसे किसीको पैसा देकर अपनी तरफ़ करे तो वह अबतक जिदा नहीं रहती । वादग्राह खानने हमें विश्वास दिलाया है कि हिंदुस्तान पहले अपना विधान बना ले । इस दौरानमें वह किसी फैसलेपर पहुंच जायेंगे । मगर रामस्वामी जो कहते हैं वह बिल्कुल ग़लत है । फ़्रांटियरमें

वहा रहनेवाली प्रजाकी आवाज है, जबकि त्रावनकोरमे तो एक राजा और उसका सचिव ही सारी प्रजाकी तरफसे बोल रहा है ।

आजकी हालतमे राजा और प्रजा दोनोका एक हक है, यह मेरा दावा है । फ्राटियरकी मिसाल देकर सर सी० पी० लोगोकी आखोमे घूल नही भोक सकते । इस तरहसे न तो धर्म रहता है और न कर्म रहता है । मैं तो रामस्वामीसे यही कहूंगा कि सही चीज यही है कि त्रावनकोर राज्य विधान-परिषद्मे आ जाए । (प्रा० प्र०, २४ ६ ४७)

...

मुझसे यह पूछा गया है कि दक्षिण भारतमे तो हरिजनोके लिए इतना काम हो गया और तामिलनाड तथा आंध्रके सब बड़े-बड़े मंदिर हरिजनोके लिए खोल दिये गये, परंतु युक्तप्रातका क्या हुआ ? युक्त-प्रातमे हरिद्वार पडा है । क्या हरिद्वारके मदिरोमे अछूत जा सकते हैं ? दक्षिण भारतकी त्रावनकोर रियासतमे तो बहुत पहलेसे ही यह सब हो गया था । वहाके दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर आज तो हमसे विगडे हुए हैं, और विगडे हुए हैं भी या नही, यह आज तो मैं नही जानता । मगर तब उन्होने वहाके महाराजाको समझाकर अबसे बहुत पहले ही कानून द्वारा अपनी रियासतमे अछूतपनको मिटा दिया था । युक्तप्रातमे हरिद्वारके अलावा काशी विश्वनाथ भी है जहा गंगाजीमे स्नान करनेसे मोक्ष मिलता बताया जाता है । वहाके मदिरोमे हरिजन जा सकते हैं, ऐसा मैं नही कह सकता, परंतु मैं तो यही कहूंगा कि जहा हरिजन नही जा सकते वे मंदिर नापाक हैं । (प्रा० प्र०, १६.७ ४७)

: १५ :

जनरल यू आंग-सांग

ब्रह्मदेश भी हिंदुस्तानकी तरह आजाद हो रहा है। वहाके नेता जनरल यू आंग-सांगने आधुनिक वर्माको जन्म दिया और उसे आजादीके दरवाजेपर लाकर छोड़ दिया। वह सत्याग्रही नहीं था तो उससे क्या हुआ ? वह एक बहादुर लड़ाका था और उसीके फलस्वरूप आज वर्मा आजाद होने जा रहा है। एक सगस्त्र गिरोहने उनको और उनके चार अन्य साथियोंको कत्ल कर दिया, यह कोई छोटी बात नहीं है। हम चाहे उनसे कितनी ही दूर हों, मगर हमारे लिए यह बड़े रजकी बात है। अगर ऐसी घटना होती रही तो दुनियाका क्या हाल होगा ? हत्यारे सचमुच लुटेरे थे, ऐसा मुझे नहीं लगता। मैं वर्मामें काफी रहा हूँ। रगून और माडले आदि स्थान सब मेरे देखे हुए हैं। वहा बुद्ध-धर्म चलता है। वर्माके लोग अधिकांश बुद्ध-धर्मको मानते हैं। जहा बुद्ध-धर्म प्रचलित है वहा ऐसा खून-खच्चर क्यों ? इन हत्याओमें लुटेरूपन नहीं, बल्कि उनके पीछे कुछ पार्टीवाजी रही है। इस तरहकी लड़ाइयोंने दुनियाका सत्यानाश कर दिया है। इस तरहसे तो जो हमारे मुखालिफ हैं वे आकर हमारा खून करने लगे तो कैसे काम चलेगा। वर्मा जब आजादीके दरवाजेमें दाखिल हो गया है तब ऐसा होना बहुत दुःखदायी बात है। हम ऐसे जाहिल क्यों बन जाते हैं ?

मुझे आगा है कि हिंदुस्तान इससे सबक लेगा, क्योंकि यह न केवल वर्माके लिए, बल्कि सारे एशिया और ससारके लिए एक दुःखद घटना हुई है। हम सब यह प्रार्थना करें कि हे भगवान, वर्माके जो लोग हैं वे हमारी ही तरहसे आजादीके लिए तडप रहे हैं, उनको तू इस दुःखमें सात्वना दे और मृत व्यक्तियोंके परिवारोंको शोक सहन करनेकी शक्ति

दे । जिन लोगोंने खून किया है उनके दिलोकी भी तबदीली कर ।
(प्रा० प्र०, २०.७ ४७)

: १६ :

मौलाना अबुलकलाम आजाद

कांग्रेसमें अनेक विचारक पड़े हुए हैं । मौलाना स्वयं एक महान् विचारक हैं । वह तीव्र बुद्धिके हैं । उनका अध्ययन विस्तृत है । अरबी, फारसीके अध्ययनमें उनके जोड़का विद्वान मिलना कठिन है । अनुभवने उन्हें सिखाया है कि अहिंसासे ही हिंदुस्तान आजाद होगा । (ह० से०, १० ८.४०)

: १७ :

श्रीनिवास आयरंगर

श्री श्रीनिवास आयरंगरके आगामी कांग्रेसके लिए सभापति चुने जानेकी बात पहलेसे ही पक्की थी । कांग्रेस कमेटिया एक कट्टर स्वराजीको ही चुननेके लिए वाध्य थी । श्रीनिवास आयरंगर एक लड़ैये हैं और साथ-ही-साथ वे आदर्शवादी भी हैं । वे बेसन्न हैं और उनका बेसन्नीसे भरा हुआ जोश उनको प्रायः बड़े गहराये में ले उतारता है, जहाकि मामूली आदमीकी गति नहीं । वे किसी काममें बिना दुवारा सोचे ही कूद पड़ते हैं । ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदपर उनका चुना जाना ऐसे सकटके अवसरपर हुआ है कि जैसा उससे पहले कभी न आया होगा । लेकिन श्री आयरंगर-

को अपनेमे तथा अपनी शक्तिमे विश्वास है । यह बात सर्वविदित है कि अपनेमे विश्वास रखनेवालोकी ईश्वर सहायता करता है । हम आशा करे कि ईश्वर श्री आर्यगरकी सहायता करेगा । श्री आर्यगरको उस तमाम मददकी आवश्यकता है, जो कि कांग्रेसवाले उन्हें दे सकते हो । हमने निष्क्रिय भक्तिकी विद्या तो सीख ली है, लेकिन अब समय आ पहुँचा है, जबकि हमको सक्रिय भक्ति दिखाना सीखना चाहिए । अगर कांग्रेसवाले अपनी नीति और अपने प्रस्तावोका, जिनके स्वीकृत किये जानेमे उनका हाथ रहता है, पालन करेगे तो श्री आर्यगरका काम कठिन होते हुए भी आसान बन जायगा । जिस सस्थाको उन्नति करना है उसके सदस्योंको कम-से-कम इतना तो करना ही चाहिए । मैं श्री आर्यगरको उस बड़ी प्रतिष्ठाके लिए बधाई देता हूँ, जो कि उनको मिली है और मैं उन साधारण कठिनाइयोपर उनके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करता हूँ, जो कि उनके सामने है । मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हें उन कठिनाइयोपर विजय पानेकी वृद्धि और बल दे । (हि० न०, १६ १ २६)

: १८ :

एस० रंगास्वामी आर्यगर

‘हिंदू’के भूतपूर्व संपादक श्री एस० रंगास्वामी आर्यगरकी मृत्यु हो गई है । उनके कुटुंब तथा ‘हिंदू’के कर्मचारियोंके साथ जो समवेदना प्रकट की जा चुकी है, उसमे मैं भी आदरपूर्वक शरीक होता हूँ । उनकी मृत्यु श्री कस्तूरी रंगा आर्यगरकी मृत्युके कुछ ही बाद होनेसे संपादक-संसारकी भारी क्षति हुई है । (हि० न०, २८ १० २६)

: १६ :

मीर आलम

एक शख्स मीर आलम था। सरहदी गांधीके मुल्कका। जैसे ये पहाडके-से है, वह उनसे भी ऊंचा था। पहले वह मेरा मित्र था। पर पठान तो भोले ही होते हैं। इसी कारण वे बादशाह हैं। उसको किसीने वहका दिया कि गांधीने पंद्रह हजार पौड जनरल स्मटसे ले लिए हैं और कौमको बेच डाला है। वस, एक दिन वह मीर आलम मेरा दुश्मन बनकर आया। उसके हाथमें बड़ी-सी लाठी थी और उसपर सीसेकी मूठ लगी थी। उसने ठीक मेरी गर्दनपर वह लाठी मारी। मैं गिर पड़ा। नीचे पत्थरका फर्श था। मेरे दात टूट गए। ईश्वरको मजूर था, इसलिए मैं बच गया। मीर आलमको दो-तीन अग्रेजोंने, जो उस रास्तेसे जा रहे थे, पकड़ लिया, लेकिन मैंने उसे यह कहकर छुड़वा दिया कि वह बेचारा दूसरेके धोखेमें आ गया कि मैं लालची हूँ और इसपर फौजी पठानका खून खौल उठे और वह मारनेको उतावू हो जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इस तरहसे मीर आलमको मैंने कैद कर लिया। वह मेरा पक्का दोस्त बन गया। (प्रा० प्र०, ३१ ५ ४७)

: २० :

अरुणा आसफअली

श्रीमती अरुणा मेरी लडकी है, क्या हुआ कि उन्होंने मेरे घरमें जन्म नहीं लिया या कि वह विद्रोही बन गई है। जब वह छिपकर रहती थी

तब भी मैं कई बार उनसे मिला हूँ । मैंने उनकी बहादुरी, नये-नये रास्ते खोजनेकी शक्ति और गहरे देश-प्रेमकी सराहना की है । पर मेरी सराहना इससे आगे नहीं बढ़ी । मैंने उनके छिपकर काम करनेको पसंद नहीं किया । (ह० से०, ३ ३ ४६)

: २१ :

डॉ. मुहम्मद इकबाल

इकबालने कहा—“मजहब नहीं सिखाना आपसमें बैर करना।” इकबालने ऐसा कहा उस वक्त वह लंदनमें रहता था । वह बड़ा कवि था । उस वक्त वह गोलमेज कांफ्रेंसमें आया हुआ था । वहा उसके लिए सवने एक खाना किया तो मुझको भी बुलाया गया । मैं चला गया । उसने कहा कि मैं तो ब्राह्मण हूँ । क्यों ब्राह्मण हूँ ? क्योंकि मेरे बाप-दादे ब्राह्मण थे । कहाके ? काश्मीरके । मैं तो काश्मीरका हूँ । ब्राह्मण हूँ और अब मैं इस्लाममें आया हूँ । अभी नहीं, बहुत पीछे हम इस्लाममें आए । तो भी हममें ब्राह्मण खून पड़ा है और इस्लामका तमदुन (संस्कृति) हमारेमें पड़ा है । तो इकबालने कहा—“मजहब नहीं सिखाता आपसमें बैर करना ।” पीछे उसने दूसरा-तीसरा भी लिखा है । वह दूसरी बात है । इकबाल तो चले गए, लेकिन हम इतना तो सीख ले कि हमको हमारा धर्म नहीं सिखाता है कि हम किसीसे बैर करे । इसलिए मैं कहूंगा कि हम इन्सान बने । इन्सान बने तो हम हिंदुस्तानको ऊंचा ले जाते हैं । (प्रा० प्र०, ३० ६ ४७)

: २२ :

जयचंद्र इंद्रजी

‘नवजीवन’ के एक पाठक खबर देते हैं

“गुजरातके प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्र-भक्त श्री जयकृष्ण इन्द्रजीका ता० ३ को कच्छमें देहात हो गया । वह अपने पीछे एक विधवा छोड़ गये हैं । उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं है ।”

पोरबंदरमें श्री जयकृष्णसे मेरा परिचय हुआ था और उसी समय अपने विषयमें सर्वोपरि बननेकी उनकी दृढ़ इच्छा और वैसी ही उनकी सादगी देखकर मैं आश्चर्यचकित बना था । वनस्पतियोंकी खोजमें वह पर्वतीय प्रदेशोंमें कई बार घूमे थे और अपने विंगल अनुभवके फलस्वरूप एक सुंदर पुस्तक भी लिख गये हैं । अपने घर हीमें उन्होंने अनेक प्रकारकी वनस्पतियोंका एक संग्रहालय बना रखा था, जिसे हर मिलनेवालेको वह अभिमानके साथ बताया करते थे । उन्हें वनस्पतिकी शोध-खोजके सिवा और कोई बात ही नहीं सूझती थी । अपनी इस बुनमें वह इस लोक और परलोकका श्रेय देखते थे । यही वजह थी कि मैं उन्हें एक आदर्श विद्यार्थी मानता था । कच्छकी यात्रामें मैं फिर उनसे मिला था । वहां भी उनपर वही धुन सवार थी । नये-नये पौधे लगानेका गौक बुढ़ापेमें घटनेके बदले और भी बढ़ गया था । इस तरह अपने विषयमें अनन्य भक्ति रखनेवाले मनुष्य दुर्लभ हैं । श्री जयकृष्ण इन्द्रजी इनमेंसे एक थे । वह तो अपने कर्तव्यका पालन करते हुए निवृत्त हो गये हैं, इसलिए उनकी आत्मा शांत ही है । आइए, हम सब उनकी एकाग्रता और उनके आत्म-विश्वासका अनुकरण करें । (हि० न०, २६ १२ २६)

: २३ :

इमाम साहब

गिरफ्तार किये गए लोगोमे हमारे इमाम साहब भी थे । उनकी कैदका आरम्भ चार दिनमे हुआ था । वह फेरीमे पकड़े गये । उनका शरीर ऐसा नाजुक था कि लोग उन्हें जेल जाते हुए देखकर हँसते थे । कई लोग आकर मुझसे कहते—“भाई, इमाम साहबको इसमे शामिल न करो तो अच्छा हो । वह कीमती लज्जित करेगे ।” मैंने इस चेतावनी-पर जरा भी ध्यान नहीं दिया । इमाम साहबकी शक्तिकी नाप-जोख करनेवाला मैं कौन होता हूँ ? यह सब सत्य है कि इमाम साहब कभी नगे पैर नहीं चलते थे । शौकीन थे । उनकी स्त्री मलायी महिला थी । घर बड़ा सजा हुआ रखते और बिना घोड़ा-गाड़ी लिये कहीं न जाते । पर उनके दिलको कौन जानता था ? यही इमाम साहब चार दिनकी सजा भुगतकर फिर जेलमे गये । वहाँ एक आदर्श कैदीकी तरह रहे । पसीनेकी कमाई खाते, और उन्हीं नित्य नये पकवान खानेकी आदत रखने-वाले इमाम साहबने भक्ताके आटेकी लपसी पीकर ख़ुदाका एहसान माना । वह हारे तो जरा भी नहीं । हा, उन्होंने सादगी जरूर अस्तियार कर ली । कैदी बनकर पत्थर फोड़े, भाड़-बुहारी की और अन्य कैदियोंकी बराबरीमे एक कतारमे खड़े रहे । अतमे फिनिक्समे पानी भरा और छापाखानेमे कपोर्जिंग तक किया । फिनिक्स आश्रममे रहनेवालोके लिए कपोर्जिंग सीख लेना अनिवार्य कर्तव्य था । उसे इमाम साहबने पूरा किया । आजकल भारतवर्षमे भी वह अपना हिस्सा दे रहे हैं, पर ऐसे तो कई लोग जेलमे शुद्ध हो गये । (द० अ० स०, १९२५)

इमाम साहबका अकेला ही मुसलमान कुटुंब अनन्य भक्तिसे आश्रममे

वसा। उन्होंने मृत्युसे हमारे और मुसलमानोंके बीच न टूटनेवाली गाठ बाध दी है। इमाम साहब अपने आपको इस्लामका प्रतिनिधि मानते थे और इसी रूपमें आश्रममें आए। (य० म०, ३०.५.३२)

: २४ :

उर्मिला देवी

बगालमें आज यह आग किसने सुलगाई ? श्रीमती वसती देवी और उर्मिला देवीने। वे खुद गली-गली खादी बेचती फिरी। यह उनकी गिरफ्तारीका प्रभाव है जो बगालका ध्यान इस तरफ गया। देशबन्धु-दासके प्रचंड आत्मत्यागने भी ऐसा चमत्कार नहीं दिखाया। मेरे पास एक पत्र वहासे आया है। उससे यही मालूम होता है। यह बात गलत नहीं हो सकती, क्योंकि स्त्री क्या है, वह साक्षात् त्यागमूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काममें जी-जानसे लग जाती है तो वह पहाड़को भी हिला देती है। हमने अपनी स्त्रियोंका बड़ा दुरुपयोग किया है। जहां तक हो सके हमने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। लेकिन परमात्मन्, तुझे धन्यवाद ! यह चरखा उनके जीवनको बदल रहा है। जरा सरकार हमारे रहे-सहे तमाम नेताओंको जेलका सौभाग्य प्राप्त करा दे, फिर देखिए कि भारतकी देविया किस तरह मैदानमें आती हैं और पुरुषोंके अधूरे कामको अपने हाथोंमें लेकर उनसे भी अधिक अच्छाई और खूबीके साथ उनका संचालन करती हैं। (हि० न०, २५.१२.२१)

: २५ :

सी० एफ० एंड्रूज

श्री एंड्रूजका स्वयनिर्णित कार्य यह है कि उनसे जो कुछ भी बन पड़े वह सेवा करना और फिर उसे भूल जाना। उनकी सेवाका रूप अक्सर शांति स्थापित करना होता है। अभी उन्होंने उड़ीसामे दुखी और पीड़ित मनुष्यों और ढोरोके बीच और वर्डके कष्ट-पीड़ित मिल-मजदूरोके सवधमे अपना काम पूरा किया ही न था कि उन्हें दक्षिण अफ्रीकामे जाकर वहाके भारतीयोकी, जो कष्टमे पड़े हुए है, मदद करनेकी आवश्यकता महसूस होने लगी है। लेकिन वे वहा केवल भारतीयोकी ही मदद न करेगे, यूरोपियनोकी भी सहायता करेगे। उनमे न द्वेष है, न क्रोध। वे हिंदुस्तानियोके प्रति दया दिखानेको नहीं कहते हैं। वे तो सिर्फ न्याय ही चाहते हैं। श्री एंड्रूज दक्षिण अफ्रीकाके लिए कोई नये नहीं है। दक्षिण अफ्रीकाके राजनीतिज्ञ उन्हें जानते हैं और वे इस बातको स्वीकार करते हैं कि वे यूरोपियनोके भी उतने ही मित्र हैं जितने कि हिंदुस्तानियोके। भारतीयोका प्रश्न बड़ी विकट समस्या हो गया है। दक्षिण अफ्रीकामे रहनेवाले भारतीयोके लिए तो वह जीवन-मरणका प्रश्न है। ऐसे विकट प्रसंगपर श्री एंड्रूजके उनके पास होनेसे उन्हें बड़ी गांति मिलेगी। पहले जिस प्रकार इन भले मित्रके प्रयत्नोका अच्छा फल हुआ है उसी प्रकार इस समय भी उनका प्रयत्न सफल हो। (हि० न०, १२ ११ २५)

यूनियन सरकारके भारतीयोके खिलाफ कानून बनानेके बिलका चाहे कुछ भी परिणाम क्यों न आवे, इस प्रश्नको हल करनेमे नि सदेह श्री एंड्रूजका हिस्सा सबसे बढकर ही रहेगा। उनका श्रमहीन उत्साह, उनकी नित्य सावधानी और सुशील समझानेकी शक्तने हमे सफलताकी आशा

दिलाई है। वे स्वयं यद्यपि आरम्भ में बड़े निराश थे, परन्तु अब उन्हें आशा बढी है कि वह बिल, संभव है, कम-से-कम इस बैठकके लिए तो मूलतः वी रहे। वे शांति के साथ पत्र संपादकों से और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं से मुलाकात कर रहे हैं। वे पादरियों की सहानुभूति प्राप्त कर रहे हैं और इस नए कानून का उनसे जोरदार शब्दों में विरोध करा रहे हैं। इस प्रकार उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के यूरोपियनों की राय को, जो इस कानून के पक्ष में थी, हिला दिया है। इस प्रश्न का उनका अध्ययन गहरा होने के कारण दक्षिण अफ्रीका के कुछ नेताओं को सतोषकारक रीति से वे यह समझा सकते हैं कि उस कानून से स्मट्स-गांधी समझौते का स्पष्ट भंग होता है। उन्होंने बिखरी हुई भारतीय शक्तियों को भी इस बिल पर आक्रमण करने के लिए इकट्ठा किया है। इस प्रकार श्री एड्जने भारत की और मनुष्य-समाज की सेवामें बड़ी अच्छी वृद्धि की है। अंग्रेज और भारतीयों के संबंध को मधुर बनाने के लिए जितना प्रयत्न श्री एड्जने किया है उतना आज किसी भी जीवित अंग्रेज ने नहीं किया है। उनकी एक आशा इन दोनों राष्ट्रों के लोगों को एक ऐसे अभेद्य बंधन में बांध देना है, जिसका आधार परस्पर का आदर और स्वतंत्रता हो। उनका यह स्वप्न सच्चा हो। (हि० न०, ४२२६)

कविवर, श्रद्धानंदजी और श्री सुशील रुद्र को मैं एड्जने की 'त्रिमूर्ति' मानता था। दक्षिण अफ्रीकामें वह इन तीनों की स्तुति करते हुए थकते नहीं थे। दक्षिण अफ्रीकामें हमारे स्नेह-सम्मेलन की बहुत-सी स्मृतियों में यह सदा मेरी आंखों के सामने नाचा करती है कि इन तीन महापुरुषों के नाम तो उनके हृदय में और ओठों पर रहते ही थे। सुशील रुद्र के परिचय में भी एड्जने मेरे बच्चों को ला दिया था। रुद्र के पास कोई आश्रम नहीं था, उनका अपना घर ही था, परन्तु उस घर का कब्जा उन्होंने मेरे इस परिवार को दे दिया था। उनके बाल-बच्चे इनके साथ

एक ही दिनमें इतने हिल-मिल गये थे कि ये फिनिक्सको भूल गये । (आ० १६२४)

..

..

एड्जको लेलो । यह बात नहीं कि दिल-ही-दिल में एड्ज भी यह न मानते हो कि अग्रेजी राज्यने इस देशका कुछ-न-कुछ भला ही किया है ।

(म० डा०, भाग २, ११३३)

यहां आनेपर मेरे जीमें जो सबसे प्रबल भावनाएँ उठ रही हैं वे दीन-वधुके विषयमें हैं । शायद आप लोग न जानते होंगे कि कल सुबह गाडीसे उतरते ही कलकत्तेमें पहला काम मैंने यह किया कि उनसे अस्पतालमें जाकर मिला । गुरुदेव विश्वकवि हैं, पर दीनवधुमें भी कवि की-सी भावना और प्रकृति है । वे आज यहां होते तो उन्हें कितनी खुशी होती और गुरु-देवके साथ इस मुलाकातके अवसरपर एक-एक गद्द, एक-एक सकेत और एक-एक हरकतका वे किस तरह रसपान करते और उन्हें अपने स्मृति-भंडारमें जमा करते । किंतु ईश्वरकी इच्छा और ही थी । आज वे कलकत्तेमें रोगशैथ्यापर पड़े हैं—पूरी तरह बोल भी नहीं सकते । मैं चाहता हूँ कि आप सब लोग मेरी इस प्रार्थनामें शामिल हो कि भगवान् उन्हें जल्दी ही हमें वापस देदे और हर हालतमें उनकी आत्माको शांति प्रदान करे ।

(ह० से० ३०.३४०)

चार्ली एड्जको जितना मैं जानता था उससे अधिक शायद और कोई नहीं जानता । गुरुदेव तो उनके लिए गुरु-तुल्य थे । पर हम जब दक्षिण अफ्रीकामें एक-दूसरेसे मिले तो भाई-भाईकी तरह मिले और अत तक वैसे ही बने रहे । हम दोनोंमें कोई भेद नहीं था । हमारा संबंध एक हिंदुस्तानी और एक अंग्रेजके बीच मित्रताका नहीं, बल्कि सत्यके दो जिज्ञा-सुओ और सेवकोंके बीच न टूटनेवाला एक प्रेम-बंधन था । लेकिन यहां मैं

एड्जुके सस्मरण नहीं लिख रहा हूँ, जो कि बहुत पवित्र है।

ऐसे समय, जबकि एड्जुकी स्मृति ताजी है, भारतीयों और अंग्रेजों का ध्यान मैं उस पवित्र विरासतकी ओर आकर्षित करता हूँ जिसे वे छोड़ गये हैं। इंग्लैण्डके प्रति किसी भी अंग्रेज देशभक्तसे कम प्रेम उनके हृदयमें नहीं था। इसी प्रकार किसी भारतीयके देश-प्रेमसे कम प्रेम भारतके प्रति उनके हृदयमें नहीं था। उन्होंने अपनी रुग्ण-शैय्यासे, जिसपर वे सदाके लिए सो गये, यह कहा था—“मोहन, स्वराज आ रहा है।” यदि अंग्रेज और भारतीय दोनों मिलकर चाहे तो वह जरूर आ सकता है। वर्तमान शासकों और जिनकी राय वजनदार मानी जाती है ऐसे अंग्रेजोंके लिए एड्जु कोई अजनबी नहीं थे। इसी प्रकार राजनीतिसे दिलचस्पी रखनेवाला कोई भारतीय ऐसा नहीं जो उन्हें न जानता हो। इस समय मैं अंग्रेजोंके उन बुरे कारनामोंको याद नहीं करना चाहता जो उन्होंने किए हैं। उन्हें हम भूल जा सकते हैं, पर एड्जुने जो वीरता-पूर्ण प्रयत्न किए हैं उन्हें जबतक इंग्लैण्ड और भारत जीवित है भुलाया नहीं जा सकता। अगर हम एड्जुसे स्नेह करते हैं तो हम अपने हृदयमें उन अंग्रेजोंके प्रति घृणाका भाव न आने देगे जिनमेंसे एड्जु महान् और सर्वोत्तम थे। भले अंग्रेजों और भले भारतीयोंके लिए यह संभव है कि वे एक-दूसरेसे मिले और तबतक अलग न हो जबतक कि दोनोंके लिए सतोषजनक रास्ता न ढूँढ निकाले। एड्जु जो काम छोड़ गये हैं वह पूरा करनेके योग्य हैं। जब मैं एड्जुके दयापूर्ण चेहरे और उनके उन अगणित प्रेम-पूर्ण प्रयत्नोंकी याद करता हूँ जो भारतको ससारके राष्ट्रोंके बीच स्वतंत्र पद पानेके लिए उन्होंने किये तो मेरे मनमें यही विचार रहा है।

(ह० से०, १३.४.४०)

सी० एफ० एड्जुकी मृत्युके रूपमें न केवल भारतने, बल्कि मानवताने अपनी एक सच्ची सतान और सेवकको खो दिया। फिर भी उनकी मृत्यु पीडासे छुटकारा और ससारमें जिस मिशनको लेकर वे आये थे, उसकी

पूर्ति ही कही जायगी । वे उन हजारो लोगोके हृदयमे जीवित रहेगे, जिन्होने उनकी रचनाओको पढकर या उनके वैयक्तिक सपर्कमे आकर कुछ भी लाभ उठाया है । मेरी रायमे तो चार्ली एड्ज महान् और सर्वोत्तम अग्रेजोमेमे एक थे और चूकि वे इंग्लैण्डकी एक अच्छी सतान थे, भारतकी भी अच्छी सतान हुए । जो कुछ उन्होने यहा किया, सब मानवता और प्रभु ईसामसीहके लिए ही । अवतक मुझे सी० एफ० एड्जसे उत्तम मनुष्य या ईसाई नही मिला है । भारतने उन्हे 'दीनवधू' की उपाधि दी जिसके वे सभी तरहके दीन-दलितोके सच्चे मित्र होनेके कारण पूर्ण अधिकारी थे । (टी० श्र०, पृष्ठ १०२)

जैसा सदा होता है, इस स्मारकके लिए भी अपने आप ही चदा नही आयेगा । उसके लिए सगठनकी जरूरत पड़ेगी । सबसे वाछनीय तो यह है कि दीनवधुके बहुसरयक भक्तोको यह काम खुद अपने ऊपर उठा लेना चाहिए । इसलिए यह प्रकाशित करते हुए आनंद होता है कि आगरामे यह काम बहाके छात्र करने जा रहे हैं । इसमे अच्छा और क्या हो सकता है ? उन्हे इस सग्रहके लिए, जो आखिरकार एक छोटी-सी रकम है, सर्वत्र सगठन करना चाहिए । चार्ली एड्ज बहुत ऊचे दर्जेके शिक्षा-शास्त्री थे । शिक्षाशास्त्रीके रुपमे ही वह अपने मित्र और प्रधान प्रिंसिपल रुद्रकी मदद करने आए थे । अपने अतिम गृहके रुपमे उन्होने अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिकी एक शिक्षण-सस्थाको चुना था । उसके निर्माणके लिए उन्होने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया । अगर एड्जके धनिष्ट सपर्कका खयाल छोड दिया जाये तो भी गातिनिकेतन खुद छात्र-ससारकी भक्ति पानेके योग्य है । इसलिए मैं आशा करता हू कि हिंदुस्तानके छात्र चदा डकट्ठा करनेके काममे अग्र भाग लेगे । इनके बाद दीन जनोकी वारी आती है जिन्होने कि एड्जकी सेवाओसे विगेप रुपसे फायदा उठाया है । यदि यह पाच लाख, हजारो छात्रो और दीन जनोकी भेटोसे पूरा हो जाए तो बहुत

बड़ी, बहुत उचित, बात होगी, वनिस्वत इसके कि दीनवधुके कुछ ऐसे खास धनी मित्रोंके दानसे उसकी पूर्ति कर ली जाए, जो उनके निकट संपर्कमें आए थे और जिन्हे उनके महत्त्वकी पूरी जानकारी थी।

(ह० से०, १५ ६ ४०)

आज एड्ज साहबकी सातवी पुण्य-तिथि है। उनके गुणोंको हमें याद करना चाहिए। उनका जीवन बहुत सादा था। हम दोनों घने मित्र रहे हैं। उनकी चमड़ी गोरी थी, लेकिन वह इतने सादे थे और देहातियोंसे मिलते-जुलते थे कि वह अग्रेज है, ऐसा पहिचानना कठिन हो जाता था। उनको कपड़े पहननेका भी शज़र न था। मोटेसे बदनपर ढीली-ढाली धोती किसी तरह लपेट लेते थे। उनको ऊपरके दिखावेसे काम न था। उनका दिल सोनेका था।

(प्रा० प्र०, ५.४ ४७)

: २६ :

वैद्यनाथ ऐयर

मदुराके एक सनातनी सज्जनने शिकायत करते हुए मुझे लिखा था कि वहाँ सुप्रसिद्ध मीनाक्षी-मंदिर जिस तरीकेसे खोला गया वह ठीक नहीं था। मैंने उस शिकायतको श्री वैद्यनाथ ऐयरके पास भेज दिया था और एक दूसरे मित्रको भी उसके बारेमें लिखा था। उन सज्जनने मेरे पास उक्त शिकायतका स्पष्ट प्रतिवाद भेजा और अपने पत्रमें उन्होंने यह भी लिखा कि सनातनियोंने श्री वैद्यनाथ ऐयरको इतना ज्यादा सताया है कि उनका हृदय विदीर्ण हो गया है। इसपर मैंने उन्हें एक लंबा तार भेजा कि उन्हें सतानेवाले उनके बारेमें चाहे जो कहे या करे, उन्हें उसपर ध्यान

नहीं देना चाहिए । एक धार्मिक सुधारकके रूपमें उन्हें तो पूरी अनासक्तिसे काम करना चाहिए और अत्याचारों तथा बुरी-से-बुरी स्थितिमें भी स्थिर चित्त रहना चाहिए । मेरे तारका उन्होंने यह आश्वासनप्रद उत्तर दिया, “भगवती मीनाक्षीकी कृपा और आपके आशीर्वादसे स्वाभाविक शांति प्राप्त कर ली है । काम जारी है । आशा है कि दूसरे बड़े-बड़े मंदिर भी जल्दी ही खुल जाएंगे । आपका स्नेह और आशीर्वाद मुझे बड़े-से-बड़ा सहारा दे रहे हैं ।” यह उत्तर इस महान् सुधारकके अनुरूप ही है । अस्पृश्यता-निवारण प्रवृत्तिके अत्यंत विनम्र और मूक कार्यकर्त्ताओंमेंसे श्री वैद्यनाथ ऐयर हैं । वे एक ईश्वरभीरु मनुष्य हैं ।

दिल्लीके श्रीब्रजकृष्ण चादीवालाने, जो दक्षिणकी तीर्थयात्रा करने गये थे, अपने मदुराके अनुभवको इस प्रकार लिखा है

“ श्री वैद्यनाथ ऐयरके घरपर मैंने अनुभव किया कि उनके जैसे सुधारकोको मंदिर-प्रवेशके कारण कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ रहे हैं । मैंने अगर खुद अपनी आंखों न देखा होता कि श्री वैद्यनाथ ऐयरपर कैसी-कैसी बीत रही है तो मैं कभी विश्वास नहीं कर सकता था कि मनुष्य-स्वभाव इतना नीचे उतर सकता है, जैसा कि मैंने मदुरामें देखा । उनके प्रति सनातनियोंका वर्तव्य अत्यंत अनुचित रहा है । विरोधियोंने यह भी एक तरीका अख्त्यार किया है कि वैद्यनाथ ऐयरके बारेमें झूठी बातोंका प्रचार किया जाये, किंतु वे तथा उनकी पत्नी दोनों ही इन तमाम अत्याचारोंको बहादुरीसे बर्दाश्त कर रहे हैं ।” (ह० से०, २३ १० ३६)

: २७ :

कवीन

कवीन नामक एक व्यक्ति जोहान्सबर्गमे रहनेवाले चीनी लोगोके अगुवा भी थे । जोहान्सबर्गमे उनकी सख्या कोई तीन-चार सौ होगी । वे सभी व्यापार या छोटी-मोटी खेतीका काम करते थे । भारत कृषि-प्रधान देश है । पर मेरा यह विश्वास है कि चीनी लोगोने खेतीको जितना बढ़ाया है उतना हम लोगोने नहीं । अमरीका आदि देशोमे खेतीकी जो प्रगति हुई है वह आधुनिक है और उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता । उसी प्रकार पश्चिमी खेतीको मैं अभी प्रयोगावस्थामे मानता हूँ । पर चीन तो हमारे ही जैसा प्राचीन देश है और वहा प्राचीन कालसे ही खेतीमे तरक्की की गई है । इसलिए चीन और भारतकी तुलना करे तो हमे उससे कुछ शिक्षा मिल सकती है । जोहान्सबर्गके चीनियोकी खेती देखकर और उनकी बातें सुनकर तो मुझे यही मालूम हुआ कि चीनियोका ज्ञान और उद्योग भी हम लोगोसे बहुत बढ़कर है । जिस जमीनको हम ऊसर समझकर छोड़ देते हैं, उसमे वे अपने खेतीके सूक्ष्म ज्ञानके कारण बीज बोकर अच्छी फसल पैदा कर सकते हैं । यह उद्यमशील और चतुर कौम भी उस खूनी कानूनकी श्रेणीमे आती थी । इसलिए उसने भी भारतीयोके साथ युद्धमे शामिल होना उचित समझा । फिर भी शुरूसे आखिरतक दोनो कौमोका हरएक व्यवहार अलग-अलग होता था । दोनो अपनी-अपनी सस्थाओके द्वारा भगड रही थी । इसका शुभ फल यह होता है कि जबतक दोनो जातिया अपने निश्चयपर दृढ़ रहती हैं तबतक तो दोनोको फायदा होता है, पर आगे चलकर यदि एक फिसल भी जाय तो इससे दूसरी जातिको कोई हानिकी सभावना नहीं रहती । वह गिरती तो हरगिज नहीं । आखिर बहुतसे चीनी तो फिसल गये, क्योंकि उनके

नेताने उन्हें धोखा दिया । नेता कानूनके वश तो नहीं हुए, पर एक दिन किसीने आकर मुझसे कहा कि वे बिना हिसाब-किताब समझाए ही कहीं भाग गये । नेताके चले जानेके बाद अनुयायियोंका दृढ़ रहना तो हमेशा मुश्किल ही पाया गया है । फिर नेतामे किसी मलिनताके पाए जानेपर तो निराशा दूनी बढ़ जाती है । पर जिस समय पकड़ा-धकड़ी शुरू हुई उस समय तो चीनी लोगोमे बड़ा जोश फैला हुआ था । उनमेसे गायद ही किसीने परवाने लिए हो, इसीलिए भारतीय नेताओंके साथ चीनियोंके कर्त्ता-धर्त्ता मि० कवीन भी पकड़े गये । इसमे शक नहीं कि कुछ समयतक तो उन्होंने बहुत अच्छी तरह काम किया था । (द० अ० स० १९२५)

: २८ :

अहमद मुहम्मद काछलिया

भारतीयोंके भाषण शुरू हुए । इस प्रकारके, और सच पूछा जाय तो इस इतिहासके, नायकका परिचय तो मुझे अभी देना ही बाकी है । जो वक्ता खड़े हुए उनमे स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे । उन्हें तो मैं एक मक्किल और दुभाषियेकी हैसियतसे जानता था । वे अभी-तक किसी आंदोलनमे आगे होकर भाग नहीं लेने थे । उनका अंग्रेजी भाषाका ज्ञान कामचलाऊ था । पर अनुभवसे उन्होंने उसे यहातक बढ़ा लिया कि जब वे अंग्रेज वकीलोके यहा अपने मित्रोंको ले जाते तब दुभाषियेका काम वे स्वयं ही करते थे । वैसे उनका पेशा दुभाषियेका नहीं था । यह काम तो वे वतौर मित्रके ही करते थे । पहले वे कपड़ेकी फेरी लगाते थे । बादमे उन्होंने अपने भाईके साथमे छोटे पैमानेपर व्यापार शुरू किया । वे सूरती मेमन थे । उनका जन्म सूरत जिलेमे हुआ था । सूरती मेमनोमे उनकी

खासी प्रतिष्ठा थी। गुजरातीका ज्ञान भी मामूली ही था। हा, अनुभवसे उन्होंने उसे खूब बढ़ा लिया था। पर उनकी वृद्धि इतनी तेज थी कि वे चाहें जिस बातको बड़ी आसानीसे समझ लेते थे। मामलोकी उलझन इस प्रकार स्पष्ट करते कि मैं तो कई बार चकित हो जाता। वकीलो के साथ कानूनी दलीले करनेमें भी जरा न हिचकते थे। उनकी कई दलीले तो ऐसी होती कि वकीलोको भी विचार करना पड़ता।

बहादुरी और एकनिष्ठामे उनसे बढ़कर आदमी मुझे न तो दक्षिण अफ्रीकामे मिला और न भारतमें। कौमके लिए उन्होंने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी थी। उनके साथ जितनी बार मुझे काम पड़ा, उन सब प्रसंगोंपर मैंने उन्हें एकवचनी ही पाया। स्वयं चुस्त मुसलमान थे। सूरती मेमन-मसजिदके मुतवल्लियोमें वे भी एक थे। पर साथ ही वे हिंदू और मुसलमानोंके लिए समदर्शी थे। मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं आता जब उन्होंने धर्मांध बनकर हिंदुओंके खिलाफ किसी बातकी खीचातानी की हो। वे बिल्कुल निडर और निष्पक्ष थे। इसलिए मौकेपर हिंदुओं और मुसलमानोंको भी उनका दोष दिखाते समय उन्हें जरा भी सकोच न होता था। उनकी सादगी और निरभिमानता अनुकरणीय थी। उनके साथ मेरा जो बरसोंका सवध रहा, उससे मुझे यह दृढ़ विश्वास हो चुका है कि स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया-जैसा पुरुष कौमको फिर मिलना कठिन है।

प्रिटोरियाकी सभामे बोलनेवालोंमें एक पुरुष यह भी थे। उन्होंने बहुत ही छोटा भाषण दिया। वे बोले—“इस खूनी कानूनको हरएक हिंदुस्तानी जानता है। उसका अर्थ हम सब जानते हैं। मि० हास्किनका भाषण मैंने खूब ध्यान लगाकर सुना। आपने भी सुना। मुझपर तो उसका परिणाम यही हुआ है कि मैं अपनी प्रतिज्ञापर और भी दृढ़ हो गया हूँ। ट्रांसवाल सरकारकी ताकतको हम जानते हैं, पर इस खूनी

कानूनसे और अधिक किस बातका डर सरकार हमें बता सकती है ? जेल भेजेगी, जायदाद बेच देगी, हमें देशसे बाहर कर देगी—फासीपर लटका देगी। यह सब हम बरदाश्त कर सकते हैं। पर इस कानूनके आगे सिर नहीं झुका सकते।” मैं देखता था कि यह सब बोलते हुए अहमद मुहम्मद काछलिया बड़े उत्तेजित होते जा रहे थे। उनका चेहरा लाल हो रहा था। सिर और गर्दनकी रंग जोशके मारे बाहर उभड़ आई थी। बदन कांप रहा था। अपने दाहिने हाथकी उंगलिया गर्दनपर रखकर वे गरजे—“मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूँ कि मैं कत्ल हो जाऊंगा, पर इस कानूनके आगे कभी अपना सर नहीं झुकाऊंगा। और मैं चाहता हूँ कि यह सभा भी यही निश्चय करे।” यह कहकर वह बैठ गये। जब उन्होंने गर्दनपर हाथ रक्खा तब मंचपर बैठे हुए कितने ही लोगोंके मुहपर मुस्कराहट दिखाई दी। मुझे याद है कि मैं भी उन्हींमेंसे था। जितने जोरके साथ काछलिया सेठने ये शब्द कहे थे उतना जोर अपनी कृतिमें वे दिखा सकेंगे या नहीं, इस बातमें मुझे जरा सदेह था। पर जब-जब वह सदेह-वाली बात मुझे याद आती है तो आज यह लिखते समय भी मुझे अपने ऊपर लज्जा मालूम होती है। इस महान् युद्धमें जिन बहुत-से आदमियोंने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षरशः पालन किया था, काछलिया सेठ उनमें अग्रगण्य थे। मैंने कभी उन्हें अपना रंग पलटते हुए नहीं देखा।

सभाने तो इस भाषणका करतल-ध्वनिसे स्वागत किया। मेरी अपेक्षा अन्य सभासद उन्हें इस समय बहुत अधिक जानते थे, क्योंकि उनमेंसे अधिकांशको इस ‘गुदडीके लाल’से व्यक्तिगत परिचय भी था। वे जानते थे कि काछलिया जो करना चाहते हैं, वही करते हैं और जो कहते हैं उसे अवश्य ही पूरा करते हैं। और भी कई जोशीले भाषण हुए। काछलिया सेठके भाषणको उनमेंसे इसीलिए छांट लिया कि उनकी वादकी कृतिसे उनका यह भाषण भविष्यवाणी साबित हुआ। जोशीले भाषणोंके देने-वाले सभी अततक नहीं टिक सके। इस पुरुष-सिंहकी नृत्य अपने देश-

भाइयोकी सेवा करते-करते ही सन् १९१८में अर्थात् इस युद्ध (दक्षिण अफ्रीकाका) के खतम होनेके चार साल बाद हुई ।

उनका एक और स्मरण है । उसे और कही नहीं दिया जा सकता, इसलिए यहीपर लिख देता हूँ । टॉल्स्टॉय फार्ममें सत्याग्रहियोंके कुटुंब रहते थे । वहाँ आपने अपने पुत्रोंको भी बतौर उदाहरणके तथा सादगी और जाति-सेवाका पाठ पढ़नेके लिए रक्खा था और इसीको देखकर अन्य मुसलमान माता-पिताओंने भी अपने बच्चे इस फार्मपर भेजे थे । जवान काछलियाका नाम अली था । उम्र १०-१२ सालकी होगी । अली नम्र, चपल, सत्यवादी और सरल लड़का था । लड़ाईके बाद, पर काछलिया सेठके पहले, उसे भी फरिश्ते खुदाके दरवारमें ले गये, पर मुझे विश्वास है कि यदि वह भी जीता रहता तो अपने पिताकी कीर्तिको और भी पल्लवित करता ।

कई भारतीय व्यापारियोंको अपने व्यापारके लिए गोरे व्यापारियोंकी कोठियोंपर अवलंबित रहना पड़ता था । वे लाखों रुपयोंका माल बिना किसी प्रकारकी रहनके केवल भारतीय व्यापारियोंके विश्वासपर दे दिया करते हैं । सचमुच, भारतीय व्यापारकी प्रामाणिकताका यह एक सुंदर नमूना है कि वे वहाँपर इतना विश्वास संपादन कर सके हैं । काछलिया सेठके साथ भी कई अंग्रेजी फर्मोंका इसी प्रकारका लेन-देनका सवध था । प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे, किसी प्रकार सरकारकी ओरसे इशारा मिलते ही, ये व्यापारी काछलिया सेठसे अपनी वे सब मुद्राएँ मागने लगे, जो उनकी तरफ लेना निकलती थी । उन्होंने तो काछलिया सेठको बुलवाकर यथातक कहा कि 'यदि आप इस युद्धसे अपनेको अलग रक्खे तब तो आपको उन मुद्राओंके लिए कुछ भी जल्दी करनेकी आवश्यकता नहीं है । अगर आप यह न करें तो हमें यह भय हमेशा रहेगा कि सरकार आपको न जाने किस वक्त पकड़ ले और यदि ऐसा ही हुआ तो

फिर हमारी मुद्राओका क्या होगा ? इसलिए यदि इस युद्धमेसे अपना हाथ हटा लेना आपके लिए किसी प्रकार असंभव हो तो हमारी मुद्राएं आपको इसी समय लौटा देनी चाहिए ।' इस वीर पुरुषने उत्तर दिया—
 “युद्ध तो मेरी व्यक्तिगत वस्तु है । मेरे व्यापारके साथ उसका कोई संबंध नहीं है । अपने धर्म, अपनी जातिके सम्मान और स्वयं मेरे स्वाभिमानकी रक्षाके लिए यह युद्ध छिटा हुआ है । आपने मुझे केवल विश्वासपर जो माल दिया है उसके लिए मैं आपका जरूर एहसानमंद हूँ । पर इसलिए मैं न तो उस कर्जको और न अपने व्यापारको ही सर्वोपरि स्थान दे सकता हूँ । आपके पैसे मेरे लिए सोनेकी मुहरे हैं । अगर मैं जिदा रहा तो अपने आपको बेचकर भी आपके पैसे लौटा दूंगा । पर मान लीजिए कि मेरा और कुछ हो गया तो उस हालतमें आप यह विश्वास रखें कि मेरा माल और तमाम उगाही आपके हाथोंमें ही है । आजतक आपने मेरा विश्वास किया है । मैं चाहता हूँ कि आगेके लिए भी आप इसी प्रकार मेरा विश्वास करें ।” यह दलील विलकुल ठीक थी । काछलियाकी दृढ़ताको देखते हुए गोरोको उनपर और भी विश्वास होना चाहिए था । पर बात यह थी कि इस समय उन लोगोपर इसका कोई असर नहीं हो सकता था । हम सोए हुए आदमीको तो जगा सकते हैं, पर सोनेका ढोंग करनेवालेको नहीं । यही हाल उन गोरे व्यापारियोंका भी हुआ । वे तो काछलिया सेठको दवाना चाहते थे, उनकी लेन-देन थोड़े ही डूबने वाली थी ।

मेरे दफ्तरमें लेनदारोंकी एक मीटिंग हुई । मैंने उन्हें साफ-साफ गन्धोंमें कह दिया कि आप इस समय जो काछलिया सेठको दवाना चाहते हैं उसमें व्यापार-नीति नहीं, राजनैतिक चाल है । व्यापारियोंको यह काम शोभा नहीं देता । पर वे तो और भी चिढ़ गये । काछलिया सेठके माल और उगाही दोनोंकी फेहरिस्त मेरे पास थी । उम्मे मैंने उन व्यापारियोंको दिखाया । यह भी सिद्ध कर दिखाया कि उससे उन्हें अपना पूरा

घन मिल सकता है और कहा—“इतनेपर भी यदि आप इस तमाम व्यापारको किसी दूसरे आदमीके हाथ बेच देना चाहते हो तो काछलिया सेठ अपना तमाम माल और उगाही खरीददारको सौंपनेके लिए भी तैयार है । यदि यह भी आपको स्वीकार न हो तो दूकानमें जितना भी माल है, उसे मूल कीमतमें आप ले ले । केवल मालसे यदि काम न चले तो उसके बदलेमें उगाहीमेंसे जिसे पसंद करे ले ले ।” पाठक सोच सकते हैं कि गोरे व्यापारी यदि इस प्रस्तावको मजूर कर लेते तो उनकी कोई हानि नहीं होती । (और कई भविकलोके सकट-समयमें मैंने उनके कर्जकी यही व्यवस्था की थी) पर इस समय व्यापारी न्याय न चाहते थे । काछलिया नहीं झुके और वह दिवालिया देनदार साबित हुए ।

पर यह दिवालियापन उनके लिए कलक-रूप नहीं, बल्कि भूषण था । इससे कौममें उनकी इज्जत कही बढ़ गई और उनकी दृढ़ता और वहादुरीपर सबने उनको वधाई दी । यह वीरता तो अलौकिक है । सामान्य मनुष्य उसको भलीभांति नहीं समझ सकते । सामान्य मनुष्य तो यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि दिवालियापन एक बुराई और बदनामीके बदले सम्मान और आदरकी वस्तु किस तरह हो सकती है । पर काछलियाको तो यही बात स्वाभाविक मालूम हुई । कई व्यापारियोंने केवल इसी भयके कारण खूनी कानूनके सामने सिर झुका लिया कि कही उनका दिवाला न निकल जाय । काछलिया भी यदि चाहते तो इस नादारीसे छूट सकते थे । युद्धसे विमुख होकर तो वह अवश्य ही ऐसा कर सकते थे । पर इस समय मैं कुछ और ही कहना चाहता हूँ । कई भारतीय काछलियाके मित्र थे जो उनको इस सकट-समयमें कर्ज दे सकते थे । पर यदि वह इस तरह अपने व्यापारको बचा लेते तो उनकी वहादुरीमें घब्बा नहीं लग जाता ? कैदकी जोखिम तो उनकी भांति दूसरे सत्याग्रहियोंके लिए भी थी । इसलिए यह तो उनसे हरगिज नहीं हो सकता था कि वे सत्याग्रहियोंसे पैसे लेकर गोरे व्यापारियोंका ऋण अदा कर दें ।

पर सत्याग्रही व्यापारियोंके समान ही अन्य भारतीय भी उनके मित्र थे, जिन्होंने खूनी कानूनके सामने सिर झुका दिया था, और मैं जानता हूँ कि उनकी सहायता भी काछलिया सेठको मिल सकती थी। जहातक मुझे याद है, एक-दो मित्रोंने उन्हें इस विषयमें कहलाया भी था। पर उनकी सहायता लेनेका अर्थ तो यही न होता कि हमने इस बातको स्वीकार कर लिया कि खूनी कानूनको मानने ही में बुद्धिमानी है। इसलिए हम दोनों इसी निश्चयपर पहुँचे कि उनकी सहायता हमें कदापि स्वीकार नहीं करनी चाहिए। फिर हम दोनोंने यह भी सोचा कि यदि काछलिया अपनेको नादार कहलाएंगे तो उनकी नादारी दूसरोके लिए ढालका काम देगी, क्योंकि अगर सौमें पूरी सौ नहीं तो निन्यानवे फीसदी नादारियोंमें लेनदारको नुकसान उठाना पड़ता है। अगर उनके लेनेमेंसे फीसदी पचास भी मिल जाते हैं तो भी वे खुश होते हैं। जब फीसदी पिचहत्तर मिल जाय तब तो वे उम्मीको पूरे सौ ही मान लेते हैं, क्योंकि दक्षिण अफ्रीकामें प्रतिशत ६७ नहीं, बल्कि फीसकड़ा २५७ मुनाफा लिया जाता है। इसलिए अपनी लेनमेंसे फीसकड़ा ७५ मिलनेतक तो वे उसे घाटेका व्यवहार नहीं मानते, किंतु नादारीमें पूरा-का-पूरा तो शायद ही कभी मिलता है। इसलिए कभी कोई लेनदार यह नहीं चाहता कि उसका कर्जदार दिवालिया हो जाय।

इसलिए काछलियाका उदाहरण दिखाकर गोरे लोग दूसरे व्यापारियोंको धमकी नहीं दे सकते थे। और हुआ भी ऐसा ही। गोरे चाहते थे कि काछलियाको मुद्दसे अपना हाथ हटा लेनेके लिए मजबूर करे और यदि काछलिया इसे मजूर न करे तो उनसे पूरे सौ-के-सौ वसूल करे। पर इन दोमेसे उनका एक भी हेतु सिद्ध न हुआ। इसका तो उलटे एक विपरीत ही परिणाम हुआ। एक प्रतिष्ठित भारतीयको इस तरह नादारीका स्वागत करते हुए देखकर गोरे व्यापारी चकित हो गए और हमेगाके लिए शांत हो गए। परंतु इधर एक सालके अंदर ही काछलियाके माल-

मेसे ही गोरे व्यापारियोंको पूरे सौ-के-सौ मिल गए। दक्षिण अफ्रीकामें दिवालिया देनदारसे लेनदारको पूरे सौ-के-सौ मिल जाना अपनी जानकारीमें मेरा पहला ही अनुभव था। युद्ध शुरू हो गया था, पर फिर भी इससे गोरे व्यापारियोंमें काछलियाका सम्मान बेहद बढ़ गया। आगे चलकर युद्ध-कालमें उन्हीं व्यापारियोंने काछलियाको मनमाना माल देनेके लिए अपनी तत्परता दिखाई। पर काछलियाका बल तो दिन-व-दिन बढ़ता ही जा रहा था। युद्धके रहस्यको भी वह भलीभांति समझ चुके थे। और यह तो कौन कह सकता था कि युद्ध शुरू होनेके बाद वह कितने रोज चलेगा। इसलिए नादारीके बाद हमने तो यही निश्चय कर लिया कि लंबे-चोड़े व्यापारकी झगड़में पड़ना ही नहीं। उन्होंने भी निश्चय कर लिया कि अब, जबतक युद्ध समाप्त नहीं होता, उतना ही व्यापार किया जाय कि जिससे एक गरीब मनुष्य अपना निर्वाह कर सके इससे ज्यादा नहीं। इसलिए गोरोंने जो वचन दिया, उसका उपयोग उन्होंने नहीं किया। काछलिया सेठके जीवनकी जिन घटनाओंका वर्णन मैं कर चुका हूँ, वे कमिटी को मीटिंगके बाद हुई हो सो बात नहीं, पर मैंने उन्हें यहापर इसीलिए लिख देना ठीक समझा कि उनको कही एक ही बार दे देना योग्य होगा। अगर तारीखवार देखा जाय तो दूसरा युद्ध शुरू होनेपर कितने ही समय बाद काछलिया अध्यक्ष हुए और नादार होनेके पहले, इसके बाद और भी कितना ही समय बीत गया।

(द० अ० स० १९२५)

: २६ :

अलवर्ट कार्टराइट

अलवर्ट कार्टराइट ('ट्रासवाल लीडर'के संपादक) बड़े चतुर और अतिशय उदार हृदय सज्जन थे। वे अपने अग्रलेखों तकमें अक्सर भारतीयोंका ही पक्ष लिया करते। मेरे और उनके बीच गहरा स्नेह-संबंध हो गया था और मेरे जेल जानेके बाद वह जनरल स्मट्ससे भी मिले थे। जनरल स्मट्सने उन्हें सधिकर्ता स्वीकार किया तब मि० कार्टराइट कीमके अग्रश्रेष्ठोंसे मिले। पर उन्होंने यही उत्तर दिया कि हम लोग कानूनकी चारीकियोंको नहीं जानते। गांधी जेलमें हैं। जबतक वह छोड़ नहीं दिये जाते इस विषयमें कोई सलाह-मशविरा करना हम अनुचित समझते हैं। हम सुलह तो चाहते हैं, पर यदि हमारे आदमियोंको बिना छोड़े ही सरकार सुलह करना चाहती हो तो गांधी जाने। आप गांधीसे मिले। वह जो कहेगा, हम सब मजूर करेंगे। इसपर अलवर्ट कार्टराइट मुझसे मिलनेके लिए आए। साथ ही जनरल स्मट्सका बनाया अथवा पसंद किया हुआ समझौतेका मसविदा भी लाए थे। उसकी भाषा गोलमाल थी। वह मुझे पसंद नहीं आई। फिर भी एक जगह कुछ दुरुस्ती करनेपर मैं उसपर दस्तखत करनेके लिए तैयार हो गया। पर मैंने कहा कि बाहरवाले यदि इसे मानले तो भी मैं इसपर तबतक दस्तखत नहीं कर सकता जबतक जेलके साथियोंकी आज्ञा अथवा सम्मति भी मैं प्राप्त नहीं कर लेता। समझौतेका सार इस प्रकार था "भारतीय स्वेच्छापूर्वक अपने परवाने बदलवा ले। उनपर कानूनका कोई अधिकार न होगा। नवीन परवाना भारतीयोंकी सलाहसे सरकार बनावे और यदि इस भारतीय स्वेच्छापूर्वक ले ले तब तो खूनी कानून रद्द हो ही जायगा और स्वेच्छापूर्वक लिए गये नवीन परवानोंको कानून, करार देनेके लिए सरकार एक नया कानून

वना लेगी।” खूनी कानूनको रद्द करनेकी बात इस मसविदेमे स्पष्ट नहीं लिखी गई थी। उसे स्पष्ट करनेके लिए मैंने अपनी समझके अनुसार एक सुधारकी सूचना की। पर अनवर्ट कार्टराइटने उसे पसन्द नहीं किया। उन्होंने कहा, “जनरल स्मट्सका यह आखिरी मसविदा है। स्वयं मैंने भी इसे पसन्द किया है। और यह तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अगर आप सब परवाने ले ले तब तो यह खूनी कानून रद्द हुआ ही समझिए।” मैंने कहा, “समझौता हो या न हो, लेकिन आपकी इस सहानुभूति और समझौतेकी कोशिशके लिए हम आपके सदाके लिए अनुग्रहीत होंगे। मैं एक भी अनावश्यक फेरफार करना नहीं चाहता। जिस भाषासे सरकारकी प्रतिष्ठाकी रक्षा होती हो उसका मैं ख्वामखाह विरोध नहीं करूँगा। पर जहाँ अर्थके विषयमे स्वयं मुझे शक है वहाँ तो मुझे अवश्य ही कुछ स्पष्टीकरणकी सूचना करनी चाहिए, और अतमे यदि समझौता करना ही है तो दोनों पक्षोंको कुछ परिवर्तन करनेका अधिकार जरूर ही होना चाहिए। जनरल स्मट्स पिस्तौल दिखाकर उसके बलपर कोई समझौता हमसे मजूर करानेकी व्यर्थकी कोशिश न करे। खूनी कानून-रूपी एक पिस्तौल तो पहले हीसे हमारे सामने है। अब इस दूसरे पिस्तौलका असर हमपर और क्या हो सकता है?” मि० कार्टराइट इसके उत्तरमे कुछ न कह सके। उन्होंने यह मजूर किया कि मैं आपका बताया यह परिवर्तन जनरल स्मट्सके सामने पेश कर दूँगा। मैंने अपने साथियोंसे भी मशविरा किया। भाषा तो उन्हें भी पसन्द नहीं आई, पर यदि उतने परिवर्तनके साथ जनरल स्मट्स समझौता करते हो तो हम भी उसे मजूर कर ले यह बात उन्हें पसन्द थी। बाहरसे जो लोग आए थे, वे भी अगुआओंका यह सदेश लाए कि यदि उचित समझौता हो रहा हो तो कर लेना चाहिए। हमारी सम्मतिकी राह न देखी जाय। इस मसविदेपर मैंने मि० कवीन और थवी नायडूके भी दस्तखत लिए और तीनों दस्तखतोवाला मसविदा कार्टराइटको सौंप दिया।

दूसरे या तीसरे दिन जोहान्सबर्गका पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट आया और मुझे जनरल स्मट्सके पाम ले गया। उनकी मेरी बहुत-सी बातें हुईं। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि मि० कार्टराइटके साथ मैंने चर्चा की थी। मेरे जेल जानेपर कौम दृढ़ रही, इसके लिए उन्होंने मुझे सुवारकवाद दिया और कहा—“आप लोगोके विषयमें मेरा कोई व्यक्तिगत दुर्भाव नहीं है। आप जानते ही हैं कि मैं एक वैरिस्टर हू। मेरे साथ कितने ही भारतीय पढ़े भी हैं। मुझे तो यहां केवल अपना कर्तव्य-पालन करना है। गोरे लोग इस कानूनको चाहते हैं। आप यह भी स्वीकार करेंगे कि उनमें भी अधिकांश वोअर नहीं, अग्रेज ही हैं। आपने जो सुवार किया उसे मैं मजूर करता हूँ। जनरल बोथाके साथ भी मैं बातचीत कर चुका हूँ और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आपसे अधिक लोग परवाने ले लेंगे तो एगियाटिक एक्टको रद्द कर दूंगा। स्वेच्छापूर्वक लिए जानेवाले परवानेको मजूर करनेवाले कानूनका मसविदा तैयार करनेपर उसकी एक नकल आपके पास नोटके लिए भेजूंगा। मैं नहीं चाहता कि यह आंदोलन फिरसे जागे। आपके भावोका मैं सम्मान करता हूँ।” (द० अ० स० १६२५)।

: ३० :

राजासाहब कालाकाकर

राजासाहब कालाकाकर २० सितम्बरको असमय ही स्वर्ग सिंघार गए। वे एक महान् हरिजन-सेवक थे। लगभग एक सालसे वे बीमार थे। मैं पिछली बार जब कलकत्ते गया तो मैं उन्हें मुश्किलसे पहचान सका। वहां वे अपना इलाज करा रहे थे। राजासाहब सयुक्त प्रांतके एक अत्यंत उदारहृदय तालुकेदार थे। उनके विषयमें निस्संदेह यह कहा

जा सकता है कि उन्होंने यथाशक्ति अपना जीवन अपनी प्रजाके लिए बिताया। बड़ी सादो रहन-सहन थी। लोगोसे खूब दिल खोलकर मिलते थे। हरिजनोपर उनका उतना ही प्रेम था, जितना दूसरी जातियोपर। अपने प्रत्यक्ष आचरणके दृष्टांतसे वे अपनी रियासतसे सवर्ण हिंदुओसे अस्पृश्यता छुड़वाने और हरिजनो को भी वही सब अधिकार दिलवाने का प्रयत्न करते रहते थे, जो उनकी सवर्ण प्रजाको प्राप्त थे। राज्यके प्रबन्ध-धीन तमाम विद्यालय, कुए और मंदिर उन्होंने हरिजनोके लिए खोल दिए थे। हमे आशा है कि रानीसाहिबा तथा कालाकाकरके अन्य राज-कुटुम्बी स्व० राजासाहबकी स्मृतिको अजर-अमर बनाए रखनेके लिए उनकी उस प्रेमपूर्ण उदारताका सदैव अनुसरण करते रहेंगे। (ह० से०, २६ १० ३१)

: ३१ :

हर्बर्ट किचन

हर्बर्ट किचन एक शुद्ध-हृदय अंग्रेज थे। वे बिजलीका काम-काज करते थे। वोअरयुद्धमे उन्होंने हमारे साथ काम किया। कुछ समय तक वे 'इंडियन ओपीनियन' के संपादक भी रहे थे। उन्होंने मृत्यु समयतक ब्रह्मचर्यका पालन किया था। (द० अ० स० १९२५)

: ३२ :

जे० सी० कुमारप्पा

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन (राष्ट्रीय ऋण) के संबन्धमे जांच

करनेके लिए महासमिति (आल इंडिया कांग्रेस कमेटी) ने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्तमान अवसरपर एक अत्यंत महत्त्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे बिना न रहेगा। श्री वहादुरजी, भूलाभाई देमाई, खुशाल-शाह और श्री कुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनदनके अधिकारी हैं। समितिके सचालक श्री कुमारप्पा गुजरात विद्यापीठके अध्यापक हैं, इसलिए उनके लिए इसमें कुछ विशेष त्याग नहीं है। वे तो राष्ट्र-सेवककी तरह नामांकित हैं, इसलिए उनका समय और श्रम तो राष्ट्रीय महासभाके चरणोमें अर्पित हो ही चुका है। वे इस विगिष्ट कार्यके लिए पसंद किए गये, इसका कारण है उनका अर्थशास्त्रका सजग ज्ञान और सशोधन कार्यके प्रति उनकी लगन। रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैंने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सके कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोका लिखा हुआ लेख नहीं, वरन् जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले हैं, और जो धाधलीवाज उपदेशक नहीं, वरन् स्वयं जिस विषयके ज्ञाता हैं, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोको तील-तीलकर व्यवहारमें लाने वालोकी यह कृति है। (हि० न०, ६. ८ ३१)

: ३३ :

आचार्य जे० बी० कृपलानी

मुजफ्फरपुरमें उस समय आचार्य कृपलानी भी रहते थे। उन्हें मैं पहचानता था। जब मैं हैदराबाद गया था, उनके महात्यागकी, उनके जीवनकी और उनके द्रव्यसे चलनेवाले आश्रमकी बात डाक्टर चोइथरामके मुखसे सुनी थी। वह मुजफ्फरपुर कॉलेजमें प्रोफेसर थे, पर उस

समय वहा से मुक्त हो बैठे थे। मैंने उन्हें तार दिया। ट्रेन मुजफ्फरपुर आधीरातको पहुचती थी। वह अपने शिष्य-मंडलको लेकर स्टेशन आ पहुचे थे, परंतु उनके घरवार कुछ न था। वह अध्यापक मलकानीके यहा रहते थे। मुझे उनके यहा ले गए। मलकानी भी वहाके कालेजमे प्रोफेसर थे और उस जमानेमे सरकारी कालेजके प्रोफेसरका मुझे अपने यहा ठहराना एक असाधारण बात थी।

कृपलानीजीने बिहारकी और उसमे तिरहुत-विभागकी दीन-दशाका वर्णन किया और मुझे अपने कामकी कठिनाईका अदाज बताया। कृपलानीजीने बिहारियोंके साथ गाढा सबध कर लिया था। उन्होने मेरे कामकी बात वहाके लोगोसे कर रखी थी। (आ०, १६२७)

...

...

..

यह तो हुआ बिहारी-सघ। इनका मुख्य काम था लोगोके वयान लिखना। इसमे अध्यापक कृपलानी भला बिना शामिल हुए कैसे रह सकते थे? सिंधी होते हुए भी वह बिहारीसे भी अधिक बिहारी हो गये थे। मैंने ऐसे थोडे सेवकोको देखा है जो जिस प्रातमे जाते हैं वहीके लोगोमे दूध-शक्करकी तरह घुल-मिल जाते हैं और किसीको यह नही मालूम होने देते कि वे गैर प्रातके हैं। कृपलानी इनमे एक है। उनके जिम्मे मुख्य काम था द्वारपालका। दर्शन करने वालोसे मुझे वचा लेनेमे ही उन्होने उस समय अपने जीवनकी सार्थकता मान ली थी। किसीको हँसी-दिल्लगीसे और किसीको अहिंसक धमकी देकर वह मेरे पास आनेसे रोकते थे। रातको अपनी अध्यापकी शुरु करते और तमाम साथियोको हँसा मारते और यदि कोई डरपोक आदमी वहा पहुँच जाता तो उसका हाँसला बढाते। (आ०, १६२७)

: ३४ :

वैकटकृष्णय्या

छ वर्षके बाद आज आप लोगोसे मिलकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ है । आपको मालूम है कि पिछले दोरेके अवसरपर मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया था और उमे सुधारनेके लिए ही मैं आपके मैसूर राज्यमे आया था । इससे स्वभावतः उन दिनोकी स्मृतिया मेरे लिए अत्यन्त सुखद है । श्रीमान् महाराजा साहब, दीवान और अन्य अफसरोंसे लेकर मैसूरकी प्रजातकके प्रगाढ प्रेमका मैंने अनुभव किया था । अब आप लोग अच्छी तरहसे समझ सकते हैं कि आपके बीच आज पुन आनेसे मुझे कितनी अधिक खुशी न हुई होगी । मैसूरके पितामह स्व० श्री वैकटकृष्णय्याके चित्रका मेरे हाथसे उद्घाटन कराके आपने मेरा आंतरिक आनन्द और भी बढ़ा दिया है । चित्रकारको उसकी कला-कौशलतापर मैं बधाई देता हू । बड़ा ही सुंदर और यथार्थ चित्रण किया है । कदाचित् आप सब यह न जानते होंगे कि उस दिवगत महर्षिके सत्सङ्गका आनन्द-लाभ मुझे उन दिनो कितना अधिक प्राप्त हुआ था । मैं उनके अनेक सद्गुणोंसे काफी परिचित हो गया था । मैंने तभी जान लिया था कि आप लोगोके हृदयोमे उनके लिए एक खास स्थान है । मुझे विश्वास है कि उनके अनेक गुणोंका वखान करनेकी आप मुझसे आशा न करते होंगे । आप तो यहांके निवासी ही ठहरे, इससे आपको मेरी अपेक्षा उनके गुणोंका अधिक पता होगा । मैं तो केवल यही आशा करता हू कि स्व० वैकटकृष्णय्याके जिन गुणोंका हम लोग आज आदर कर रहे हैं, उन्हें हम स्वयं अपने जीवनमे उतारने की चेष्टा करेंगे । इस आत्म-प्रशंसासे सदा वचना ही अच्छी कि चलो, उस महान् आत्माके चित्रका उद्घाटन गांधीके हाथसे करा दिया और उनकी स्मृतिमे एक अच्छा उत्सव भी हमने मना लिया । (ह० से०, १६१ ३४)

तात्यासाहब केळकर

दोस्तोने मुझसे कई बार पूछा कि तात्यासाहब केळकर जैसे महान देशभक्तकी मृत्युका उल्लेख क्यों नहीं किया, खासकर इसलिए कि वे मेरे राजनैतिक विरोधी थे और इससे भी ज्यादा इसलिए कि महाराष्ट्रके एक दलके लोगोमे मेरे वारेमे बहुत बड़ी गलतफहमी है। इन कारणोने मुझे अपील नहीं किया, हालांकि मेरे टीकाकारोके मुताबिक इन्ही कारणोको मुझे तात्यासाहबकी मृत्युका उल्लेख करनेके लिए प्रेरित करना चाहिए था।

मृत्यु जैसी बड़ी भारी घटनाका साधारण नियमके अनुसार उल्लेख कर देना मैं बहुत अनुचित मानता हूँ। लेकिन देर हो जानेपर भी अपने पुराने-से-पुराने दोस्त हरिभाऊ पाठकके आग्रहके कारण अब मुझे ऐसा करना चाहिए।

यह बात मैं एकदम स्वीकार कर लूंगा कि अगर महत्वपूर्ण जन्मो और मृत्युओका उल्लेख करना 'हरिजन' के लिए साधारण नियम होता तो तात्यासाहबकी मृत्युका सबसे पहले उल्लेख किया जाना चाहिए। लेकिन 'हरिजन'-पत्रोको ध्यानसे पढ़नेवाले पाठकोने देखा होगा कि 'हरिजन' ने ऐसे किसी नियमको नहीं माना है। इस तरहकी घटनाओका उल्लेख करना मेरे अवकाश और किसी समयकी मेरी धुनपर निर्भर रहा है। पिछले कुछ अर्सेमे तो मैं नियमसे अखवार भी नहीं पढ़ सका हूँ।

इसके खिलाफ कोई कुछ भी कहे, लेकिन मेरे राजनैतिक विरोधी होते हुए भी तात्यासाहबको मैंने हमेशा अपना दोस्त माना था, जिनकी टीकासे मुझे लाभ होता था। स्व० लोकमान्यके माने हुए अनुयायीके

नाते मैं उन्हें जानता था और उनकी इज्जत करता था । मेरे खयालमें सन् १९१९ में अखिल भारत कांग्रेस कमेटीकी एक बैठकमें मैंने यह सिफारिशकी थी कि कांग्रेसका एक विधान तैयार किया जाय और कहा था कि अगर लोकमान्य, तात्यासाहबको और देगवधु श्री निशीथ सेनको मददके लिए मुझे दे दे तो मैं विधान तैयार करके कांग्रेसके सामने पेश करनेकी जिम्मेदारी लेता हूँ । अपने साथ काम करनेवाले इन दोनों सज्जनोकी प्रशंसामें मुझे यह कहना चाहिए कि हालांकि मैंने समयपर विधानका अपना मसविदा उनके सामने पेशकर दिया, लेकिन उन्होंने कभी उसमें रुकावट नहीं डाली । विधानके मसविदेपर विचार करनेके लिए जो कमेटी बठी, उसमें तात्यासाहबने हमेशा ऐसी टीका की, जिसमें उसे सुधारने-सवारनेमें मदद मिली । इसके अलावा, मेरे सुझावपर ही तात्यासाहबको हमेशा कांग्रेस वर्किंग कमेटीका सदस्य बनाया जाता था । मुझे ऐसा एक भी मौका याद नहीं आता, जब उनकी टीका—हालांकि वह कभी-कभी कड़वी होती थी—रचनात्मक न हुई हो । वह निडर थे, लेकिन सभ्य और मित्रता-भरे थे ।

मुझे बहुत पहले यह मालूम हो चुका था कि वे मराठीके बड़े विद्वान लेखक थे । मुझे इस बातका अफसोस रहा है कि मराठीके तात्यासाहब और स्व० हरिनारायण आप्टे जैसे आधुनिक लेखकोकी बुद्धिका अमृतपान करनेके लिए मराठीका काफी अध्ययन करनेका मुझे कभी समय नहीं मिला । हिंदुस्तानी आकाशके श्री नरसोपत चिन्तामन केळकर-जैसे चमकीले तारेके अस्तकी उपेक्षा करना मेरे लिए असभ्य और अगोभन बात होगी । (ह० से०, ४१४८)

: ३६ :

केलकर (आइस डाक्टर)

डा० तलवलकर एक विचित्र प्राणीको लेकर आए । वह महाराष्ट्री है । उनको हिंदुस्तान नहीं जानता । पर मेरे ही जैसे 'चक्रम' है, यह मैंने उन्हें देखते ही जान लिया । वह अपना इलाज मुझपर आजमानेके लिए आए थे । ववईके ग्रेड मेडिकल कॉलेजमें पढते थे । पर उन्होंने द्वारकाकी छाप—उपाधि—प्राप्त न की थी । मुझे वादमें मालूम हुआ कि वह सज्जन ब्रह्मसमाजी हैं । उनका नाम है केलकर । वड़े स्वतंत्र मिजाजके आदमी हैं । बरफके उपचारके वड़े हिमायती हैं ।

मेरी बीमारीकी बात सुनकर जब वह अपने बरफके उपचार मुझपर आजमानेके लिए आए तबसे हमने उन्हें 'आइस डाक्टर' की उपाधि दे रखी है । अपनी रायके बारेमें वह बड़े आग्रही हैं । डिग्रीधारी डाक्टरोंकी अपेक्षा उन्होंने कई अच्छे आविष्कार किए हैं, ऐसा उन्हें विश्वास है । वह अपना यह विश्वास मुझमें उत्पन्न नहीं कर सके, यह उनके और मेरे दोनोंके लिए दुखकी बात है । मैं उनके उपचारोंको एक हद तक तो मानता हूँ, पर मेरा खयाल है कि उन्होंने कितने ही अनुमान बाधनेमें कुछ जल्दबाजी की है । उनके आविष्कार सच्चे हो या गलत, मैंने तो उन्हें उनके उपचारका प्रयोग अपने शरीरपर करने दिया । बाह्य उपचारोंसे अच्छा होना मुझे पसंद था । फिर ये तो बरफ अर्थात् पानीके उपचार थे । उन्होंने मेरे सारे शरीरपर बरफ मलना शुरू किया । यद्यपि इसका फल मुझपर उतना नहीं हुआ, जितना कि वह मानते थे, तथापि जो मैं रोज मृत्युकी राह देखता पड़ा रहता था सो अब नहीं रहा । मुझे जीनेकी आशा बधने लगी । कुछ उत्साह भी मालूम होने लगा । मनके उत्साहके साथ-साथ

शरीरमें भी कुछ ताजगी मालूम होने लगी । खुराक भी थोड़ी बढ़ी । रोज पाच-दस मिनट टहलने लगा । “अगर आप अडेका रस पिये तो आपके शरीरमें इससे भी अधिक शक्ति आ जावेगी, इसका मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ, और अडा तो दूधके ही समान निर्दोष वस्तु होती है । वह मास तो हरगिज नहीं कहा जा सकता । फिर यह भी नियम नहीं है कि प्रत्येक अडेसे वच्चे पैदा होते ही हों । मैं साबित कर सकता हूँ कि ऐसे निर्जीव अडे सेये जाते हैं जिनमेंसे वच्चे पैदा नहीं होते ।”—उन्होंने कहा । पर ऐसे निर्जीव अडे लेनेको भी मैं तो राजी न हुआ । फिर भी मेरी गाड़ी कुछ आगे चली और मैं आस-पासके कामोंमें थोड़ी बहुत दिल-चस्पी लेने लगा । (आ०, १६२७)

: ३७ :

केलप्पन

श्री केलप्पन मेरी रायमें भारतवर्षके अच्छे-से-अच्छे मूक सेवकोंमेंसे एक हैं । उन्हें कभी भी प्रतिष्ठित पद मिल सकता था । मलावारके वे प्रसिद्ध लोकसेवक हैं, परन्तु वे जानबूझकर ‘दूरित’ और ‘अस्पृश्य’ लोगोकी सेवामें कूद पड़े हैं । वाईकोमके सत्याग्रहके समय मुझे उनके साथ काम करनेका आनन्द और सम्मान प्राप्त हुआ था । उसके पहले लंबे समयसे और उसके बाद से उन्होंने दलित वर्गकी उन्नति में अपना जीवन लगाया है । जनता जानती है कि लंबे समयतक राह देखनेके बाद गुरुवायूरण मंदिर हरिजनोके लिए खुलवानेके प्रयत्नमें उन्होंने प्राणार्पण करनेका अटल निश्चय कर लिया था । (म० डा०, ५.११.३२)

: ३८ :

हरमन कैलेनवेक

मि० कैलेनवेकका टॉल्स्टॉय फार्मपर और सो भी हमारे जैसा रहना एक आश्चर्यजनक वस्तु थी। गोखले सामान्य बातोंसे आकर्षित होनेवाले पुरुष नहीं थे। कैलेनवेकके जीवनमें यह महान परिवर्तन देखकर वह भी अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो गए थे। मि० कैलेनवेकने कभी धूप-जाड़ा नहीं सहा था, न किसी प्रकारकी मूसीबत पहले उठाई थी। अर्थात् स्वच्छन्द जीवनको उन्होंने अपना धर्म बना लिया था। ससारके आनदोंका उपभोग लेनेमें उन्होंने किसी प्रकारकी कसर नहीं रहने दी थी। धनसे जितनी भी चीजें खरीदी जा सकती हैं उन सबको प्राप्त करनेके लिए उन्होंने कभी कुछ उठा नहीं रक्खा था।

ऐसे पुरुषका फार्मपर रहना, वही खाना-पीना, फार्मवासियोंके जीवनके साथ अपनेको पूर्णतया मिला देना, कोई ऐसी-वैसी बात नहीं थी। भारतीयोंको इस बातपर बड़ा आश्चर्य और आनन्द भी हुआ। कितने ही गोरोंने तो उन्हें मूर्ख या पागल ही समझ लिया, कितनोंके दिलोंमें उनकी त्याग-शक्तिके कारण उनके प्रति आदर बढ़ गया। कैलेनवेकने अपने त्यागपर न तो कभी पश्चात्ताप किया और न उन्हें वह दुःख-रूप मालूम हुआ। अपने वैभवसे उन्हें जितना आनन्द प्राप्त हुआ था, उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक आनन्द वह अपने त्यागसे पा रहे थे। सादगीसे होनेवाले सुखोंका वर्णन करते-करते वह तल्लीन हो जाते, यहातक कि कई बार तो उनके श्रोताओंको भी इस सुखका आस्वाद करनकी इच्छा हो जाती। छोटेसे लेकर बड़े तक सबके साथ वह इस तरह प्रेम-पूर्वक हिलमिल जाते कि उनका छोटे-से-छोटा वियोग भी सबके लिए असह्य हो जाता। फल-पौधोंका उन्हें बड़ा शौक था, इसलिए बागवानका काम

उन्होंने अपने अधीन रखा था और प्रतिदिन सुबह बालको और बड़ोंसे उनकी काट-छाट, रक्षा वगैरहका काम लेते। मेहनत पूरी लेते, पर साथ ही उनका चेहरा इतना हँसमुख और स्वभाव ऐसा आनन्दमय था कि उनके साथ काम करते हुए सबको बड़ा आनन्द होता था। जब-जब कभी रातके २ बजेसे उठकर डॉल्स्टॉय फार्मसे कोई टोली जोहान्सवर्गको पैदल जाती तो कैलनवेक बराबर उसके साथ पाए जाते।

उनके साथ धार्मिक सवाद हमेशा होते रहते थे। मेरे नजदीक अहिंसा, सत्य इत्यादि यमोंको छोड़कर तो और कौनसी बात हो सकती थी? सर्पादि जानवरोंको मारना भी पाप है, इस विचारसे जिस तरह दूसरे यूरोपियन मित्रोंको आघात पहुँचा ठीक उसी तरह पहले-पहल मि० कैलनवेकको भी पहुँचा, पर अन्तमे तात्त्विक दृष्टिमे उन्होंने इस सिद्धांतको कबूल कर लिया। हम लोगोंके साथ सबध होते ही इस बातको तो उन्होंने पहले ही मान लिया था कि जिस बातको बुद्धि स्वीकार करे उसपर अमल करना भी योग्य और उचित है। इसी कारण वह अपने जीवनमे बड़े-से-बड़े परिवर्तन बिना किसी प्रकारके सकोचके एक क्षणमे कर सकते थे।

अब तो, चूँकि सर्पादिको मारना अयोग्य पाया गया, इसलिए मि० कैलनवेकको उनकी मित्रता भी संपादन करनेकी इच्छा होने लगी। पहलेपहल तो उन्होंने भिन्न-भिन्न जातिके सापोंकी पहचान जाननेके लिए सापोंसे सबध रखनेवाली किताबें इकट्ठी की। उनसे उनको पता चला कि सभी सर्प जहरीले नहीं होते, बल्कि कितने ही तो खेतीकी फसलकी रक्षा भी करते रहते हैं। हम सबको उन्होंने सर्पोंकी पहचान बताई और अन्तमे एक जवरदस्त अजगरको उन्होंने पाला, जो फार्ममे ही उन्हें मिल गया था। उसे वह रोज अपने हाथोंसे खिलाते थे। एक दिन नम्रतापूर्वक मैंने मि० कैलनवेकसे कहा, “यद्यपि आपका भाव तो शुद्ध है तथापि अजगर शायद इसे समझ न सकता होगा, क्योंकि आपका प्रेम

भयसे मिश्रित है। इसको छोड़कर उसके साथ इस तरह क्रीडा करनेकी आपकी मेरी या किसीकी शक्ति नहीं है, और हम तो उसी हिम्मतको प्राप्त करना चाहते हैं। इसलिए इस सर्पके पालनमें सद्भाव तो देखता हूँ, पर अहिंसा नहीं देख सकता। हमारा कार्य तो ऐसा हो कि जिसे यह अजगर भी पहचान सके। यह तो हमारा हमेशाका अनुभव है कि प्राणिमात्र केवल भय और प्रीति इन दो ही बातोंको समझते हैं। आप इस सर्पको जहरीला तो मानते ही नहीं। केवल इसका स्वभाव आदि जानने भरके लिए आपने इसे कैद कर रखा है। यह तो स्वच्छद हुआ। मित्रतामें तो इसके लिए भी स्थान नहीं है।

मि० कैलनबेक मेरी दलीलको समझ गए; पर उनको यह इच्छा नहीं हुई कि अजगरको जल्दी छोड़ दे। मैंने किसी प्रकारका दवाव तो डाला ही नहीं। सर्पके वर्तविमें मैं भी दिलचस्पी ले रहा था। बच्चीको तो खूब आनंद आ रहा था। सबसे कह दिया गया था कि उसे कोई सतावे नहीं, पर वह कैदा स्वयं ही अपनी राह ढूँढ रहा था। पिंजड़ेका दरवाजा खुला रह गया या शायद उसीने उसे किसी तरह खोल लिया—परमात्मा जाने क्या हुआ—दो-चार दिनोंके अंदर ही, एक दिन सुबह जब मि० कैलनबेक अपने कैदीको देखनेके लिए गए तो उन्होंने पिंजड़ेको खाली पाया। वह और मैं दोनों खश हुए, पर इस प्रयोगके कारण सर्प हमेशाके लिए हमारी बातचीतका विषय हो गया। मि० कैलनबेक एक गरीब जर्मन को हमारे फार्मपर लाए थे। वह गरीब भी था और पगु भी। उसकी जाघ इतनी टेढ़ी हो गई थी कि वह बिना लकड़ीके चल ही नहीं सकता था, पर वह बड़ा हिम्मतवर था। शिक्षित भी था, इसलिए सूक्ष्म बातोंमें भी बड़ी दिलचस्पी लेता था। फार्मपर वह भी भारतीयोंका साथी बनकर सबसे हिलमिलकर रहता था। उसने तो निर्भयतापूर्वक सर्पोंके साथ खेलना तक शुरू कर दिया। छोटे-छोटे सर्पोंको वह अपने हाथमें ले आता और अपनी हथेलीपर उन्हें खिलाता था। कौन कह सकता है कि फार्म

अधिक दिन तक चला होता तो इस जर्मनके प्रयोगका क्या परिणाम होता । इसका नाम आल्वर्ट था ।

इस प्रयोगके कारण यद्यपि मापका डर तो कम हो गया था तथापि कोई यह न समझले कि फार्मके अंदर किसीको मापका भय ही नहीं रहा अथवा सापको मारनेकी सबको मनाई थी । हिंसा-अहिंसा और पापका ज्ञान प्राप्त कर लेना एक बात है और उसके अनुसार आचरण करना दूसरी बात । जिसके दिलमें सापका डर है और जो प्राण त्याग करनेके लिए तैयार नहीं है, वह सकटके समयमें सापको कभी नहीं छोड़ेगा । मुझे याद है कि ऐसा ही एक किस्सा फार्मपर हुआ था । पाठकोने यह तो स्वयं ही अंदाज-से जान लिया होगा कि फार्मपर सर्पोंका उपद्रव खूब रहा होगा, क्योंकि हम लोग वहा गए उससे पहले वहा कोई वस्ती नहीं थी, बल्कि कितने ही समयसे वह निर्जन ही था । एक दिन मि० कैलेनवेकके कमरेमें अचानक ऐसी जगह एक साप दिखाई दिया, जहासे उसे भगाना या पकड़ना भी करीब-करीब असंभव था । पहलेपहल फार्मके एक विद्यार्थीने उसे देखा । उसने मुझे बुलाया और पूछा—अब क्या करना चाहिए ? उसे मारनेकी आज्ञा भी उसने चाही । वह बिना इजाजत भी सापको मार सकता था, परन्तु साधारणतया क्या विद्यार्थी और क्या दूसरे, मुझसे बिना पूछें ऐसी कोई बात नहीं करते थे । इस सापको मारनेकी इजाजत देना मैंने अपना वर्म समझा और आज्ञा दे भी दी । यह लिखते समय भी मुझे यह नहीं मालूम होता कि मैंने वह आज्ञा देनेमें कोई गलती की । सापको हाथमें पकड़ने जितनी अथवा अन्य किसी प्रकारमें फार्मवासियोंको निर्भय कर देने जितनी शक्ति न तो मुझमें तब थी और न आज तक उसे प्राप्त कर सका हूँ । (द० अ० स०, १९२५)

..

.

...

वॉक्सरस्टके लोगोंने दो दिन पहले ही सभा की थी । उसमें अनेक प्रकारका डर बताया गया था । कितने हीने तो यह कहा था कि यदि

भारतीय ट्रासवालमे प्रवेश करेंगे तो हम उनपर गोलिया चला देंगे । इस सभामे मि० कैलनवेक गोरोको समझानेके लिए गए थे, पर उनकी बात कोई सुनना ही नहीं चाहता था । कई तो उन्हें मारनेके लिए उठ खड़े हो गये । मि० कैलनवेक स्वयं कसरती जवान है । सैंडोसे उन्होंने कसरत सीखी थी । उनको यो डराना मुश्किल था । एक गोरेने उन्हें द्वंद्व युद्धके लिए आह्वान किया । कैलनवेकने कहा, "मैंने शांति धर्मको स्वीकार किया है । इसलिए आपकी इच्छाकी पूर्ति करनेमे मैं असमर्थ हूँ । पर मुझपर जिसे प्रहार करना हो, वह सुख-पूर्वक करे । मैं तो इस सभामे बोलता ही रहूँगा । आपने इसमे सभी गोरोको निमंत्रित किया है । मैं आपकी यह सुनानेके लिए आया हूँ कि आपकी तरह सभी गोरे निर्दोष मनुष्योंको मारनेके लिए तैयार नहीं हैं । एक ऐसा गोरा है, जो आपसे कह देना चाहता है कि आप भारतीयोंपर जिन बातोंका आरोप करते हैं, वे असत्य हैं । आप जो सोच रहे हैं वह भारतीय नहीं चाहते । उन्होंने तो आपके राज्यकी आवश्यकता है और न वे आपके साथ लड़ना चाहते हैं । वे तो शुद्ध न्यायके लिए पुकार उठा रहे हैं । ट्रासवालमे हमेशा रहनेके हंतुसे वे प्रवेश नहीं कर रहे हैं, बल्कि उनपर जो अन्यायपूर्ण कर लादा गया है उसके खिलाफ सक्रिय पुकार उठानेके उद्देश्यसे वे यह कर रहे हैं । वे बहादुर हैं, हुल्लडवाज नहीं । वे आपके साथ लड़ेंगे नहीं, पर यदि आप उनपर गोलिया चलावेंगे तो उनको सहकर भी वे इसी तरह आगे बढ़ते जावेंगे । आपकी वट्ठको या वल्लमके डरसे वे पीछे पैर नहीं हटावेंगे । वे तो स्वयं दुःख सहकर आपके हृदयको पिघला देनेवाले लोग हैं । वस यही कहनेके लिए मैं यहा आया हूँ । यह कहकर मैंने तो आपकी सेवा ही की है । आप सावधान हो जाइए और अन्यायसे बचिए ।" इतना कहकर मि० कैलनवेक शांत हो गए । गोरे कुछ शरमा गए । वह द्वंद्व युद्ध करने-वाला कसरती जवान तो अब उनका मित्र हो गया । (द० अ० स०, १९२५)

हरमन कैलनवेकसे मेरा परिचय युद्धके पहले ही हुआ था। वह जर्मन है और यदि जर्मन-अग्रजोका युद्ध न हुआ होता तो वह आज भारतमें होते। उनका हृदय विनाल है। वह बेहद भोले हैं। उनकी भावनाएँ बड़ी तीव्र हैं। वह गिल्पका धवा करते हैं। ऐसा एक भी काम नहीं कि जिसे करते हुए उन्होंने ना की हो। जब मैंने जोहान्सवर्गसे अपना घरवार उठा लिया तब हम दोनों एक साथ ही रहते थे। मेरा खर्चा भी वही उठाते थे। घर तो खुद उन्हींका था। खाने वगैरहका खर्च देनेकी बात जब मैं उठाता तब वह बहुत चिढ़ कर कहते कि उन्हें फिजूल-खर्चीसे बचानेवाला तो मैं ही था और मुझे मना करते। उनके इस कथनमें कुछ सार अवश्य था। पर गोरोंके साथ मेरा जो व्यक्तिगत सवध था, उसका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता। गोखले, दक्षिण अफ्रीका आए तब जोहान्सवर्गमें कैलनवेकके बगलेमें ही ठहराए गये थे। गोखले इस मकानसे बड़े प्रसन्न हुए। उनको पहचानेके लिए कैलनवेक जजीवार तक मेरे साथ आए थे। पोलकके साथ वह भी गिरफ्तार हो गए थे और जेलकी सैर कर आए थे। अतमे जब दक्षिण अफ्रीका छोड़कर गोखलेसे विलायतमें मिलकर मैं भारत लौट रहा था तब कैलनवेक भी साथमें थे। पर लडाईके कारण उन्हें भारत आनेकी आज्ञा नहीं मिली। अन्य जर्मनोंके साथ इन्हें भी नजरबंद रखा गया था। महायुद्धके समाप्त होते ही वह फिर जोहान्सवर्ग चले गए हैं और उन्होंने अपना धवा शुरू कर दिया है। जोहान्सवर्गमें सत्याग्रही कैदियोंके कुटुंबोंको एक साथ रखनेका विचार जब हुआ तब मि० कैलनवेकने अपना ११०० बीघेका खेत कौमको योही बिना किराया लिए सौंप दिया। (द० अ० स०, १९२५)

मेरी उनकी (मि० कैलनवेककी) मुलाकात अनायास हो गई थी। मि० खानके वह मित्र थे। मि० खानने देखा कि उनके अदर गहरा वैराग्यभाव था। इसलिए मेरा खयाल है कि उन्होंने उनसे मेरी मुलाकात

कराई। जिन दिनों उनसे मेरा परिचय हुआ उन दिनोंके उनके शौक और शाह-खर्चीको देखकर मैं चौंक उठा था, परन्तु पहली ही मुलाकातमें मुझसे उन्होंने वर्मके विषयमें प्रश्न किया। उसमें बुद्ध भगवान्की बात सहज ही निकल पड़ी। तबसे हमारा सपर्क बढ़ता गया, वह इस हद-तक कि उनके मनमें यह निश्चय हो गया कि जो काम मैं करू वह उन्हें भी अवश्य करना चाहिए। वह अकेले थे। अकेलेके लिए मकान-खर्चके अलावा लगभग १२०० रुपये मासिक खर्च करते थे। यहासे अतको ठेठ इतनी सादगीपर आ गए कि उनका मासिक खर्च १२० रुपये हो गया। मेरे घर-द्वार बिखेर देने और जेलसे आनेके बाद तो हम दोनों एकसाथ रहने लगे थे। उस समय हम दोनों अपना जीवन अपेक्षाकृत बहुत कड़ाईके साथ बिता रहे थे।

दूधके मवघमें जब मेरा उनसे वार्तालाप हुआ तब हम शामिल रहते थे। एक बार मि० कैलनवेकने कहा, “जब हम दूधमें इतने दोष बताते हैं तो फिर छोड़ क्यों न दें? वह अनिवार्य तो है ही नहीं।” उनकी इस रायको सुनकर मुझे बड़ा आनन्द और आश्चर्य हुआ। मैंने तुरत उनकी बातका स्वागत किया और हम दोनोंने टाल्स्टाय-फार्ममें उसी क्षण दूधका त्याग कर दिया। यह बात १९१२की है। (आ०, १९२७)

१९१४ ई०में जब सत्याग्रह-संग्रामका अंत हुआ तब गोखलेकी इच्छासे मैंने इंग्लैंड होकर देश आनेका विचार किया था। इसलिए जुलाई महीनेमें कस्तूरबाई, कैलनवेक और मैं, तीनों विलायत के लिए रवाना हुए। सत्याग्रह-संग्रामके दिनोंमें मैंने रेलमें तीसरे दर्जेमें सफर शुरू कर दिया था। इस कारण जहाजमें भी तीसरे दर्जेके ही टिकट खरीदे, परन्तु इस तीसरे दर्जेमें और हमारे तीसरे दर्जेमें बहुत अंतर है। हमारे यहा तो सोने-बैठनेकी जगह भी मुश्किलसे मिलती है और सफाईकी तो बात ही क्या पूछना। किंतु इसके विपरीत वहाके जहाजोंमें जगह काफी रहती थी

और सफाईका भी अच्छा खयाल रखा जाता था । कपनीने हमारे लिए कुछ और भी सुविधायें कर दी थी । कोई हमको दिक न करने पाए, इस खयालसे एक पाखानेमें ताला लगाकर उसकी ताली हमें सौंप दी गई थी, और हम फलाहारी थे इसलिए हमको ताजे और सूखे फल देनेकी आज्ञा भी जहाजके खजांचीको दे दी गई थी । मामूली तौरपर तीसरे दर्जेके यात्रियोंको फल कम ही मिलते हैं और मेवा तो कतई नहीं मिलता । पर इस सुविधाकी बदौलत हम लोग समुद्रपर बहुत शांतिसे १० दिन बिता सके ।

इस यात्राके कितने ही सस्मरण जानने योग्य हैं । मि० कैलनवेकको दूरबीनोका बड़ा शौक था । दो-एक कीमती दूरबीने उन्होंने अपने साथ रखी थी । इसके विषयमें रोज हमारी आपसमें बहस होती । मैं उन्हें यह जचानेकी कोशिश करता कि यह हमारे आदर्शके और जिस सादगीको हम पहुंचना चाहते हैं उसके अनुकूल नहीं है । एक रोज तो हम दोनोंमें इस विषयपर गरमागरम बहस हो गई । हम दोनों अपनी कैबिनकी खिड़कीके पास खड़े थे ।

मैंने कहा—“आपके और मेरे बीच ऐसे झगड़े होनेसे तो क्या यह बेहतर नहीं है कि इस दूरबीनको समुद्रमें फेंक दें और इसकी चर्चा ही न करें ?”

मि० कैलनवेकने तुरत उत्तर दिया—“जरूर, इस झगड़ेकी जड़को फेंक ही दीजिए ।”

मैंने कहा—“देखो, मैं फेंके देता हूँ ।”

उन्होंने वे-रोक उत्तर दिया—“मैं सचमुच कहता हूँ, फेंक दीजिए ।”

और, मैंने दूरबीन फेंक दी । उसका दाम कोई सात पौंड था, परंतु उसकी कीमत उसके दामकी अपेक्षा मि० कैलनवेकके उसके प्रति मोहमें थी । फिर भी मि० कैलनवेकने अपने मनको कभी इस बातका दुःख न

होने दिया । उनके मेरे बीच तो ऐसी कितनी ही बातें हुआ करती थी । यह तो उसका एक नमूना पाठकोको दिखाया है । (आ०, १६२७)

कैलनवेक मुझसे कहा करता था कि तुम इतनी तेजीसे आगे बढ़ रहे हो कि आखिर तुम्हें सब छोड़ देगे, वे तुम्हारे साथ आगे बढ़ नहीं सकेंगे । मैंने कहा कि तुम भी छोड़ दोगे ? तो कहने लगा, “मैं कैसे छोड़ सकता हूँ । हम तो एक जान दो शरीर जैसे हैं और मैंने तुमको अपनी गरजके लिए ढूँढा है, तुमने मुझे नहीं ढूँढा । मैं तो तुम्हें कभी नहीं छोड़ सकता ।” मगर अब तो वह भी छूट गया है । उसके विचार भी मुझसे अलग पड़ गए हैं । यहूदियोंके बारेमें उसका इतना पक्षपात है कि क्या कहना । वह मानता है कि जर्मनी यहूदियोंका दुश्मन है और जर्मनीसे लड़नेवाले अंग्रेजोंके साथ मैं लड़ रहा हूँ । उसका वह समर्थन नहीं कर पाया । जब वह यहाँ आया था तब मैंने उसे बहुत समझाया था कि क्यों मैंने यहूदियोंको हिंसासे भरे हुए कहा है । आज तो वे हिंसाको ही अपने हृदयमें पोषण दे रहे हैं । मनमें हिंसा रहे तो बाहरकी अहिंसाका कोई अर्थ नहीं रहता । वह मेरी बात कुछ समझा भी सही । मैंने उसे इस आशयका एक खुला पत्र यहूदियोंको लिखनेको कहा था । उसने लिखा भी, मगर उसे ऐसा लगता था कि इस बारेमें उसकी कौन सुनेगा । इसलिए अखबारोंमें भेजा नहीं । मैंने कहा, “भले न सुने, तुम अपना धर्म पूरा करो । भले ही फिलिस्तीनमें जाकर लड़ो और मर जाओ, यह मैं सहन करूँगा, मगर आज जैसे यहूदियोंका चल रहा है वह असह्य है । हृदयमें हिंसा है तो बाहर इससे उल्टा बतानेमें कोई अर्थ नहीं ।”

(का० क०, १६६४२)

: ३६ :

कोट्स

दूसरे दिन एक वजे मैं मि० वेकरके प्रार्थना-समाजमें गया । वहा कुमारी हैरिस, कुमारी गेव, मि० कोट्स आदिसे परिचय हुआ । सबने घुटने टेककर प्रार्थना की । मैंने भी उनका अनुकरण किया । प्रार्थनामें जिसका जो मन चाहता, ईश्वरसे मागता । दिन शातिके साथ बीते, ईश्वर हमारे हृदयके द्वार खोलो, इत्यादि प्रार्थना होती । उस दिन मेरे लिए भी प्रार्थना की गई । 'हमारे साथ जो यह नया भाई आया है, उसे तू राह दिखाना । तूने जो शाति हमें प्रदान की है, वह इसे भी देना । जिस ईसामसीहने हमें मुक्त किया है, वह इसे भी मुक्त करे । यह सब हम ईसामसीहके नामपर मागते हैं ।' इस प्रार्थनामें भजन-कीर्तन न होते । किसी विशेष बातकी याचना ईश्वरसे करके अपने-अपने घर चले जाते । यह समय सबके दोपहरके भोजनका होता था, इसलिए सब इस तरह प्रार्थना करके भोजन करने चले जाते । प्रार्थनामें पांच मिनटसे अधिक समय न लगता ।

कुमारी हैरिस और कुमारी गेवकी अवस्था प्रौढ थी । मि० कोट्स क्वेकर थे । ये दोनों महिलाये साथ रहती । उन्होंने मुझे हर रविवारको ४ वजे चाय पीनेके लिए अपने यहां आमंत्रित किया । मि० कोट्स जब मिलते तब हर रविवारको उन्हें मैं अपना साप्ताहिक धार्मिक रोजनामचा सुनाता । मैंने कौन-कौन-सी पुस्तके पढी, उनका क्या असर मेरे दिलपर हुआ, इसकी चर्चा होती । ये कुमारिकाएँ अपने मीठे अनुभव सुनाती और अपनेको मिली परम-शातिकी बातें करती ।

मि० कोट्स एक शुद्ध भाववाले कट्टर युवक क्वेकर थे । उनसे मेरा

घनिष्ठ सवध हो गया । हम बहुत बार साथ घूमने भी जाते । वह मुझे दूसरे भाइयोंके यहा ले जाते ।

कोट्सने मुझे किताबोंसे लाद दिया । ज्यो-ज्यो वह मुझे पहचानते जाते त्यो-त्यो जो पुस्तके उन्हें ठीक मालूम होती, मुझे पढ़नेके लिए देते । मैंने भी केवल श्रद्धाके वशीभूत होकर उन्हें पढ़ना मजूर किया । इन पुस्तकोपर हम चर्चा भी करते ।

ऐसी पुस्तके मैंने १८९३में बहुत पढ़ी । अब सबके नाम मुझे याद नहीं रहे हैं । कुछ ये थी—सिटी टेपलवाले डा० पारकरकी टीका, पियर्सन की 'मेनी इनफॉलिवल प्रूफ्स', बटलर कृत 'एनेलाजी' इत्यादि । कितनी ही बातें समझमें न आती, कितनी ही पसंद आती, कितनी ही न आती । यह सब मैं कोट्ससे कहता । 'मेनी इनफॉलिवल प्रूफ्स'के मानी हैं 'बहुतसे दृढ़ प्रमाण', अर्थात् बाइबिलमें रचयिताने जिस धर्मका अनुभव किया उसके प्रमाण । इस पुस्तकका असर मुझपर विलकुल न हुआ । पारकरकी टीका नीतिवर्द्धक मानी जा सकती है, परंतु वह उन लोगोकी सहायता नहीं कर सकती जिन्हें ईसाई-धर्मकी प्रचलित धारणाओपर सदेह है । बटलरकी 'एनेलाजी' बहुत क्लिष्ट और गभीर मालूम हुई । उसे पाच-सात बार पढ़ना चाहिए । वह नास्तिकको आस्तिक बनानेके लिए लिखी गई मालूम हुई । उसमें ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेके लिए जो युक्तिया दी गई हैं, उनसे मुझे लाभ न हुआ, क्योंकि यह मेरी नास्तिकताका युग न था । और जो युक्तिया ईसामसीहके अद्वितीय अवतारके सवधमें अथवा उसके मनुष्य और ईश्वरके बीच सधि-कर्त्ता होनेके विषयमें दी गई थी, उनकी भी छाप मेरे दिलपर न पड़ी ।

पर कोट्स पीछे हटनेवाले आदमी न थे । उनके स्नेहकी सीमा न थी । उन्होंने मेरे गलेमें वैष्णवकी कठी देखी । उन्हें यह वहम मालूम हुआ और देखकर दुःख हुआ । "यह अब-विश्वास तुम जैसोको शोभा नहीं देता । लाओ, तोड़ दू ।"

“यह कठी तोड़ी नहीं जा सकती । माताजीकी प्रसादी है ।”

“पर इसपर तुम्हारा विश्वास है ?”

“मैं इसका गूढार्थ नहीं जानता । यह भी नहीं भासित होता कि यदि इसे न पहनू तो कोई अनिष्ट हो जायगा, परंतु जो माला मुझे माताजीने प्रेम-पूर्वक पहनाई है, जिसे पहनानेमें उसने मेरा श्रेय माना, उसे मैं बिना प्रयोजन नहीं निकाल सकता । समय पाकर जीर्ण होकर जब वह अपने-आप टूट जायगी तब दूसरी मगाकर पहननेका लोभ मुझे न रहेगा, पर इसे नहीं तोड़ सकता ।”

कोट्स मेरी इस दलीलकी कद्र न कर सके, क्योंकि उन्हें तो मेरे धर्मके प्रति ही अनास्था थी । वह तो मुझे अज्ञान-कूपमें उबारनेकी आगा रखते थे । वह मुझे यह बताना चाहते थे कि अन्य धर्मोंमें थोड़ा-बहुत सत्याग भले ही हो, परंतु पूर्ण सत्य-रूप ईसाई-धर्मको स्वीकार किए बिना मोक्ष नहीं मिल सकता और ईसामसीहकी मध्यस्थताके बिना पाप-प्रक्षालन नहीं हो सकता तथा पुण्य-कर्म सारे निरर्थक हैं । कोट्सने जिस प्रकार पुस्तकोसे परिचय कराया उसी प्रकार उन ईसाइयोंसे भी कराया, जिन्हें वह कट्टर समझते थे । इनमें एक प्लीमथ ब्रदर्सका भी परिवार था ।

‘प्लीमथ ब्रदरन्’ नामक एक ईसाई-संप्रदाय है । कोट्सके कराये बहुतेरे परिचय मुझे अच्छे मालूम हुए । ऐसा जान पड़ा कि वे लोग ईश्वर-भीरु थे, परंतु इस परिवारवालोंने मेरे सामने यह दलील पेग की—“हमारे धर्मकी खूबी ही तुम नहीं समझ सकते । तुम्हारी बातोंसे हम देखते हैं कि तुम हमें वात-वातमें अपनी भूलोंका विचार करते हो, हमें उन्हीं सुधारना पड़ता है, न सुधरे तो उनके लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता है । इस क्रियाकांडसे तुम्हें मुक्ति कब मिल सकती है ? तुमको शांति तो मिल ही नहीं सकती । हम पापी हैं, यह तो आप कबूल ही करते हैं । अब देखो हमारे धर्म-मन्तव्यकी परिपूर्णता । वह कहता है

मनुष्यका प्रयत्न व्यर्थ है। फिर भी उसे मुक्तिकी तो जरूरत है ही। ऐसी दशामे पापका बोझ उसके सिरसे उतरेगा किस तरह? इसकी तरकीब यह कि हम उसे ईसामसीहपर ढो देते हैं, क्योंकि वह तो ईश्वरका एकमात्र निष्पाप पुत्र है। उसका वरदान है कि जो मुझे मानता है वह सब पापोंसे छूट जाता है। ईश्वरकी यह अगाध उदारता है। ईसामसीहकी इस मुक्ति-योजनाको हमने स्वीकार किया है, इसलिए हमारे पाप हमें नहीं लगते। पाप तो मनुष्यसे होते ही हैं। इस जगत्में बिना पापके कोई कैसे रह सकता है? इसलिए ईसामसीहने सारे ससारके पापोंका प्रायश्चित्त एकवारगी कर लिया। उसके इस वलिदानपर जिसकी श्रद्धा हो वही शांति प्राप्त कर सकता है। कहा तुम्हारी शांति और कहा हमारी शांति।”

यह दलील मुझे बिल्कुल न जची। मैंने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—“यदि सर्वमान्य ईसाई-धर्म यही हो, जैसा कि आपने बयान किया है, तो इससे मेरा काम नहीं चल सकता। मैं पापके परिणामसे मुक्ति नहीं चाहता। मैं तो पाप-प्रवृत्तिसे, पाप-कर्मसे, मुक्ति चाहता हूँ। जबतक वह न मिलेगी मेरी अशांति मुझे प्रिय लगेगी।”

प्लीमथ ब्रदरने उत्तर दिया—“मैं तुमको निश्चयसे कहता हूँ कि तुम्हारा यह प्रयत्न व्यर्थ है। मेरी बातपर फिरसे विचार करना।”

और इन महाशयने जैसा कहा था वैसा ही कर भी दिखाया—जान-बूझकर बुरा काम कर दिखाया।

परंतु तमाम ईसाइयोंकी मान्यता ऐसी नहीं होती, यह बात तो मैं इनसे परिचय होनेके पहले भी जान चुका था। कोट्स खुद पाप-भीरु थे। उनका हृदय निर्मल था, वह हृदय-बुद्धिकी सभावनापर विश्वास रखते थे। वे वहने भी इसी विचारकी थी। जो-जो पुस्तके मेरे हाथ आईं उनमें कितनी ही भक्ति-पूर्ण थी, इसलिए प्लीमथ ब्रदर्सके परिचयसे कोट्सको जो चिंता हुई थी उसे मैंने दूर कर दिया और उन्हें विश्वास दिलाया कि प्लीमथ ब्रदरकी अनुचित धारणाके आधारपर मैं सारे ईसाई-

धर्मके खिलाफ अपनी राय न बना लूंगा । मेरी कठिनाइयां तो बाइबिल तथा उसके रूढ़ अर्थके सवधमे थी । (आ०, १६२७)

: ४० :

मणिलाल कोठारी

हरिजन-आंदोलन इतनी तेजीसे शुरू हुआ उसके पहलेसे ही मणिलाल कोठारीको मैं जानता था और जबसे मेरा उनसे परिचय हुआ तभी मैंने यह देख लिया था कि उनमें छूतछातकी ज़रा भी गंध नहीं थी । हरिजनों-की सहायता करते हुए जो जोखिम उठानी चाहिए उसे उठानेको वे हमेशा तैयार रहते थे । अगर यह कहा जाय कि अच्छे कामोंके लिए पैसा इकट्ठा करनेकी उनमें अद्वितीय शक्ति थी तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं । उनमें यों तो बहुत-सी शक्तियां थी, किंतु पारमार्थिक कार्योंके लिए वन-संग्रह करनेकी उनमें जो शक्ति थी, उसके लिए तौ लोग हमेशा ही उन्हें याद करेंगे । हरिजन-कार्यके लिए उन्होंने काफी पैसा इकट्ठा किया था और हिम्मतके साथ मुझसे कहा था कि अगर मैं अच्छा हो जाऊं तो जितना पैसा आपको चाहिए उतना ला दूंगा । पैसा इकट्ठा करा देनेके लिए जहां-तहासे उनके पास मागे आती ही रहती थी । मणिलाल तीव्र लगनके आदमी थे । कोई भी पारमार्थिक काम हो, वह उन्हें अपनी तरफ खींच सकता था । सेवा करनेका उनका लोभ उन्हें चाहे जिस जोखिममें उतार सकता था । उनकी कमी उनके कुटुंबको तो खटकेगी ही हरिजनोंको भी खटकेगी, पर दूसरे अनेक सेवाक्षेत्रोंमें उनके अभावकी बहुत समयतक याद रहेगी, इसमें सन्देह नहीं ।

ईश्वर उनकी आत्माको शांति प्रदान करे । (ह० से०, २३ १० ३७)

: ४१ :

धर्मानन्द कौसंबी

[बौद्ध विद्वान् श्रीकौसंबीकी मृत्युका समाचार देते हुए गांधोजीने कहा]

शायद आपने उनका नाम नहीं सुना होगा। इसलिए शायद आप दुःख मानना नहीं चाहेंगे। वैसे किसी मृत्युपर हमें दुःख मानना चाहिए भी नहीं, लेकिन इन्सानका स्वभाव है कि वह अपने स्नेही या पूज्यके मरनेपर दुःख मनाता ही है। हम लोग ऐसे बने हैं कि जो अपने कामकी डुग्गी पिटवाता फिरता है और राज्य-कारणमें उछाले भरता है, उसको तो हम आसमानपर चढ़ा देते हैं, लेकिन मूक काम करनेवालोंको नहीं पूछते।

कौसंबीजी ऐसे ही एक मूक कार्यकर्ता थे। उनका जन्म गोवामें हुआ था। जन्मसे वह हिंदू थे, पर उनको ऐसा विश्वास बैठ गया था कि बौद्ध धर्ममें अहिंसा, शील आदि जितने बड़े-बड़े हैं, उतने दूसरे धर्ममें, वेद-धर्ममें भी नहीं हैं। इसलिए उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार किया और बौद्ध शास्त्रोंके अध्ययनमें लग गए और उसमें इतने बड़े विद्वान् हो गए कि शायद ही हिंदुस्तानमें उनकी बराबरीका और कोई हो। उन्होंने गुजरात विद्यापीठ व काशी विद्यापीठमें पाली भाषा पढ़ाई और अपनी १५ विद्वत्ताका ज्ञान-दान किया था।

उन्होंने मेरे पास १०००) भेज दिए, जो किसीने उनको दिए थे। उन्होंने मुझको लिखा था कि किसीको पाली पढ़नेके लिए लका भेज देना। लेकिन मैंने उनसे पूछा कि क्या लका जाकर पढ़नेसे किसीको बौद्ध धर्म प्राप्त हो जायगा? मैंने तो दुनियामें बौद्धोंसे कहा है कि आपको अगर बौद्ध धर्म जानना है तो आप उसके जन्म-स्थान भारतमें ही उसे

पायेगे । जहापर वेद-धर्मसे वह निकला है, वही आपको उमे खोजना है और शकराचार्य-जैसे अद्वितीय विद्वान्, जो प्रच्छन्न बुद्ध कहलाए, उनके ग्रंथोंको भी आप समझेंगे तब बौद्ध धर्मका गूढ़ रहस्य आप जान पायेगे ।

लेकिन कौमवीजीकी विद्वत्तासे मैं अपनी तुलना नहीं कर सकता । मैं तो इंग्लैंडमें भोज खाकर बना हुआ वैरिस्टर हूँ । मेरे पास संस्कृतका ज्ञान जरा-सा है । अगर आज मैं महात्मा बना हूँ तो इसलिए नहीं कि अंग्रेजीका वैरिस्टर हूँ, पर इसलिए कि मैंने सेवा की है और वह सेवा सत्य और अहिंसाके द्वारा की है । इस सत्य और अहिंसाकी पूजामें जो थोड़ी-सी सफलता मुझे मिलती चली गई उसीके कारण आज मेरी थोड़ी-बहुत पूछ है ।

कौमवीजीकी समझमें यह समा गया कि अब यह शरीर अधिक काम करनेके योग्य नहीं रहा है तो उन्होंने अनशन करके प्राण-त्याग करनेकी ठानी । टडनजीके कहनेपर मैंने उनका अनशन उनकी (कौसवीजीकी) अनिच्छासे तुटवाया, पर उनका हाजमा बहुत खराब हो चुका था और कुछ भी खुराक ले ही नहीं सकते थे । तब दुवारा सेवाग्राममें चालीस दिनतक केवल जलपर ही रहकर उन्होंने शरीरात् किया । बीमारीमें नाममात्रकी सेवा और ओषधि भी नहीं ली । जन्म-स्थान गोवामें जानेका मोह भी उन्होंने तजा और अपने पुत्र आदिको अपने पास न आनेकी आज्ञा दी । मृत्युके बादके लिए कह गए कि 'मेरा कोई स्मारक न बनाया जाय ।' शरीरको जलाने या दफनानेमें जो सस्ता पड़े वह किया जाय और इस तरह उन्होंने बुद्धका नाम रटते-रटते अंतिम गहरी निद्रा ली, जो हरेक जन्मनेवालेको कभी-न-कभी लेनी ही है । मृत्यु हरेकका परम मित्र है, वह अपने कर्मके मुताबिक आवेगा ही । भले ही कोई यह वता दे कि अमुकका जन्म अमुक समय होगा, पर मीत कब आवेगी यह कोई भी आजतक नहीं वता पाया है । (प्रा० प्र० ५ ६ ४७)

प्रोफेसर कोसवीजी जो बड़े विद्वान थे और पाली भाषामें अग्रगण्य माने जाते थे । वे अभी-अभी सेवाग्राम आश्रममें चल बसे । उनके वारेमें वहाके सचालक बलवतसिंहका पत्र है, जिसमें कहा गया है कि ऐसी मृत्यु आजतक मैंने नहीं देखी । यह तो बिल्कुल ऐसी हुई जैसी कबीरजीने बताई है

दास कबीर जतन सो ओढी ,
ज्यो-की-त्यो धर दीनी चदरिया ।

इस तरह हम सभी लोग मृत्युकी मैत्री साध ले तो हिंदुस्तानका भला ही होनेवाला है । (प्रा० प्र०, ८ ६ ४७)

: ४२ :

सरदार खडगसिंह

जेलकी चहारदीवारीसे बाहर अपने बीच सरदार खडगसिंहको पुन राष्ट्रीय काम करते हुए देखकर प्रत्येक देशभक्तको आनंद होगा । अपने दुर्दमनीय स्वभाव और छुटकारा पानेके लिए अधिकारियोंके सामने अपना सिर झुकानेसे इन्कार करनेके कारण अपने देशभाइयोंके हृदयमें उन्होंने बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है । परमात्मासे प्रार्थना है कि इस स्वाधीनताके युद्धमें वे वर्षोंतक देशकी सेवा करें । (हि० न०, २३ ६ २७)

: ४३ :

डा० एन० बी० खरे

पिछले सप्ताह डाक्टर खरे और उनकी हरिजन-सेवक-समितिन मेरे प्रवासके कार्यक्रमके नवधमे वडी ही सुदर व्यवस्था की थी । डाक्टर खरेको स्वेच्छासे काम करनेवाले अनेक सुयोग्य साथियोकी सहायता न मिलती तो यह कार्यक्रम पूरा ही नही हो सकता था । डाक्टर साहबने, हृदयकी पुरानी व्याधिसे पीडित होते हुए भी, इन कठिन दिनोमे परिश्रम करनेमे कोई कसर उठा नही रखी और अपने साथियोसे भी उन्होने खूब काम लिया । नागपुरकी विराट् सभामे विजलीकी सैकडो वत्तिया लगाने और ऊचा पक्का नच तैयार करनेमे जो खर्च पडा वह कुछ सज्जनोने आपसमे ही इकट्ठा करके दे दिया था । दानकी थैलियोमेसे इस खर्चके लिए एक पैसा भी नही निकाला गया । उन दिनो श्रीगणपत राव टिकेकरका मकान, जहा मैं ठहरा हुआ था, एक तरहसे धर्मशाला बन गया था । टिकेकर-वधुओने हमारे बडे दलको तथा दूसरे कार्योंके सवधमे आए हुए अन्य लोगोको आराम और सुविधाएँ पहुचानेमे परिश्रम तथा खर्चमे जरा भी कमी नही रखी । मैंने देखा कि नागपुर और आसपासके गावोमे मेरे दौरेको सफल बनानेमे कांग्रेसवालो एव दूसरे लोगोने पूरा सहयोग दिया । इसमे सदेह ही नही कि उन सबके सहयोगसे मेरा यह दौरा सफल हुआ । डाक्टर खरे और उनके साथियोने इस अवसरपर जो असीम परिश्रम किया उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ । इस महान् शुद्धि-कार्यमे जो परिश्रम और सावधानी उन्होने दिखाई, वह आवव्यक ही थी ।

(ह० से०, २४ ११ ३३)

नारायण मोरेश्वर खरे

हाल हीमें स्थापित हुए सत्याग्रह-आश्रमके लिए एक अच्छा सगीत-शिक्षक देनेको जब मैंने स्वर्गीय मगनलाल गाधीको प० विष्णु दिगवरके पास भेजा तो पंडित विष्णु दिगवरजी समझ गए कि मैं किस तरहका आदमी चाहता हूँ । पंडित खरेका उन्होंने जो चुनाव किया वह ठीक ही निकला, क्योंकि जिस कामके लिए उन्हें लाया गया उसे उन्होंने इतनी अच्छी तरह किया जिससे अच्छी तरह और किसीने न किया होता । उनकी मृत्युसे जो स्थान खाली हुआ है वह शायद खाली ही बना रहेगा, क्योंकि जिन्होंने कलाको अपनाया है, उनमें ऐसे बहुत कम हैं जिन्होंने उसमें पड़कर भी अपने जीवनको शुद्ध और निर्दोष बनाये रखा हो । वल्कि हम लोगोमें किसी कदर यह भावना-सी जम गई है कि कलाका व्यक्तिगत जीवनकी शुद्धतासे कोई सरोकार नहीं है । लेकिन अपने सारे अनुभवके आधारपर मैं कह सकता हूँ कि इससे असत्य और कोई बात नहीं हो सकती । ज्यो-ज्यो मैं अपने पार्थिव जीवनके अतपर आ रहा हूँ, मैं यह कह सकता हूँ कि जीवनकी शुद्धता ही सबसे ऊँची और सच्ची कला है । कृत्रिम आवाजसे सुंदर सगीत पैदा करनेकी कला तो बहुत लोग हासिल कर सकते हैं, लेकिन शुद्ध जीवनकी एकरसतासे उस सगीतको पैदा करनेकी कला विरले ही प्राप्त करते हैं । पंडित खरे उन्हीं विरले व्यक्तियोंमेंसे थे, जिन्होंने सपूर्णताके साथ उस कलाको प्राप्त किया है । ऐसा कोई अवसर नहीं हुआ जबकि उनके जीवनकी शुद्धताके बारेमें मुझे जरा-सा भी सदेह हुआ हो ।

पंडितजीने सगीतमें गुजरातका जो रस पैदा किया है उसे गुजरातको बराबर जारी रखना चाहिए । मैं आशा करता हूँ कि उनके दोनों वच्चे

उन्हींके योग्य सावित होंगे और उनकी वीर पत्नी अपने त्यागमय जीवनके द्वारा भारतीय विधवाका आदर्श उपस्थित करेगी, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है । रही पंडितजीकी बात, सो यह तो ठीक है कि अपने जीवनके मध्यकालमें ही उनकी मृत्यु हो गई है, लेकिन उनकी मौत ऐसी मौत है कि हरएक उसके लिए ईर्ष्या करेगा, क्योंकि इस पुण्यस्थान में काम करते हुए उनकी मृत्यु हुई है और अपनी मृत्युका ज्ञान होजानेके कारण राम-नामका उच्चारण करते हुए तथा उसी पवित्र नामकी ध्वनि श्रवण करते हुए उनका अवसान हुआ है । ईश्वर करे कि गुजरात उनके मृदु स्मरणको सुरक्षित रखे । (ह० से० १६ २ ३८)

तार माना जासकने जैसा नहीं है । जब तुमने बीमारीकी बात कही थी तब मनमें कुछ खटका हुआ था, लेकिन तुरत ही उसकी उपेक्षा करदी और यह मानकर बैठ गया कि उनका कुछ बिगड़ेगा नहीं । दूसरे पंडितजीका मिलना अगव्य समझता हूँ । मगीत और श्रेष्ठ नीतिका मेल कहाँ ढूँढूँगा ? (मृत्युपर दिया गया तार)

: ४५ :

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

खान अब्दुल गफ्फार खाँके सपकमें आनेकी अभिलाषा तो मुझे हमेशा रही है, लेकिन गत वर्षके आखिरी महीनोंसे पहले मुझे कभी ऐसा अवसर नहीं मिला कि मैं कुछ समय तक उनके साथ रहता । परन्तु हजारीबाग जेलसे छूटनेके बाद, सौभाग्यवश शीघ्र ही, न केवल खान अब्दुल गफ्फार खाँ, बल्कि उनके भाई डा० खानसाहब भी मेरे पास आ गए । भाग्यकी बात

है कि २७ दिसंबर तक सीमाप्राप्तमे उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया और कांग्रेसके आदेशके अनुसार वे आज्ञा भंग कर नहीं सकते थे। अतः उन्होंने वर्धामे सेठ जमनालाल बजाजका आतिथ्य स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मुझे इन भाइयोके घनिष्ठ संपर्कमे आनेका मौका मिल गया। जितना-जितना मैं उन्हें जानता गया, उतना ही अधिक मैं उनकी ओर आकर्षित होने लगा। उनकी पारदर्शी सचाई, स्पष्टवादिता और हृद दर्जेकी सादगीका मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा। साथ ही मैंने यह भी देखा कि सत्य और अहिंसामे केवल नीतिके तौरपर नहीं, बरन् ध्येयके रूपमे उनका विश्वास हो गया है। छोटे भाई खान अब्दुल गफ्फार खा तो मुझे गहरी धार्मिक भावनाओसे ओतप्रोत प्रतीत हुए, परन्तु उनके विचार सकीर्ण नहीं हैं। मुझे तो वह विश्वप्रेमी मालूम पड़े। उनमे यदि कुछ राजनीतिकता है तो उसका आधार उनका धर्म है। और डाक्टर साहबकी तो कोई राजनीति है ही नहीं। ('दो ख्दाई खिदमतगार' की भूमिका)

ख्दाई खिदमतगार चाहे जैसे हो, या अतमे वे चाहे जैसे सावित हो, पर उनके नेताके वारेमे तो, जिसे वे वादशाह खान कहकर खुश होते हैं, कोई सदेह नहीं हो सकता। वह तो असदिग्ध रूपसे ईश्वर-भोरु पुरुष है। उसकी प्रतिक्षणकी अखंड उपस्थितिमे उनकी परम श्रद्धा है और वह बखूबी जानते हैं कि उनका आदोलन तभी प्रगति करेगा जब ईश्वरकी वैसी इच्छा होगी। ईश्वरके इस कार्यमे अपनी सारी आत्माको उडेलकर, परिणामकी वह बहुत ज्यादा फिक्र नहीं करते। उनके लिए तो यह मंहसूस करना ही काफी है कि अहिंसाको उसके पूरे रूपमे स्वीकार किए वगैर पठानोकी मुक्ति नहीं। इस बातमे वह कोई गौरव अनुभव नहीं करते कि पठान अच्छे लडाका है। वह उनकी बहादुरीकी तो कद्र करते हैं, लेकिन उनका ऐसा खयाल है कि बहुत ज्यादा प्रशंसासे उसे बिगाड दिया गया है। अपने पठानोको वह समाजके गुडोके रूपमे नहीं देखना चाहते। उनका यह विश्वास

हैं कि पठानोको अज्ञानमे रखकर उनमे अपनी स्वार्थ-सिद्धि की गई हैं। वह पठानोको और अधिक वीर बनाना चाहते हैं और चाहते हैं कि उनकी वीरताके साथ सच्चे ज्ञानका भी समावेग होजाय। उनका खयाल है कि ऐसा केवल अहिंसाके द्वारा ही हो सकता है।

और चूँकि खानसाहब अहिंसामे विश्वास करते हैं, इसलिए उन्होंने चाहा कि ख़ुदाई खिदमतगारोके बीच जितने अधिक समयतक मैं रह सकू उतने अधिक समयतक रहूँ। मुझे तो बड़ा आनेके लिए किमी प्रलोभनकी जरूरत ही नहीं थी, क्योंकि मैं तो खुद ही उनमे परिचय प्राप्त करनेके लिए उत्सुक था और उनके दिलो तक पहुँचना चाहता था। अब भी मैं ऐसा कर सका हूँ या नहीं, यह मैं नहीं जानता। बहरहाल, मैंने प्रयत्न तो किया ही है।

लेकिन यह बतानेसे पहले कि यह मैंने किस तरह और किस हदतक किया, मुझे एक शब्द खानसाहबकी मेजवानीके बारेमे भी जरूर कह देना चाहिए। इस सारे दौरेमे उन्हें इस बातकी बड़ी ही फिक्र रही कि मुझे जितनी भी सुविधा पहुँचाई जा सकती हो उतनी पहुँचाई जाय। मुझे किसी किस्मकी दिक्कत या कमी न होने देनेके लिए उन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी। मेरी सभी जरूरतोका वह पहलेसे ही अदाज लगा लेते थे, और उन्होंने जो कुछ किया उसमे कोई दिखावा नहीं था, बल्कि उनके लिए वह सब विलकुल स्वाभाविक था। उन्होंने जो कुछ किया, सब दिलसे किया। फरेव या बनावट तो उनमे है ही नहीं। दिखावेसे तो वह विलकुल दूर हैं। इसलिए वह जो भी देख-भाल रखते वह न तो अखरती और न उससे मेरे काममे कोई रूकावट ही पड़ती। यही कारण है कि तक्षशिलामे जब हम एक-दूसरेसे जुदा हुए तो हमारी आखे भर आईं। जुदाई मुश्किल थी, और इसी यागामे हम एक-दूसरेसे विदा हुए कि शायद अगले मार्चमे ही हम फिर मिलेंगे। सीमाप्रांतका मेरे लिए ऐसी जगह बना रहना आवश्यक है, जहा मैं

अक्सर जाता रहू, क्योंकि शेष भारत सच्ची अहिंसाका प्रदर्शन करनेमें चाहे असफल रहे, सीमाप्रांतसे यह आशा करनेकी काफी गुंजाइश है कि वह इस अग्नि-परीक्षामें खरा उतरेगा। इसका कारण स्पष्ट है। वह यह कि बादशाह खानके अनुयायी, जिनकी सख्या एक लाखसे अधिक बतलाई जाती है, उनकी आज्ञाका स्वेच्छापूर्वक पालन करते हैं। उनके कहनेपर वे चलते हैं। जहां उन्होंने कुछ कहा नहीं कि तुरत उसपर अमल होता है। पर खुदाई खिदमतगारोंकी उनमें जो श्रद्धा है उसके होते हुए भी, खुदाई खिदमतगार रचनात्मक अहिंसाकी परीक्षामें पूरे उतरेगे या नहीं, यह अभी देखनेकी ही बात है।

खानसाहब और मैं यह शुरूमें ही तय कर चुके थे कि विभिन्न केन्द्रोंमें तमाम खुदाई खिदमतगारोंके सामने भाषण करनेके बजाय मुझे उनके नेताओं तक ही मर्यादा बना लेनी चाहिए। इससे मेरी शक्तिका क्षय नहीं होगा और उसका अधिक-से-अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग होगा। हुआ भी यही। पांच हफ्तेके अंदर हम सारे केन्द्रोंमें हो आए और हर एक केन्द्रमें कोई एक घंटा या उससे कुछ अधिक समयतक बातचीत की। खानसाहब मेरे बहुत योग्य और विश्वस्त दुभाषिये साबित हुए। मैंने जो कुछ कहा उसमें उनका विश्वास था, इसलिए मेरी बातोंका उत्था अपनी जवानमें करनेमें उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी। वह एक जन्मजात वक्ता है और बड़े शानदार और प्रभावकारी ढंगसे बोलते हैं।

(ह० से०, १६ ११ ३५)

मिस म्यूरियल लेस्टर, जिनके यहां गोलमेज कानफ्रेंसके समय ईस्ट-एण्ड (लंदन) में मैं ठहरा था और जो यह लिखते समय सीमाप्रांतमें है, बादशाह खानसे मिलकर उनके बारेमें इस प्रकार लिखती है

“अब मैं खान अब्दुल गफ्फार खाको पहचानने लगी हूं। मुझे ऐसा लगता है कि जहांतक अद्भुत व्यक्तियोंसे मिलनेका सवाल है, अपने

जीवनमें ऐसा सम्मान और कहीं मिलनेकी कोई सभावना नहीं है । वह तो नये टेस्टामेंटकी सुजनताके साथ पुराने टेस्टामेंटके राजा ही है । कितने ऊँचे सत है वह ! आपको धन्यवाद है कि आपके द्वारा हमें उनके परिचयमें आना सभव हुआ ।

“कल वह हमें उत्तमंजई ले जा रहे हैं । मीराको फिरसे देखनेमें बड़ा आनंद आयगा ।”

मैं अगर यह समझता कि यह एक असतुलित मस्तिष्ककी अति-शयोक्ति है तो मैं व्यक्तिगत रूपसे की गई इस प्रशंसाको कभी प्रकाशित न करता । यह तो सच है कि म्यूरियल लेस्टर जिन लोगोसे मिलती है उनकी अच्छाईयोपर ही भट उनका ध्यान जाता है । लेकिन यह कोई बुरी बात नहीं, बल्कि एक सद्गुण है । बुराईयोसे खाली तो कोई नहीं है, यहातक कि ईश्वरमे उरकर चलनेवाले सत पुरुष भी नहीं बचे हैं । वे सत इसलिए नहीं हैं कि उनमे कोई बुराई नहीं है, बल्कि इसलिए है कि वे अपनी बुराईयोको जानते हैं, उनसे वचना चाहते हैं, उन्हें छिपाते नहीं और उनसे मुक्त होकर अच्छे बननेके लिए हमेशा तैयार रहते हैं । ऐसे ही खानसाहब हैं, जो खुदाई खिदमतगार कहलानेमे ही फख्र समझते हैं । वह एक श्रद्धालु मुसलमान हैं, जो रोजे व नमाजमे कभी नहीं चूकते । कुरानकी उनकी व्याख्या इतनी उदार है कि उससे उदार व्याख्या मैं और नहीं जानता । खुदाई खिदमतगारोमे कताई वगैरह जारी करनेके लिए मैंने उन्हें अपना एक आदमी देनेके लिए कहा था, जिसका उन्हें चुनाव करना था । इसके लिए उन्होंने जानबूझकर मीराबेनको चुना । अभी हालतक वह उन्हीके मकानमे रहती भी थी और अब उनके घरसे लगे हुए मकानमे रह रही है, जहा वह अपना कताई-वर्ग चलाती है । वह मुझे प्रायः रोज पत्र लिखती है । मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि जिन लोगोसे वह प्रेम करती है उनकी आलोचना करनेसे कभी नहीं चूकती । फिर भी उनके पत्रोमे इस श्रेष्ठ फकीरके बारेमे ऐसे ही

भाव प्रदर्शित किए गए थे, जैसे म्यूरियल लेस्टरने अपनी पहली मुलाकातमें व्यस्त किए हैं। इतनेपर भी अंग्रेज अधिकारी उनका कोई उपयोग नहीं करते। वे तो उनसे डरते हैं और उनमें अविश्वास करते हैं। इस अविश्वाससे अगर प्रगतिमें कोई रुकावट न पड़ती और भारत तथा इंग्लैंड और इसलिए सारे ससार को हानि न होती तो मैं इस अविश्वासकी कोई परवा न करता (ह० से०, २८ १ ३६)

जहां हर तरफ 'शुद्ध अहिंसा' की होली जल रही है, वहां खानसाहबकी जीती-जागती अहिंसा कायम है। यह बात हमारे लिए चिराग जैसी रोशन है। खानसाहबका निवेदन^१ मनन करनेके काविल है। खानसाहबको शोभा भी यही देता है। खानसाहब पठान हैं। पठान तो तलवार-बंदूक साथ लेकर पैदा हुए हैं, ऐसा कहा जा सकता है।

रौलट एक्टकी लड़ाईके जमानेमें जब खुदाई खिदमतगार आमादा हुए तब खानसाहबने उनके हथियार छुड़वा दिए। सरकारके साथ तो लड़ना ही था, लेकिन खानसाहबने अहिंसाका सच्चा तज्जुबा दूसरी जगह पाया। पठानोंमें बदला लेनेका कानून ऐसा सख्त है कि अगर एक खान्दानमें खून हो गया हो तो उसका बदला खूनसे ही लेकर छुटकारा होता है। एक बार खूनका बदला लिया तो फिर उस खूनका बदला लेना होता है। इस तरह पीढ़ी-दर-पीढ़ी खूनका बदला खूनसे लेनेका कही अत ही नहीं आता था। यह भी हिंसाकी हृद और हिंसाका दिवाला था, क्योंकि इस तरह खूनका बदला लेते-लेते खान्दान वरबाद हो जाते थे। खानसाहबने पठानोंकी ऐसी वरबादी देखी और अहिंसामें उनकी बेहतरी पाई। उन्होंने सोचा कि अगर मैं पठान लोगोंको समझा सकू कि हमको न सिर्फ

^१द्वितीय महायुद्धमें सहयोगके प्रश्नको लेकर खानसाहब कांग्रेससे अलग हो गए थे। —संपादक

खूनका बदला नहीं लेना है, बल्कि खूनको भूल जाना है तो एक दूसरेसे बदला बद हो जाएगा, हम जीवित रह सकेंगे और जीवनको सफल भी बना सकेंगे। यह नकदका सौदा है। उनके अनुयायियोंने उसपर अमल किया। अब ऐसे खुदाई खिदमतगार पाए जाते हैं, जो खूनका बदला लेना भूल गए हैं। यह शक्तिशालीकी अहिंसा या सच्ची अहिंसा कही जा सकती है।

अगर खानसाहब कांग्रेसमें रहते तो उनकी जिंदगीका काम खाकमें मिल जाता। वह पठानोंसे किस मुहसे कहते कि 'तुम लडाईमें भरती हो जाओ? वह बदला न लेने का कानून अब रद हुआ समझो।' ऐसी भाषा पठान समझ ही नहीं सकते। वह तो तुरत यही जवाब देते कि जर्मनी अपना बदला ले रहा है, इंग्लैंड मुकाविला कर रहा है, यह हार जाएगा तो खुद लडाईकी तैयारी करेगा। इसलिए इस लडाईमें और हमारे खूनका बदला खूनसे लेनेमें रत्तीभर भी फर्क नहीं। ऐसी दलीलोके सामने खानसाहबकी जवान बन्द हो जाती। इसलिए उन्होंने अपना ही काम जारी रखना पसंद करके कांग्रेससे निकल जानेका फैसला किया। खानसाहबको अहिंसाका सदेश पहुचानेमें कहातक सफलता हुई है, वह मैं नहीं जानता। इतना ही जानता हूँ कि खानसाहबकी श्रद्धा दिमागी नहीं, केवल दिलसे निकली हुई है, इसलिए वह हमेशा कायम है। अब कबतक उनके चले उनकी तालीममें लगे रहेंगे, यह खुद खानसाहब भी नहीं कह सकते और न इसकी उनको परवाह है। उनको तो अपना कर्त्तव्य पूरा करना है। परिणाम खुदापर छोड़ दिया है। उनकी अहिंसाका आधार कुरान शरीफ है। खानसाहब पक्के मुसल्मान हैं। वह मेरे साथ लगभग एक सालतक रहे। बावजूद बीमार होनेके, उन्होंने न कभी नमाज कज़ा की, न रोज़ा। खानसाहबके दिलमें दूसरे मजहबोंके प्रति पूरा आदर है। उन्होंने गीताका भी थोडा अभ्यास किया है। वह हमेशा बहुत कम पढ़ते हैं, लेकिन जो पढ़ते या सुनते हैं वह अगर अमलमें लानेके योग्य हो तो उसपर अमल करनेमें उन्हें देर नहीं लगती। वह लवी-चौड़ी दलीलोमें नहीं पड़ते।

जरा समझा और तुरत 'हा' या 'ना' कह सकते हैं। अगर खानसाहबको स्पष्ट सफलता हासिल हुई तो उससे बहुत सारी उलझने सुलझ सकती हैं। आज तो कुछ नहीं कहा जा सकता। चाकपर मिट्टी है, मटका उतरेगा या गागर, इस बातको तो खुदा ही ज्यादा अच्छी तरह जानता है।

(ह० से०, २० ७ ४०)

'एसोसिएटेड प्रेस' ने बादशाह खानके विषयमें नीचे लिखा सवाद प्रचारित किया है

"सीमाप्रातकी प्रातीय कांग्रेस-कमिटीने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया है -

'देशके कई समाचार-पत्रोंमें पठानोंके निर्विवाद नेता खान अब्दुल गफ्फार खाके विरुद्ध और खुदाई खिदमतगार आंदोलनके विरुद्ध, जो प्रचार किया जा रहा है, उसके बारेमें हम जनताको सावधान करना चाहते हैं। कुछ इस ढंगका इशारा किया गया है कि सीमाप्रातके कार्यकर्त्ताओंके बीच फूट पड़ गई है और दलबंदियोंने उनके बीच अपनी मनहूस शक्ल दिखानी शुरू की है। अभीतक एक भी खुदाई खिदमतगारने त्यागपत्र नहीं दिया है। वे सब खान अब्दुल गफ्फार खाके नेतृत्वमें एक अभेद्य दलकी नाई संगठित हैं। उनके दरमियान दलबंदीकी सब बातें सर्वथा निर्मूल हैं। फूटकी ये सब दतकथाएँ कुछ ऐसे स्वार्थी और पदलोप व्यक्तियोंके दिमागकी उपज हैं, जो समझते हैं कि इस तरह वे अपना उल्लू सीधा कर सकेंगे। इस सब प्रचारके पीछे सरकारकी प्रेरणा तो है ही, परंतु सीमाप्रातकी जनतामें इन लोगोका कोई साथी नहीं है। वहाका हरएक राष्ट्रवादी वखूवी समझता है कि पदग्रहणकी बात तो दूर रही, आज भारतमें अंग्रेज सरकारके साथ हमें कोई मतलब ही नहीं हो सकता। हिंदुस्तानके अन्य भागोंमें पार्लामेंटरी कार्यक्रमके लिए चाहे जो आकर्षण हो, सीमाप्रातमें तो उसके लिए कतई स्थान नहीं।

‘खान अब्दुल गफ्फार खाने देहातोमें आतरिक सुव्यवस्था और अन्न-वस्त्रके स्वावलम्बनके बारेमें जो शात, पारमार्थिक रचनात्मक कार्य किया है, उसने वहाकी जनतामें और खास तौरपर गरीब जनतामें उनकी लोकप्रियता और भी दढा दी है । वे सरहदके आसपासवाले कवीलोमें सुलह और शातिके सदेशको पहुचानेका स्वप्न देख रहे हैं ।

‘आनेवाले सकटके समयमें जनताकी सच्ची सेवा करनेवालो एक शात और अहिंसक सेनाको तैयार करनेमें उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी है । करोडो रुपये खर्च करके जो काम करनेमें सरकार असफल रही है, उसे वे जनताकी शुद्ध ऐच्छिक सहायता द्वारा करनेका प्रयत्न कर सहानुभूति और सहयोगके अधिकारी हैं । हम आशा करते हैं कि सीमा-प्रातकी जनता उनके आह्वानका ठीक-ठीक जवाब देगी और देशके सब सच्चे हितैषी समाचार-पत्र और पत्रकार तमाम पूर्वाग्रहोको छोडकर उनके इस कार्यमें रस लेंगे ।’ ”

सीमाप्रान्तीय समितिने यह प्रस्ताव पास करके और विज्ञप्तिके रूपमे इसे प्रचारित करके ठीक ही किया है, परन्तु वादगाह खानकी कीर्ति सीमाप्रातकी प्रातीय समितिके इस प्रस्तावकी अपेक्षा कही अधिक सवल आधारपर अवलंबित है । उनकी कीर्तिका आधार चोथाई सदीसे भी अधिक कालतककी हुई उनकी नि स्वार्थ जनसेवा और उसके फल-स्वरूप प्राप्त उनकी लोकप्रियता है । अपने निंदकोकी सब कुचेष्टाओके वावजूद खानमाहव अवतककी सभी अग्नि-परीक्षाओमे उत्तीर्ण हुए हैं । मुझे इसमे जरा भी शक नहीं कि आगे चलकर जब फिर परीक्षाका समय आवेगा तो वे पहलेकी भांति ही अपनी लोकप्रियताका प्रमाण देगे ।

(ह० से०, ५ ७ ८२)

वादगाह खान मेरे दोस्त हैं । मीलाना आजाद तथा जवाहरलालके महल छोडकर मेरी भोपडीमे आकर टिकते हैं । यहा गोश्त नहीं मागते ।

मेरे साथ ही रोटी-फल लेते हैं। वे पूरे फकीर हैं। उनके भाई डा० खान साहब बिना उनकी मददके काम नहीं चला सकते। हम उन्हें सीमात गांधी कहते हैं, पर वहा गांधीको ही कोई नहीं जानता तो सीमात गांधीको कौन जाने? वहा तो यह वादशाह कहलाते हैं और जिस भोपडीमे जाइए, वहा पठान अपने इस वादशाहपर खुश हो जाते हैं।

ऐसे वादशाहके इलाकेमे जनमत-संग्रह करनेकी बात तय कर दी गई है और वह भी तब जब पठानका खून अभी ठंडा नहीं हुआ है, जिसका कि खून सदा गरम ही रहता आया है और वादशाहने अपनी जिदगी उस खूनको ठंडा करनेमे खपा रखी है। (प्रा० प्र०, ११ ६ ४७)

पठान तलवारबाज होता है। कोई पठान ऐसा नहीं होता जो तलवार और बंदूक चलाना न जानता हो। पीढी-दर-पीढी पठान खूनका बदला लेता रहा है। पर वादशाह खानने देखा कि हथियारोकी बहादुरीसे भी ज्यादा बलदी, मरकर स्वरक्षा करनेमे है। वादशाह खानका खयाल था कि पठान लोग यह ऊंची बहादुरी अपना ले और एक होकर सबकी खिदमत करे, पर यह रवाब पूरा होनेसे पहले वहा यह जनमत-संग्रहका भगडा फैल गया।

कुछ कहेंगे कि हम पाकिस्तानके साथ रहेंगे, कोई कहेंगे कि कांग्रेसके साथ रहेंगे, और कांग्रेस तो आज बदनाम है कि वह हिंदुओकी हो गई। इस बातपर पठान अलग-अलग होंगे और ऐसी यादवस्थली मचेगी कि जिसका दवाना दुज्बार होगा। वे आपसने कट मरेगे। वादशाह खान चाहते हैं कि किसी तरहसे जनमतसंग्रहकी बलामे छूटकर पठान ग्राजाद रहे। वे खुद अपने कानून बनावे और एक रहे, फिर चाहे वे पाकिस्तानमे रहे चाहे हिंदुस्तानमे मिले। वे कहते हैं कि हमारे पास पैसा नहीं है। हम तो मिस्कीन आदमी हैं। हम अपना स्वतंत्र राष्ट्र

वनाना नहीं चाहते, पर किसमें मिलेंगे इसके बारेमें आपसी झगडा मिट जानेके बाद ही हम निश्चय करेंगे। (प्रा० प्र०, १७ ६ ४७)

लोगोंकी आखे आज सरहद्दी सूबेमें होनेवाले जन-मतकी तरफ लगी हुई हैं, क्योंकि सरहद्दी सूबा कानूनन कांग्रेसका रहा है और आज भी है। वादगाह खान और उनके साथियोंसे कहा जाता है कि पाकिस्तान या हिंदुस्तान, दोमेंमें किसी एकको चुनो। हिंदुस्तानका आज गलत अर्थ हो गया है—हिंदुस्तानका हिंदू और पाकिस्तानका मुसलमान। वादगाह खान इस कठिनाईमेंसे कैसे निकले? कांग्रेसने वचन दिया है कि डा० खानसाहबकी सीधी देख-रेखके नीचे सरहद्दी सूबेमें जनमत लिया जायगा। वह तो नियत तारीखपर ही होगा। खुदाई खिदमतगार मत नहीं देगे। सो मुस्लिम लीगको सीधी जीत मिलेगी और खुदाई खिदमतगारोंको अपनी आत्माकी आवाजके खिलाफ काम नहीं करना पड़ेगा, वशर्तेकि उनकी आत्माकी आवाज है, ऐसा माना जाय। ऐसा करनेमें क्या जन-मतकी गर्तोंका भग होता है? वही खुदाई खिदमतगार जिन्होंने बहादुरीसे ब्रिटिश सरकारका सामना किया, अब हारसे डरनेवाले नहीं हैं। हार होगी, यह पक्की तरह जानते हुए अलग-अलग दल रोज चुनावमें हिस्सा लेते हैं। जब एक दल चुनावमें हिस्सा नहीं लेता तब भी तो हार निश्चित ही होती है।

पठानिस्तानकी नई मांग पेश करनेके लिए वादगाह खानको ताना दिया जाता है। कांग्रेसकी वजारत वननेसे पहले भी, जहातक मैं जानता हूँ, वादगाह खानके सिरपर यही धुन सवार थी कि अपने घरमें पठानोंको पूरी आजादी हो। वादगाह खान एक अलग स्टेट बनाना नहीं चाहते। अगर वह अपने घरमें अपना विधान बना सके तो वह खुशीसे दोमेंमें एक सघको कबूल कर लेंगे। मुझे तो समझमें नहीं आता कि पठानिस्तानकी इस मांगके सामने बिंसीको क्या उज्र हो सकता है।

हा, पठानोको पाठ सिखाना हो और उन्हें किसी-न-किसी तरह झुकाना ही हो तो बात अलग है। बादशाह खानपर एक बड़ा इल्जाम यह लगाया जा रहा है कि वह अफगानिस्तानके हाथोमे खेल रहे हैं। मैं समझता हूँ कि वह कभी किसी तरहकी धोखेबाजी कर ही नहीं सकते। वह सरहद्दी सूबेको अफगानिस्तानमे जज्व होने नहीं देंगे।

उनके दोस्त होनेके नाते मैं मानता हूँ कि उनमे एक ही कमी है। वे बहुत ही शक्की हैं, खासकर अंग्रेजोके काम और नीयतपर वह हमेशा शुबहा करते हैं। मैं सबसे कहूँगा कि वे उनकी इस कमजोरीको, जो कि खास उन्हीमे नहीं है, नजरअदाज कर दे। यह जरूर है कि इतने बड़े नेताके लिए यह शोभा नहीं देता। अगर्चे मैंने उसको एक कमजोरी कहा है और जो एक तरहसे ठीक ही है, मगर दूसरी प्रकारसे इसको एक खूबी मानना चाहिए, क्योंकि वे चाहे भी तो अपने विचारोको छिपा नहीं सकते। (प्रा० प्र०, ३० ६ ४७)

: ४६ :

आदमजी मियां खान

यदि मैं देश जाऊ तो फिर कांग्रेसका और शिक्षा-मंडलके कामका कौन जिम्मा ले ? दो साथियोपर नजर गई आदमजी मिया खान और पारसी सुस्तमजी। व्यापारी-वर्गमेसे बहुतेरे काम करनेवाले ऊपर उठ आए थे, पर उनमे प्रथम पक्तिमे आने योग्य यही दो सज्जन ऐसे थे जो मन्त्रीका काम नियमित रूपसे कर सकते थे और जो दक्षिण अफ्रीकामे जन्मे भारतवासियोका मन हरण कर सकते थे। मन्त्रीके लिए मामूली अंग्रेजी जानना तो आवश्यक था ही। मैंने इनमेसे स्वर्गीय आदमजी

मिया खानको मन्त्री-पद देनेकी सिफारिश की और वह स्वीकृत हुई । अनुभवसे यह पसंदगी बहुत ही अच्छी साबित हुई । अपनी उद्योगशीलता, उदारता, मिठास और विवेकके द्वारा सेठ आदमजी मिया खानने अपना काम सतोषजनक रीतिसे किया और सबको विश्वास हो गया कि मन्त्रीका काम करनेके लिए वकील वैंरिस्टरकी अथवा पदवीधारी बड़े अंग्रेजीदाकी जरूरत न थी । (आ० १६२७)

: ४७ :

गंगावहन

हम कह सकते हैं कि गंगावहनने जीकर आश्रमको सुशोभित किया और मरकर भी आश्रमको सुशोभित किया । (बड़ो गंगावहनको भेजा पत्र)

गंगावहनकी मृत्युके समाचार जानकर हम सबको दुःख हुआ । मुझे खुशी है कि उन्होंने अमर श्रद्धाके साथ जीना जाना और मरना जाना । तोतारामजी आनंदमें हैं, इसमें आश्चर्य नहीं । (आश्रमको दिया गया तार)

देखो, इस निरक्षर स्त्रीको । इसकी मौत कैसा है । दोनोंने आश्रमको सुशोभित किया । तोतारामजी गिरमिटिया थे । वहा फीजीके किसी गिरमिटियेकी लडकीसे शादी की होगी, इसलिए दोनों गिरमिटिये ही कहलायेगे । मगर दोनोंने कैसी जिदगी गुजारी ।
(म० डा०, ६५३२)

गंगादेवीका चेहरा अब भी मेरी आंखोंके सामने फिरा करता है, उनकी

बोलीकी भनक मेरे कानोमे पडती है । उनके स्मरणोकी याद करते अब भी मैं थका नहीं । उनके जीवनसे हम सबको और वहनोको खासतौरसे बहुत सबक सीखने है । वह लगभग निरक्षर होनेपर भी ज्ञानी थी । हवा, पानी बदलनेके लिए जाने लायक होने पर भी स्वेच्छासे जानेसे अततक इन्कार करती रहनेवाली वह अकेली ही थी । जो वच्चे उन्हे मिले, उनकी सम्हाल उन्होने अपने वच्चे मानकर की । उन्होने किसी दिन किसीके साथ तकरार की हो या किसीपर खफा हुई हो, इसकी जानकारी मुझे नहीं है । उनको जीनेका उल्लास न था, मरनेका भय न था । उन्होने हँसते हुए मृत्युको गले लगाया । उन्होने मरनेकी कला हस्तगत कर ली थी । जैसे जीनेकी कला है, वैसे ही मरनेकी भी कला है ।

(य० म०, ३० ५ ३२)

: ४८ :

लाला गंगाराम

एक मित्रके पत्रसे मुझे स्यालकोटके लाला गंगारामके स्वर्गवासकी खबर मिली है । वे ६० वर्षकी अवस्थामे गत ४ नवबरको एकाएक दिलकी धडकन बंद होनेसे परलोक सिधार गए । सन् १९१९मे लाहौरमें स्वर्गीय रामभजदत्त चौधरीके मकान पर उनसे मिलनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था । वे एक हरिजन-कार्यकर्त्ता थे । हरिजन-सेवाके अर्थ उन्होने अपना जीवन अर्पण कर दिया था । उन्होने हरिजनोकी नई बस्तिया बसवाई थी । हरिजन-कार्यको निश्चय ही उनके निधनसे हानि पहुची है । स्वर्गीय लाला गंगारामके कुटुंब तथा उनके प्यारे हरिजनोके प्रति मैं समवेदना प्रकट करता हूँ । (ह० से०, ८ १२ ३३)

: ४६ :

सर गंगाराम

मृत्युने सर श्रीगंगारामको क्या उठाया, हमारे बीचसे एक सुयोग्य और व्यवहारदक्ष खेतीगास्त्रके जानकारको, एक मन्त्रान दाताको और विधवाओंके बधुको, उठा लिया। सर गंगाराम यो तो वयोवृद्ध थे, किन्तु उनमें उत्साह युवकोका-सा था। उनकी आगावादिता भी उतनी ही प्रबल थी जितना कि उनका अपने विचारोंका आग्रह। इधर मुझे उनसे निकटका सवध प्राप्त करनेका सुअवसर मिला था और यद्यपि हम अनेक बातोंमें एक-दूसरेसे भिन्न मत ही रखते थे तथापि मैंने देखा कि वे एक सच्चे सुधारक और महान कार्यकर्त्ता थे। और यद्यपि उनके अनुभव और वयोमानके कारण मैंने उनके विचारोंसे बार-बार आदरपूर्वक, किन्तु दृढ़ विरोध प्रकट किया तथापि मेरे प्रति, जिसे वे अपनी तुलनामें कलका युवक समझते थे, उनका प्रेम तो बढ़ता ही जाता था। साथ-ही-साथ भारतकी दरिद्रताके विषयमें उनके कुछ विचित्र विचारोंसे मेरा विरोध भी। वे मेरे साथ लंबे वाद-विवाद करनेके लिए इतने उत्सुक थे तथा मुझे अपने विचारोंका कायल कर देनेकी उन्हे इतनी दृढ़ आशा थी कि उन्होंने उनके अपने खर्चोंसे मुझे इंगलैंड चलनेतकके लिए आग्रह किया और मेरे दिमागमें सब पागलपनकी बातोंको निकाट देनेका विश्वास दिलाया। यद्यपि मैं उनकी इस बातको कबूल नहीं कर सका और यद्यपि उन्होंने तो उसे सच्चे दिलसे ही पेश किया था, तथापि उनके इंगलैंड जानेसे पहले उनसे मिलकर उन्हे चरखेका, जिसे वे केवल जला देने योग्य ही समझते थे, कायल कर देनेका मैंने वचन दिया था। अतः पाठक अनुमान कर सकते हैं कि उनकी अकस्मात् मृत्युकी यह वार्ता सुनकर मुझे कितना दुःख हुआ होगा। पर यह तो ऐसी मृत्यु है, जिसे हम सब अपने लिए चाहेंगे,

क्योंकि वे इंग्लैंड किसी आमोद-प्रमोदके लिए नहीं गए थे, बल्कि ऐसे कार्यके लिए गए थे, जिसे वे अपना अत्यन्त जरूरी कर्त्तव्य समझते थे। इसलिए वे तो कर्त्तव्य क्षेत्रहीमें मर गए। भारतको हर तरहसे इस बातका अभिमान है कि सर गगारामके समान पुरुष उसके विख्यात सपूतोंमेंसे एक है। दिवंगत सुधारकके कुटुंबी जनोको मैं अपने धन्यवाद और सम-वेदना साथ-साथ भेजता हूँ। (हि० न०, २१ ७ २७)

: ५० :

कस्तूरबा गांधी

मैं जानता था कि बहनोको जेल^१ भेजनेका काम बहुत खतरनाक था। फिनिक्समें रहनेवाली अधिकतर बहने मेरी रिश्तेदार थी, वे सिर्फ मेरे लिहाजके कारण ही जेल जानेका विचार करे और फिर ऐन मौकेपर घबराकर या जेलमें जानेके बाद उकताकर माफी वगैरह माग ले तो मुझे सदमा पहुँचे। साथ ही, इसकी वजहसे लड़ाईके एकदम कमजोर पड़ जानेका डर भी था। मैंने तय किया था कि मैं अपनी पत्नीको तो हरगिज नहीं ललचाऊंगा। वह इन्कार भी नहीं कर सकती थी और 'हाँ' कह दे तो उस 'हाँ'की भी कितनी कीमत की जाय, सो मैं कह नहीं सकता था। ऐसे जोखिमके काममें स्त्री स्वयं जो निश्चय करे, पुरुषको वही मान लेना चाहिए और कुछ भी न करे तो पतिको उसके बारेमें तनिक भी दुखी नहीं होना चाहिए, इतना मैं समझता था। इसलिए मैंने उनके साथ कुछ भी बात न करनेका इरादा कर रक्खा था। दूसरी बहनोसे मैंने चर्चा की। वे

^१ दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके सबधमें।

जेल-यात्राके लिए तैयार हुई । उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वे हर तरहका दुख सहकर भी अपनी जेल-यात्रा पूरी करेगी । मेरी पत्नीने भी इन सब बातोंका सार जान लिया और मुझमें कहा,

“मुझमें इस बातकी चर्चा नहीं करते, इसका मुझे दुख है । मुझमें ऐसी क्या खामी है कि मैं जेल नहीं जा सकती । मुझे भी उसी रास्ते जाना है, जिस रास्ते जानेकी सलाह आप इन बहनोको दे रहे हैं ।”

मैंने कहा, “मैं तुम्हें दुख पहुंचा ही नहीं सकता । इसमें अविश्वासकी भी कोई बात नहीं । मुझे तो तुम्हारे जानेसे खुशी ही होगी, लेकिन तुम मेरे कहनेपर गई हो, इसका तो आभास तक मुझे अच्छा नहीं लगेगा । ऐसे काम सबको अपनी-अपनी हिम्मतसे ही करने चाहिए । मैं कहूँ और मेरी बात रखनेके लिए तुम सहज ही चली जाओ और बादमें अदालत के सामने खड़ी होते ही काप उठो और हार जाओ या जेलके दुखमें ऊब उठो तो इमें मैं अपना दोष तो नहीं मानूँगा, लेकिन सोचो कि मेरा क्या हाल होगा । मैं तुमको किस तरह रख सकूँगा और दुनियाके मामने किस तरह खड़ा रह सकूँगा । वस, इस भयके कारण ही मैंने तुम्हें ललचाया नहीं ।”

मुझे जवाब मिला, “मैं हारकर छूट आऊँ तो मुझे मत रखना । मेरे वच्चेतक सह सके, आप सब सहन कर सके और अकेली पै ही न सह सकूँ, ऐसा आप सोचने कैसे हैं ? मुझे इस लड़ाईमें शामिल होना ही होगा ।”

मैंने जवाब दिया, “तो मुझे तुमको शामिल करना ही होगा । मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो । मेरे स्वभावसे भी तुम परिचित हो । अब भी विचार करना हो तो फिर विचार कर लेना और भलीभांति सोचनेके बाद तुम्हें यह लगे कि शामिल नहीं होना है तो समझना कि तुम इसके लिए आजाद हो । साथ ही, यह भी समझ लो कि निश्चय बदलनेमें अभी गरमकी कोई बात नहीं है ।”

मुझे जवाब मिला, “मुझे विचार-विचार कुछ नहीं करना है। मेरा निश्चय ही है।” (द० अ० स०, १९२५)

जिन दिनों मेरा विवाह हुआ, छोटे-छोटे निबन्ध—पैसे-पैसे या पाई-पाईके, सो याद नहीं पड़ता—छपा करते। इनमें दापत्य प्रेम, मितव्ययता, बाल-विवाह इत्यादि विषयोंकी चर्चा रहा करती। इनमेंसे कोई-कोई निबन्ध मेरे हाथ पड़ता और उसे मैं पढ़ जाता। शुरूसे यह मेरी आदत रही कि जो बात पढ़नेमें अच्छी नहीं लगती उसे भूल जाता और जो अच्छी लगती उसके अनुसार आचरण करता। यह पढ़ा कि एक-पत्नी-व्रतका पालन करना पतिका धर्म है। वस, यह मेरे हृदयमें अंकित हो गया। सत्यकी लगन तो थी ही। इसलिए पत्नीको धोखा या भुलावा देनेका तो अवसर ही न था। और यह भी समझ चुका था कि दूसरी स्त्रीसे सबंध जोड़ना पाप है। फिर कोमल वयमें एक-पत्नी-व्रतके भग होनेकी सभावना भी कम रहती है।

परन्तु इन सद्बिचारोंका एक बुरा परिणाम निकला। ‘यदि मैं एक-पत्नी-व्रतका पालन करता हू तो मेरी पत्नीको भी एक-पति-व्रतका पालन करना चाहिए।’ इस विचारसे मैं असहिष्णु-ईर्ष्यालु पति बन गया। फिर ‘पालन करना चाहिए’मेंसे ‘पालन करवाना चाहिए’ इस विचारतक जा पहुँचा और यदि पालन करवाना हो तो फिर मुझे पत्नीकी चौकीदारी करनी चाहिए। पत्नीकी पवित्रतापर तो सदेह करनेका कोई कारण न था, परन्तु ईर्ष्या कही कारण देखने जाती है? मैंने कहा—“पत्नी हमेशा कहा-कहा जाती है, यह जानना मेरे लिए जरूरी है। मेरी इजाजत लिये बिना वह कही नहीं जा सकती।” मेरा यह भाव मेरे और उनके बीच दुःखद झगड़ेका मूल बन बैठा। बिना इजाजतके कही न जा पाना तो एक तरहकी कैद ही हो गई, परन्तु कस्तूरबाई ऐसी मिट्टीकी न बनी थी, जो ऐसी कैदको बगदाश्त करती। जहाँ जी चाहे, मुझसे बिना पूछे

जखर चली जाती । ज्यो-ज्यो मैं उन्हें दवाता त्यो-त्यो वह अधिक आजादी लेती और त्यो-ही-त्यो मैं और विगडता । इन कारण हम बाल-दपतीमें अबोला रहना एक मामूली बात हो गई । कस्तूरवाई जो आजादी लिया करती उसे मैं बिलकुल निर्दोष मानता हूँ । एक बालिका, जिसके मनमें कोई बात नहीं है, देव-दर्शनको जाननेके लिए अथवा किसीसे मिलने जाननेके लिए क्यों ऐसा दवाव सहन करने लगी ? 'यदि मैं उसपर दवाव रखू तो फिर वह मुझपर क्यों न रखे ?' पर यह बात तो अब समझमें आती है । उस समय तो मुझे पतिदेवकी सत्ता सिद्ध करनी थी ।

इससे पाठक यह न समझे कि हम रे इस गार्हस्थ्य-जीवनमें कहीं मिठास थी ही नहीं । मेरी इस वक्रताका मूल था प्रेम—मैं अपनी पत्नीको आदर्श स्त्री बनाना चाहता था । मेरे मनमें एकमात्र यही भाव रहता था कि मेरी पत्नी स्वच्छ हो, स्वच्छ रहे, मैं सीखूँ मो सीखे, मैं पढ़ूँ सो पढ़े और हम दोनों एक-मन दो-तन बनकर रहे ।

मुझे खयाल नहीं पड़ता कि कस्तूरवाईके भी मनमें ऐसा भाव रहा हो । वह निरक्षर थी । स्वभाव उनका सरल और स्वतंत्र था । वह परिश्रमी भी थी, पर मेरे साथ कम बोला करती । अपने अज्ञानपर उन्हें असंतोष न था । अपने वचनमें मैंने कभी उनकी ऐसी इच्छा नहीं देखी कि 'वह पढ़ते हैं तो मैं भी पढ़ूँ ।' इससे मैं मानता हूँ कि मेरी भावना इकतरफा थी । मेरा विषय-सुख एक ही स्त्रीपर अवलंबित था और मैं उस सुखकी प्रतिध्वनिकी आशा लगाये रहता था । अस्तु, प्रेम यदि एक-पक्षीय भी हो तो वहा सर्वाशमें दुःख नहीं हो सकता ।

मुझे कहना चाहिए कि मैं अपनी पत्नीसे जहातक सवब है, विषयासक्त था । स्कूलमें भी उसका ध्यान आता और वह विचार मनमें चला ही करता था कि कब रात हो और कब हम मिले । वियोग असह्य हो जाता था । कितनी ही ऊट-पटांग बातें कह-कहकर मैं कस्तूरवाईको देरतक सोने न देता । इस आसक्तिके साथ ही यदि मुझमें कर्तव्यपरायणता न

होती तो, मैं समझता हूँ, या तो किसी बुरी बीमारीमें फसकर अकाल ही कालकवलित हो जाता अथवा अपने और दुनियाके लिए भारभूत होकर वृथा जीवन व्यतीत करता होता । 'सुबह होते ही नित्यकर्म तो हर हालतमें करने चाहिए' भूठ तो दोल ही नहीं सकते', आदि अपने इन विचारोकी वदौलत मैं अपने जीवनमें कई सकटोंसे बच गया हूँ ।

मैं ऊपर कह आया हूँ कि कस्तूरवाई निरक्षर थी । उन्हें पढ़ानेकी मुझे वडी चाह थी । पर मेरी विषय-वासना मुझे कैसे पढ़ाने देती ? एक तो मुझे उनकी मर्जीके खिलाफ पढ़ाना था, फिर रातमें ही ऐसा मौका मिल सकता था । बृजुर्गोंके सामने तो पत्नीकी तरफ देखतक नहीं सकते, बात करना तो दूर रहा । उस समय काठियावाडमें घूघट निकालनेका निरर्थक और जगली रिवाज था, आज भी थोडा-बहुत बाकी है । इस कारण पढ़ानेके अवसर भी मेरे प्रतिकूल थे । इसलिए मुझे कहना होगा कि युवावस्थामें पढ़ानेकी जितनी कोशिशें मैंने की वे सब प्रायः बेकार गईं और जब मैं विषय-निद्रासे जगा तब तो सार्वजनिक जीवनमें पड़ चुका था । इस कारण अधिक समय देने योग्य मेरी स्थिति नहीं रह गई थी । शिक्षक रखकर पढ़ानेके मेरे यत्न भी विफल हुए । इसके फलस्वरूप आज कस्तूरवाई मामूली चिट्ठी-पत्री व गुजगती लिखने-पढ़नेसे अधिक साक्षर न होने पाई । यदि मेरा प्रेम विषयसे दूषित न हुआ होता तो, मैं मानता हूँ, आज वह विदुषी हो गई होती । उनके पढ़नेके आलस्यपर मैं विजय प्राप्त कर पाता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि शुद्ध प्रेमके लिए दुनियामें कोई बात असंभव नहीं ।

इस तरह अपनी पत्नीके साथ विषय-रत रहते हुए भी मैं कैसे बहुत कुछ बच गया, इसका एक कारण मैंने ऊपर बताया । इस सिलसिलेमें एक और बात कहने जैसी है । सैकड़ों अनुभवोंसे मैंने यह निचोड़ निकाला है कि जिसकी निष्ठा सच्ची है, उसे खुद परमेश्वर ही बचा लेता है । हिंदू-संसारमें जहां बाल-विवाहकी घातक प्रथा है वहां उसके साथ ही

उसमेसे कुछ मुक्ति दिलानेवाला भी एक रिवाज है। बालक बर-बधूको मा-बाप बहुत समयतक एक साथ नहीं रहने देते। बाल-पत्नीका आधेने ज्यादा समय मायकेमे जाता है। हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ। अर्थात् हम १३ और १८ सालकी उम्रके दरमियान थोड़ा-थोड़ा करके तीन सालमे अधिक साथ न रह सके होंगे। छ-आठ महीने रहना हुआ नहीं कि पत्नीके मा-बापका बुलावा आया नहीं। उस समय तो वे बुलावे बड़े नागवार मालूम होते, परंतु सच पूछिए तो उन्हींकी बदौलत हम दोनों बहुत बच गए। फिर १८ सालकी अवस्थामे मैं विलायत गया, लवे और सुंदर वियोगका अवसर आया। विलायतसे लौटनेपर भी हम एक साथ तो छ महीने मुश्किलसे रहे होंगे, क्योंकि मुझे राजकोट-बवई बार-बार आना-जाना पड़ता था। फिर इतनेमे ही दक्षिण अफ्रीकाका निमंत्रण आ पहुंचा, और इस बीच तो मेरी आखे बहुत-कुछ खुल भी चुकी थी।

विलायत जाते समय जो वियोग-दुःख हुआ था, वह दक्षिण अफ्रीका जाते हुए न हुआ, क्योंकि माताजी तो चल बसी थी और मुझे दुनियाका और सफरका अनुभव भी बहुत-कुछ हो गया था। राजकोट और बवई तो आया-जाया करता ही था। इस कारण अबकी बार सिर्फ पत्नीका ही वियोग दुःखद था। विलायतसे आनेके बाद दूसरे एक बालकका जन्म हो गया था। हम दंपतीके प्रेममे अभी विषय-भोगका अंग तो था ही। फिर भी उसमे निर्मलता आने लगी थी। मेरे विलायतसे लौटनेके बाद हम बहुत थोड़ा समय एक साथ रहे थे और मैं ऐसा-वैसा ही क्यों न हो, उसका शिक्षक बन चुका था। इधर पत्नीकी बहुतेरी बातोंमे बहुत-कुछ सुधार करा चुका था और उन्हें कायम रखनेके लिए भी साथ रहनेकी आवश्यकता हम दोनोंको मालूम होती थी। परंतु अफ्रीका मुझे आकर्षित कर रहा था। उसने इस वियोगको सहन करनेकी शक्ति दे दी थी। 'एक सालके बाद तो हम मिलेंगे ही'—कहकर और दिलासा देकर मैंने राजकोट छोड़ा और बवई पहुंचा।

लडाईके कामसे मुक्त होनेके बाद मैंने सोचा कि अब मेरा काम दक्षिण अफ्रीकामे नहीं, बल्कि देगमे है। दक्षिण अफ्रीकामे बैठे-बैठे मैं कुछ-न-कुछ सेवा तो जरूर कर पाता था, परंतु मैंने देखा कि यहा कहीं मेरा मुख्य काम बन कमाना ही न हो जाय।

देगसे मित्र लोग भी देग लौट आनेको आकर्षित कर रहे थे। मुझे भी जचा कि देश जानेसे मेरा अधिक उपयोग हो सकेगा। नेटालमे मि० खान और मनसुखलाल नजर थे ही।

मैंने साथियोसे छुट्टी देनेका अनुरोध किया। बड़ी मुश्किलसे उन्होंने एक गर्तपर छुट्टी स्वीकार की। वह यह कि एक सालके अंदर लोगोको मेरी जरूरत मालूम हो तो मैं फिर दक्षिण अफ्रीका आ जाऊंगा। मुझे यह शर्त कठिन मालूम हुई, परंतु मैं तो प्रेम-पाशमे बंधा हुआ था।

काचे रे तातणे मने हरजीए बाधी

जेम ताणे तेम तेमरी रे

मने लागी कटारी प्रेमनी ।^१

मीराबाईकी यह उपमा न्यूनाधिक अशमे मुझपर घटित होती थी। पच भी परमेश्वर ही है। मित्रोकी बातको टाल नहीं सकता था। मैंने वचन दिया। इजाजत मिली।

इस समय मेरा निकट-सवध प्राय नेटालके ही साथ था। नेटालके हिंदुस्तानियोने मुझे प्रेमामृतसे नहला डाला। स्थान-स्थानपर अभिनदन पत्र दिए गए और हरएक जगहसे कीमती चीजे नजर की गई।

१८६६मे जब मैं देश आया था तब भी भेटे मिली थी, पर इस बारकी भेटो और सभाओंके दृष्योसे मैं घबराया। भेटमे सोने-चांदीकी चीजे तो थी ही, पर हीरेकी चीजे भी थी।

^१ प्रभुजीने मुझे कच्चे सूतके प्रेम-धागेसे बांध लिया है। ज्यो-ज्यो वह उसे तानते हैं त्यो-त्यो मैं उनकी होती जाती हू।

इन सब चीजोंको स्वीकार करनेका मुझे क्या अधिकार हो सकता है ? यदि मैं इन्हें मजूर कर लू तो फिर अपने मनको यह कहकर कैसे मना सकता हूँ कि मैं पैसा लेकर लोगोंकी सेवा नहीं करता था ? मेरे मवक्किलोंकी कुछ रकमोंको छोड़कर बाकी सब चीजें मेरी लोक-सेवाके ही उपलक्ष्यमें दी गई थी । पर मेरे मनमें तो मवक्किल और दूसरे साथियोंमें कुछ भेद न था । मुख्य-मुख्य मवक्किल सब सार्वजनिक काममें भी सहायता देते थे ।

फिर उन भेंटोंमें एक पचास गिनीका हार कस्तूरवाईके लिए था । मगर उसे जो चीज मिली वह भी थी तो मेरी ही सेवाके उपलक्ष्यमें । अतएव उसे पृथक् नहीं मान सकते थे ।

जिस शामको इनमेंसे मुख्य-मुख्य भेंटें मिली, वह रात मैंने एक पागल की तरह जागकर काटी । कमरेमें यहा-से-वहा टहलता रहा, परंतु गुत्थी किसी तरह सुलझती न थी । मैंकटो रुपयोंकी भेंटें न लेना भारी पड़ रहा था, पर ले लेना उससे भी भारी मालूम होता था ।

मैं चाहे इन भेंटोंको पचा भी सकता, पर मेरे बालक और पत्नी ? उन्हें तालीम तो सेवाकी मिल रही थी । सेवाका दाम नहीं लिया जा सकता था, यह हमेशा समझाया जाता था । घरमें कीमती जेवर आदि मैं नहीं रखता था । सादगी बढ़ती जाती थी । ऐसी अवस्थामें सोनेकी धड़िया कौन रखेगा ? सोनेकी कटी और हीरेकी अंगूठिया कौन पहनेगा ? गहनोका मोह छोड़नेके लिए मैं उस समय भी ग्रीरोसे कहता रहता था । अब इन गहनो और जवाहरातको लेकर मैं क्या करूँगा ?

मैं इस निर्णयपर पहुंचा कि वे चीजें मैं हरगिज नहीं रख सकता । पारसी रुस्तमजी इत्यादिको इन गहनोका ट्रस्टी बनाकर उनके नाम एक चिट्ठी तैयार की और सुबह स्त्री-पुत्रादिसे सलाह करके अपना बोझ हल्का करनेका निश्चय किया ।

मैं जानता था कि धर्मपत्नीको समझाना मुश्किल पड़ेगा । मुझे

विश्वास था कि बालकोको समझानेमें जरा भी दिक्कत पेश न आवेगी । अतः उन्हें वकील बनानेका विचार किया ।

बच्चे तो तुरत समझ गए । वे बोले, “हमें इन गहनोसे कुछ मतलब नहीं । ये सब चीजे हमें लौटा देनी चाहिए और यदि जरूरत होगी तो क्या हम खुद नहीं बना सकेंगे ?”

मैं प्रसन्न हुआ । “तो तुम बाको समझाओगे न ?” मैंने पूछा ।

“जरूर-जरूर । वह कहा इन गहनोको पहनने चली है । वह रखना चाहेगी भी तो हमारे ही लिए न ? पर जब हमें ही इनकी जरूरत नहीं है तब फिर वह क्यों जिद करने लगी ?”

परतु काम अदाजसे ज्यादा मुश्किल साबित हुआ ।

“तुम्हें चाहे जरूरत न हो और लड़कोको भी न हो । बच्चोका क्या ? जैसा समझा दे समझ जाते हैं । मुझे न पहनने दो, पर मेरी बहुओको तो जरूरत होगी । और कौन कह सकता है कि कल क्या होगा ? जो चीजे लोगोंने इतने प्रेमसे दी हैं उन्हें वापस लौटाना ठीक नहीं ।” इस प्रकार वाग्धारा शुरू हुई और उसके साथ अश्रु-धारा आ मिली । लड़के दृढ़ रहे और मैं भला क्यों डिगने लगा ?

मैंने धीरेसे कहा—“पहले लड़कोकी शादी तो हो लेने दो । हम बचपनमें तो इनके विवाह करना चाहते ही नहीं हैं । बड़े होनेपर जो इनका जी चाहे सो करे । फिर हमें क्या गहनो-कपड़ोकी शैकीन बहुएं खोजनी हैं ? फिर भी अगर कुछ बनवाना ही होगा तो मैं कहा चला गया हूँ ?”

“हा, जानती हूँ तुमको । वही न हो, जिन्होंने मेरे भी गहने उतरवा लिए हैं । जब मुझे ही नहीं पहनने देते हो तो मेरी बहुओको जरूर ला दोगे । लड़कोको तो अभीसे वैरागी बना रहे हो । इन गहनोको मैं वापस नहीं देने दूंगी और फिर मेरे हारपर तुम्हारा क्या हक है ?”

“पर यह हार तुम्हारी सेवाकी खातिर मिला है या मेरी ?” मैंने पूछा ।

“जैसा भी हो तुम्हारी सेवामे क्या मेरी सेवा नहीं है ? मुझसे जो रात-दिन मजूरी कराते हो, क्या वह सेवा नहीं है ? मुझे रुला-रुलाकर जो ऐरे-नौरोको घरमे रखा और मुझसे सेवा-टहल कराई, वह कुछ भी नहीं ?”

ये सब वाण तीखे थे । कितने ही तो मुझे चुभ रहे थे । पर गहने वापस लौटानेका मैं निश्चय कर चुका था । अतको बहुतेरी बातोंमें मैं जैसे-तैसे सम्मति प्राप्त कर सका । १८९६ और १९०१में मिली भेटे लौटाई । उनका ट्रस्ट बनाया गया और लोक-सेवाके लिए उसका उपयोग मेरी अथवा ट्रस्टियोंकी इच्छाके अनुसार होनेकी शर्तपर वह रकम बैंकमे रखी गई । इन चीजोंको बेचनेके निमित्तसे मैं बहुत बार रुपया एकत्र कर सका हू । आपत्ति-कोपके रूपमे वह रकम आज भी मौजूद है और उसमे वृद्धि होती जाती है ।

इस बातके लिए मुझे कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ । आगे चलकर कस्तूरवाईको भी उसका और औचित्य जचने लगा । इस तरह हम अपने जीवनमे बहुतेरे लालचोंसे बच गए हैं ।

मेरा यह निश्चित मत हो गया है लोक-सेवकोंको जो भेट मिलती है, वे उसकी निजी चीज कदापि नहीं हो सकती ।

मेरे जीवनमे ऐसी अनेक घटनाएँ होती रही हैं, जिनके कारण मैं विविध धर्मों तथा जातियोंके निकट परिचयमे आ सका हू । इन सब अनुभवोंपर यह कह सकते हैं कि मैंने घरके या बाहरके, देशी या विदेशी हिंदू या मुसलमान तथा ईसाई, पारसी या यहूदियोंसे भेद-भावका खयाल तक नहीं किया । मैं कह सकता हू कि मेरा हृदय इस प्रकारके भेद-भावको जानता ही नहीं । इसको मैं अपना एक गुण नहीं मानता हू, क्योंकि जिस प्रकार अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहादि यम-नियमोंके अभ्यासका

तथा उनके लिए अब भी प्रयत्न करते रहनेका पूर्ण ज्ञान मुझे है उसी प्रकार इस अ-भेद-भावको बढ़ानेके लिए मैंने कोई खास प्रयत्न किया है, ऐसा याद नहीं पड़ता ।

जिस समय डरवनमे मैं वकालत करता था, उस समय बहुत बार मेरे कारकुन मेरे साथ ही रहते थे । वे हिंदू और ईसाई होते थे, अथवा प्रातोके हिसाबसे कहे तो गुजराती और मद्रासी । मुझे याद नहीं आता कि कभी उनके विषयमे मेरे मनमे भेद-भाव पैदा हुआ हो । मैं उन्हें विल-वुल घरके ही जैसा समझता और उसमे मेरी बर्मपत्नीकी ओरसे यदि कोई विघ्न उपस्थित होता तो मैं उससे लड़ता था । मेरा एक कारकुन ईसाई था । उसके मा-बाप पंचम जातिके थे । हमारे घरकी बनावट पश्चिमी ढंगकी थी । इस कारण कमरेमे मोरी नहीं होती थी—और न होनी चाहिए थी, ऐसा मेरा मत है । इस कारण कमरोमे मोरियोकी जगह पेशाबके लिए एक अलग वर्तन होता था । उसे उठाकर रखनेका काम हम दोनों—दुपतीका था, नौकरोका नहीं । हा, जो कारकुन लोग अपनेको हमारा कुटुम्बी-मा मानने लगते थे वे तो खुद ही उसे साफ कर भी डालते थे, लेकिन पंचम जातिमे जन्मा यह कारकुन नया था । उसका वर्तन हमे ही उठाकर माफ करना चाहिए था, दूसरे वर्तन तो कस्तूरवाई उठाकर साफ कर देती, लेकिन इन भाईका वर्तन उठाना उसे असह्य मालूम हुआ । इससे हम दोनोंमे झगडा मचा । यदि मैं उठाता हू तो उमे अच्छा नहीं मालूम होता था और खुद उसके लिए उठाना कठिन था । फिर भी आँखोसे मोतीकी बूंदें टपक रही हैं, एक हाथ मे वर्तन लिये अपनी लाल-लाल आँखोसे उलहना देती हुई कस्तूरवाई सीढ़ियोसे उतर रही हैं । वह चित्र मैं आज भी ज्यो-का-स्यो खींच सकता हू ।

परन्तु मैं जैसा महृदय और प्रेमी पति था वैसा ही निष्ठुर और कठोर भी था । मैं अपनेको उसका शिक्षक मानता था । इससे अपने अधप्रेमके अधीन हो मैं उसे खूब सताता था । इस कारण महज उसके वर्तन उठा

ले जाने-भरसे मुझे सनोप न हुआ। मैंने यह भी चाहा कि वह हँसने और हरखते हुए उसे ले जाय। इसलिए मैंने उसे डाटा-डपटा भी। मैंने उत्तेजित होकर कहा—“देखो, यह वखेडा मेरे घरमे नहीं चल सकेगा।”

मेरा यह बोल कस्तूरवाईको तीरकी तरह लगा। उसने धधकते दिलसे कहा—“तो लो, रखो यह अपना घर। मैं चली।”

उस समय मैं ईश्वरको भूल गया था। दयाका लेगमात्र मेरे हृदयमे न रह गया था। मैंने उसका हाथ पकड़ा। सीढ़ीके सामने ही बाहर जानेका दरवाजा था। मैं उस दीन अवलाका हाथ पकड़कर दरवाजेतक खींचकर ले गया। दरवाजा आधा खोला होगा कि आखोमे गंगा-जमुना बहाती हुई कस्तूरवाई बोली, “तुम्हे तो कुछ गरम है नहीं, पर मुझे है। जरा तो लजाओ। मैं बाहर निकलकर आखिर जाऊँ कहा? मा-बाप भी यहा नहीं कि उनके पाम चली जाऊँ। मैं ठहरी स्त्री-जाति! इसलिए मुझे तुम्हारी वास सहनी ही पड़ेगी। अब जरा गरम करो और दरवाजा बंद कर लो। कोई देख लेगा तो दोनोकी फजीहत होगी।”

मैंने अपना चेहरा तो सुर्ख बनाये रखा, पर मनमे शरमा जरूर गया। दरवाजा बंद कर दिया। जबकि पत्नी मुझे छोड़ नहीं सकती थी तब मैं भी उसे छोड़कर कहा जा सकता था? इस तरह हमारे आपसमे लड़ाई-भगड़े कई बार हुए हैं, परंतु उनका परिणाम सदा अच्छा ही निकला है। उनमे पत्नीने अपनी अद्भुत सहनशीलताके द्वारा मुझपर विजय प्राप्त की है।

ये घटनाएँ हमारे पूर्व-युगकी हैं, इसलिए उनका वर्णन मैं आज अलिप्त-भावसे करता हूँ। आज मैं तबकी तरह मोहाव पति नहीं हूँ, न उसका शिक्षक ही हूँ। यदि चाहे तो कस्तूरवाई आज मुझे धमका सकती है। हम आज एक-दूसरेके भक्त-भोगी मित्र हैं, एक-दूसरेके प्रति

निर्विकार रहकर जीवन बिता रहे हैं। कस्तूरबाई आज ऐसी सेविका बन गई हैं, जो मेरी बीमारियों में बिना प्रतिफलकी इच्छा किये सेवा-शुश्रूषा करती हैं।

यह घटना १८९८ की है। उस समय मुझे ब्रह्मचर्य-पालन के विषय में कुछ ज्ञान न था। वह समय ऐसा था जबकि मुझे इस बात का स्पष्ट ज्ञान न था कि पत्नी तो केवल सहधर्मिणी, सहचारिणी और सुख-दुःख की साथिन है। मैं यह समझकर बर्ताव करता था कि पत्नी विषय-भोग की भाजन है, उसका जन्म पतिकी हर तरह की आज्ञाओं का पालन करने के लिए हुआ है।

किंतु १९०० ई० से मेरे इन विचारों में गहरा परिवर्तन हुआ। १९०६ में उसका परिणाम प्रकट हुआ, परंतु इसका वर्णन आगे प्रसंग आने पर होगा। यहाँ तो सिर्फ इतना बताना काफी है कि ज्यो-ज्यो मैं निर्विकार होता गया त्यों-त्यों मेरा घर-ससार शांत, निर्मल और सुखी होता गया और अब भी होता जाता है।

इस पुण्य-स्मरण से कोई यह न समझ ले कि हम आदर्श दंपती हैं, अथवा मेरी धर्म-पत्नी में किसी किस्म का दोष नहीं है, अथवा हमारे आदर्श व एक हो गए हैं। कस्तूरबाई अपना स्वतंत्र आदर्श रखती हैं या नहीं, यह तो वह बेचारी खुद भी शायद न जानती होगी। बहुत संभव है कि मेरे आचरण की बहुतेरी बातें उसे अब भी पसंद न आती हों, परंतु अब हम उनके बारे में एक-दूसरे से चर्चा नहीं करते, करने में कुछ सार भी नहीं है। उसे न तो उसके मा-बापों की शिक्षा दी है, न मैं ही, जब समय था, शिक्षा दे सका, परंतु उसमें एक गुण बहुत बड़े परिमाण में है, जो दूसरी कितनी ही हिंदू-स्त्रियों में थोड़ी-बहुत मात्रा में पाया जाता है। मन से हो या बे-मन से, जान में हो या अनजान में, मेरे पीछे-पीछे चलने में उसने अपने जीवन की सार्थकता मानी है और स्वच्छ जीवन बिताने के मेरे प्रयत्न में उसने कभी बाधा नहीं डाली। इस कारण यद्यपि हम दोनों की बुद्धि-

शक्तिमें बहुत अंतर है, फिर भी मेरा खयाल है कि हमारा जीवन मतोपी, सुखी और ऊर्ध्वगामी है।

कस्तूरवाईपर तीन घाते हुई और तीनोंमें वह महज धरेलू इलाजसे चक्कर गई। पहली घटना तो तबकी है जब सत्याग्रह-संग्राम चल रहा था उसको बार-बार रक्त-स्त्राव हुआ करता था। एक डाक्टर मित्रने नश्टर लगवानेकी सलाह दी थी। बड़ी आनाकानीके बाद वह नश्टरके लिए राजी हुई। शरीर बहुत क्षीण हो गया था। डाक्टरने बिना बेहोश किये ही नश्टर लगाया। उस समय उसे दर्द तो बहुत हो रहा था, पर जिस धीरजसे कस्तूरवाईने उसे सहन किया उसे देखकर मैं दानो तले अगुली देने लगा। नश्टर अच्छी तरह लग गया। डाक्टर और उसकी धर्मपत्नीने कस्तूरवाईकी बहुत अच्छी तरह शुश्रूषा की।

यह घटना डरबनकी है। दो या तीन दिन बाद डाक्टरने मुझे निश्चित होकर जोहान्सवर्ग जानेकी छुट्टी दे दी। मैं चला भी गया, पर थोड़े ही दिनमें समाचार मिले कि कस्तूरवाईका शरीर बिल्कुल सिमटता नहीं है और वह बिछौनेसे उठ-बैठ भी नहीं सकती। एक बार बेहोश भी हो गई थी। डाक्टर जानते थे कि मुझसे पूछे बिना कस्तूरवाईको शराब या मास—दवामे अथवा भोजनमें—नहीं दिया जा सकता था। तो उन्होंने मुझे जोहान्सवर्ग टेलीफोन किया, “आपकी पत्नीको मैं मासका शेरवा और ‘वीफ टी’ देनेकी जरूरत समझता हूँ। मुझे इजाजत दीजिए।”

मैंने जवाब दिया, “मैं तो इजाजत नहीं दे सकता। परंतु कस्तूरवाई आजाद है। उसकी हालत पूछने लायक हो तो पूछ देखिए और वह लेना चाहे तो जरूर दीजिए।”

“बीमारसे मैं ऐसी बातें नहीं पूछना चाहता। आप खुद यहाँ आ जाइए। जो चीजें मैं बताता हूँ उनके खानेकी इजाजत यदि आप न दें तो मैं आपकी पत्नीकी जिंदगीके लिए जिम्मेदार नहीं हूँ।”

यह सुनकर मैं उसी दिन डरवन रवाना हुआ। डाक्टरसे मिलनेपर उन्होंने कहा—“मैंने तो शोरवा पिलाकर आपको टेलीफोन किया था।”

मैंने कहा—“डाक्टर, यह तो विश्वासघात है।”

“इलाज करते वक्त मैं दगा-वगा कुछ नहीं समझता। हम डाक्टर लोग ऐसे समय बीमारको व उसके रिश्तेदारोंको धोखा देना पुण्य समझते हैं। हमारा धर्म तो है जिस तरह हो सके रोगीको बचाना।” डाक्टरने दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया।

यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ, पर मैंने शांति धारण की। डाक्टर मित्र थे, सज्जन थे। उनका और उनकी पत्नीका मुझपर बड़ा अहसान था। पर मैं उनके इस व्यवहारको बरदाश्त करनेके लिए तैयार न था।

“डाक्टर, अब साफ-साफ बातें कर लीजिए। बताइए, आप क्या करना चाहते हैं? अपनी पत्नीको बिना उसकी इच्छाके मास नहीं देने दूंगा। उसके न लेनेसे यदि वह मरती हो तो इसे सहन करने के लिए मैं तैयार हूँ।”

डाक्टर बोले, “आपका यह सिद्धांत मेरे घर नहीं चल सकता। मैं तो आपसे कहता हूँ कि आपकी पत्नी जबतक मेरे यहाँ है तबतक मैं मास, अथवा जो कुछ देना मुनासिब समझूँगा, जरूर दूँगा। अगर आपको यह मजूर नहीं है तो आप अपनी पत्नीको यहाँसे ले जाइए। अपने ही घरमें मैं इस तरह उन्हें नहीं मरने दूँगा।”

“तो क्या आपका यह मतलब है कि मैं पत्नीको अभी ले जाऊँ?”

“मैं कहा कहता हूँ कि ले जाओ, मैं तो यह कहता हूँ कि मुझपर कोई शर्त न लादो तो हम दोनोंसे इनकी जितनी सेवा हो सकेगी करेंगे और आप सो जाइए। जो यह सीधी-सी बात समझमें न आती हो तो मुझे मजबूरीसे कहना होगा कि आप अपनी पत्नीको मेरे घरसे ले जाइए।”

मेरा खयाल है कि मेरा लड़का उस समय मेरे साथ था। उससे

मैंने पूछा तो उसने कहा—“हा, आपका कहना ठीक है। बाको मास कैसे दे सकते हैं ?”

फिर मैं कस्तूरवाइके पास गया। वह बहुत कमजोर हो गई थी। उससे कुछ भी पूछना मेरे लिए दुखदाई था। पर अपना धर्म समझकर मैंने ऊपरकी बातचीत उसे थोड़ेमे समझा दी। उसने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया—“मैं मासका गोरवा नहीं लूंगी। यह मनुष्य-देह बार-बार नहीं मिला करती। आपकी गोदीमे मैं मर जाऊ तो परवाह नहीं, पर अपनी देहको मैं भ्रष्ट नहीं होने दूंगी।”

मैंने उसे बहुतेरा समझाया और कहा कि तुम मेरे विचारोके अनुसार चलनेके लिए वाध्य नहीं हो। मैंने उसे यह भी बता दिया कि कितने ही अपने परिचित हिंदू भी दवाके लिए शराव और मांस लेनेमे परहेज नहीं करते। पर वह अपनी बातसे विलकुल न डिगी और मुझने कहा—“मुझे यहाँमे ले चलो।”

यह देखकर मैं बड़ा खुश हुआ, किन्तु ले जाते हुए बड़ी चिंता हुई। पर मैंने तो निश्चय कर ही डाला और डाक्टरको भी पत्नीका निश्चय सुना दिया।

वह विगडकर बोले, “आप तो बड़े घातक पति मालूम होते हैं। ऐसी नाजुक हालतमे उस बेचारीमे ऐसी बात करते हुए आपको शरम नहीं मालूम हुई ? मैं कहता हू कि आपकी पत्नीकी हालत यहाँसे ले जाने लायक नहीं है। उनके शरीरकी हालत ऐसी नहीं है कि जरा भी धक्का सहन कर सके। रास्ते हीमे दम निकल जाय तो ताज्जुब नहीं। फिर भी आप हठ-धर्मीसे न माने तो आप जाने। यदि शोरवा न देने दे तो एक रात भी उन्हें अपने घरमे रखनेकी जोखिम मैं नहीं लेता।”

रिमझिम-रिमझिम मेह वरस रहा था। स्टेजन दूर न था। डर-वनसे फिनिक्सतक रेलके रास्ते और फिनिक्समे लगभग टाई मीलतक पैदल जाना था। खतरा पूरा-पूरा था। पर मैंने यही सोच लिया कि

ईश्वर सब तरह मदद करेगा । पहले एक आदमीको फिनिक्स भेज दिया । फिनिक्समे हमारे यहां एक हैमक था । हैमक कहते हैं जालीदार कपड़ेकी भोली अथवा पालनेको । उसके सिरोको बाससे बांध देनेपर बीमार उसमे आरामसे भूला करता है । मैंने वेस्टको कहलाया कि वह हैमक, एक बोतल गरम दूध, एक बोतल गरम पानी और छ आदमियोंको लेकर फिनिक्स स्टेजनपर आ जाय ।

जब दूसरी ट्रेन चलनेका समय हुआ तब मैंने रिक्शा मगाई और उस भयंकर स्थितिमे पत्नीको लेकर चल दिया ।

पत्नीको हिम्मत दिलानेकी मुझे जरूरत न पड़ी, उल्टा मुझीको हिम्मत दिलाते हुए उसने कहा, “मुझे कुछ नुकसान न होगा, आप चिंता न करें ।”

इस ठठरीमे वजन तो कुछ रही नहीं गया था । खाना पेटमे जाता ही न था । ट्रेनके डब्बेतक पहुंचनेके लिए स्टेशनके लवे-चौड़े प्लेटफार्मपर दूरतक चलकर जाना था, क्योंकि रिक्शा वहातक पहुंच नहीं सकती थी । मैं सहारा देकर डब्बेतक ले गया । फिनिक्स स्टेजन पर तो वह भोली आ गई थी । उसमे हम रोगीको आरामसे धरतक ले गए । वहा केवल पानीके उपचारसे धीरे-धीरे उसका शरीर बनने लगा । फिनिक्स पहुंचनेके दो-तीन दिन बाद एक स्वामीजी हमारे यहा पधारे । जब हमारी हठ-धर्मीकी कथा उन्होंने सुनी तो हमपर उनको बड़ा तरस आया और वह हम दोनोंको समझाने लगे ।

मुझे जहातक याद आता है, मणिलाल और रामदास भी उस समय मौजूद थे । स्वामीजीने मासाहारकी निर्दोषतापर एक व्याख्यान भाड़ा, मनुस्मृतिके श्लोक सुनाए । पत्नीके सामने जो इसकी वहस उन्होंने छोड़ी यह मुझे अच्छा न मालूम हुआ, परंतु गिष्टाचारकी खातिर मैंने उसमे दखल न दिया । मुझे मासाहारके समर्थनमे मनुस्मृतिके प्रमाणोंकी आवश्यकता न थी । उनका पता मुझे था । मैं यह भी जानता था कि ऐसे लोग

भी हैं जो उन्हें प्रक्षिप्त समझते हैं । यदि वे प्रक्षिप्त न हो तो भी अन्नाहार-सबधी मेरे विचार स्वतंत्र-रूपसे बन चुके थे । पर कस्तूरवाईकी तो श्रद्धा ही काम कर रही थी । वह बेचारी शास्त्रोके प्रमाणोको क्या जानती ? उसके नजदीक तो परंपरागत रूढ़ि ही धर्म था । लडकोको अपने पिताके धर्मपर विश्वास था, इससे वे स्वामीजीके साथ विनोद करते जाते थे । अतःको कस्तूरवाईने यह कहकर इस वहसको वद कर दिया, “स्वामीजी, आप कुछ भी कहिए, मैं मासका शोरवा खाकर चगी होना नहीं चाहती । अब बड़ी दया होगी, अगर आप मेरा सिर न खपावे । मैंने तो अपना निश्चय आपसे कह दिया । अब और बातें रह गईं हो तो आप इन लडकोके वापसे जाकर कीजिएगा ।”

नश्तर लगानेके बाद यद्यपि कस्तूरवाईका रक्त-स्राव कुछ समयके लिए वद हो गया था, तथापि वादको वह फिर जारी हो गया । अबकी वह किसी तरह मिटाये न मिटा । पानीके इलाज बेकार साबित हुए । मेरे इन उपचारोपर पत्नीकी बहुत श्रद्धा न थी, पर साथ ही तिरस्कार भी न था । दूसरा इलाज करनेका भी उसे आग्रह न था । इसलिए जब मेरे दूसरे उपचारोमे सफलता न मिली तब मैंने उसको समझाया कि दाल और नमक छोड़ दो । मैंने उसे समझानेकी हद कर दी, अपनी बातके समर्थनमे कुछ साहित्य भी पढ़कर सुनाया, पर वह नहीं मानती थी । अतःको उसने झुझलाकर कहा—“दाल और नमक छोड़नेके लिए तो आपसे भी कोई कहे तो आप भी न छोड़ेंगे ।”

इस जवाबको सुनकर, एक ओर जहां मुझे दुःख हुआ वहां दूसरी ओर हर्ष भी हुआ, क्योंकि इससे मुझे अपने प्रेमका परिचय देनेका अवसर मिला । उस हर्षसे मैंने तुरत कहा, “तुम्हारा खयाल गलत है, मैं यदि बीमार होऊँ और मुझे यदि वैद्य इन चीजोको छोड़ने के लिए कहे तो जरूर छोड़ दूँ । पर ऐसा क्यों ? लो, तुम्हारे लिए मैं आज ही से दाल और नमक एक साल तक छोड़े देता हूँ । तुम छोड़ो या न छोड़ो, मैंने तो छोड़ दिया ।”

यह देखकर पत्नीको बड़ा पञ्चात्ताप हुआ। वह कह उठी, “माफ करो, आपका मिजाज जानते हुए भी यह बात मेरे मुहसे निकल गई। अब मैं तो दाल और नमक न खाऊंगी, पर आप अपना वचन वापस ले लीजिए। यह तो मुझे भारी सजा दे दी।”

मैंने कहा, “तुम दाल और नमक छोड़ दो तो बहुत ही अच्छा होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ ही होगा, परंतु मैं जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ वह नहीं टूट सकती। मुझे भी उससे लाभ ही होगा। हर किसी निमित्तसे मनुष्य यदि सयमका पालन करता है तो इससे उसे लाभ ही होता है। इसलिए तुम इस बातपर जोर न दो, क्योंकि इससे मुझे भी अपनी आजमाइश कर लेनेका मौका मिलेगा और तुमने जो इनको छोड़नेका निश्चय किया है, उसपर दृढ़ रहनेमें भी तुम्हें मदद मिलेगी।” इतना कहनेके बाद तो मुझे मनानेकी आवश्यकता रह नहीं गई थी।

“आप तो बड़े हठी हैं, किसीका कहा मानना आपने सीखा ही नहीं।” यह कहकर वह आसू बहाती हुई चुप हो रही।

इसको मैं पाठकोके सामने सत्याग्रहके तौरपर पेश करना चाहता हूँ और मैं कहना चाहता हूँ कि मैं इसे अपने जीवनकी मीठी स्मृतियोंमें गिनता हूँ।

इसके बाद तो कस्तूरवाईका स्वास्थ्य खूब सम्भलने लगा। अब यह नमक और दालके त्यागका फल है, या उस त्यागसे हुए भोजनके छोटे-बड़े परिवर्तनका फल था, या उसके बाद दूसरे नियमोंका पालन करानेकी मेरी जागरूकताका फल था, या इस घटनाके कारण जो मानसिक उल्लास हुआ उसका फल था, यह मैं नहीं कह सकती, परंतु यह बात जरूर हुई कि कस्तूरवाईका सूखा शरीर फिर पनपने लगा। रक्त-स्राव बंद हो गया और ‘वैद्यराज’ के नामसे मेरी साख कुछ बढ़ गई (आ०, १९२७)

~ कल एक आदमीने भूलसे उन्हें (वाको) मेरी मा समझ लिया था।

यह भूल हमारे और उनके बीच न सिर्फ क्षम्य ही है, बल्कि तारीफकी बात है, क्योंकि बहुत वर्षोंसे वह हम दोनोंकी सलाहसे मेरी पत्नी नहीं रह गई है। चालीस साल हुए मैं बेमा-बापका हो गया और तीस वर्षोंसे वह मेरी माका काम कर रही है। वह मेरी मा, सेविका, रसोइया, बोटल धोनेवाली सब कुछ रही है। अगर वह इतने सवरे आपके दिए सम्मानमें हिस्सा लगाने आती तो मैं भूखा ही रह जाता और मेरे शारीरिक सुखकी कोई परवाह नहीं करता। इसलिए हमने आपसमें यह समझौता कर लिया है कि सभी सम्मान मुझे मिलें और सभी मिहनत उसे करनी पड़े। मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि उसके बारेमें जो-जो अच्छी-अच्छी बातें आपने कही हैं व सब मेरे कोई साथी उससे कह देगे और उसकी गैरहाजिरीके लिए आप मेरा जवाब मजूर कर लेंगे। (हि० न०, १ १२ २७)

आज (३१-३-३२) 'लौडर' की 'लदनकी चिट्ठी' अच्छी थी। आम तौरपर पोलक नरम शब्दोंमें ही लिखते हैं, मगर इस बार हिंदुस्तानकी घटनाओंपर उन्होंने काफी गरम होकर लिखा है। बाकी 'सी' क्लास मिला, बादमें 'ए' मिला और कराचीकी एक ८० वर्षकी महिलाको पकड़ा गया, इन बातोंपर उन्होंने अच्छा लिखा है। 'बा' तो गांधीकी पत्नी थीं, इसलिए उन्हें 'सी'से बदलकर 'ए'में रख दिया, नहीं तो ६० वर्षकी दूसरी कोई औरत होती तो 'सी'में ही रहती न ? यह उनकी दलील अच्छी है। मगर सबसे बढ़िया तो यह है। सेम्युअल होर के लिए वे लिखते हैं कि हिंदुस्तानमें जब यह सबकुछ हो रहा है तब सेम्युअल 'स्केट' करता है ! कारवा और उसपर भोकनेवाले कुत्तोंका इसका रूपक उलटा इसीपर चाहे लागू न हो, मगर यह देखना कि कहीं यहाका कारवा इतना आगे न बढ़ जाय कि फिर कुछ सुधारनेकी गुजायश ही न रहे और सिर्फ कुत्ते ही भोकते रह जाय—यह कहकर उन्होंने होरको 'सावधान' कहा है।

बापू—“वस, यह तो फिरोजशाह मेहता जैसी बात हुई। उन्हें

दक्षिण अफ्रीकाकी लडाईकी कोई परवाह नहीं थी, मगर जब वाको पकड़नेकी खबर सुनी तो उन्हे आग लग गई और उन्होंने टाउन हालका प्रसिद्ध भाषण दिया। पोलकसे वा वाली बात वर्दाश्त नहीं हुई, इसलिए यह लिखा है।”

वल्लभभाई—“वाकी बात ऐसी है, जो किसीको भी चुभेगी। वा तो अहिंसाकी मूर्ति है। ऐसी अहिंसाकी छाप मैंने और किसी स्त्रीके चेहरेपर नहीं देखी। उनकी अपार नम्रता, उनकी सरलता किसीको भी हैरतमें डालनेवाली है।”

बापू—“सही बात है, वल्लभभाई। मगर मुझे वाका सबसे बड़ा गुण उसकी हिम्मत और बहादुरी मालूम होती है। वह जिद करे, क्रोध करे, ईर्ष्या करे, मगर यह सब जाननेके बाद आखिर दक्षिण अफ्रीकासे आजतककी उसकी कारगुजारी देखे तो उसकी बहादुरी वाकी रहती है।”
(म० डा०, भाग १, ३१ ३ ३२)

बापूकी थकान अभी चल रही है। वाका स्मरण उन्हें उसी तरह व्यथित करता रहता है। आज फिर कह रहे थे,

“वाकी मृत्यु भव्य थी। मुझे उसका बहुत हर्ष है। जो दुःख है वह तो अपने स्वार्थके लिए। ६२ वर्षके साथके बाद उसका साथ छटना चुभता है। कितनी ही कोशिश करूँ, अभी मैं उन स्मरणोंको मनसे नहीं निकाल सकता। (का० क०, २७ २ ४४)

शामको घूमते समय बापू कुछ थके-से लगे। पूछनेपर कहने लगे,

“एक तो मेरे पत्रोंके सरकारी जवाब नहीं आते हैं, इसलिए मनपर बोझ है। दूसरे, वाके जानेका धक्का अभीतक दूर नहीं हुआ। बुद्धि कहती है कि इससे अच्छी मृत्यु वा के लिए हो नहीं सकती थी। मुझे हमेशा यह डर रहता था कि वा अगर मेरे पीछे रह जायगी तो अच्छा नहीं।

मेरे हाथोमे ही चली जाय तो मुझे अच्छा लगे, क्योंकि वा मुझमे समा गई थी। मैं शोकमे पडा रहता हूँ, ऐसा भी नहीं है। वाका विचार करता रहता हूँ, वह भी नहीं। क्या है, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकती।” (का० क०, २३ ३.४४)

वाका जाना एक कल्पना-सा लगता है। मैं उसके लिए तैयार था, मगर जब वह सचमुच ही चली गई तो मुझे कल्पनासे अधिक एक नई बात लगी। मैं अब सोचता हूँ कि वाके बिना मैं अपने जीवनको ठीक-ठीक बैठा ही नहीं सकता हूँ। (का० क०, २३ ४४)

शामको बापू घूमते समय कनुसे बात कर रहे थे कि वाके स्मारकके लिए पैसा इकट्ठा करना है। बापूकी अगली जयंतीपर ७५ लाख रुपया इकट्ठा करनेकी बात पहलेसे ही चल रही थी। कनु बापूसे इस विषयपर पूछ रहा था। बापूने कहा,

“दोनों फंड साथ मिला दो। वा मुझमे समा गई थी। कौन है ऐसी स्त्री, जो इस तरह अपने पतिकी गोदमे प्राण दे ? अंतिम समयमे उसने मुझे बुलाया। तब मैं नहीं जानता था कि वह जा रही है, और मैं घूमने नहीं चला गया था, वह भी ईश्वरका ही काम था। पेनिसिलीनके कारण ही मैं रुका। मृत्यु-शय्यापर पड़ी हुई को इन्जेक्शन क्या देना था ? मगर जब वा के पास बैठा तो समझ गया कि वा अब जाती है। वा के नामसे विश्व-विद्यालय खोलना मैं एक निकम्मी बात समझता हूँ। उसे विश्वविद्यालयमे रस कहा था ? चर्खा इत्यादिमे तो वह रस लेती थी। यह फंड हम दोनोंके निमित्त इकट्ठा हो तो लोगोपर बोझ नहीं पड़ेगा। वाका हिस्सा मेरी जयन्तीमे हमेंगा रहा है। इस फंडका उपयोग चर्खा और ग्रामोद्योगके लिए होगा। नारायणदासको उसके कारभारमे पूरी मेहनत और जिम्मेदारी लेनी होगी।” (का० क०, ४ ३ ४४)

वाका जवरदस्त गुण महज अपनी इच्छासे मुझमें समा जानेका था । यह कुछ मेरे आग्रहसे नहीं हुआ था । लेकिन समय पाकर वाके अदर ही इस गुणका विकास हो गया था । मैं नहीं जानता था कि वामे यह गुण छिपा हुआ था । मेरे शुरू-शुरूके अनुभवके अनुसार वा बहुत हठीली थी । मेरे दवाव डालनेपर भी वह अपना चाहा ही करती । इसके कारण हमारे बीच थोड़े समय की या लबी कड़वाहट भी रहती, लेकिन जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे वा खिलती गई और पुस्ता विचारोके साथ मुझमें यानी मेरे काममें समाती गई । जैसे दिन बीतते गए, मुझमें और मेरे काममें—सेवामें—भेद न रह गया । वा धीमे-धीमे उसमें तदाकार होने लगी । शायद हिंदुस्तानकी भूमिको यह गुण अधिक-से-अधिक प्रिय है । कुछ भी हो, मुझे तो वाकी उक्त भावनाका यह मुख्य कारण मालूम होता है ।

वामे यह गुण पराकाष्ठाको पहुँचा, इसका कारण हमारा ब्रह्मचर्य था । मेरी अपेक्षा वाके लिए वह बहुत ज्यादा स्वाभाविक सिद्ध हुआ । शुरूमें वाको इसका कोई ज्ञान भी न था । मैंने विचार किया और जाने उसको उठाकर अपना बना लिया । परिणामस्वरूप हमारा सबंध सच्चे मित्रका बना । मेरे साथ रहनेमें वाके लिए सन् १९०६ से, असलमें सन् १९०१ से, मेरे काममें शरीक हो जानेके सिवा या उससे भिन्न और कुछ रह ही नहीं गया था । वह अलग रह नहीं सकती थी । अलग रहनेमें उन्हें कोई दिक्कत न होती, लेकिन उन्होंने मित्र बननेपर भी स्त्रीके नाते और पत्नीके नाते मेरे काममें समा जानेमें ही अपना धर्म माना । इसमें जाने मेरी निजी सेवाको अनिवार्य स्थान दिया । इसलिए मरते दम तक, उन्होंने मेरी सुविधाकी देखरेखका काम छोड़ा ही नहीं ।

अगर मैं अपनी पत्नीके वारेमें अपने प्रेम और अपनी भावनाका वर्णन कर सकूँ तो हिंदूधर्मके वारेमें अपने प्रेम और अपनी भावनाओंको

मैं प्रकट कर सकता हूँ। दुनियाकी दूसरी किमी भी स्त्रीके मुकाबिलेमे मेरी पत्नी मुझपर ज्यादा असर डालती है।

पहले तो अपनी पत्नीके मृत्युके बारेमे आपकी समताभरी समवेदनाके लिए मैं आपका और लेडी वेवेलका आभार मानता हूँ। यद्यपि अपनी मृत्युके कारण वह सतत वेदनासे छूट गई है, इसलिए उनकी दृष्टिसे मैंने उनकी मौतका स्वागत किया है, तो भी इस क्षतिमें मुझको जितना दुःख होनेकी कल्पना मैंने की थी, उसमें अधिक दुःख हुआ है। हम असाधारण दपनी थे। १९०६ में एक दूसरेकी स्वीकृतिसे और अनजानी आजमाइशके बाद हमने आत्म-संयमके नियमको निश्चित रूपमें स्वीकार किया था। इसके परिणामस्वरूप हमारी गाँठ पहलेसे कहीं ज्यादा मजबूत बनी और मुझे उससे बहुत आनंद हुआ। हम दो भिन्न व्यक्ति नहीं रह गए। मेरी वैसी कोई इच्छा नहीं थी, तो भी उन्होंने मुझमें लीन होना पसंद किया। फलतः वह सचमुच ही मेरी अर्धांगिनी बनी। वह हमेशामें बहुत दृढ़ इच्छा-शक्तिवाली स्त्री थी, जिनको अपनी नवविवाहित दशामें मैं भूलसे हठीली माना करता था, लेकिन अपनी दृढ़ इच्छा-शक्तिके कारण वह अनजाने ही अहिंसक असहयोगकी कलाके आचरणमें मेरी गुरु बन गई। आचरणका आरंभ मेरे अपने परिवारसे ही किया। १९०६ में जब मैंने उसे राजनीतिके क्षेत्रमें दाखिल किया तब उसका अधिक विनाल और विशेष रूपसे योजित 'सत्याग्रह' नाम पड़ा। दक्षिण अफ्रीकामें जब हिंदुस्तानियोंकी जेल-यात्रा शुरू हुई तब श्रीमती कस्तूरबा भी सत्याग्रहियोंमें एक थी। मेरे मुकाबिले शारीरिक पीड़ा उनको ज्यादा हुई। वह कई बार जेल जा चुकी थी, फिर भी इस बारके इस कैदखानेमें, जिसमें सभी तरहकी सहूलियतें मौजूद थी, उनको अच्छा नहीं लगा। दूसरे बहुतोंके साथ मेरी और फिर तुरंत ही उनकी जो गिरफ्तारी हुई, उसमें उन्हें जोरका आघात पहुंचा और उनका मन खट्टा हो गया। वह मेरा गिरफ्तारीके लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया था कि सरकार-

को मेरी अहिंसापर भरोसा है और जबतक मैं खुद गिरफ्तार होना न चाहू वह मुझे पकड़ेगी नहीं। सचमुच उनके ज्ञानतत्त्वोंको इतने जोरका धक्का बैठा कि उनकी गिरफ्तारीके बाद उन्हें दस्तकी सख्त शिकायत हो गई। अगर उस समय डा० सुशीला नैयरने, जो उनके साथ ही पकड़ी गई थी, उनका इलाज न किया होता तो मुझसे इस जेलमें आकर मिलनेसे पहले ही उनकी देह छूट चुकी होती। मेरी हाजिरीसे उन्हें आश्वासन मिला और बिना किसी खाम इलाजके दस्तकी शिकायत दूर हो गई। लेकिन मन जो खट्टा हुआ था, सो खट्टा ही बना रहा। इसकी वजहसे उनके स्वभावमें चिड़चिड़ापन आ गया और इसीका नतीजा था कि आखिर कष्ट सहते-सहते क्रम-क्रमसे उनका देहपात हुआ। ('हमारी वा', पृ० २२)

...

वा राजकोटकी लडाईमें शामिल हुई, इसपर कुछ न लिखनेका मेरा इरादा था, लेकिन उनके उम लडाईमें शामिल होनेपर जो थोड़ी निष्ठुर टीकाए हुई हैं, वे खुलासा चाहती हैं। मुझे तो कभी यह सूझा ही न था कि वाको इस लडाईमें शरीक होना चाहिए। इसकी खास वजह तो यह थी कि इस तरहकी मूसीबतोंके लिए वे बहुत बूढ़ी हो चुकी थी। लेकिन बात कितनी ही अनोखी क्यों न मालूम हो, टीकाकारोंको मेरे इस कथन पर इतना विश्वास तो रखना चाहिए कि अगरचे वा अनपढ़ थी, फिर भी कई सालोंसे उन्हें इस बातकी पूरी-पूरी आजादी थी कि वे जो करना चाहे, करें। क्या दक्षिण अफ्रीकामें और क्या हिंदुस्तानमें, जब-जब भी वे किसी लडाईमें शरीक हुई हैं, अपने आप, अपनी आंतरिक भावनामें ही। इस बार भी ऐसा ही हुआ था। जब उन्होंने मणिवहनकी गिरफ्तारीकी बात सुनी तो उनसे न रहा गया और उन्होंने मुझसे लडाईमें शामिल होनेकी इजाजत मागी। मैंने कहा, "तुम अभी बहुत ही कमजोर हो।" दिल्लीमें कुछ ही दिन पहले वह अपने नहानेके कमरेमें बेहोश हो गई थी। उस वक्त देवदासने हाजिरखयालीमें काम न लिया होता तो वे उसी समय

स्वर्गधाम पहुँच गई होती। लेकिन वाने जवाब दिया, “शरीरकी मुझे परवाह नहीं।” इसपर मैंने सरदारसे पुछवाया। वे भी इजाजत देनेके लिए विलकुल तैयार न थे।

लेकिन फिर तो वे पसीजे। रेजीडेंटकी सूचनासे ठाकुरसाहबने जो वचन भग किया था, उसके कारण मुझे होनेवाले क्लेशके वे साक्षी थे। कस्तूबाई राजकोटकी बेटी ठहरी। इसलिए उन्होंने अतरकी आवाज सुनी। उन्होंने महसूस किया कि जब राजकोटकी बेटीया राज्यके पुरुषों और स्त्रियोंकी आजादीके लिए जूझ रही हो तब वे चुप बैठ ही नहीं सकती।

उनमे एक गुण बहुत बड़ा था। हर एक हिंदू पत्नीमे वह कमोवेश होता ही है। इच्छासे या अनिच्छासे अथवा जाने-अनजाने भी वह मेरे पदचिन्होपर चलनेमे धन्यता अनुभव करती थी। .

अगरचे मैं चाहता था कि उस तीव्र वेदनासे उन्हें छुटकारा मिले और जल्दी ही उनकी देहका अंत हो जाय तो भी आज उनकी कमीको जितना मैंने माना था, उससे कहीं अधिक मैं महसूस कर रहा हूँ। हम असाधारण दपती थे—अनोखे। हमारा जीवन सतोषी, सुखी और सदा ऊर्ध्वगामी था। (‘हमारी वा’, १८२४५)

: ५१ :

नारणदास गांधी

पास ही नारणदास जैसा साधु पुरुष है। नारणदासकी दृढ़ता, सहन-शीलता, हिम्मत, त्यागशक्ति और विवेकबुद्धि वगैरह पर मुझ जैसेको भी ईर्ष्या करनेकी इच्छा होती है। इसने मुझे आश्रमकी तरफसे विलकुल निश्चित कर दिया है।

हम अदर रहकर ताप नहीं सह रहे हैं, तुम आंतरिक और बाह्य दोनों तपश्चर्या कर रहे हो । (म० डा०, भाग १, २७ ५ ३२)

यहाँ बैठे-बैठे आश्रममें फेरबदल कराया करता हूँ । नारणदासकी अनन्य श्रद्धा, उसकी पवित्रता, दृढता, उसका उद्यम और कार्यक्षमता सबका लाभ ले रहा हूँ ।

नारणदासके बारेमें मेरा पूरा विश्वास है । वह कहे कि मुझे शांति है तो मैं अशांति माननेको तैयार नहीं हूँ । मैंने उसे खूब चेता दिया है । दूर बैठा हुआ अब उसे तग नहीं करूँगा । नारणदासमें अनासक्तिके साथ काम करनेकी बड़ी शक्ति है । अनासक्त हमेशा आसक्तसे बहुत ज्यादा काम करता है और फुर्सतमें हो, ऐसा दीखता है । वह सबसे वादमें थकता है । सब पूछो तो उसे थकावट मालूम ही नहीं होनी चाहिए । मगर यह तो हुआ आदर्श । तुम वहाँ मौजूद हो, इसलिए अगर तुम्हें अशांति दिखाई दे और यह लगे कि नारणदास अपने आपको धोखा देता है तो तुम्हारा धर्म मुझसे अलग होगा । तुम्हें तो नारणदासको सावधान करना ही चाहिए । मैं भी वहाँ होऊँ और वह प्रत्यक्ष जो कहे उससे दूसरी ही बात देखूँ तो जरूर उसे चेतावनी दूँ । तुम्हारी चेतावनीके बावजूद वह तुम्हारा विरोध करे तो तुम्हें उसका कहना मानना चाहिए, जबतक तुम उसे सत्याग्रही मानती हो तबतक । कई बार हमें अपनी आँखें भी धोखा दे देती हैं । मुझे तुम्हारे चेहरेपर उदासी दीखे, परंतु तुम इन्कार करो तो मुझे तुम्हारी बात मान ही लेनी चाहिए । मुझे यह भय हो या शक हो कि मुझसे तुम छिपाती हो तो दूसरी बात है । फिर तो तुमसे पूछनेकी बात नहीं रह जाती । जाननेके लिए मुझे दूसरे साधन पैदा करने चाहिए । मगर आश्रमजीवन तो इसी तरह चलता है । उसकी बुनियाद

सचाईपर ही है। वहा अच्छे हेतुमे भी धोखा नही दिया जा सकता।
(म० डा०, भाग १, २३ ६ ३२)

नारायणदाससे बढकर कोई आदमी इतना ही दृढ, विवेकी, समझदार और कर्तव्य-परायण मुझको मिलनेकी कोई उम्मीद नही है, और नारायणदास मिला है इसको मैं ईश्वरका अनुग्रह मानता हू।

तुम्हे मेरा आशीर्वाद अजलिया भर-भरकर है। क्यों न भेजू। मेरी सारी आशाए तुम सफल कर रहे हो और अपनी अनन्य और ज्ञान-मय सेवासे हम तीनोंको ही आश्चर्य-चकित कर रहे हो। सारी अग्नि-परीक्षाओमेसे पार उतरनेकी शक्ति ईश्वरने तुम्हे वस्ती मालूम होती है। खूब जिओ और अहिंसा-देवीके जरिए सत्यनाराण-का साक्षात्कार करो और दूसरोके करनेमे सहायक बनो। (म० डा०, भाग २, ११ ६ ३२)

नारणदास गाधी लिखते हैं कि मैं पाठकोको यह याद दिला दू कि 'चर्खा-जयती' के निमित्त जो लोग कताई-यज्ञमे भाग लेना चाहते हो उन्हें अपने नाम तुरत भेज देने चाहिए। गत ११ अक्तूबरसे यह यज्ञ आरम्भ हुआ है। जिन लोगोने अपने नाम अभीतक नहीं भेजे हैं, वे पिछड़ तो गए ही हैं, लेकिन कभी न करनेसे देरसे करना फिर भी अच्छा है। जो पीछे रह गए हैं वे निश्चित परिमाणसे अधिक कातकर साथ हो सकते हैं। नारणदास गाधी इस किस्मके खादी-कार्यके अच्छे विशेषज्ञ हैं। आकड़ोमे वे खूब रस लेते हैं और इस कामको तेजीसे करत हैं। यज्ञार्थ कातनेवालोके नाम और पतोका ठीक-ठीक हिसाब रखने और उनके सूतको रजिस्टरपर चढानेके कामसे वे कभी थकते ही नहीं, बल्कि उलटे इस काममे उन्हें आनंद आता है। वे मानते हैं कि काम कोई भी हो नियमसे

होना चाहिए। उनका खयाल है कि इस तरह कामका ठीक-ठीक हिसाब रखनेसे ही नियमितता आती है और काम करनेवालोको प्रोत्साहन मिलता है। यदि खासी बड़ी तादादमें लोग यज्ञार्थ काते तो वे खादीकी कीमतमें जरूर कमी कर सकते हैं। इस योजनामें बहुत सभावनाएँ हैं। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि यज्ञार्थ कताईकी इस सुंदर योजनापर समुचित ध्यान दिया जायगा। (ह० से०, २५ ११ ३६)

: ५२ :

मगनलाल खुशालचन्द गान्धी

मेरे साथ मेरे जो-जो रिश्तेदार आदि वहाँ गए और व्यापार आदिमें लग गए थे उन्हें अपने मतमें मिलानेका और फिनिक्समें दाखिल करनेका प्रयत्न मैंने शुरू किया। वे सब तो धन जमा करनेकी उमरसे दक्षिण अफ्रीका आए थे। उनको राजी कर लेना बड़ा कठिन काम था, परन्तु कितने ही लोगोको मेरी बात जच गई। इन सबमेंसे आज तो मगनलाल गांधीका नाम मैं चुनकर पाठकोके सामने रखता हूँ, क्योंकि दूसरे लोग जो राजी हुए थे, वे थोड़े-बहुत समय फिनिक्समें रहकर फिर धन-सचयके फेरमें पड़ गए। मगनलाल गांधी तो अपना काम छोड़कर जो मेरे साथ आए, सो अबतक रह रहे हैं और अपने बुद्धि-बलसे, त्यागसे, शक्तिसे एवं अनन्य भक्ति-भावसे मेरे आंतरिक प्रयोगोंमें मेरा साथ देते हैं एवं मेरे मूल साधियोंमें आज उनका स्थान सबमें प्रधान है। फिर एक स्वयं-शिक्षित कारीगरके रूपमें तो उनका स्थान मेरी दृष्टिमें अद्वितीय है।

शांतिनिकेतनमें मेरे मडलको अलग स्थानमें ठहराया गया था । वहा मगनलाल गांधी उस मडलकी देख-भाल कर रहे थे और फिनिक्स आश्रमके तमाम नियमोका बारीकीसे पालन कराते थे । मैंने देखा कि उन्होंने शांतिनिकेतनमें अपने प्रेम, ज्ञान और उद्योग-शीलताके कारण अपनी सुगव फैला रखी थी (आ०, १६२७)

जिसे मैंने अपने सर्वस्वका वारिस चुना था वह अब नहीं रहा । मेरे चाचाके पोते मगनलाल खुशालचंद गांधी मेरे कामोमें मेरे साथ सन् १९०४ से ही थे । मगनलालके पिताने अपने सभी पुत्रोको देशके काममें दे दिया है । वे इस महीनेके गुरुमें सेठ जमनालालजी तथा दूसरे मित्रोके साथ बगाल गए थे, वहासे बिहार आए । वहीपर अपने कर्तव्यके पालनमें ही उन्हें कठिन ज्वर हो आया । नौ दिनकी बीमारीके बाद प्रेम और डाक्टरी ज्ञानसे जितनी सेवा संभव है, सभी कुछ होने पर भी वे वृजकिशोरप्रसाद-जीकी गोदमें से चले गए ।

कुछ धन कमा सकनेकी आशासे मगनलाल गांधी मेरे साथ सन् १९०३ में दक्षिण अफ्रीका गए थे । मगर उन्हें दूकान करते पूरा साल भर भी न हुआ होगा कि स्वेच्छापूर्वक गरीबीकी मेरी अचानक पुकारको नुनकर वे फिनिक्स आश्रममें आ शामिल हुए और तबसे एक बार भी वे डिगे नहीं, मेरी आगाए पूरी करनेमें असमर्थ न हुए । यदि उन्होंने स्वदेश-सेवामें अपनेको होम दिया तो अपनी योग्यताओं और अपने अव्यवसायके बलपर, जिनके बारेमें कोई सदेह हो ही नहीं सकता, वे आज व्यापारियोंके सिरताज होते । छापाखानेमें डाल दिए जानेपर उन्होंने तुरत ही मुद्रण-कलाके सभी भेदोको जान लिया । यद्यपि पहले उन्होंने कभी कोई यंत्र हाथमें नहीं लिया था तो भी इजिन-घरमें, कलोके बीच तथा कपोजीटरोके टेबल पर सभी जगह अत्यंत कुशलता दिखलाई । 'इंडियन ओपीनियन' के गुजराती अंशका संपादन करना भी उनके लिए वैसा ही सहज काम था ।

फिनिक्स आश्रममे खेतीका काम भी शामिल था और इसलिए वे कुशल किसान भी बन गए। मेरा खयाल है कि आश्रममे वे सर्वोत्तम बागवान थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अहमदाबादसे 'यंग इंडिया' का जो पहला अंक निकला उसमे भी उस सकटकालमे उनके हाथकी कारीगरी थी।

पहले उनका शरीर भीम जैसा था, किंतु जिस काममे उन्होंने अपनेको उत्सर्ग किया, उसकी उन्नतिमे उस शरीरको गला दिया था। उन्होंने बड़ी सावधानीसे मेरे आध्यात्मिक जीवनका अध्ययन किया था। जबकि मैंने विवाहित स्त्री-पुरुषोंके लिए भी 'ब्रह्मचर्य ही जीवनका नियम है' का सिद्धांत अपने सहकारियोंके सामने पेश किया था तब उन्होंने पहले-पहल उसका सौंदर्य तथा उसके पालनकी आवश्यकता समझी और यद्यपि उसके लिए, जैसा कि मैं जानता हूँ, उन्हें बड़ा कठोर प्रयत्न करना पड़ा था तो भी उन्होंने इसे सफल कर दिखलाया। इसमे वे अपने साथ अपनी धर्मपत्नीको भी धीरतापूर्वक समझा-बुझाकर ले गए, उसपर अपने विचार जबरन डालकर नहीं।

जब सत्याग्रहका जन्म हुआ तब वे सबसे आगे थे। दक्षिण अफ्रीका-के युद्धका पूरा-पूरा मतलब समझानेवाला एक शब्द मैं ढूँढ रहा था। दूसरा कोई अच्छा शब्द न मिल सकनेसे मैंने लाचार उसे निष्क्रिय प्रतिरोधका नाम दिया था, गौकि ये शब्द बहुत ही नाकाफी और भ्रमोत्पादक भी है। क्या ही अच्छा होता अगर आज मेरे पास उनका वह अत्यंत सुंदर पत्र होता जिसमे उन्होंने बतलाया था कि इस युद्धको 'सदाग्रह' क्यों कहना चाहिए। इसी सदाग्रहको बदलकर मैंने 'सत्याग्रह' शब्द बनाया। उनका पत्र पढ़नेपर इस युद्धके सभी सिद्धांतोंपर एक-एक करके विचार करते हुए अंतमे पाठकोंको इसी नामपर आना ही पड़ता था। मुझे याद है कि वह पत्र अत्यंत ही छोटा और केवल आवश्यक विषयपर ही था, जैसे कि उनके सभी पत्र होते थे।

युद्धके समय वे कामसे कभी थके नहीं, किसी कामसे देह नहीं चुराई

और अपनी वीरतामें वे अपने आसपासमें सभी किमीके दिल उत्साह और आगमें भर देते थे । जबकि सब कोई जेल गए, जब फिनिक्समें जेल जाना ही मानों इनाम जीतना था तब भी, मेरी आज्ञासे, जेलसे भारी काम उठानेके लिए वे पीछे ठहर गए । उन्होंने स्त्रियोंके दलमें अपनी पत्नीको भेजा ।

हिंदुस्तान लौटनेपर भी उन्हींकी बदौलत आश्रम, जिस समय-नियम-की बुनियादपर बना है, खुल सका था । यहा उन्हें नया और अधिक मुश्किल काम करना पड़ा । मगर उन्होंने अपनेको उसके लायक साबित किया । उनके लिए अस्पृश्यता बहुत कठिन परीक्षा थी । सिर्फ एक लहमे भरके लिए ऐसा जान पड़ा, मानो उनका दिल डोल गया हो । मगर यह तो एक सेकड़की बात थी । उन्होंने देख लिया कि प्रेमकी सीमा नहीं बांधी जा सकती, और कुछ नहीं तो महज डमीलिए कि अच्छे-तुके लिए ऊंची जातिवाले जिम्मेवार हैं, हमें उन्हींके जैसे रहना चाहिए ।

आश्रमका औद्योगिक विभाग फिनिक्सके ही कारखानेके ढगका नहीं था । यहा हमें बुनना, कातना, धुनना और ओटना सीखना था । फिर मैं मगनलालकी ओर झुका । गोकि कल्पना मेरी थी, किंतु उसे काममें लानेवाले हाथ तो उनके थे । उन्होंने बुनना और कपासके खादी बनने तककी और दूसरी सभी क्रियाएँ सीखी । वे तो जन्मसे ही विश्वकर्मा, कुशल कारीगर थे ।

जब आश्रममें गोगालाका काम शुरू हुआ तब वे इस काममें उत्साह-से लग गए, गोगाला-सबधी साहित्य पढा और आश्रमकी सभी गायिका नामकरण किया और सभी गुरुओंसे मित्रता पैदा कर ली ।

जब चर्मालय खुला तब भी वे वैसे ही दृढ़ थे । जरा दम लेनेकी फुर्सत मिलते ही वे चमड़ेकी कमाईके सिद्धांत भी सीखनेवाले थे । राज-कोटके हाईस्कूलकी शिक्षाके अलावा और जो कुछ वे इतनी अच्छी तरह जानते थे, उन्होंने वह सब स्वानुभवकी कठिन पाठशालामें सीखा था ।

उन्होंने देहाती बढई, देहाती बुनकर, किसान, चरवाहो और ऐसे ही मामूली लोगोसे सीखा था ।

वे चर्खा-सघके शिक्षण विभागके व्यवस्थापक थे । श्री बल्लभ-भाईने बाढके जमानेमे उन्हें विठ्ठलपुरका नया गाव बनानेका भार दिया था ।

वे आदर्श पिता थे । उन्होंने अपने बच्चोको, दो लडकियो और एक लडकेको, जो अवतक अविवाहित है, ऐसी शिक्षा दी थी कि जिसमे वे देशके लिए उपहार बननेके लिए योग्य हो । उनका पुत्र केशव यत्र-विद्यामे बडी कुशलता दिखला रहा है । उसने भी अपने पिताके ही समान यह सब मामूली लुहार-बढइयोको काम करते देखकर सीखा है । उनकी सबसे बडी लडकी राधाने, जिसकी उम्र आज अठारह वर्ष है, अपने मृत्ये विहारमे स्त्रियोकी स्वाधीनताके सवधमे एक मुश्किल और नाजूक काम उठाया था । सच ही तो, वे यह पूरा-पूरा जानते थे कि राष्ट्रीय शिक्षा कैसी होनी चाहिए और वे शिक्षकोको प्राय इस विषयपर गभीर और विचारपूर्वक चर्चामे लगाया करते थे ।

पाठक यह न समझे कि उन्हें राजनीतिका कुछ ज्ञान ही नहीं था । उन्हें ज्ञान जरूर था, किंतु उन्होंने आत्मत्यागका रचनात्मक और शांत पथ चुना था ।

वे मेरे हाथ थे, मेरे पैर थे और थे मेरी आखे । दुनियाको क्या पता कि मैं जो इतना बडा आदमी कहा जाता हू, वह बडप्पन मेरे शान्त, श्रद्धालु, योग्य और पवित्र स्त्री तथापुरुष कार्यकर्त्ताओके अविरल परिश्रम, और सेवापर कितना निर्भर है, और उन सवमे मेरे लिए मगनलाल सबसे बडे, सबसे अच्छे और सबसे अधिक पवित्र थे ।

यह लेख लिखते हुए भी अपने प्यारे पतिके लिए विलाप करती हुई उनकी विधवाकी सिसक मैं सुन रहा हू । मगर वह क्या समझेगी कि उससे अधिक विधवा, अनाथ मैं ही हो गया हू । अगर ईश्वरमे मेरा जीवन्त विश्वास न होता तो उसकी मृत्युपर, जो कि मुझे अपने सगे-पुत्रोसे

भी अधिक प्रिय था, जिसने मुझे कभी धोखा न दिया, मेरी आगाह न तोड़ी, जो अव्यवसायकी मूर्ति था, जो आश्रमके भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी अंगोंका सच्चा चौकीदार था, मैं विक्षिप्त हो जाता। उसका जीवन मेरे लिए उत्साहदायक है, नैतिक नियमकी अमोघता और उच्चताका प्रत्यक्ष प्रदर्शन है। उन्होंने अपने ही जीवनमें मुझे एक-दो दिनोंमें नहीं, कुछ महीनोंमें नहीं, बल्कि पूरे चौबीस वर्षों तक की बड़ी अवधिमें—हाय, जो अब बड़ी भरका समय जान पड़ता है—यह साबित कर दिखलाया कि देव-सेवा, मनुष्य-सेवा और आत्म-ज्ञान या ब्रह्मज्ञान आदि सभी शब्द एक ही अर्थके द्योतक हैं।

मगनलाल न रहे, मगर अपने सभी कामोंमें वे जीवित हैं, जिनकी छाप आश्रमकी धूलमेंसे दौड़कर निकल जानेवाले भी देख सकते हैं।
(हि० न० जी०, २६ ४ २८)

गांधीजीका मौनचार था। अकल्पित संयोगोंमें किसीको सेवा करनेका प्रसंग उपस्थित हो और बोले बिना न चले तभी बोलनेका प्रसंग शायद ही कभी आता हो। गांधीजी तुरत ही मगनलालभाईके घर जाकर बालकोंको गोद ले बैठे। सारा आश्रम खबर पाते ही बिह्वल हो उठा। किंतु आज्ञा हुई कि सबके एकत्र होनेकी कोई जरूरत नहीं है। जो काम चलते हैं उन्हें बढ़ करनेकी कोई जरूरत नहीं है। दृढ़वती, कर्मवीरके अवसानका शोक तो काम करके ही मनाना चाहिए न ! वणाटशाला, शाला आदि बढ़ करनेका मन बहुतोका हुआ, मगर हिम्मत कितने हो !

मगनलालभाईकी धर्मपत्नी श्री सतीकवहनने जैसे-तैसे किसी तरह अपना शोक दबाया। बापू घरमें बैठे हो तो शोकका प्रदर्शन कैसे किया जाय। और बापू बराबर यही कहते रहे, “मगनलाल होते तो ऐसे प्रसंगमें क्या करते।” मगनलालभाईके पुत्रने तो मुझ-जैसे बड़ोंसे भी अधिक साहस दिखलाया। सायकालमें हमेशाके मुतादिक प्रार्थनाके

समय सभी कोई इकट्ठे हुए । पंडितजीने धीरे गभीर स्वरमें गाया :

“अब हम अमर भये न मरेंगे ।”

उज्ज्वल यशसे यशस्वी मगनलालभाईके बारेमें यह भजन अतिशय उचित था; किंतु उनके बिना हम जो अपग लगते थे, हमें कोन आश्वासन दे । कुलका दीपक-रूप बड़ा लडका जब मर जाता है तब दूसरे लडकोको गोदमें बिठाकर अपनी छाती वज्रकी बनाकर, जिस भाति पिता उन्हें आश्वासन देता है उसी तरह गांधीजीने प्रार्थनाके बाद आश्वासन दिया । चौबीस वर्षका सबध क्रूर कालने तोड़ दिया । जैसी चोट पहले कभी न लगी थी, वैसी लगी । मगर तो भी छाती कठिन करके, मानो वियोग-वेदना हलकी करनेके लिए ही गांधीजीने कितने-एक उद्गार निकाले । ये उद्गार ऐसे नहीं हैं जो यहा दिये जा सकें । उनमें ऐसे-ऐसे वाक्य थे

“आश्रमके प्राण मगनलाल थे, मैं नहीं ।” “इनके तेजसे मैं प्रकाशित हुआ ।” “तुम्हारे आदर्श मगनलाल थे । मेरे आदर्श भी वही थे । उनके जैसा सरदार अगर मुझे मिला होता तो उन्होंने जितनी मेरी सेवा की थी, उतनी मैं अपने सरदारकी नहीं कर सकता । उनका जीवन सपूर्ण था । आश्रमके वे प्राण थे । मैं तो केवल धूमता फिरा और आश्रमके प्रति बेवफा रहा । और उन्होंने आश्रमकी सेवामे अपना शरीर गला दिया था ।” “मैं मीराबाईके समान जहरका प्याला पी सकता हूँ, मेरे गलेमे कोई सापोकी माला डाल दे तो उसे सहन कर सकता हूँ, किंतु यह वियोग उन दोनोंसे भी अधिक कठिन है । तोभी छाती कठिन करके, उनका गुण-कीर्तन करते हुए मैंने अपने हृदयमे उनकी मूर्ति स्थापित की है ।”

(हि० न० जी०, ३.५ २८)

.. ..

निकटसे और दूर-दूरसे मित्रोंने अपने मीठे सदेशोंसे मेरे लिए मेरी सबसे कड़ी परीक्षाके अवसरपर मुझे अत्यंत अनुगृहीत किया है । मेरी यह मूर्खता थी, मगर मैंने कभी यह सोचा ही नहीं था कि मगनलाल मुझसे

पहले मरेगे । व्यक्तियों, सस्थाओं और कांग्रेस-सभाओंके तारों और पत्रोंमें मुझे बहुत आश्वासन मिला है । मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि उन्होंने मुझपर जिस प्रेमकी वर्षा की है उसके तथा मगनलालने मेरे साथ जिन आदर्शोंको माना और जिनके लिए आतिपूर्वक अपने आपको उत्सर्ग कर दिया, मैं उनके योग्य बननेकी कोशिश करूँगा । (हि० न० जी०, ३ ५ २८)

तुम शायद नहीं जानते होगे कि रूखीबहन विलकुल बच्ची थी, तबसे सतोकके जीतेजी भी मगनलालके हाथों पली थी । इसके जीनेकी गायद ही आशा थी । मुश्किलसे सास ले सकती थी । इस लडकीको मगनलाल नहलाते, बाल सवारते और पास बैठकर खिलाते थे और अपने दूसरे बच्चोंकी भी देखभाल करते थे । फिर भी नौकरीमें सबसे ज्यादा काम करते थे । सुदूर-से-सुदूर बाड़ी उन्हींने बनाई थी । फिनिक्समें पहला गुलाबका फूल उन्हींने उगाया था । फिनिक्सकी कितनी ही सस्त जमीनमें जब उनकी कुदालीकी चोट पड़ती थी तब बरती कापती मालूम होती थी । जो मगनलाल कर सके वह सब तुम कर सकते हो । इसमें मैंने कहीं भी मगनलालकी बड़ी कला-शक्ति या उनके पढ़े-लिखेपनकी बात नहीं कही है । मगनलालमें आत्म-विश्वास था । अपने कामके बारेमें श्रद्धा थी और भगवानने उन्हें बलवान गरीर दिया था । यह गरीर अतमें आश्रमके बोझसे और उनकी तपश्चर्यासे कमजोर हो गया था । लेकिन मैं यह मानता हूँ कि मगनलालने अपने छोटे-से जीवनमें सौ वर्षके बराबर या सैकड़ों बरस जितना काम किया । मगनलालकी मिसाल तुम्हारे सामने इसलिए रखी है कि तुम मगनलालको जानते थे और उनके प्रेम-भावके कारण तुम्हारा आश्रमसे सबंध हुआ था । मगनलालको याद करके भी भूल जाओ कि तुम अलग हो या अघेरेमें हो । मैं मानता हूँ कि जो सुविधाएँ तुम्हें सहज ही मिली हुई हैं, वे इस देशमें लाखोंमें एकको भी प्राप्त न होगी ।” (म० डा०, भाग १, ८ ७ ३२)

मगनलालके विषयमें क्या कहूँ ? उन्होंने आश्रमके लिए जन्म लिया था । सोना जैसे अग्निमें तपता है वैसे मगनलाल सेवाग्निमें तपे और कसौटीपर सौ फीसदी खरे उतरकर दुनियासे कूच कर गए । आश्रममें जो कोई भी है वह मगनलालकी सेवाकी गवाही देता है । (य० म०, ३० ५ ३२)

मेरी रायमें स्वर्गीय मगनलाल गांधी इस तरहके एक आदर्श खादी-सेवक थे । उनसे जितनी आशाएँ मैंने रक्खी थी, उससे कहीं ज्यादा उन्होंने करके दिखाया । कड़ी-से-कड़ी कठिनाइयोंका सामना करके भी वह अपने कामकी चीज, जहाँ-कहीं भी वह मिल जाती थी, सीख लिया करते थे । कठिनाइयोंसे वह न कभी घबराते थे, न थकते थे । अंतिम समयतक वह अपने खादी-सबधी ज्ञानको बढ़ाने हीमें लगे रहे । मैं चाहता हूँ कि आप मगनलाल गांधीके इस आदर्शका अपने जीवनमें अनुकरण करें । (ह० से०, १५ ५ ४२)

ऐसा ही यह भजन है—‘अजहु न निकसे प्राण कठोर’ । वह कहता है कि अवतक ईश्वरके दर्शन न हुए तो अवतक प्राण क्यों न निकले ? हमेशा तो इस भजनको गणेश शास्त्री गाते थे, लेकिन बाज दफा जब वह हाजिर न होता या बीमार पड़ जाता तो मगनलाल उसको गाता था । वह सगीत-शास्त्री तो नहीं था, लेकिन उसका कंठ अच्छा था । उसका वह भजन अब भी मेरे कानोंमें गूँजता है । वह तो आश्रमका स्तम्भ था । आश्रमको चलानेमें वह पहाड़-सा था, बहुत मजबूत । कुदाली अपने आप चलाता था तो सबसे आगे चला जाता था । दक्षिण अफ्रीकामें तो उसका शरीर बहुत मजबूत था । यहाँ उसको कोई बीमारी तो नहीं थी, लेकिन शरीर क्षीण हो गया था, क्योंकि, उसपर सारा बोझ तो वहाँपर भी था, लेकिन यहाँ तो एक अनोखी चीज यह है कि करोड़ों आदमियोंमें

काम करना पड़ता था । रचनात्मक कामका भी बोझ उसपर पड़ता था । रचनात्मक कामके बिना हम रह भी कैसे सकते हैं ! उसके वगैर स्वराज चीज हो भी क्या सकती है ? आज स्वराज तो मिला, लेकिन उसकी कितनी कीमत है ? मिला तो भी क्या, आज हम सिद्ध करते हैं कि अगर हम रचनात्मक काम उस वक्त कर लेते तो हमें यह वक्त नहीं देखना पड़ता, जो हम आज प्रत्यक्षमें देख रहे हैं । स्वराज्यकी जो कल्पना हमने की थी और वह कल्पना बढ भी गई थी, क्या वह यही है ? अगर उस वक्त हम इतना कर लेते तो आज हिंदुस्तानका इतिहास अनोखा होनेवाला था, इसमें मुझे कोई शक नहीं । मगनलालका जो भगवान था वह तो स्वराज्यमें ही था । उसका स्वराज्य तो राम-राज्य था ।

(प्रा० प्र०, १६ १० ४७)

: ५३ :

हरिलाल गांधी

हरिलालके जीवनमें बहुतेरी ऐसी बातें हैं जिन्हें मैं नापसंद करता हूँ । वह उन्हें जानता है , पर उसके इन दोषोंके रहते हुए भी मैं उसे प्यार करता हूँ । पिताका हृदय है । ज्योंही वह उसमें प्रवेग पाना चाहेगा, उसे स्थान मिल जायगा । फिलहाल तो उसने अपने लिए उसका द्वार बंद रक्खा है । अभी उसे और जगल-भांडीमें भटकना है । मानवी पिताके संरक्षणकी भी एक निश्चित मर्यादा होती है , पर दैवी पिताका द्वार उसके लिए सदा खुला हुआ है । वह उसे खोजेगा तो जरूर स्थान पावेगा । (हि० न० जी०, १८ ६ २५)

हरिलालकी लाल प्याली रोज भरी रहती है। पीकर इधर-उधर भटकता है और भीख मागता है। वली और मनुको धमकाता है। इसमें भी नीयत रुपया ऐठनेकी दीखती है। मुझे भी बड़ी उद्धत धमकियोंके पत्र लिखे हैं। मनुपर अधिकार करनेके लिए वलीपर नालिश करनेकी धमकी दी है। मुझे दुःख नहीं होता, दया आती है। हसी भी आती है। ऐसे और बहुत लोग हैं, उनका क्या होगा ? उनके लिए भी मुझे उतना ही खयाल होना चाहिए न ? वे सब भी स्वभाव नियत कर्म करते हैं। क्या करे ? हमारा वरताव सीधा होगा तो वह अतमे ठिकाने आ जायगा। हरिलाल जैसा है वैसा बननेमें मैं अपना हाथ कम नहीं मानता। उसका बीज बोया तब मैं मूढ दशामें था। जब उसका पालन हुआ, वह समय श्रृंगारका कहा जा सकता है। मैं शराबका नशा नहीं करता था। यह कमी हरिलालने पूरी कर दी। मैं एक ही स्त्रीके साथ खेल खेलता था तो हरिलाल अनेकके साथ खेलता है। फर्क सिर्फ मात्राका है, प्रकारका नहीं। इसलिए मुझे प्रायश्चित्त करना चाहिए। प्रायश्चित्तका अर्थ है आत्मशुद्धि। वह वीरवहूटीकी गतिसे हो रही है। (म० डा०, भाग १, २३६ ३२)

..

मैं जब विलकुल साहव था, हरिलाल उस समयका है। उसे क्या पता था कि साहव होते हुए भी मेरा दिल साहवीमें जरा भी नहीं था ? उसने मेरा बाह्यरूप देखा और वैसी ही मीज-शौक करनेकी उसमें इच्छा हो गई। उसने मुझसे कहा—मुझे वैरिस्टर बना दीजिए। फिर देखिए, मैं क्या-क्या करता हूँ। इतना त्याग करता हूँ या नहीं ? (म० डा०, भाग २, १११० ३२)

तूने हरिलालके बारेमें पूछा है। वह पाडेचेरी गया था। वहा भी पैसोकी भीख मागकर खूब शराब पीता था। कुछ पैसे मिले भी। आज-कल कहा है, पता नहीं। उसका योही चलेगा। ईश्वर जब उसे सुबुद्धि

दे तब सही । इसमें हमारे पाप-पुण्य भी तो काम करते ही हैं न ? हरि-लालके गर्भके समय में कितना मूढ़ था ? जैसा मैंने और तूने किया होगा, वैसा ही हमें भरना होगा । इस तरह वच्चोके आचरणके लिए मा-त्राप जिम्मेदार है ही । अब तो हम यही कर सकते हैं कि हम शुद्ध बनें । सो वैसी कोशिश हम दोनों कर रहे हैं और उससे हम सतोष मानें । हमारी शुद्धिका प्रभाव जाने-अनजाने भी हरिलालपर पड़ता ही होगा । ('हमारी वा,' १३ २ ३४)

: ५४ :

डा० गिल्डर

महान् पारसी कौमने गराववदीके बुरी तरह विरुद्ध होते हुए भी जो समय रक्खा उसके लिए वह धन्यवादकी पात्र है । स्पष्ट ही उन्होंने बुद्धिमानीसे काम लिया और उनके द्वारा कोई विरोधी प्रदर्शन हुआ मालूम नहीं पड़ता । मेरी यह आशा ठीक ही मिट्ट हुई मालूम पड़ती है कि पारसी कौमकी उदारताने उसके विरोध-भावको दबा दिया । गराववदीकी पूरी सफलताके लिए पारसियोंके दिली सहयोगकी आशा करना क्या कोई बहुत बड़ी बात है ? उन्हें यह याद रखना चाहिए कि वम्बर्डके इस प्रयत्नका असर न केवल सारे प्रातपर, बल्कि समस्त भारतवर्षपर पड़ेगा । मैं तो यह कहनेका भी साहस करता हू कि अभी तो यद्यपि उन्हें ऐसा लगता है कि उनके साथ बेजा व्यवहार हुआ है, लेकिन पारसियोंकी भावी सतति डॉ० गिल्डरको अपना सच्चा प्रतिनिधि और हितैषी मानकर उन्हें दुआए देगी । जेमे भारतको इस बातका गर्व है, उसी तरह पारसियोंको भी सचमुच इस बातका फल होना चाहिए कि उन्होंने डॉ० गिल्डर-जैसा

आदमी पैदा किया जो कि महाभयकर विरोध, यहातक कि बहिष्कार आदिकी बुरी-से-बुरी धमकियोंके बावजूद चट्टानकी तरह दृढ़ रहा। (ह० से०, १२ प ३६)

आज अखबारमें बापू और वर्किंग कमेटीके साथवालोको छोडकर बाकी कैदियोंको महीनेमें एक मुलाकात मिलनेकी खबर थी। डा० गिल्डर-के लिए अवश्य ही एक समस्या खड़ी हो गई। मुलाकातकी इजाजतसे लाभ उठाना हो तो उनको वापस यरवदा जानेके लिए सरकारके साथ झगड़ा करना चाहिए। क्या ऐसा करना उचित है? यरवदा जाकर एक तो जेलकी जेल, दूसरे खर्च और तीसरे वापूका साथ छोडना। वैसे भी यहाका वातावरण उन्हें अनुकूल है। यह सब छोडना या मुलाकात छोडना? मैंने कहा, “खर्चकी उन्हें क्या परवाह है?” बापू कहने लगे

“ऐसा नहीं, कौन जाने कबतक यहा रहना है। वे प्रतिष्ठावाले आदमी हैं। अब कांग्रेसको कभी छोडेगे नहीं। यह भी जानते हैं कि मैं लोगोको भिखारी बनानेवाला हू। सो जो धन है उसे सभालकर रखेंगे ताकि वह उनकी लडकीको मिल सके।” (का० क०, २६४३)

: ५५ :

सतीशचन्द्र दास गुप्ता

बगलमे शुद्ध त्यागके दृष्टांत देखकर मैं तो आनंद रसके घूट पीने लगा। एक जमींदारका सारा कुटुंब खादीमय है। तमाम स्त्रिया कातती हैं। समस्त स्त्री-पुरुष खादी पहनते हैं। उन्होंने अपनी जमीन और अपना घर खादी प्रतिष्ठानको उपयोगके लिए दे दिया है। प्रतिष्ठानके प्राण सतीशबाबूका त्याग ऐसा-वैसा नहीं। डा० रायके रसायनके

कारखानेमें हर माह १५००) की उनकी आमदनी थी। वहा रहनेके लिए बगला भी था। अधिक मागनेसे और भी मिल सकता था। वहा रहकर भी वे खादीका काम तो करते ही थे, परंतु इससे उन्हें मतोष न हुआ। उनके कोमल हृदयने अनुभव किया कि इस तरह दो काम करनेसे दोनोंके विगड जानेकी संभावना है। रसायनके कारखानेके तो वे प्राण ही थे। यदि उसके लिए पूरा समय न दे तो जरूर धक्का पहुंचे, और इधर खादीके द्वारा गरीबोंकी सेवा होती है। फुरसतके समयमें इस कामको करना भी उन्हें अच्छा न मालूम हुआ। एक पुरुषका दो पत्नी रखना जिस तरह पाप है उसी तरह एक पुरुषका दो कामोंको अपना प्राण बनाना भी अनर्थकर है। फिर खादीके लिए जितना त्याग किया, उतना कम ही है। ऐसी दलीले अपने मनके साथ करके खुद जिस कारखानेको जमाया था उसीको उन्होंने एक क्षणमें छोड़ दिया और अपने पास जो कुछ थोड़ा द्रव्य रहा है उसीकी आमदनीमें अपना घर-खर्च चलाते हैं और चौबीसो घंटे खादी-कार्यमें ही लगाते हैं। अपने कामकी अवतक वे ११ जगह शाखाएं खोल चुके हैं। इनमें पाँच हैं खादी पैदा करनेवाली, अभी और भी खोलनेका इरादा कर रहे हैं। उनके द्वारा ५,०६० चरखे चल रहे हैं। शुद्ध खादीके करघे ५६७ चलते हैं।

उनके इस कार्यमें उनकी धर्मपत्नी भी उनका साथ देती है। जहा रुपयेकी कमी न थी तहा आज तगीसे काम चलाना पडता है, यह उस बार्ड-को खलता तो होगा, जहा रहनेके लिए अलहदा बगला था तहा आज एक छोटे-से मकानकी एक छोटी-सी मजिलपर सतोष मानना कठिन तो पडता होगा, किंतु ये बार्ड इन तमाम तकलीफोंको प्रफुल्ल वदन हो कर सह रही है। (हि० न० जी०, २८५ २५)

वह (सतीश बाबू) तो कुदून जैसा है। और कुदूनके क्या कभी जेवर बने हैं ? सोनेके गहने बने हैं, क्योंकि सोनेमें थोड़ी कृष्णात् मिली हुई

होती है। इस तरह काम देनेके लिए थोड़ी कुवातुकी जरूरत पड़ती है, मगर सुधातु होना तो अपने आप ही शोभा देता है। (म० डा०, भाग २ १२ ३२)

खादी प्रतिष्ठानके श्रीसतीशचन्द्र दास गुप्ता भारत-रक्षा कानूनकी २६ (१) धाराके अनुसार जारी किए गए हुक्मको न माननेके लिए गिरफ्तार किए गए हैं और उन्हें दो सालकी सजा दी गई है। उनका अपराध यह था कि उन्होंने सकटग्रस्त लोगोंको तबतक अपने घर वगैरह न छोड़नेकी सलाह दी, जबतक कि खाली किए गए घरों आदिके बदलेमे वैसा ही दूसरा प्रबंध सरकारकी ओरसे न कर दिया जाय। इस सबबमे 'हरिजन' मे मैंने जो लेख लिखे हैं और हाल ही कांग्रेसकी कार्य-समितिये जो प्रस्ताव पास किया है, श्रीसतीशवावूका यह कार्य ठीक उसीके अनुरूप था।

इसमे कोई शक नहीं कि श्रीसतीशवावूने जान-बूझकर हुक्मका अनादर किया था। जिला मजिस्ट्रेटके नाम लिखे गए पत्र से स्पष्ट ही यह मालूम होगा कि उन्होंने यह अनादर मानवताके खातिर, उसके तकाजेसे, किया। उस प्रदेशमे श्रीसतीशवावू और उनके आदमी बरसोंसे काम कर रहे हैं और उन्होंने उधरके कतवैयो व जुलाहोमे हजारों रुपये बतौर मजूरीके वाटे हैं। सतीश-वावूके पत्रसे साफ ही यह मालूम होता है कि जनताकी शिकायत बिलकुल सच्ची है। जिस महान् युद्धके लिए यह दावा किया जाता है कि वह मानव-मन और मानव-गरीरकी मुक्तिके लिए लड़ा जा रहा है, वह उन लोगोंका दमन करके कभी जीता नहीं जा सकता, जिनका स्वेच्छापूर्ण सहयोग चाहा जाता है और चाहने योग्य है। इसमे कोई शक नहीं कि हिन्दुस्तानकी आम जनता अज्ञानमे डूबी हुई है। वह स्वभावसे गरीब है और इतिहासकारोने उसे दुनियामे अधिक-से-अधिक भली और नम्र माना है। उनका पथ-प्रदर्शन आसानीसे किया जा सकता है। वह अपने नेताओंके

वताए रास्तेपर चलती है। इसलिए उससे काम लेनेकी उचित रीति यह है कि उसके नेताओंसे काम लिया जाय, उनसे बातचीत की जाय।

नेता दो तरहके होते हैं एक वे, जो अपनेको नेता मानकर अपने नेतृत्व द्वारा जनताका गोपण करते हैं, उसकी आडमें अपना मतलब गाठने हैं, और दूसरे वे, जो अपनी सेवाके बल जनताके नेता बनते हैं। वे विश्वासपात्र होते हैं और जनता उन्हें मानती है। इन दोनों प्रकारको पहचानना बहुत आसान है। इन दूसरे प्रकारके नेताओंको जनतामें अलग करना अनुचित है।

श्रीसतीशबाबू दूसरे प्रकारकी श्रेणीमें आते हैं। गोकि वे राजनीति जानते हैं, पर राजनैतिक पुरुष नहीं हैं। वे व्यवसायी हैं और उन सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और आजीवन लोकसेवाकर्ता आचार्य पी० सी० रायके प्रिय शिष्योंमें से हैं, जिन्होंने अपने लिए कभी एक पाई भी नहीं कमाई। सुप्रसिद्ध बगाल केमिकल वर्क्स, आचार्य रायकी अनेकानेक कृतियोंमें एक कृति है और श्रीसतीशबाबू उसके निर्माताओंमें हैं। वे इस केमिकल वर्क्सके मैनेजर थे और वहां ऊंचा वेतन पाते थे। उन्होंने वह काम छोड़ दिया और खादीके कामको अपनाकर गरीबोंकी तरह रहने लगे। उनकी धर्मपत्नीने उनका पूरा-पूरा साथ दिया और उनकी कठोर साधनामें वे उनके सुख-दुःखकी साथिन बनी। उनके भाई और होनहार लड़कोने भी यही किया। उनमेंसे एकका सेवा करते-करते ही देहात हो गया। श्रीसतीशबाबूके भाई श्री क्षितीशचंद्र दास गुप्ता भी एक केमिस्ट (रसायन-शास्त्री) हैं और उन्होंने अपने आपको खादी प्रतिष्ठानकी सेवामें खपा दिया है। वे अपना सारा समय और सारी शक्ति मधुमक्खी पालने, हाथका कागज बनाने और इसी तरहके दूसरे गृह-उद्योगोंमें लगा रहे हैं। श्रीसतीशबाबूने अपने लड़कोको उस उच्च शिक्षासे वंचित रक्खा, जो स्वयं उन्होंने प्राप्त की थी। अपने नए कार्यमें वे इतने उत्साह और शक्तिके साथ जुट गए कि खादी कार्यके विरोधजन बन गए। उन्होंने खादी-

प्रतिष्ठानको जन्म दिया, जो कि उधर लोकसेवाकी प्रवृत्तियोंका एक महान् केन्द्र बन गया है। श्रीसतीशबाबू उन सच्चे-से-सच्चे और नम्र-से-नम्र लोगोमें हैं, जिनके साथ मुझे काम करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे अपनी सारी शक्तिके साथ सत्य और अहिंसाके आदर्शके अनुसार जीवन बितानेका यत्न करते रहते हैं। इन दोनोंको उन्होंने राजनैतिक उपयोगिताकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि जीवनके एक ध्येयकी दृष्टिसे अपनाया है। अगर इस देशका शासन इसके विजेताओंकी तरफसे जनताका शोषण करनेवाले कानूनों द्वारा न होकर देशके लोकप्रिय प्रतिनिधियों द्वारा होता तो जरूरतके वक्त श्रीसतीशबाबू-जैसे व्यक्तियोंकी सरकारी अधिकारियोंको बड़ी आवश्यकता रहती, और यह समय तो बहुत ही बड़ी जरूरतका समय है। लेकिन हमारे शासक उनका जो अधिक-से-अधिक उपयोग कर सकते हैं, सो यही है कि उन्हें उनके उन कानूनोंका अनादर करनेके लिए सजा दे, जो समूचे राष्ट्रकी इच्छाको नहीं, बल्कि एक ऐसे आदमीकी इच्छाको व्यक्त करते हैं, जिसकी हुकूमत मुल्कपर जबरदस्ती लादी गई है। श्रीसतीशबाबूने वह जोत जलाई है, जो कभी बुझेगी नहीं। कानून भूठा है, जनताके सेवक सतीशबाबू सच्चे हैं। (ह० से० २८४२)

: ५६ :

गोपालकृष्ण गोखले

उनका जन्म सन् १८६६ में कोल्हापुरमें एक गरीब मराठा ब्राह्मण-कुटुम्बमें हुआ था। वहीके कालेजमें पढ़कर उन्होंने एफ० ए० परीक्षा पास की। इसके बाद वे बंबईके एलफिन्स्टन कालेजमें भरती हुए और

वहा मे सन् १८८४ मे उन्होने वी० ए० परीक्षा पास की ।

वी०ए० होने के बाद उन्हें किसी काम-व्यवसे लगनेका विचार करना पडा और उन्होने शिक्षकका धवा ही पसंद किया । उस समय 'डेकन एजुकेशन सोसाइटी' अच्छा काम कर रही थी । श्रीगोखले इस संस्थामें सम्मिलित हो गये । इस संस्थाने अपनी देख-रेखमे पूनामें चलनेवाले फर्ग्यूसन कालेजमे सत्तर रुपये मासिक पर उन्हें अर्थ-शास्त्र और इतिहासका अध्यापक नियुक्त किया । श्रीगोखलेने यहा बीस वर्षोंतक पढानेकी गण्य ली । इस प्रतिज्ञाका उन्होने पालन किया । इस प्रकारके सेवा-वृत्तिपरायण लोग जब शिक्षाके लिए अपना जीवन अर्पण करते हैं तभी शिक्षा फलदायी निकलती है और बालकोके संस्कार तभी गढे जाते हैं । श्रीगोखलेने फर्ग्यूसन कालेजमें बीस वर्ष बिताए । उस बीच यद्यपि सभाओं और समाचारपत्रों द्वारा उनके दर्शन अधिक नहीं हुए, तथापि बहुतसे युवकोको अपने मनका विकास करने और अपने आचरणको दृढ करनेके लिए आगेका पोषण उन्ही वर्षोंमे उन्हीसे प्राप्त हुआ ।

श्रीगोखले जब फर्ग्यूसन कालेजमे थे तब शिक्षाके कामके सिवा अन्य कार्यमे भी ध्यान दे रहे थे । जिस समय वे कालेजमे दाखिल हुए, उस समय स्वर्गीय श्रीमहादेव गोविन्द रानडेके सपर्कमे आए थे और विशेषकर उन्हीकी देख-रेखमे उनका चरित्र गढा गया था । न्यायमूर्ति रानडेके प्रवीण हाथके नीचे वारू वर्षों या इससे भी अधिक समय तक श्रीगोखलेने अर्थ-शास्त्रका अध्ययन किया था । परिणाम-स्वरूप श्रीगोखले उन थोड़े-से लोगोमे से हैं, जिनके गद्द हिन्दुस्तानमें आर्थिक प्रश्नोंपर आधार-भूत माने जाते हैं । श्रीगोखलेका स्वर्गीय श्रीरानडेके प्रति बहुत ही पूज्य भाव है और वे उन्हें गुरुके रूपमे मानते हैं । १८८७ मे श्रीरानडेकी इच्छासे पूना सार्वजनिक सभाकी ओरसे प्रकाशित होनेवाले 'क्वार्टर्ली जर्नल' का संचालकत्व उन्होने स्वीकार कर लिया । इसके बाद भी वही वे डेकन

सभाके अवैतनिक मंत्री नियुक्त किये गए। पूनाके अंग्रेजी-मराठी साप्ताहिक 'सुधारक' के भी वे संचालक थे। बंबईकी प्रांतीय कान्फ्रेन्सके वे चार साल तक मंत्री थे। १८९५ में पूनामें हुई कांग्रेसके भी वे मंत्री नियुक्त किये गए थे। सार्वजनिक कार्योंमें उनकी रुचि और उत्कृष्टता इतनी अधिक रयाति प्राप्त की कि उन्हें 'दक्षिणके उदीयमान् तारे' की उपमा दी जाती। उनकी प्रसिद्धि इतनी फैली कि भारतके खर्चके सवधमें विचार करनेके लिए विलायतमें नियुक्त किये गए वेल्बी-कमीशनके सामने गवाही देनेके लिये बंबईकी जनताने श्री वाच्छाके साथ उन्हें भी चुना था। वहां उन्होंने कीमती बयान दिया था।

जिस समय वे इंग्लैंडमें थे, उस समय उन्होंने हिंदुस्तानके मामलेके बारेमें कई भाषण दिए थे। प्लेगके सवधमें बंबई सरकार जिस ढंगसे काम कर रही थी और कामपर रोके गए सैनिकोंने जो थर्रा देनेवाले काम किए थे, उनकी कड़ी टीका छपवाकर उन्होंने वहां निकाली थी। इसके कुछ समय बाद वे बंबईकी धारासभाके सदस्य चुने गए। १९०२ में २५ की पेन्शन लेकर वे फर्ग्यूसन कालेजसे पृथक् हुए। उसी समय बंबईके प्रतिनिधि सर फीरोजशा मेहताकी बीमारीके कारण केन्द्रीय धारासभामें उनकी जगह श्रीगोखले चुने गए। यह काम उन्होंने इतनी मुदरतासे किया कि उस समयसे लेकर अबतक उस जगहके लिए वे बार-बार चुने जाते रहे हैं।

बड़ी धारासभामें चुने जानेके बादसे उनकी कार्य-कुशलताका नया प्रकरण आरम्भ हुआ। स्वदेश-सेवामें उनकी भारी-से-भारी जीतके इतिहास-रूपमें वह बना हुआ है। बजटके समयका उनका पहला ही भाषण प्रेरणाप्रद माना जाता है। उस समयसे बजटके अवसरपर उनके भाषणोंके बारेमें सब लोगोको बड़ी आतुरता रहती है। साल-दरसाल वे बताते रहे हैं कि साल-भरके हिसाबमें जो रकम शेष बताई जाती है, वह कितनी गलत होती है और उसमें जनसंख्या कितनी अप्रामाणिक हो जाती है।

साल-दरसाल वे यह माग करते रहे हैं कि सरकारी विभागोंमें अधिक परिमाणमें भारतीयोंको नौकरी दी जाय। साल-दरसाल फौजी खर्च घटानेकी वे हिमायत करते रहे हैं। साल-दरसाल नमक-कर रद्द करने और कृषि तथा उद्योग-वधोकी शिक्षाके प्रसारकी वे माग करते रहे हैं और निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा जारी करने एवं इसी प्रकारके अन्य सुधार करनेका वे साल-दरसाल आग्रह करते रहे हैं। नमक-करमें जो कमी हुई है, वह अधिकांशतः उनकी हिमायतमें ही हुई है।

हिंदुस्तानके अनेक उच्च-से-उच्च पदाधिकारियोंकी उनसे मित्रता है और मिजाज के तेज वाइमराय लार्ड कर्जन भी उन्हें अपने बराबरीके प्रतिस्पर्द्धीके रूपमें मानते थे। उन्होंने कहा था कि श्रीगोखलेके साथ पटाना एक आनन्ददायक बात है। उन्हें यह भी कहते सुना गया है कि उनके सपर्कमें आये मनुष्योंमें श्रीगोखले सबसे बलवान् हैं। यद्यपि श्रीगोखले कौन्सिलमें लार्ड कर्जनके ऐसे विरोधी थे जो कभी उन्हें डील न देते थे, तथापि उनकी योग्यता और सुंदर व्यवहारके प्रति सम्मानके प्रतीक-स्वरूप उन्हें सी० आर्डी० ई० का खिताब दिया था और खिताब दिए जानेके अवसरपर उन्हें बधाईका एक व्यक्तिगत पत्र भी लिखा था।

श्रीगोखले कांग्रेसकी गति-विधिमें शुरूसे ही शामिल थे। कांग्रेसकी बहुत-सी सभाओंमें वे उपस्थित रहे हैं और उन्होंने भाषण दिए हैं। उनका सबसे अधिक उल्लेखनीय भाषण बंबईकी कांग्रेसके अंदर हिंदुस्तानके कोषकी सिलकके बारेमें दिया गया भाषण था। सर हेनरी काटनके कथनानुसार वह भाषण आम सभा (हाउस आव कामन्स) में सुने गए सुंदर-से-सुंदर भाषणकी बराबरी करनेवाला था।

हिंदुस्तानकी राजनैतिक स्थितिसे विलायतकी जनताको अवगत करनेके लिए बंबईकी जनताने एक प्रतिनिधिक रूपमें उन्हें १९०५ में वहा भेजा था। वह काम उन्होंने बहुत सतोषजनक रूपमें पूरा किया

था। पचास दिनोमे कुछ नही तो पैतालीस भाषण दिए। हिंदुस्तानके ब्रिटिश राज्यके विषयमे लोकमत प्रकट करनेकी उनकी खूबीसे बहुतसे चालाक अंग्रेज भी आश्चर्यचकित रह गए थे। वे इंग्लैंडसे रवाना हुए, उसके पहले ही बनारसकी पुण्य-भूमिमे होनेवाली कांग्रेसके अध्यक्ष चुने जा चुके थे। बनारसमे कांग्रेसमे अध्यक्षपदसे दिया गया उनका भाषण अत्यन्त स्पष्ट और प्रवीणताका नमूना था। बनारस कांग्रेसके बाद शीघ्र ही वे फिर विलायत गए और इस बार लार्ड मालेके साथ उनकी बहुत बार मुलाकाते हुई। लार्ड मिंटोकी नए सुधारोकी योजनाके सबधमे १९०६ मे वे फिर विलायत गए थे।

श्रीगोखलेने बार-बार जोर देकर कहा है कि इस बातकी अत्यंत आवश्यकता है कि राजनैतिक कामके लिए शरीर अर्पण कर देनेवाले थोड़े-बहुत लोग हर प्रातमेसे निकल पड़े। सच तो यह है कि ऐसे राजनैतिक सन्यासियोका मार्ग रचनेकी उनकी दीर्घकालीन अभिलाषा थी जिनका ध्येय ही स्वदेश-सेवा हो। यह अभिलाषा हालमे ही प्रकट हुई है। 'भारत-सेवक-समिति' से हिंदुस्तानकी जनता वाकिफ हो गई है। इस समिति हेतु बहुत अच्छे हैं और हम सबकी कामना है कि भविष्यमे इस देशकी बड़ी-से-बड़ी सेवा करनेमे वह अधिक-से-अधिक शक्तिमान होती जाय।

श्रीगोखलेकी भाषण देनेकी पद्धतिके बारेमे दो शब्द कह दू। वे कोई वक्ता नहीं हैं। श्रोताओकी भावनाओको उभाड़नेकी ओर उनका विशेष लक्ष्य नहीं रहता। अपनी बात सामनेवालेके मनमे पूरी तरह उतारना ही उनका उद्देश्य रहता है। वे शीघ्रतासे बोलते हैं। भर-पूर आकड़े और विवरण उनका सरजाम है। उनकी समझनेकी शक्ति बहुत तीक्ष्ण और उत्साहपूर्ण है। उनका बोलनेका ढंग सादा, किंतु स्पष्ट और जोरदार है।

श्रीगोखले बहुत उत्साही सुधारक हैं। वे पूनासे प्रकाशित होने वाले

मराठी दैनिक 'ज्ञानप्रकाश' को भी चलाते हैं और उसके द्वारा अपने सामाजिक और राजनैतिक विचारों का प्रचार करते हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि उनका रहन-सहन अत्यंत सादा और उग्र तपवाला है। सच कहे तो, जैसा कि प्रसिद्ध पत्रकार श्री नेविन्सन ने कहा है, एक सच्चे ब्राह्मण के रूप में उन्होंने अपना जीवन गरीबी और ज्ञान में होम दिया है। अत्यंत प्राचीन भारतीय रीति, सादा जीवन और उच्च विचारों का इससे अच्छा नमूना दूसरा नहीं मिल सकता।

श्रीगोखले के अंतिम बड़े कार्यों में शिक्षा का बिल और भारतीय मजदूरी की अनिवार्य गुलामी को बंद करने का प्रयास है। शिक्षा का बिल वाइसराय की धारासभा के सामने पेश किया गया था। अन्य प्रजाकीय विलों की जो दशा होती है, वही दशा श्रीगोखले के बिल की हुई है, फिर भी उन्हें हिंदू के सभी भागों और सभी जातियों की ओर से इतना अधिक सहयोग प्राप्त हुआ है कि उस एकत्र बल के सामने सरकार ज्यादा दिनों तक टिक नहीं सकेगी।

इस देश में 'गिरमिट' ^१ बंद हो गया, इसके लिए हम श्रीगोखले के बहुत आभारी हैं। स्वयं अनेक कार्यों में फंसे रहने और बीमार रहने पर भी इस प्रश्न का उन्होंने कितना गहरा अध्ययन किया है, यह जानने के लिए हिंदू की धारासभामें दिया गया उनका भाषण आईने की तरह है।

गिरमिट के प्रश्न के उपरांत हमारी तकलीफों की ओर उन्होंने हार्दिकता से नजर रखी है और सत्याग्रह की लड़ाई में कीमती मदद दी है। हमारे प्रति उनकी सहानुभूति बढ़कर इस सीमा तक पहुंच गई है कि उन्होंने इस देश में (दक्षिण अफ्रीकामें) आकर हमारी स्थितिको जानने का निश्चय किया है।

^१ मजदूरों के लिए विदेश जानेवाले भारतीयों से करवाया जानेवाला हकरार।

मातृभूमिकी सेवामे अपनी पूरी जिंदगी अर्पण करनेवाले माननीय गोखले जैसा बुद्धिमान और तेजस्वी बनना हमारे बसकी बात नहीं, किंतु उनकी भांति अपने काममे एकरस हो जाना हमसे प्रत्येकके बसकी बात है। श्रीगोखले स्वयं जो कुछ मानते हैं, उसमे एकरस हैं, इसीलिए सारा देश और मित्र और सब लोग समान रूपसे उनका सम्मान करते हैं।... वे दीर्घायु हो और हम कामना करेंगे कि उनकी छाप हमारे हृदयमे कभी मदी न पड़े। (इ० ओ०, १९१२)

... .

श्रीगोखलेके उद्देश्यको मैं पवित्र मानता हूँ। किंवरलीमे प्रमुख-से-प्रमुख गोरे और भारतीय मिलकर भोजन करने एक मेजपर बैठे इस प्रसंगमे श्रीगोखले कारणरूप बने, यह मेरे मनमे गर्वका विषय है। टाल्स्टायक जीवन और शिक्षणके एक नम्र अभ्यासीके रूपमे मुझे ऐसा भी लगता है कि ऐसे समारोह अनावश्यक हैं और अनेक बार इससे बहुतसे नुकसान—कुछ नहीं तो पाचन-क्रियामे खलल डालनेका नुकसान—होने लगता है, किंतु मैं टाल्स्टायक जीवनका अभ्यासी हूँ, फिर भी यदि इससे एक-दूसरेको अधिक अच्छी तरह पहचाननेका अवसर मिलता हो तो इसमे खामी निकालनेके लिए मैं तैयार नहीं। इस प्रसंगपर मुझे एक सुंदर अंग्रेजी भजन—वी शैल नो ईचअदर व्हेन दि मिस्ट्स हैंव् रोल्ड अवे (We shall know each other when the mists have rolled away)—याद आता है। हमसे अज्ञान दूर हो जाय, हम एक-दूसरेके बीच मतभेद होनेपर भी एक-दूसरेके भाव अधिक समझ सकें। मेरे प्रख्यात देशी भाई यहा जो आए हैं, सो इस अज्ञानकी आधीको दूर करनेके लिए ही आए हैं। कीमती-से-कीमती जवाहरके रूपमे, हिंद जिसे यहा भेज सकता था, वे यहा आए हैं। मैं जानता हूँ कि जब श्रीगोखलेके कार्योंके बारेमे मैं कुछ कहता हूँ तो उनकी भावनाओको ठेस पहुंचती है, फिर भी मुझे कर्तव्यका पालन करना चाहिए। हिंदुस्तानमे श्रीगोखलेने राजनैतिक

क्षेत्रमें जो कीर्ति प्राप्त की है, उसके विषयमें यहाँ मेरे बराबर और कोई कह सके, ऐसा नहीं है । हिंदुस्तानके बाइसराय तो सिर्फ पांच बरसतक ही हिंदुस्तानकी सल्तनतका बोझ अपने सिरपर उठाते हैं (कभी-कभी लार्ड कर्जन-जैसे सात बरस तक उठाते हैं) और मो भी अनगिनत अफसरोंकी मददसे, किंतु ये मेरे एक बिल्यात देगी भाई इस प्रकार की किमी भी सहायताके बिना, नौकरोके बिना और मान-पदके बिना, सल्तनतका बोझ अकेले उठाए हुए है । यह सही है कि इनके पास सी० आर्डी० ई० का खिताब है, किंतु मेरे मतसे उससे बहुत अधिक बड़े-बड़े पदोंके वे पात्र हैं । श्रीगोखले जिस पदको चाहते हैं, वह उनके देगी भाइयोंके प्रति प्रेम और अपनी अंतरात्माकी सम्मति है । पश्चिमकी शिक्षा पाए हुए भारतीयोंके लिए वे नम्रता और भलमनसाहतके उदाहरण-स्वरूप हैं ।*

माननीय गोखलेजीकी 'गिरमिट'-मबधी प्रवृत्ति उनकी तन्मयताकी जैसी भाकी कराती है, वैसी दूसरी कोई प्रवृत्ति नहीं कराती । उनका दक्षिण अफ्रीकाका प्रवास और उसके बाद हिंदुमे की जानेवाली उनकी गतिविधि, अपने कार्यमें ओतप्रोत हो जानेकी उनकी शक्तिका हमें अच्छा दिग्दर्शन कराती है, और उनकी इस शक्तिके कारण ही अनेक बार मैंने कहा है कि उनके कार्योंमें हम छिपी हुई धर्मवृत्तिको देख सकते थे ।

अब हम उनके दक्षिण अफ्रीकाके कार्यको जरा देखें । जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीका जानेके विषयमें अपना मत प्रकट किया तब हिंदुस्तानकी सरकारके अफसरोंमें खलवली मच गई । दक्षिण अफ्रीकामें गोखलेजी-जैसे मनुष्यका अपमान हो तो उसे क्या कहा जायगा ? दक्षिण अफ्रीका

* महात्मा गोखलेका सम्मान करनेके लिए किंवदलीके मेयरके सभा-पतित्वमें नवंबर १९१२में हुए भारी समारोहके अवसरपर गांधीजी द्वारा दिए गए भाषणका अंश ।

जानेका विचार यदि वे छोड़ दे तो कितना अच्छा हो ? किंतु उनसे इस वारेमे कहनेकी कौन हिम्मत करे ? दक्षिण अफ्रीका जाना क्या है, इसका अनुभव गोखलेजीको इंग्लैंडमे ही हुआ । उन्होंने अपने लिए टिकट मगवाया, किंतु यूनियन केसल कपनीके अधिकारियोने कुछ भी ध्यान न दिया । यह खबर इडिया आफिसमे पहुची । इडिया आफिसने सर ओवन ट्यूडरको, जो यूनियन केसल कपनीके मैनेजर थे, सख्त ताकीद की कि कपनीको गोखलेजीका उनके पदके योग्य सम्मान करना चाहिए । परिणाम यह निकला कि गोखलेजी एक सम्मानित अतिथिके रूपमे स्टीमरमें प्रवास कर सके । इस प्रसंगका वर्णन करते हुए उन्होंने मुझसे कहा, “मुझे अपने व्यक्तिगत सम्मानकी आवश्यकता नही, किंतु अपने देशका सम्मान मेरे लिए प्राणके समान है और इस समय मैं एक प्रमुख व्यक्तिके रूपमे आ रहा था, इसलिए मेरा अपमान हुआ तो वह हिदका अपमान होनेके समान है, यह मानकर मैंने स्टीमरमे अपने मानके योग्य सुविधा प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न किया ।” उपर्युक्त घटनाके फलस्वरूप इडिया आफिसने कोलोनियल आफिसके मार्फत ऐसी तजवीज की थी कि दक्षिण अफ्रीकामे भी गोखलेजीका पूरा-पूरा सत्कार हो । इसलिए यूनियन सरकारने पहलेसे ही उनके सत्कारकी व्यवस्था कर रखी थी । उनके लिए एक सैलून तैयार करवा रखा था और यात्राके समय रसोइये आदि रखनेका भी इतजाम किया था । उनकी सार-सभालके लिए एक अफसर तैनात किया गया था । भारतीय जनताने तो स्थान-स्थानपर ऐसा सम्मान करनेकी तजवीज कर रखी थी, जो बादशाहको भी न मिल सके । गोखलेजीने यूनियन सरकारका आतिथ्य केवल यूनियनकी एक राजधानी प्रिटोरिया पे ही स्वीकार किया । शेष सभी स्थानोपर वे भारतीयोंके अतिथि रहे । केपटाउनमे दाखिल हुए कि तुरत उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नका विशेष अध्ययन शुरू कर दिया । इस विषयका जो सामान्य ज्ञान लेकर

वे केपटाउनमे उतरे थे, वह भी ऐसा-वैसा नहीं था, किंतु उनके हिसाबमे वह पर्याप्त न था। दक्षिण अफ्रीकाके अपने चार सप्ताहके प्रवासमे उन्होंने वहाके भारतीयोंकी समस्याका इतना गहरा अध्ययन किया कि जो लोग भी उनसे मिलते, वे उनके ज्ञानसे आश्चर्यचकित हो जाते। जब जनरल बोथा और जनरल स्मट्समे मिलनेका समय आया तब उन्होंने इतने अधिक विवरण तैयार करवाये कि मुझे लगा कि इतना परिश्रम वे किस लिए कर रहे हैं। उनकी तबीयत बराबर बहुत खराब थी, अत्यंत सार-मभाल रखनेकी जरूरत थी। लेकिन ऐसी तबीयत रहनेपर भी रातके बारह-बारह बजे तक काम करते और फिर दो बजे या चार बजे उठ जाते और कासिदको बुलाने लगते। परिणाम-स्वरूप जनरल बोथा और जनरल स्मट्ससे हुई उनकी मुलाकातमेसे गिरमिटके तीन पींडके वार्षिक करकी सत्याग्रहकी लड़ाई पैदा हुई। यह कर १८९३ से गिरमिट-मुक्त पुरुषों, उनकी स्त्रियों और उनके लड़के-लड़कियोंपर लगाया जाता था। यदि गिरमिट मुक्त-व्यक्ति कर न देना चाहता तो कानून द्वारा उसका भारत वापस जाना अनिवार्य बना रखा था। इसलिए गिरमिटमे, वास्तवमे, गुलामीमे पड़े हुए भारतीयोंकी दशा बहुत ही सकटपूर्ण बनी हुई थी। सर्वस्व त्यागकर बाल-वच्चोतकके साथ दक्षिण अफ्रीका आया हुआ भारतीय हिंदुस्तान वापस जाकर क्या करे? यहा तो उसके भाग्यमे भुखमरी ही रही। जीवन-पर्यंत गिरमिटमे भी कैमे रहा जा सके? उसके आस-पासके स्वतंत्र मनुष्य हर महीने चार पींड, पांच पींड, १० पींड कमाते हो तो स्वयं १४ से १५ गिलिंग मासिक लेकर कैसे सतुष्ट रह सके? और अलग होना चाहता हो तो मान लीजिए कि उसके एक लड़का और एक लड़की हो तो स्त्री-सहित सब मिलाकर उसे हर साल १२ पींडका कर देना चाहिए। यह भारी कर वह किस प्रकार दे? जबसे यह कर चालू हुआ तबसे भारतीय कौम उसके विरुद्ध भारी लड़ाई चला रही थी। हिंदुस्तानमे भी

उसकी प्रतिक्रिया हुई थी, किंतु अभी तक यह कर समाप्त न हो सका था। गोखलेजीको बहुत-सी मागोमें इस करको उठानेकी भी माग करनी थी। वे इस प्रकार व्यथित हो उठे थे, जैसे अपने गरीब भाइयों-के ऊपरका यह बोझ स्वयं उन्हीं पर हो। जनरल बोथाके सामने उन्होंने अपने आत्माकी संपूर्ण शक्तिका प्रयोग किया। उनके बोलनेका प्रभाव जनरल बोथा और जनरल स्मट्सपर ऐसा पड़ा कि वे पिघल गए और उन्होंने वचन दिया कि आगामी यूनियन पार्लामेंटमें यह कर रद्द कर दिया जायगा। गोखलेजीने यह खुशखबरी बहुत हर्ष-पूर्वक मुझे दी। इन अधिकारियोंने और भी वचन दिए थे, किंतु अभी हम गिरमिटके विषयपर ही विचार कर रहे हैं, अतः यूनियन सरकारके साथके उनके मिलापका इतना ही अंश मैं यहां देता हूँ। पार्लामेंट बैठी। गोखलेजी तो दक्षिण अफ्रीकामें थे नहीं और दक्षिण अफ्रीकामें बसे भारतीयोंको मालूम हुआ कि तीन पौंडका कर तो नहीं उठाया जा सकता। जनरल स्मट्सने नेटालके सदस्योंको समझानेका थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया था। मेरे हिसाबसे यह काफी न था। भारतीय कौमने यूनियन सरकारको लिखा कि तीन पौंड वाला कर, चाहे जैसे हो, उठानेको यूनियन सरकार गोखलेजीके साथ वचनबद्ध थी। अतः यदि उसने यह कर नहीं उठाया तो जो सत्याग्रह १९०६ से चल रहा था, उसके अंदर इस करकी बात भी दाखिल हो जायगी। दूसरी तरफ तारसे गोखलेजीको खबर दी गई। उन्होंने यह कदम पसंद किया। यूनियन सरकारने भारतीय कौमकी चेतावनीपर ध्यान नहीं दिया। उसका परिणाम सब लोग जानते हैं। गिरमिटमें रहनेवाले ४० हजार भारतीय सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल हुए। उन्होंने हड़ताल की, असह्य दुःख सहन किए, बहुत-से मारे गए, किंतु अंत में गोखलेजीको दिए गए वचनका पालन किया गया और वह कर उठा लिया गया। ('धर्मात्मा गोखले', पृष्ठ २४)

आप लोगोंने मुझे गोखले पुस्तकालयके उद्घाटन और उनके चित्रके अनावरणके लिए बुलाया है। यह काम बहुत पवित्र है और उतना ही गंभीर भी है।

... गोखले नामके भूखे तो न थे। इतना ही नहीं, वरन् उन्हें यह भी अच्छा न लगता था कि उनका मान हो। अनेक बार मान मिलते समय वे नीचे देखने लगते। यदि ऐसा माना जाता हो कि गोखलेके चित्रके अनावरणसे ही उनकी आत्माको शांति मिलेगी तो यह धारणा सच्ची नहीं। मरते समय उस महात्माने अपना आदर्श कह सुनाया था, और वह यह कि मेरे बाद मेरा जीवनचरित लिखा जायगा या मेरे लिए स्मारक बनेगा और गोक-प्रदर्शक मभाए होंगी, किंतु उससे मेरी आत्माको शांति मिलनेवाली नहीं है। मेरी यही अभिलाषा है कि मेरा जीवन ही समस्त हिंदूका जीवन बने और भारत-सेवक-नमिति की प्रगति हो। इस वसीयतनामेको जो लोग मजूर करने हो, उन्हें गोखलेका चित्र रखनेका अधिकार है।

गोखलेके जीवनका विस्तार विगल है। उनके जीवनके कुछ कौटुंबिक प्रसंग आज यहा आई हुई बहनोको सुनाऊंगा। यह बात बहनोके याद रखने लायक है कि गोखलेने अपने कुटुंबकी सेवा अच्छी तरह की है। उनका आचरण ऐसा न था कि जिससे कुटुंबके लोगोका जी दुखे। जैसा कि आज हिंदू-संसारमे गुडियाके विवाहकी भांति लडकीको आठ बरसकी करके उसे दरियामे धकेल दिया जाता है, वैसा गोखलेने नहीं किया। उनकी लडकी अभी कुमारी है। उसे ऐसा रखनेमे उन्होंने बहुत सहन-शीलता दिखाई है। इसके सिवा भरी जवानीमे उनकी पत्नी चल बसी थी। फिरसे उन्हें पत्नी मिल सकती थी, किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कुटुंब-सेवा तो उन्होंने अनेक प्रकारसे की है और सामान्य रूपमे तो सभी लोग कुटुंब-सेवा करते होंगे, किंतु स्वार्थ-दृष्टिसे और स्वदेग-हितकी वृत्तिसे, दो प्रकारमे कुटुंब-सेवा होती है। गोखले ने स्वार्थवृत्तिको तिला-

जलि दे दी थी। कुटुंबके प्रति, उसके बाद ग्रामके प्रति और अनंतर देशके प्रति, इस प्रकार जिस समय जो प्रसंग आया, वैसे ही कर्तव्यका पालन उन्होंने सपूर्ण साहस, लगन और श्रमसे किया।

गोखलेके मनमें हिंदू-मुसलमानका भेद-भाव न था। वे सभीको समदृष्टिसे और स्नेह-भावसे देखते थे। कभी-कभी वे गुस्सा भी हो जाते थे, किंतु उनका वह क्रोध स्वदेश-हितसे सबध रखनेवाला और सामनेवालेके मनपर अच्छा ही असर डालनेवाला सिद्ध होता था। वह गुस्सा ऐसा था कि उसके असरसे बहुत-से यूरोपियन भी, जो शत्रुता प्रकट करते थे, घनिष्ट मित्र-जैसे बन गए थे।

गोखलेके समग्र जीवनपर दृष्टि डालनेवालेको मालूम होगा कि उन्होंने अपना सारा जीवन स्वदेश-सेवामय बना दिया था। पचास वर्षके अंदरकी उम्रमें ही वे इस नश्वर जगत्को छोड़कर चले गये। इसका कारण यही है कि वे दिनके चौबीसो घंटे मानसिक और शारीरिक शक्ति बहुत श्रमपूर्वक स्वदेश-सेवामें खर्च करते थे। उनके मनमें ऐसी सकुचित भावना न थी कि मैं स्वहित या स्वकुटुंबके लिए क्या करके जा रहा हूँ, किन्तु देशके लिए क्या करके जा रहा हूँ, ऐसी ही उनकी भावना थी।

हमारे हिंदूके एक समर्थ बलरूप अत्यजवर्गके उद्धारका प्रश्न भी महात्मा गोखलेको रोज खटकता था और उनकी उन्नतिके लिए बहुत-से कार्य उन्होंने किये थे। कोई उनके वैसे करनेपर आपत्ति करता तो वे स्पष्ट शब्दोंमें कह देते कि हमारे भाई अत्यजको छूनेसे हम अप्रष्ट नहीं होते, किंतु न छूनेकी दुष्ट भावनासे ही घोर पापमें गिरते हैं।...

उमरेठके नेताओंका कर्तव्य है कि अपने देशी उद्योगोंको पनपावे और उन्हें उत्तेजन दे। यदि ऐसी भावना न हो तो उन्हें गोखले-जैसे परमार्थी सतका चित्र रखनेका हक नहीं। महात्मा गोखलेके प्रति वे

सद्भाव प्रदर्शित करते हैं और उनके कर्तव्यको उमरेठ जान गया है, वह सतोषकी वान है।*

उन्हीं दिनों स्वर्गीय गोखले दक्षिण अफ्रीका आए। तब हम फार्मपर ही रहते थे। उस प्रवासके वर्णनके लिए एक स्वतंत्र अध्याय की जरूरत है। अभी तो एक कड़वा-मीठा सस्मरण है, उसीको यहाँ लिख देता हूँ। फार्ममें खाटके जैसी कोई वस्तु ही नहीं थी। पर गोखलेजीके लिए हम एक खाट मागकर लाए। वहाँपर ऐसा एक भी कमरा नहीं था, जिनमें रहकर उन्हें पूरा एकांत मिल सके। बैठनेके लिए पाठशालाके बेच थे। पर इस स्थितिमें भी कोमल शरीरवाले गोखलेजीको फार्मपर बिना लाए हम कैसे रह सकते थे? और वह भी उसे बिना देखे क्योंकर रह सकते थे? मेरा खयाल था कि उनका शरीर एक रातभरके लिए कष्ट उठा सकेगा और वह स्टेजनमें फार्मतक करीब डेढ़ मील पैदल भी चल सकेंगे। मैंने उन्हें पहले हीसे पूछ रक्खा था। अपनी सरलताके कारण उन्होंने बिना विचारे मुझपर विश्वास रख सब व्यवस्थाको कबूल भी कर लिया था। सयोगसे उसी दिन वारिश आगई। ऐन वक्तपर एकाएक मैं भी कोई फेरफार नहीं कर पाया। इस तरह अज्ञानमय प्रेमके कारण मैंने उनको उस दिन जो कष्ट दिया, वह कभी नहीं भुलाया जा सकता। वह भारी परिवर्तनको तो कदापि नहीं सह सकते थे। उन्हें खूब जाड़ा लगा। खाना खानेके लिए पाकशालामें भी उन्हें नहीं ले जा सके। मि० कैलनदेकके कमरेमें उन्हें रक्खा गया था। वहाँ पहुँचते-पहुँचते तो सब खाना ठंडा हो जाता। उनके लिए खुद मैं 'सूप' बना रहा था और भाई कोतवालने रोटियाँ बनाईं। पर यह सब गरम कैसे रहे? ज्यो-त्यो करके भोजना-

* नवंबर १९१७ में उमरेठके भारतीयों द्वारा महात्मा गोखलेके नाम पर स्थापित पुस्तकालयका उद्घाटन-भाषण)

ध्याय समाप्त हुआ। पर उन्होंने मुझे एक शब्द भी नहीं कहा। हा, उनके चेहरेपरसे मैं सबकुछ और अपनी मूर्खताको भी जान गया। जब देखा कि हम सब जमीनपर सोते थे तब तो उन्होंने भी खाटको अलग कर दिया और अपना विस्तर जमीनपर ही लगवा लिया। रातभर मैं पडा-पडा पश्चात्ताप करता रहा। गोखलेजीको एक आदत थी, जिसे मैं कुटेव कहता था, वह केवल नौकरसँ ही काम लेते थे। ऐसे लंबे प्रवासोमें वह नौकरोको साथ नहीं रखते थे। मि० कैलनबेकने और मैंने कई बार उनके पैर दवा देनेके लिए प्रार्थना की, पर वह टस-से-मस नहीं हुए। अपने पैरोको हमें स्पर्शतक नहीं करने दिया। उल्टा कुछ गुस्सेमें और कुछ हँसीमें कहा—“मालूम होता है, आप सब लोगो में समझ रक्खा कि दुःख और कष्ट उठानेके लिए केवल आप ही पैदा हुए हैं और मुझ-जैसे आपको केवल कष्ट देनेके लिए। लो, भुगतो अब अपनी ‘अति’ की सजा। मैं तुम्हें अपने शरीरको स्पर्श तक नहीं करने दूंगा। आप सब लोग तो नित्य-क्रियाके लिए मैदानमें जावेंगे और मेरे लिए कमोड रख छोड़ा है। क्यों? खैर, परवाह नहीं। आज तो मैं जरूर आपका गर्व दूर करूंगा, चाहे इसके लिए कितना ही कष्ट हो।” यह वचन तो वज्रके समान थे। कैलनबेक और मैं दोनों उदास हो गए। पर उनके चेहरे पर कुछ-कुछ हँसी भी थी। बस यही हमें आश्वासन दे रही थी। अर्जुनने अज्ञानवश श्रीकृष्णको कितना ही कष्ट क्यों न दिया हो, पर क्या यह सब श्रीकृष्णने याद रक्खा होगा? गोखलेजीने तो केवल सेवाको ही याद रक्खा और खूबी यह कि सेवा तो करने भी न दी। मोबासासे लिखा हुआ उनका वह प्रेम-भरा पत्र मेरे हृदयपर अंकित है। उन्होंने आप कष्ट उठा लिया, पर हम उनकी जो सेवा कर सकते थे, वह भी उन्होंने नहीं करने दी। हमारा बनाया भोजन तो खैर खाना ही पड़ा, नहीं तो और करते ही क्या।

दूसरे दिन सुबह न तो उन्होंने खुद ही आराम लिया, न हमें लेने दिया। उनके भापणोको, जिन्हें हम पुस्तक रूपमें छपानेवाले थे, उन्होंने बुद्ध

किया। उन्हें कुछ भी लिखना होता तो पहले वह उहासे वहातक टहलते-टहलते विचार कर लेते। उन्हें एक छोटा-सा पत्र लिखना था। मेरा ज़्याला था कि वह फौरन लिख डालेगे, पर नहीं। मैंने टीका की, इसलिए मुझे व्याख्यान सुनना पडा। “मेरा जीवन तुम दया जानो। मैं छोटी-से-छोटी बातमें भी जल्दी नहीं करता। उसपर विचार कन्ता हू। उनके मध्यविदुपर ध्यान देता हू, विषयोचित भाषा गढता हू और फिर कही लिखता हू। इस तरह यदि सभी करे तो कितना समय बच जाय और समाजका कितना लाभ हो। आज समाजको जो इन अपरिपक्व विचारोने कारण हानि उठानी पडती है उससे वह बच जाय।” (द० ग० स०, १९२५)

गोखलेजी तथा अन्य नेताओसे मैं प्रार्थना कर रहा था कि वे दक्षिण अफ्रीका आकर उहाके भारतीयोकी स्थितिका अध्ययन करे। इस बातमे पूरा-पूरा सदेह था कि कोई आवेगा भी या नहीं। मि० रिच भी किसी नेताको भेजनेकी कोशिश कर रहे थे। पर ऐसे नमयमे वहा आनेकी हिम्मत कौन कर सकता था जब लडाई बिलकुल मद हो गई हो? सन् १९११ मे गोखले इंग्लैडमे थे। दक्षिण अफ्रीकाके युद्धका अध्ययन तो उन्होने अवश्य ही कर लिया था, बल्कि धारासभाओमे चर्चा भी की थी। गिरमिटि-याओको नेटाल भेजना बंद करनेका प्रस्ताव उन्होने धारासभामे पेश किया था, जो स्वीकृत भी हो गया था। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार बराबर जारी था। भारत-सचिवके साथ वह इस विषयमे कुछ मगविरा कर रहे थे और उन्होने दक्षिण अफ्रीका जाकर उस प्रश्नका ठीक-ठीक अध्ययन करनेकी इच्छा भी प्रकट की थी। भारत-सचिवने उनके इस विचारको पसंद भी किया था। गोखलेजीने छ सप्ताहके प्रवासकी योजना और कार्यक्रम बनानेके लिए मुझे लिख भेजा और साथ ही वह अंतिम तारीख भी लिख भेजी, जब वह दक्षिण अफ्रीकासे विदा होना चाहते थे। उनके

शुभागमनकी वार्त्ता पढकर हमे तो इतना आनद हुआ कि जिसकी हद नही। आजतक किसी नेताने दक्षिण अफ्रीकाका सफर नही किया था। दक्षिण अफ्रीकाकी तो ठीक, पर प्रवासी भारतवासियोंकी दशाका अवलोकन और ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे भी किसी विदेशी रियासतकी यात्रा तक नही की थी। इसलिए गोखले-जैसे महान् नेताके शुभागमनके महत्वको हम सब पूरी तरह समझ गए। हमने यह निश्चय किया कि गोखलेजीका ऐसा स्वागत-सम्मान किया जाय जैसा अब तक वादगाहका भी न हुआ हो। यह भी तय हुआ कि दक्षिण अफ्रीकाके मुख्य-मुख्य शहरोंमें भी उन्हें ले जाना चाहिए। सत्याग्रही और दूसरे भी उनके स्वागतकी तैयारियों में बड़े उत्साहपूर्वक काम करने लगे। गोरोंको भी इस स्वागतमें भाग लेनेके लिए निमन्त्रित किया गया था और लगभग सभी जगह वे शामिल भी हुए थे। यह भी निश्चय किया गया कि जहा-जहा सार्वजनिक सभाएँ हो, उन-उन शहरोंके मेयरोंको, यदि वे स्वीकार करे तो, अध्यक्ष-स्थान दिया जाय। साथ ही जहातक हो सके, कोशिश करके प्रत्येक गहरमें सभा-स्थानके लिए वहाके टाउन हॉलका ही उपयोग किया जाय। हमने यह निश्चय कर लिया कि रेलवे-विभागकी इजाजत प्राप्त करके मुख्य-मुख्य स्टेशनोंको भी सजाया जाय। तदनुसार कितने ही स्टेशनोंको सजानेकी इजाजत भी हमें मिल गई। यद्यपि सामान्यतया ऐसी इजाजत नही दी जाती, पर हमारी स्वागतकी तैयारियोंका असर सत्ताधिकारियों-पर भी पडा। इसलिए उन्होंने भी जितनी उनसे बन पडी, सहानुभूति दिखाई। मसलन केवल जोहान्सबर्गके स्टेशनको सजानेमें ही हमें लगभग १५ दिन लग गये। वहा हम लोगोंने एक सुंदर प्रवेश-द्वार बनाया था।

दक्षिण अफ्रीकाके विषयमें बहुत कुछ जानकारी तो उन्हें इंग्लैंडमें ही मिल चुकी थी। भारत-सचिवने दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको गोखलेका दरजा, साम्राज्यमें उनका स्थान, इत्यादि पहले ही बता दिया था।

किंतु स्टीमर कपनीमें टिकट तथा व्यवस्था आदि करनेकी बात किसीको कैसे सूझ सकती थी ? गोखलेजीकी तवियत नाजुक थी । इसलिए उनको अच्छी कैबिन और एकातकी बड़ी आवश्यकता रहती, पर उन्हें तो साफ उत्तर मिल गया कि ऐसी कैबिन है ही नहीं । मुझे ठीक-ठीक पता नहीं है कि स्वयं गोखलेजीने या उनके और किसी मित्रने इंडिया आफिसमें इस बातकी इत्तिला की । पर कपनीके डायरेक्टरके नान इंडिया आफिसकी तरफसे पत्र पहुंचा । और जहां कोई कैबिन ही नहीं थी वही उनके लिए एक बढ़िया कैबिन तैयार हो गई । उस प्रारम्भिक कटुताका अंत इस मधुरताके साथ हुआ । स्टीमरके कैप्टनको भी गोखलेजीका बढ़िया स्वागत करनेके लिए सूचना पहुंची थी । इसलिए उनके इस सफरके दिन बड़ी शांति और आनंदके साथ बीते । गोखले उतने ही आनंद और वित्तोदशील भी थे, जितने वह गभीर थे । स्टीमरके खेल बगैरहमें वह खूब भाग लेते थे । इसलिए स्टीमरके मुसाफिरोमें वह बड़े प्रिय हो गए । गोखलेजीको यूनियन सरकारका यह विनय-संदेश भी पहुंचा कि वह यूनियन सरकारके महमान हो और रेलवेके स्टेट सेलूनमें ही सफर करे, किंतु स्टेट सेलूनका तथा प्रिटोरियामें सरकारी महमान होना स्वीकार करनेका निश्चय उन्होंने मेरे साथ मशविरा करनेके बाद किया ।

जहाजसे वह केपटाउनमें उतरनेवाले थे । उनका मिजाज तो मेरी अपेक्षासे भी अधिक नाजुक साबित हुआ । वह एक खास तरहका भोजन ही कर सकते थे । अधिक परिश्रम भी नहीं उठा सकते थे । निश्चित कार्य-क्रम भी उनके लिए असह्य हो गया । जहां तक हो सका उसमें परिवर्तन किया गया । जहां कहीं परिवर्तन नहीं हो सका, वहां स्वास्थ्य विगडनेकी आशका होते हुए भी उन्होंने उसे कबूल कर लिया । मुझे इस बातका बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि उनसे बिना पूछे ही मैंने इतना सख्त कार्य-क्रम क्यों तैयार कर डाला । कार्य-क्रममें कितनी ही जगह परिवर्तन किया गया, पर अधिकांश तो ज्यों-का-त्यों ही रखना पड़ा । यह बात मेरे खयालमें

नहीं आई थी कि उन्हें एकातकी अत्यन्त आवश्यकता रहती है। अतः एकात स्थानका प्रवध करनेमें मुझे ज्यादा-से-ज्यादा कठिनाई हुई। पर साथ ही नम्रता-पूर्वक मुझे यह तो सत्यके लिए जरूर कहना पड़ेगा कि बीमार और बुजुर्गोंकी सेवा करनेका मुझे खास अभ्यास और शौक भी था। इसलिए अपनी मूर्खताका ज्ञान होनेके बाद मैं उसमें इतना सुधार कर सका था कि उन्हें बहुत काफी एकात और शांति भी मिल सकी। प्रवासमें शुरूसे आखिर तक उनके मन्त्रीका काम स्वयं मैंने ही किया। स्वयं-सेवक भी ऐसे थे जो साय-साय करती अवेरी रातमें भी चिट्ठीका उत्तर ला सकते थे। इसलिए मेरा खयाल है कि उन्हें सेवकोंके अभावके कारण कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ा होगा। कैलनवेक भी इन स्वयंसेवकोंमें थे।

यह तो प्रकट ही था कि केपटाउनमें बढ़िया-से-बढ़िया सभा होनी चाहिए। श्राइनर कुटुम्बके डब्ल्यू० पी० श्राइनरसे अध्यक्ष-स्थान स्वीकार करनेके लिए प्रार्थना की गई। हमारी प्रार्थनाको उन्होंने मजूर कर लिया। विशाल सभा हुई। भारतीय और गोरे भी अच्छी तादादमें आए। मि० श्राइनरने मधुर शब्दोंमें गोखलेजीका स्वागत किया और दक्षिण अफ्रीका-के भारतीयोंके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। गोखलेजीका भाषण छोटा, परिपक्व विचारोंसे भरा हुआ और दृढ़ था, किंतु विनयपूर्ण भी ऐसा था कि जिसने भारतीयोंको प्रसन्न कर दिया और गोरोंका दिल भी चुरा लिया। गोखलेजीने जिस दिन दक्षिण अफ्रीकाकी भूमिपर पैर रक्खा उसी दिन वहाकी पचरगी प्रजाके हृदयमें उन्होंने अपना स्थान प्राप्त कर लिया।

केपटाउनसे जोहान्सबर्ग जाना था। रेलसे दो दिनका प्रवास था। युद्धका कुरुक्षेत्र ट्रान्सवाल था। केपटाउनसे आते समय राहमें हमें ट्रान्सवालके बड़े सरहद्दी स्टेशन क्लार्कस्डार्प पर से गुजरना पड़ता था। खास क्लार्कस्डार्प तथा राहमें आनेवाले अन्य शहरोंमें भी ठहरकर हमें सभाओंमें जाना था। इसलिए क्लार्कस्डार्पसे एक स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था की गई।

दोनो शहरोमे वहाके मेयर ही अव्यक्ष थे । किमी भी शहरको एक घटेसे अधिक समय नही दिया गया था । ट्रेन जोहान्सवर्ग विलकूल ठीक समय पर पहुची । एक मिनटका भी फर्क नही पडने पाया । स्टेगनपर खासे कालीन वगैरह विछाए गए थे । एक मंच भी बनाया गया था । जोहान्सवर्गके मेयर और दूसरे अनेक गोरे भी हाजिर थे । गोखलेजी जितने दिन जोहान्सवर्गमे रहे, उतने दिन तक उनके उपयोगके लिए मेयरने उन्हे अपनी मोटर दे दी थी । स्टेगनपर ही उन्हे मानपत्र नी दिया गया । प्रत्येक स्थानपर मान-पत्र तो दिए ही जाते थे । जोहान्सवर्गका मानपत्र बडा सुंदर था । दक्षिण अफ्रीकाकी लकडीपर जटी हुई मोनेकी हृदयाकार तस्तीपर खुदा हुआ था—तस्तीका सोना भी जोहान्सवर्गकी खान का ही था । लकडीपर भारतके कितने ही दृष्योंके सुंदर चित्र खुदे हुए थे । गोखलेजीका परिचय, मानपत्रको पढना और उसका उत्तर दिया जाना तथा अन्य मानपत्रोका लेना यह सब काम २२ मिनटके अंदर कर लिए गए थे । मानपत्र इतना छोटा था कि उसे पढनेमे पांच मिनटसे अधिक समय नही लगा होगा । गोखलेजीका उत्तर भी पांच ही मिनटका था । स्वयंसेवकोका इतना इतना बढ़िया था कि पूर्व निश्चित मनुष्योंके सिवा एक भी आदमी प्लेटफार्मपर नही आ सका । शोर-गुल जरा भी नही था । बाहर लोगोकी खूब भीड़ थी । फिर भी किसीके आने-जानेमे कोई कठिनाई नही हुई ।

उनके ठहरनेकी व्यवस्था मि० कैलनवेकके एक छोटे-से सुंदर बगलेमें की गई थी, जो जोहान्सवर्गसे पांच मीलकी दूरी पर एक टेकडीपर था । वहाका दृश्य ऐसा भव्य था, वहाकी शांति ऐसी आनंददायक थी और बगला सादा होते हुए भी कलासे इतना परिपूर्ण था कि गोखलेजी खुश हो गए । मिलने-जुलनेकी व्यवस्था सबके लिए शहरमें ही की गई थी । उसके लिए एक खास आफिस किरायेपर ले लिया गया था । उनमे एक कमरा केवल उनके आराम करनेके लिए रखा गया था, दूसरा मिलने-

जुलनेके लिए और तीसरा कमरा मिलने आने वाले सज्जनोके बैठनेके लिए। जोहान्सबर्गके कितने ही प्रसिद्ध गृहस्थोसे खानगी मूलाकात करनेके लिए भी गोखलेजीको ले गए थे। गण्यमान्य गोरोकी भी एक खानगी सभा की गई थी, जिससे गोखलेजीको उनके दृष्टि-बिंदुका पूरी तरह खयाल हो जाय। इसके अलावा जोहान्सबर्गमें उनके सम्मानार्थ एक विशाल भोज भी दिया गया था, जिसमें कोई ४०० आदमियोंको निमंत्रित किया गया था। उनमें लगभग १५० गोरे थे। भारतीय टिकिट लेकर आ सकते थे। टिकिटकी कीमत एक गिनी रखी गई थी। टिकिटकी आयमेसे उस भोजका खर्च निकल आया। भोज केवल निरामिष और मद्यपान-रहित था। खाना भी केवल स्वयंसेवको द्वारा ही बनाया गया था। इसका वर्णन यहाँ करना कठिन है। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोमें हिंदू-मुसलमान, छूत-अछूत आदिका कोई खयाल ही नहीं होता। सब एकसाथ बैठकर खा लेते हैं। निरामिष आहार करनेवाले भारतीय भी अपने नियमका पालन करते हैं। भारतीयोमें कितने ही क्षत्रिय भी थे। दूसरोकी तरह उनसे भी मेरा तो गाढ परिचय था। उनमेसे अधिकांश गिरमिटिया माता-पिताकी प्रजा ही होते हैं। कई होटलोमें खाना पकाने और परोसनेका काम करते हैं। इन्ही लोगोकी हतासे इतने मनुष्योकी रसोईकी व्यवस्था हो सकी। तरह-तरहके कोई पद्रह व्यंजन थे। दक्षिण अफ्रीकाके गोरोके लिए यह एक नवीन और ग्रीब अनुभव था। इतने भारतीयोके साथ एक पक्तिमें खानेके लिए बैठना, निरामिष भोजन करना और मद्यपान बिना काम चलाना ये तीनों अनुभव उनमेसे कइयोके लिए नवीन थे। दो तो अवश्य ही सबके लिए नवीन थे।

इस सम्मेलनमें गोखलेजीका बड़े-से-रूढ़ और महत्वपूर्ण भाषण हुआ। पूरे ४५ मिनट वह बोले। इस भाषणकी तैयारीके लिए उन्होंने हमारा खूब समय लिया था। पहले उन्होंने अपना जीवनभरका यह निश्चय

सुनाया कि एक तो स्थानीय मनुष्योंके दृष्टि-बिंदुकी अवगणना नहीं होनी चाहिए। दूसरे, जहातक उनसे मिलकर रहा जाय, हम मिलकर रहने-की कोशिश करे। इन दो बातोंको ध्यानमें रखकर मैं उनसे जो कहलाना चाहू वह उन्हें बता दू, पर यह मुझे उन्हें लिखकर देना चाहिए। साथ ही उनकी यह भी बात थी कि इनमेंसे एक भी वाक्य या विचारका वह उपयोग न करे तो मुझे बुरा न मानना चाहिए। लेख न लम्बा होना चाहिए और न छोटा। कोई महत्वपूर्ण बात भी छूटने न पावे। इन धन्य बातोंका खयाल रखते हुए मुझे उनके लिए स्मरणार्थ टिप्पणियां लिखनी पड़ती थी। यह तो मैं सबसे पहले कह देता हू कि उन्होंने मेरी भाषाका तो जरा भी उपयोग नहीं किया। वह तो अंग्रेजीके पारंगत विद्वान् थे। फिर मैं यह आशा भी क्यों करू कि वह मेरी भाषाका उपयोग करें। पर मैं यह भी नहीं कह सकता कि उन्होंने मेरे विचारोंका भी उपयोग किया। हा, मेरे विचारोंकी उपयुक्तताको उन्होंने जरूर स्वीकार किया। इसलिए मैंने अपने दिलको समझा लिया कि आखिर उन्होंने मेरे विचारोंका भी किसी तरह उपयोग किया होगा, क्योंकि उनकी विचार-शैली ऐसी अजीब थी कि उससे हमें यही पता नहीं चलता था कि उन्होंने हमारे विचारोंको कहा स्थान दिया है, अथवा दिया भी है, या नहीं। गोखले-जीके सभी भाषणोंके समय मैं हाजिर था, पर मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं कि जिसमें मुझे यह इच्छा हुई हो कि अमुक विरोध या अमुक विचारका उपयोग वह न करते तो अच्छा होता। उनके विचारोंकी स्पष्टता, दृढ़ता, विनय, इत्यादि उनके अथक परिश्रम और सत्यपरायणता-के फल-स्वरूप थे।

जोहान्सवर्गमें केवल भारतीयोंकी एक विराट सभा भी तो हो जाना जरूरी था। मेरा यह आग्रह पहलेसे ही चला आ रहा है कि भाषण मातृ-भाषा ही में अथवा राष्ट्र-भाषा हिंदुस्तानीमें ही होना चाहिए। इस आग्रहके कारण दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंके साथ मेरा अग्रिम मेल और निकट

का सबध हो गया। इसलिए मैं चाहता था कि भारतीयोंकी सभामें गोखले-जी भी हिंदुस्तानीमें भाषण दे तो बड़ा अच्छा हो, किंतु इस विषयमें उनके विचार मैं जानता था। टूटी-फूटी हिंदीसे काम चलाना तो उन्हें पसंदही नहीं था। अर्थात् वह या तो मराठीमें भाषण दे सकते थे या अंग्रेजीमें। मराठीमें भाषण देना उन्हें कृत्रिम मालूम हुआ। यदि मराठीमें बोलते भी तो गुजरातियों तथा उत्तर हिंदुस्तानके निवासी भारतीयोंके लिए उसका अनुवाद करना अनिवार्य था। यदि ऐसा था तो फिर अंग्रेजीमें ही क्यों न बोला जाय? पर मेरे पास एक ऐसी दलील थी, जिसको गोखले-जी स्वीकार कर सकते थे। जोहान्सदरगमें कोकणके कई मुसलमान भी वसते थे। कुछ महाराष्ट्रीय हिंदू भी थे। ये सब गोखलेजीका मराठी भाषण सुननेके लिए बड़े लालायित थे और उन लोगोंने मुझे यह भी कह रक्खा था कि मैं गोखलेजीसे मराठीमें भाषण देनेके लिए अनुरोध करू। इसलिए मैंने गोखलेजीसे कहा, “यदि आप मराठीमें भाषण देंगे तो इन लोगोंको बड़ा आनंद होगा। आप जो कुछ कहेंगे उसका मैं हिंदुस्तानी में अनुवाद करके सुना दूंगा।” यह सुनकर वह जोरसे खिलखिलाकर हँस पड़े। “तुम्हारा हिंदुस्तानीका ज्ञान तो मैंने अच्छी तरह जान लिया, वह तुम्हींको सुवारक हो। पर याद रखो अब तुम्हें मराठीसे अनुवाद करना होगा। भला बताओ तो सही कि इतनी अच्छी मराठी तुम कहासे सीख गए?” मैंने कहा—“जो हाल मेरी हिंदुस्तानीका है वही मराठीके विषयमें भी समझिए। मराठीमें एक अक्षर भी मैं नहीं बोल सकता। पर आप जिस विषयपर आज कुछ कहेंगे उसका भावार्थ मैं जरूर कह दूंगा। आप देखिएगा कि मैं लोगोंके सामने उसका उलट-सुलट अर्थ तो हरगिज नहीं करूंगा। भाषणका अनुवाद करके सुनानेके लिए मैं ऐसे लोग तो आपको अवश्य ही दे सकता हूँ, जो अच्छी तरह मराठी जानते हैं। पर शायद आप इस प्रस्तावको मजूर नहीं करेंगे। इसलिए मुझीको निवाह लीजिए, पर बोलिएगा मराठीमें। कोकणी भाइयोंके साथ-साथ मुझे भी आपकी मराठी

सुननेकी बड़ी अभिलाषा है।” “भाई, अपनी ही टेक रखो। अब यहाँ तुम्हारे ही तो पाले पड़ा हुआ हूँ न? अब कहीं यो थोड़े छुट्टी मिल सकती है।” यह कहकर उन्होंने मुझे खुश कर दिया। इसके बाद जजीवार तक इस तरहकी प्रत्येक नभामे वह मराठी हीमे बोले और मैं खास उन्हीका नियुक्त किया हुआ अनुवादक रहा। मेरा खयाल है कि प्रत्येक भारतीयको यथा-संभव अपनी मातृ-भाषामे अथवा व्याकरण-शुद्ध अंग्रेजीकी वनिस्त्रत व्याकरण-रहित टूटी-फूटी हिंदीहीमे भाषण देना चाहिए। मैं कह नहीं सकता कि यह बात मैं उनको कहा तक समझा सका, किंतु इतना तो मैं जरूर कहूँगा कि मुझे प्रसन्न करनेके लिए उन्होंने दक्षिण अफ्रीकामे तो मराठी हीमे भाषण दिए। मैं यह भी जान सका कि अपने भाषणके बाद उसके प्रभावसे वह खुश भी हुए। दक्षिण अफ्रीकामे अनेक प्रसंगोंपर किए हुए अपने वर्तवसे गोखलेजीने यह वता दिया कि सिद्धांतकी कठिनाई न हो तो मनुष्यको अपने सेवकोंको जरूर राजी रखना चाहिए। यह भी एक गुण है। (द० अ० स०, १९२५)

जोहान्सबर्गसे हमे प्रिटोरिया जाना था। प्रिटोरियामे गोखलेजीको यूनियन सरकारका निमन्त्रण था। तदनुसार होटलमें उनके लिए सुरक्षित जगहमे ही हम ठहरे। यहापर उन्हें यूनियन सरकारके मन्त्रिमंडलसे, जिममे जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे, मिलना था। जैसा कि ऊपर लिख चुका हूँ, मैंने उनका कार्यक्रम ऐसा बनाया था कि उन्हें हमेशा करने योग्य कामोंकी सूचना मैं प्रतिदिन सुबह कर दिया करता था। यदि वह चाहते तो अगली रातको भी वता देता। मन्त्रिमंडलमे मिलनेका काम उत्तरदायित्व-पूर्ण था। हम दोनोंने निश्चय कर लिया था कि मुझ उनके साथ नहीं जाना चाहिए, जानेकी आज्ञा भी नहीं मागनी चाहिए। मेरी उपस्थितिके कारण मन्त्रिमंडल और गोखलेजीके बीचमे जरूर ही एक हद तक परदा पड़ जानेकी संभावना थी। मन्त्रिगण उन्हें न तो पेट-

भर स्थानीय भारतीयोंकी और न मेरी ही ऐसी वाते बता सकते जिनको वे गलत समझते थे । और यदि वे कुछ कहना चाहते तो उसे भी खुबे दिलसे नहीं कह सकते थे, किंतु इसमें एक अस्विधा भी थी । गोखलेजीकी जिम्मेदारी दुगुनी हो जाती थी । यदि किसी बातको वह भूल जाय, या मन्त्रि-मंडलकी तरफसे कोई ऐसी बात कही जाय जिसका उत्तर उनके पास न हो, तो क्या किया जाय ? अथवा भारतीयोंकी तरफसे किसी बातको कबूल करना हो तब क्या किया जाय ? ये दोनों वाते बिना मेरी या दक्षिण अफ्रीकाके किसी जिम्मेदार नेताकी उपस्थितिके कैसे तय हो सकती थी ? पर इसका निर्णय स्वयं गोखलेजीने ही फौरन कर डाला । यही कि मैं उनके लिए शुरूसे आखिर तक सक्षेपमें भारतीयोंकी स्थितिका वृत्तांत लिख दू । उसमें यह भी हो कि भारतीय अपनी मांगोंमें कहातक कम-ज्यादा करनेको तैयार हैं । इसके बाहरकी कोई बात उपस्थित हो तो उसमें गोखलेजी अपना अज्ञान कुबूल कर ले । इस निश्चयके साथ ही वह निश्चित भी हो गए । अब रहा यह कि मैं ऐसा एक कागज तैयार कर लू और वे उसे पढ़ ले । पर पढ़ने इतना समय तो मैंने रक्खा ही नहीं था । कितना ही सक्षेपमें लिखू तो भी १५-२० वर्षका, चार रियासतोंकी भारतीय जनताकी स्थितिका इतिहास मैं १०-२० सफेसे कममें कैसे दे सकता था ? फिर उसके पढ़ लेनेपर उनको कुछ सवाल तो अवश्य ही सूझते । पर उनकी स्मरण-शक्ति जितनी तीव्र थी, उतनी ही उनकी मेहनत करनेकी शक्ति भी अगाध थी । रातभर जागते रहे । पोलकोंको और मुझे भी सोने नहीं दिया । प्रत्येक बातकी पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त कर ली । उलट-सुलट रीतिसे सवाल करके इस बातकी जाच भी कर ली कि वह स्थितिको बराबर समझ गए या नहीं । अपने विचार मेरे सामने कह सुनाये । अंत में उन्हें पूरा सतोष हो गया । मैं तो निर्भय ही था ।

लगभग दो घंटे मन्त्रि-मंडलके पास वह बैठे और वहांसे आनेपर

मुझे कहा, “तुम्हें एक सालके अंदर भारतवर्ष आना है। मर वात्रोका फैसला हो गया है। खूनों कानून रद्द होगा, डिमिशन कानूनमें वर्ष-भेद निकाल दिया जायगा और तीन पीडका कर भी रद्द होगा।” मैंने कहा, “इसमें मुझे पूरा मदेह है। मन्त्रि-मंडलको जितना मैं जानता हूँ, उतना आप नहीं जानते। आपका आशावाद मुझे प्रिय है, क्योंकि स्वयं मैं भी आशावादी हूँ। पर अनेक बातोंमें बोला खानेपर अब मैं इस विषयमें आपके इतनी आशा नहीं रख सकता। पर मुझे भय भी नहीं है। आप वचन ले आए, यही मेरे लिए काफी है। मेरा धर्म तो केवल यही है कि आवश्यकता उपस्थित होने पर युद्ध ठान दूँ और यह सिद्ध कर दूँ कि वह न्याय है। इसकी सिद्धिमें आपको दिया गया वचन हमारे लिए बड़ा फायदेमंद होगा। और यदि लड़ना ही पड़ा तो वह हमें दूनी शक्ति देगा। पर मुझे न तो इस बातका विश्वास होता है कि बिना अधिक तादादमें भारतीयोंके जेल गए इसका निवटारा हो सकता है और न इस बातका भी कि एक सालके अंदर मैं भारतवर्ष जा सकूँगा।” तब वह बोले, “मैं तुम्हें जो कुछ कहता हूँ इसमें कभी फर्क नहीं हो सकता। जनरल बोयाने मुझे वचन दिया है कि खूनों कानून और वह तीन पीडवाला कर भी रद्द होगा। तुम्हें एक सालके अंदर भारत लौटना ही होगा। मैं अब इस विषयमें तुम्हारी एक भी दलील नहीं सुनूँगा।”

जोहान्सवर्गका भाषण प्रिटोरियाकी मुलाकातके बाद हुआ था।

ट्रान्सवालसे डरवन, मैरिट्सवर्ग आदि स्थानोंको गए। वहाँ कई गोरोसे काम पड़ा। कैम्बरलीकी हीरोकी खान देखी। कैम्बरली और डरवनके स्वागत-मंडलोंमें भी जोहान्सवर्गके जैसे भोज दिए थे। उनमें अनेक अंग्रेज भी आए थे। इस तरह भारतीयों और गोरोका दिल चुरा कर गोखलेजीने दक्षिण अफ्रीकाका किनारा छोड़ा। उनकी आज्ञा प्राप्त कर कैलनवेक और मैं उन्हें जजीवार तक छोड़नेके लिए गए थे। स्टीमरमें उनके लिए ऐसे भोजनकी व्यवस्था कर दी गई जो उनको

मुआफिक हो। रास्तेमें डेलागोआ वे, इन्हामवेन, जजीवार, आदि बदरगाहोपर भी उनका बड़ा सम्मान किया गया।

रास्तेमें हमारे बीच जो बातें होती उनका विषय भारतवर्ष और उसके प्रति हमारा धर्म ही रहता। प्रत्येक बातमें उनका कोमल भाव, सत्यपरायणता, स्वदेशाभिमान चमकता था। मैंने देखा कि स्टीमरमें वह जो खेल खेलते उनमें भी खेलोकी वनिस्वत भारतवर्षकी सेवाका भाव, ही विशेष रहता। भला उनके खेलमें भी सपूर्णता क्यों न हो।

स्टीमरमें शांतिके साथ बातें करनेके लिए हमें समय मिल ही गया। उसमें उन्होंने मुझे भारतवर्षके लिए तैयार किया। भारतवर्षके प्रत्येक नेताका पृथक्करण करके दिखाया। वे वर्णन इतने हूबहू थे कि मुझे बादमें उन नेताओंका जो प्रत्यक्ष अनूभव हुआ, उसमें और उसके चरित्र-चित्रणमें शायद ही कोई फर्क दिखाई दिया।

गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासमें उनके साथ मेरा जो सबध रहा, उसके ऐसे कितने ही पवित्र संस्मरण हैं, जिनको मैं यहाँ दे सकता हूँ, किंतु सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका कोई सबध नहीं है। इसलिए मुझे अनिच्छापूर्वक अपनी कलमको रोकना पड़ता है। जजीवारमें हमारा जो वियोग हुआ वह हम दोनोंके लिए बड़ा दुखदायी था, किंतु यह सोचकर कि देह-धारियोंके घनिष्ट-से-घनिष्ट सबध भी अतमें टूटते ही हैं, कैलनवेकने और मैंने अपना समाधान किया। हम दोनोंने यह आशा की कि गोखलेजीकी वाणी सत्य हो और हम दोनों एक सालके अंदर ही भारतवर्ष जा सकें, पर यह असंभव सिद्ध हुआ।

इतना होते हुए भी गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासने हमें अधिक दृढ़ बना दिया। युद्धका जब अधिक रंग चढ़ा तब इस मुलाकातका रहस्य और आवश्यकता हम और भी अच्छी तरह समझे। यदि गोखलेजी दक्षिण अफ्रीका नहीं आते, मन्नि-मडलसे नहीं मिलते तो हम तीन पौडवाले करको अपने युद्धका विषय ही नहीं बना सकते थे। यदि खूनी

कानून रद्द होते ही सत्याग्रह बंद कर दिया जाता तो तीन पाँटके करके लिए हमें नया सत्याग्रह शुरू करना पड़ता और उसमें असम्य कष्ट उठाने पड़ते। इतना ही नहीं, बल्कि इस बातमें भी भारी संदेह था कि लोग उसके लिए शीघ्र तैयार होते भी या नहीं। इस करको रद्द कराना स्वतंत्र भारतीयोंका कर्तव्य था। उसको रद्द करानेके लिए अजिया वगैरह सब उपाय काममें लाये जा चुके थे। सन् १८६५ के सालसे कर दिया जा रहा था। चाहे कितना ही घोर दुःख क्यों न हो, किंतु यदि वह दीर्घकालीन हो जाता है तो लोग उसके आदी हो जाते हैं। फिर उन्हें यह समझाना महा कठिन होता कि उन्हें उसका प्रतिकार करना चाहिए। गोखलेजीको जो वचन दिया गया उसने सत्याग्रहियोंके मार्गको बड़ा सरल बना दिया। या तो सरकारको अपने वचनके अनुसार उस करको रद्द कर देना चाहिए था, या नहीं तो स्वयं वह वचन-भंग ही सत्याग्रहके लिए एक काफी बलवान कारण हो जाता, और हुआ भी ठीक यही। सरकारने एक सालके अंदर उस करको रद्द नहीं किया। यही नहीं, बल्कि यह भी साफ-साफ कह दिया कि वह कर रद्द नहीं किया जा सकता।

इसलिए गोखलेजीके प्रवाससे हमें तीन पाँडवाले करको सत्याग्रहके द्वारा रद्द करानेमें बड़ी सहायता मिली। दूसरे, उनके उस प्रवासके कारण वह दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके एक विशेषज्ञ समझे जाने लगे। दक्षिण अफ्रीका सबधी अब उनके कथनका वजन भी कहीं अधिक बढ़ गया। साथ ही दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले भारतीयोंकी स्थितिका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जानेके कारण वह इस बातको अधिक अच्छी तरह समझ सके कि भारतवर्षको उन लोगोंके लिए क्या करना चाहिए, और उसे यह बात समझानेमें उनकी शक्ति तथा अविकार भी बहुत बढ़ गया। फलतः अब की वार जब युद्ध चेता तो भारतसे धनकी वर्षा होने लग गई। लॉर्ड हार्डिज तकने सत्याग्रहियोंके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट कर उन्हें

उत्साहित किया। भारतसे मि० एण्ड्रूज और मि० पियर्सन दक्षिण अफ्रीका आए। यह सब बिना गोखलेजीके प्रवासके नहीं हो सकता था। (द० अ० स०, १९२५)

मैं गोखलेजीके पास गया। वह फर्ग्यूसन कालेजमें थे। बड़े प्रेमसे मुझसे मिले और मुझे अपना बना लिया। उनका भी यह ही प्रथम परिचय था, पर ऐसा मालूम हुआ मानो हमे पहले मिल चुके हो। सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए, लोकमान्य समुद्रकी तरह। गोखलेजी गंगाकी तरह। उसमें मैं नहा सकता था। हिमालय पर चढ़ना मुश्किल है, समुद्रमें डूबनेका भय रहता है, पर गंगाकी गोदीमें खेल सकते हैं, उसमें डोगीपर चढ़कर तैर सकते हैं। गोखलेजीने खोद-खोदकर वाते पूछी, जैसी कि मदरसेमें भरती होते समय विद्यार्थीसे पूछी जाती है। किस-किससे मिलू और किस प्रकार मिलू, यह बताया और मेरा भाषण देखनेके लिए मागा। मुझे अपने कालेजकी व्यवस्था दिखाई। कहा, “जब मिलना हो, खुशीसे मिलना और डाक्टर भाडारकरका उत्तर मुझे जताना।” फिर मुझे विदा किया। राजनैतिक क्षेत्रमें गोखलेजीने जीते-जी जैसा आसन मेरे हृदयमें जमाया और जो उनके देहातके बाद अब भी जमा हुआ है वैसा फिर कोई न जमा सका। (आ०, १९२७)

पहले ही दिन गोखलेजीने मुझे मेहमान न समझने दिया, मुझे अपने छोटे भाईकी तरह रक्खा। मेरी तमाम जरूरतें मालूम कर ली और उनका प्रवध कर दिया। खुग-किस्मतीसे मेरी जरूरतें बहुत कम थी। सब काम खुद कर लेनेकी आदत डाल ली थी, इसलिए औरोसे मुझे बहुत ही कम काम कराना पड़ता था। स्वावलंबनकी मेरी इस आदतकी, उस समयके मेरे कपड़े-लत्तेकी सुघडताकी, मेरी उद्योगशीलता और

नियमितताकी बड़ी गहरी छाप उनपर पड़ी और वे उसकी इतनी नृत्ति करने लगे कि मैं परेगान हो जाता ।

मुझे यह न मालूम हुआ कि उनकी कोई बात मुझसे गुप्त थी । जो कोई बड़े आदमी उनसे मिलने आते उनका परिचय वह मुझसे कराते थे । इन परिचयोंमें जो आज सबने प्रधानरूपमें मेरी नजरोंके सामने खड़े हो जाते हैं वह हैं डा० प्रफुल्लचंद्र राय । वह गोखलेके मकानके पास ही रहते थे और प्रायः हमेशा आया करते थे ।

“यह है प्रोफेसर राय, जो ८००) मामिक पाते हैं, पर अपने तर्जुमेके लिए सिर्फ ४०) लेकर बाकी सब लोक-सेवामें लगा देते हैं । इन्होंने गान्धी नहीं की, न करना ही चाहते हैं ।” इन शब्दोंमें गोखलेने मुझे उनका परिचय कराया ।

आजके डा० रायमें और उस समयके प्रो० रायमें मुझे थोड़ा ही भेद दिखाई देता है । जैसे कपड़े उस समय पहनते थे आज भी लगभग वैसे ही पहनते हैं । हा, अब खादी आ गई है । उस समय गान्धी तो थी ही नहीं । स्वदेशी मिलोंके कपड़े होंगे । गोखले और प्रो० रायकी बातें सुनते हुए मैं न अघाता था, क्योंकि उनकी बातें या तो देश-हितके सबबमें होनी या होती ज्ञान-वर्चा । कितनी ही बातें दुःख भी होती, क्योंकि उनमें नेताओंको आलोचना भी होती थी । जिन्हें मैं महान् योद्धा मानना सीखा था, वे छोटे दिखाई देने लगे ।

गोखलेकी काम करनेकी पद्धतिसे मुझे जितना आनंद हुआ उतना ही बहुत कुछ सीखा भी । वह अपना एक भी क्षण व्यर्थ न जाने देने थे । मैंने देखा कि उनके तमाम सबब देश-कार्यके ही लिए होते थे । बातें भी तमाम देश-कार्यके ही निमित्त होती थी । बातोंमें कहीं भी मलिनता, दभ या असत्य न दिखाई दिया । हिंदुस्तानकी गरीबी और पराधीनता उन्हें प्रतिक्षण चुभती थी । अनेक लोग उन्हें अनेक बातोंमें दिलचस्पी कराने आते । वे उन्हें एक ही उत्तर देते, “आप इस कामको कीजिए,

मुझे अपना काम करने दीजिए। मुझे देशकी स्वाधीनता प्राप्त करनी है। उसके बाद मुझे दूसरी बातें सूझेंगी। अभी तो इस कामसे मुझे एक क्षणकी भी फुरसत नहीं रहती।”

रानडेके प्रति उनका पूज्य भाव बात-बातमें टपका पड़ता था। ‘रानडे ऐसा कहते थे’—यह तो उनकी बातचीतका मानो ‘सूत-उवाच’ ही था। मेरे वहां रहते हुए रानडेकी जयती (या पुण्यतिथि, अब ठीक याद नहीं है) पड़ती थी। ऐसा जान पड़ा, मानो गोखले सर्वदा उसको मनाते हों। उस समय मेरे अलावा उनके मित्र प्रोफेसर काथवटे तथा दूसरे एक सज्जन थे। उन्हें उन्होंने जयती मनानेके लिए निमंत्रित किया और उस अवसरपर उन्होंने हमें रानडेके कितने ही सस्मरण कह सुनाये। रानडे, तैलंग और माडलिककी तुलना की। ऐसा याद पड़ता है कि तैलंगकी भाषाकी स्तुति की थी। माडलिककी सुधारकके रूपमें प्रशंसा की थी। अपने मवक्किलोकी वह कितनी चिंता रखते थे, इसका एक उदाहरण दिया। एक बार गाड़ी चूक गई तो माडलिक स्पेशल ट्रेन करके गये। यह घटना कह सुनाई। रानडेकी सर्वाङ्गीण शक्तिका वर्णन करके बताया कि वह तत्कालीन अग्रणियोंमें सर्वोपरि थे। रानडे अकेले न्यायमूर्ति न थे। वह इतिहासकार थे, अर्थ-शास्त्री थे। सरकारी जज होते हुए भी कांग्रेसमें प्रेक्षकके रूपमें निर्भय होकर आते। फिर उनकी समझदारीपर लोगोका इतना विश्वास था कि सब उनके निर्णयोको मानते थे। इन बातोंका वर्णन करते हुए गोखलेके हर्षका ठिकाना न रहता था।

गोखले घोड़ा-गाड़ी रखे हुए थे। मैंने उनसे इसकी शिकायत की। मैं उनकी कठिनाइयोको न समझ सका था। “क्या आप सब जगह ट्राममें नहीं जा सकते? क्या इससे नेताओंकी प्रतिष्ठा कम हो जायगी?”

कुछ दुःखित होकर उन्होंने उत्तर दिया, “क्या तुम भी मुझे नहीं पहचान सके? बड़ी धारा-सभासे जो कुछ मुझे मिलता है उसे मैं अपने काममें तही लेता। तुम्हारी ट्रामके सफरपर मुझे ईर्ष्या होती है। पर मैं ऐसा

नहीं कर सकता । जब तुमको मेरे जितने लोग पहचानने लग जावेंगे तब तुम्हें भी ट्राममें बैठना अमभव नहीं तो मुश्किल हो जायगा । नेता लोग जो कुछ करते हैं, केवल ग्रामोद-प्रमोदके ही लिए करते हैं, यह माननेका कोई कारण नहीं । तुम्हारी मादगी मुझे पसन्द है । मैं भरमक सादगीमें रहता हूँ, पर यह बात निश्चित समझना कि कुछ खर्च तो मुझ-जैसाके लिए अनिवार्य हो जाता है ।”

इस तरह मेरी एक शिकायत तो ठीक तरहमें रद्द हो गई, पर मुझे एक दूसरी शिकायत भी थी और उसका वह सतोष-जनक उत्तर न दे सके ।

“पर आप घूमने भी तो पूरे नहीं जाते । ऐसी हालतमें आप बीमार क्यों न रहे ? क्या देग-कार्यसे व्यायामके लिए फुरसत नहीं मिल सकती ?” मैंने कहा ।

“मुझे तुम कब फुरसतमें देखते हो कि जिस समय मैं घूमने जाता ?” उत्तर मिला ।

गोखलेके प्रति मेरे मनमें इतना आदर-भाव था कि मैं उनकी बातोंका जवाब न देता था । इस उत्तरसे मुझे सतोष न हुआ, पर मैं चुप रहा । मैं मानता था और अब भी मानता हूँ कि जिस तरह हम भोजन-पानेके लिए समय निकालते हैं उसी तरह व्यायामके लिए भी निकालना चाहिए । मेरी यह नम्र सम्मति है कि उसमें देग-मेवा कम नहीं, अधिक होती है ।
(आ०, १६२७)

ब्रह्मदेगसे लौटकर मैंने गोखलेमें विदा मागी । उनका वियोग मेरे लिए दुःसह था, परन्तु मेरा बगालका, अथवा सच पूछिए तो यहा कलकत्तेका, काम समाप्त हो गया था ।

मेरा विचार था कि काममें लगनेसे पहले मैं थोड़ा-बहुत मफर तीमरे दर्जेमें करूँ, जिससे तीसरे दर्जेके मुसाफिरोकी हालत मैं जान लूँ और

दुखोको समझ लू। गोखलेके सामने मैंने अपना यह विचार रक्खा। पहले तो उन्होंने इसे हँसीमें ढाल दिया, पर जब मैंने यह बताया कि इसमें मैंने क्या-क्या बातें सोच रखी हैं तब उन्होंने खुशीसे मेरी योजना-को स्वीकार किया। सबसे पहले मैंने काशी जाकर विदुषी ऐनी वेसेटके दर्शन करना तै किया। वह उस समय बीमार थी।

तीसरे दर्जेकी यात्राके लिए मुझे नया साज-सामान जुटाना था। पीतलका एक डिब्बा गोखलेने खुद ही दिया और उसमें मेरे लिए मगदके लहू और पूरी रखवा दी। बारह आनेका एक केनवासका बैग खरीदा। छाया (पोरबंदरके नजदीकके एक गांव) के ऊनका एक लंबा कोट बनवाया था। बैगमें यह कोट, तौलिया, कुरते और धोती रखे। ओढ़नेके लिए एक कवच साथ लिया। इसके अलावा एक लोटा भी साथ रक्खा। इतना सामान लेकर मैं रवाना हुआ।

गोखले और डा० राय मुझे स्टेशन पहुंचाने आये। मैंने दोनोंसे अनुरोध किया था कि वे न आवें, पर उन्होंने एक न सुनी। “तुम यदि पहले दर्जेमें सफर करते तो मैं नहीं आता, पर अब तो जरूर चलूंगा।”— गोखले बोले।

प्लेटफार्मपर जाते हुए गोखलेको तो किसी ने न रोका। उन्होंने सिरपर अपनी रेशमी पगड़ी बांध रखी थी और धोती तथा कोट पहने हुए थे। डा० राय बंगाली लिबासमें थे। इसलिए टिकटवाबूने अदर आते हुए पहले तो रोका, पर गोखलेने कहा—“मेरे मित्र हैं।” तब डा० राय भी अदर आ सके। इस तरह दोनोंने मुझे विदा दी। (आ०, १६२७)

विलायतमें मुझे पसलीके वरमकी शिकायत हो गई थी। इस बीमारी-के वक्त गोखले विलायतमें आ पहुंचे थे। उनके पास मैं व कैलनवेक हमेशा जाया करते। उनसे अधिकांशमें युद्धकी ही बातें हुआ करती। जर्मनीका भूगोल कैलनवेककी जवानपर था, यूरोपकी यात्रा भी उन्होंने

वहुत की थी। इसलिए वह नकशा फैलाकर गोखलेको लडाईकी छावनिया दिखाते ।

जब मैं बीमार हुआ था तब मेरी बीमारी भी हमारी चर्चाका एक विषय हो गई थी । मेरे भोजनके प्रयोग तो उस समय भी चल ही रहे थे । उस समय मैं मूंगफली, कच्चे और पक्के केले, नीबू, जैतूनका तेल, टमाटर, अगूर इत्यादि चीजे खाता था । दूध, अनाज, दाल, वगैरह चीजें विलकुल न लेता था । मेरी देखभाल जीवराज मेहता करते थे । उन्होंने मुझे दूध और अनाज लेनेपर बड़ा जोर दिया । इसकी शिकायत ठेठ गोखलेतक पहुची । फलाहार-सबही मेरी दलीलोके वह बहुत कायल न थे । तदुरस्तीकी हिफाजतके लिए डाक्टर जो-जो बतावे वह लेना चाहिए, यही उनका मत था ।

गोखलेके आग्रहको न मानना मेरे लिए बहुत कठिन बात थी । जब उन्होंने बहुत ही जोर दिया तब मैंने उनसे २४ घंटेतक विचार करनेकी इजाजत मागी । कैलनवेक और मैं घर आए । रास्तेमे मैंने उनके साथ चर्चा की कि इस समय मेरा क्या धर्म है । मेरे प्रयोगमे वह मेरे साथ थे । उन्हें यह प्रयोग पसंद भी था । परंतु उनका रुख इस बातकी तरफ था कि यदि स्वास्थ्यके लिए मैं इस प्रयोगको छोड़ दू तो ठीक होगा । इसलिए अब अपनी अंतरात्माकी आवाजका फैसला लेना ही बाकी रह गया था ।

सारी रात मैं विचारमे डूबा रहा । अब यदि मैं अपना सारा प्रयोग छोड़ दू तो मेरे सारे विचार और मतव्य धूलमे मिल जाते थे । फिर उन विचारोमे मुझे कही भी भूल न मालूम होती थी । इसलिए प्रश्न यह था कि किस अशतक गोखलेके प्रेमके अधीन होना मेरा धर्म है, यथवा शरीर-रक्षाके लिए ऐसे प्रयोग किस तरह छोड़ देने चाहिए । अतको मैंने यह निश्चय किया कि धार्मिक दृष्टिसे प्रयोगका जितना अंश आवश्यक है उतना रक्खा जाय और शेष बातोमे डाक्टरोकी आज्ञाका पालन किया

जाय। मेरे दूध त्यागनेमें धर्म-भावनाकी प्रधानता थी। कलकत्तेमें गाय-भैसका दूध जिन घातक विधियों द्वारा निकाला जाता है, उसका दृश्य मेरी आंखोंके सामने था। फिर यह विचार भी मेरे सामने था कि मासकी तरह पशुका दूध भी मनुष्यकी खुराक नहीं हो सकता। इसलिए दूध-त्यागका दृढ़ निश्चय करके मैं सुबह उठा। इस निश्चयसे मेरा दिल बहुत हलका हो गया था, किंतु फिर भी गोखलेका भय तो था ही, किंतु साथ ही मुझे यह विश्वास था कि वह मेरे निश्चयको उलटनेका उद्योग न करेगा।

शामको 'नेशनल लिबरल क्लब' में हम उनसे मिलने गए। उन्होंने तुरंत पूछा, "क्यों डाक्टरकी सलाहके अनुसार चलनेका निश्चय किया है न?"

मैंने धीरेसे जवाब दिया, "और सब बात मान लूंगा, परंतु आप एक बातपर जोर न दीजिएगा। दूध और दूधकी बनी चीजें और मास, इतनी चीजें मैं न लूंगा, और इनके न लेनेसे यदि मौत भी आती हो तो मैं समझता हूँ उसका स्वागत कर लेना मेरा धर्म है।"

"आपने यह अंतिम निर्णय कर लिया है?" गोखलेने पूछा।

"मैं समझता हूँ कि इसके सिवा मैं आपको दूसरा उत्तर नहीं दे सकता। मैं जानता हूँ कि इससे आपको दुःख होगा, परंतु मुझे क्षमता दीजिएगा।" मैंने जवाब दिया।

गोखलेने कुछ दुःखसे, परंतु बड़े ही प्रेमसे कहा "आपका यह निश्चय मुझे पसंद नहीं। मुझे इसमें धर्मकी कोई बात नहीं दिखाई देती। पर अब मैं इस बातपर जोर न दूंगा।" यह कहते हुए जीवराज मेहताकी ओर मुखातिब होकर उन्होंने कहा—"अब गांधीजीको ज्यादा दिक न करो। उन्होंने जो मर्यादा बांध ली है उसके अंदर उन्हें जो-जो चीजें दी जा सकती हैं, वही देनी चाहिए।"

डाक्टरने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की, पर वह लाचार थे। मुझे

मूगका पानी लेनेकी सलाह दी । कहा, “उसमे हींगका बघार दे लेना ।” मैंने इसे मजूर कर लिया । एक-दो दिन मैंने वह पानी लिया भी, परन्तु इससे उलटे मेरा दर्द बढ गया । मुझे वह मृत्राफिक नहीं हुआ । इससे मैं फिर फलाहारपर आ गया । ऊपरके इलाज तो डाक्टरने जो मुनामिव समझे किए ही । उससे अलवत्ता कुछ आराम था । परन्तु मेरी इन मर्मादाओंपर वह बहुत विगडते । इसी बीच गोखले भारतको खाना हुए, क्योंकि वह लदनका अक्तूबर-नवंबरका कोहरा सहन नहीं कर सके ।
(आ० १९२७)

मेरे बबई पहुचते ही गोखलेने मुझे तुरन्त खबर दी कि बबईके गवर्नर आपसे मिलना चाहते हैं और पूना आनेके पहले आप उनसे मिल आवे तो अच्छा होगा । इसलिए मैं उनसे मिलने गया ।

×

×

×

अब मैं पूना पहुचा । वहाके तमाम सस्मरण लिखना मेरे मामर्थ्यके बाहर है । गोखलेने और भारत-सेवक-समितिके सदस्योंने मुझे प्रेमसे पाग दिया । जहातक मुझे याद है, उन्होंने तमाम सदस्योंको पूना बुलाया था । सबके साथ दिल खोलकर मेरी बातें हुईं । गोखलेकी तीव्र इच्छा थी कि मैं भी समितिमे आजाऊ । इधर मेरी तो इच्छा थी ही, परन्तु उसके सदस्योंकी यह धारणा हुई कि समितिके आदर्श और उसकी कार्य-प्रणाली मुझसे भिन्न थी । इसलिए वे दुविधामे थे कि मुझे सदस्य होना चाहिए या नहीं । गोखलेकी यह मान्यता थी कि अपने आदर्शपर दृढ रहनेकी जितनी प्रवृत्ति मेरी थी उतनी ही दूसरोके आदर्शकी रक्षा करना और उनके साथ मिल जानेका स्वभाव भी था । उन्होंने कहा, “परन्तु हमारे साथी आपके दूसरोको निभा लेनेके इस गुणको नहीं पहचान पाए हैं । वे अपने आदर्शपर दृढ रहनेवाले स्वतन्त्र और निश्चित विचारके लोग हैं । मैं आज्ञा तो यही रखता हू कि वे आपको सदस्य बनाना मजूर

कर लेंगे, परन्तु यदि न भी करे तो आप इससे यह तो हरगिज न समझे कि आपके प्रति उनका प्रेम या आदर कम है। अपने इस प्रेमको अखण्डित रहने देनेके लिए ही वे किसी तरहकी जोखिम उठानेसे डरते हैं, परन्तु आप समितिके वाक्यादयदा सदस्य हो, या न हो, मैं तो आपको सदस्य मानकर ही चलूंगा।”

मैंने अपना सकल्प उनपर प्रकट कर दिया था। समितिका सदस्य बनू या न बनू, एक आश्रमकी स्थापना करके फिनिक्सके साथियोंको उसमें रखकर मैं बैठ जाना चाहता था। गुजराती होनेके कारण गुजरातके द्वारा सेवा करनेकी पूजा मेरे पास अधिक होनी चाहिए, इस विचारसे गुजरातमें ही कहीं स्थिर होनेकी इच्छा थी। गोखलेको यह विचार पसंद आया और उन्होंने कहा—“जरूर आश्रम स्थापित करो। सदस्योंके साथ जो बातचीत हुई है उसका फल कुछ भी निकलता रहे, परन्तु आपको आश्रमके लिए धन तो मुझ ही से लेना है। उसे मैं अपना ही आश्रम समझूंगा।”

यह सुनकर मेरा हृदय फूल उठा। चंदा मागनेकी झंझटसे बचा, यह समझकर बड़ी खुशी हुई और इस विचारसे कि अब मुझे अकेले अपनी जिम्मेदारीपर कुछ न करना पड़ेगा, बल्कि हरेक उलझनके समय मेरे लिए एक पथ-दर्शक यहा है। ऐसा मालूम हुआ मानो मेरे सिरका बोझ उतर गया।

गोखलेने स्वर्गीय डाक्टर देवको बुलाकर कह दिया, “गांधीका खाता अपनी समितिमें डाल लो और उनको अपने आश्रमके लिए तथा सार्वजनिक कामोंके लिए जो कुछ रुपया चाहिए, वह देते जाना।”

अब मैं पूना छोड़कर शांतिनिकेतन जानेकी तैयारी कर रहा था। अंतिम रातको गोखलेने खास मित्रोंकी एक पार्टी इस विधिसे की, जो मुझे रुचिकर होती। उसमें वही चीजे अर्थात् फल और मेवे मगाए थे, जो मैं खाया करता था। पार्टी उनके कमरेसे कुछ ही दूरपर थी। उनकी

हालत ऐसी न थी कि वे बहातक भी आ सकते, परन्तु उनका प्रेम उन्हें कभी रुकने देता । वह जिद करके आए थे, परन्तु उनको गग आ गया और वापस लौट जाना पड़ा । ऐसा गग उन्हें बार-बार आ जाया करता था, इसलिए उन्होंने कहलाया कि पार्टीमें किसी प्रकारकी गडबड न होनी चाहिए । पार्टी क्या थी, समितिके आश्रममें अतिथि-वरके पासके मैदानमें जाजम बिछाकर हम लोग बैठ गये थे और मूंगफली, खजूर वगैरह खाते हुए प्रेम-वार्ता करते थे एव एक-दूसरेके हृदयको अधिक जाननेका उद्योग करते थे ।

किंतु उनकी यह मूर्छा मेरे जीवनके लिए कोई मामूली अनुभव नहीं था । (आ० १६२७)

राजनैतिक क्षेत्रमें मैंने अपने आपको उस महात्माका शिष्य कहा है और मैं उसे राजनैतिक वातावे अपना गुरु मानता हूँ और यह बात मैं भारतवासियोंकी ओरसे कहता हूँ । सन् १८६६ में मैंने अपने शिष्य होनेकी बात कही थी और मुझे अपनी इस पसन्दके लिए कभी दुःख नहीं हुआ ।

मि० गोखलेने मुझे इस बातकी शिक्षा दी थी कि प्रत्येक भारतवासीको, जो अपने देशके प्रेमका दम भरता हो, सदा राजनैतिक क्षेत्रमें कार्य करनेका ध्यान रखना चाहिए । उसे केवल जवानी जमा-खर्च ही नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे देशके राजनैतिक जीवन तथा राजनैतिक संस्थाओंको आध्यात्मिक बनाना चाहिए । उन्होंने मेरे जीवनमें उत्तेजना उत्पन्न की तथा वे अब भी उत्तेजना उत्पन्न कर रहे हैं । उस उत्तेजनमें मैं अपने आपको पवित्र करना चाहता हूँ तथा अपने आपको आध्यात्मिक बनाना चाहता हूँ । मैंने उस आदर्शके लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है । मुझे इसमें विफलता हो सकती है और जिस सीमा तक मुझे उसमें विफलता होगी उस सीमातक मैं अपने आपको अपने गुरुका अयोग्य शिष्य समझूंगा ।

मैं उस महात्मा राजनीतिज्ञके समीप उनके जीवनके अतः समय तक रहा और मैंने उनमें कभी अहंभाव नहीं पाया। जातीय-सेवा-सभाके आप सभासदोंसे मैं प्रश्न करता हूँ कि आप लोगोमें किसी प्रकारका अहंभाव तो नहीं है ? यदि महात्मा गोखलेने कीर्त्तिशाली होना चाहा तो केवल देशके राजनैतिक क्षेत्रमें कीर्त्तिशाली होना चाहा। उनकी यह इच्छा इसलिए नहीं थी कि सर्वसाधारण मेरी प्रशंसा करे, बल्कि यह इच्छा इसलिए थी कि मेरे देशका लाभ—मेरे देशका कल्याण—हो। उन्होंने सर्वसाधारणकी प्रशंसाकी कभी कामना नहीं की थी, पर स्वयं सर्वसाधारण ही उन पर प्रशंसाकी वर्षा करते थे, वे जबरदस्ती उनकी तारीफें करते थे। वे चाहते थे कि मेरे देशका लाभ हो और यही उनका बहुत बड़ा दैवी बल था।

आज आप लोग मुझसे इस चित्रको उद्घाटित करनेके लिए कहते हैं। मैं यह काम पूरी ईमानदारी, हृदयकी पूरी सत्यता और शुद्धताके साथ करूँगा और यही ईमानदारी या हृदयकी शुद्धता जीवनका अंतिम उद्देश्य होना चाहिए।* ('महात्मा गांधी'—रामचंद्र वर्मा, पृष्ठ ४१)

गोखलेकी पुण्यतिथिके अवसरपर उस स्वर्गस्थ महात्माके भाषणों तथा लेखोंका गुजराती अनुवाद प्रकाशित करनेका विचार पहलेपहल मेरे ही मनमें उत्पन्न हुआ था। इसलिए उसके पहले भागकी प्रस्तावना अधिकांशमें मुझको ही लिखना उचित था। हम लोगोंने नियम किया है कि हर साल गोखलेकी पुण्यतिथि मनावेंगे। भजन, कीर्त्तन, व्याख्यान और तदनंतर सभाका विसर्जन—यह हर साल ही होता है। इससे कालक्षेप तो बहुत होता है, पर उससे कोई वास्तविक लाभ नहीं होता। अतः

*बंगलौरमें गोखलेकी मूर्ति-अनावरणके समय प्रकट किये गए उद्गार।

भाषणोंकी अपेक्षा कार्यको अधिक महत्व देने तथा ऐसे उत्सवोंको सर्व-साधारणके लिए सचमुच लाभदायक बनानेके लिए गत वर्ष पुण्य-तिथिके प्रबन्ध-कर्त्ताओंने इस अवसर पर मातृभाषामे कोई उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करना निश्चित किया था । पुस्तक चुननेमें भी देर नहीं लगी । स्वभावतः ही पहली पुस्तक स्वर्गीय गोखले के भाषणोंका संग्रह पसन्दकी गई ।

स्व० गोखलेके विषयमें दो-चार शब्द लिखना ही सच्ची प्रस्तावना हो सकता है, परन्तु गुरुके विषयमें लिख्य क्या लिखे और कैसे लिखे ? उसका लिखना एक प्रकारकी दृष्टतामात्र है । सच्चा लिख्य वही है- जो गुरुमें अपनेको लीन कर दे, अर्थात् वह टीकाकार हो ही नहीं सकता । जो भक्ति दोष देखती हो वह सच्ची भक्ति नहीं और दोषगुणके पृथक्करणमें असमर्थ लेखक द्वारा की हुई गुरु-स्तुतिको यदि सर्वसाधारण अंगीकार न करे तो इसपर उसे नाराज होनेका अधिकार नहीं हो सकता । लिख्यके आचरणो हीसे गुरुकी टीका होती है । गोखले राजनैतिक विषयोंमें मेरे गुरु थे, इस बातको मैं अनेक बार कह चुका हूँ । इस कारण उनके विषयमें कुछ लिखनेमें मैं अपने-को असमर्थ समझता हूँ । मैं चाहें जितना लिख जाऊँ, मुझे थोड़ा ही मालूम होगा । मेरे विचारसे गुरु-शिष्यका सबब शुद्ध आध्यात्मिक सबब है । वह अकशास्त्रके नियमानुसार नहीं होता । कभी-कभी वह हमारे विना जाने भी हो जाता है । उसके होनेमें एक क्षणसे अधिक नहीं लगता, पर एक बार होकर वह फिर टूटना जानता ही नहीं ।

१८६६ ई० में पहले-पहल हम दोनों व्यक्तियोंमें यह सबब हुआ । उस समय न मुझे उनका ख्याल था और न उन्हें मेरा । उसी समय मुझे गुरुजीके भी गुरु लोकमान्य तिलक, सर फिरोजशाह मेहता, जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी, डा० भाडारकर तथा बंगाल और मद्रास प्रांतके और भी अनेक नेताओंके दर्शनोका सौभाग्य प्राप्त हुआ । मैं उस समय बिल्कुल

नवयुवक था, मुझपर सवने प्रेम-वृष्टि को। सबके एकत्र दर्शनका वह प्रसंग मुझे कभी न भूलेगा, परन्तु गोखलेसे मिलकर मेरा हृदय जितना शीतल हुआ उतना ओरोसे मिलनेसे नहीं हुआ। मुझे याद नहीं आता कि गोखलेने मुझपर औरोकी अपेक्षा अधिक प्रेम-वृष्टि की थी। तुलना करनेसे मैं कह सकता हूँ कि डा० भाडारकर ने मुझपर जितना अनुराग प्रकट किया उतना ओर किसीने नहीं किया। उन्होंने कहा—यद्यपि मैं आजकल सार्वजनिक कार्योंमें अलग रहता हूँ, पर फिर भी केवल तुम्हारी खातिर मैं उस सभाका अध्यक्ष बनना स्वीकार करता हूँ, जो तुम्हारे प्रश्नपर विचार करनेके लिए होनेवाली है। यह सब होते हुए भी केवल गोखले हीने मुझे अपने प्रेम-पाशमें आवद्ध किया। उस समय मुझे इस बातका बिल्कुल ज्ञान नहीं हुआ। पर सन् १९०२ वाली कलकत्तेकी कांग्रेसमें मुझे अपने शिष्य-भावका पूरा-पूरा अनुभव हुआ। उपर्युक्त नेताओंसे अनेकके दर्शनोका उस समय मुझे फिर सौभाग्य प्राप्त हुआ। किन्तु मैंने देखा कि गोखलेको मेरी याद वनी हुई थी। देखने ही उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया। वे मुझे अपने घर खींच ले गए। मुझे भय था कि विषय-निर्वाचिनी-समितिमें मेरी बात न सुनी जायगी। प्रस्तावोकी चर्चा शुरू हुई और खतम भी हो गई, पर मुझे अततक यह कहनेका साहस न हुआ कि मेरे मनमें भी दक्षिण अफ्रीका सबधी एक प्रश्न है। मेरे लिए रातको कौन बैठा रहता ! नेतागण कामको जल्दी निपटानेके लिए आतुर हो गए। उनके उठ जानेके डरसे मैं कापने लगा। मुझे गोखलेको याद दिलानेका भी साहस न हुआ। इतनेमें वे स्वयं ही बोले—मि० गांधी भी दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंकी दशाके सबधमें एक प्रस्ताव करना चाहते हैं। उम पर अवश्य विचार किया जाय। मेरे आनदकी सीमा न रही। राष्ट्रसभाके सबधमें मेरा यह पहला ही अनुभव था। इसलिए उससे स्वीकृत होनेवाले प्रस्तावोका मैं बड़ा महत्त्व समझता था। इसके बाद भी उनके दर्शनके कितने ही अवसर उपस्थित हुए और वे सभी पवित्र हैं। पर इस समय जिस बातको मैं उनका महामन्त्र

मानता हूँ, उसका उल्लेखकर, इन प्रस्तावनाको पूर्ण करना उत्तम होगा ।

इस कठिन कलिकालमें किसी विरले ही मनुष्यमें शुद्ध धर्मभाव देख पड़ता है । ऋषि, मुनि, साधु आदि नाम धारणकर भटकते फिरने-वालोंको इस भावकी प्राप्ति शायद ही कभी होती है । आजकल उनका धर्म-रक्षक पदसे च्युत हो जाना सभी लोग देख रहे हैं । यदि एक ही मुदर वाक्यमें धर्मकी पूरी व्याख्या कही है तो वह भक्त-शिरोमणि गुजराती कवि नरसिंह मेहताके इस वाक्यमें है

“ज्या लगी आतमा तत्व चीन्यो नहीं, त्या लगी साधना सर्व जूठी ।”

अर्थात्—जबतक आत्मतत्त्वकी पहचान न हो तबतक सभी साधनाएँ निरर्थक हैं । यह वचन उसके अनुभव-सागरके मथनसे निकला हुआ रत्न है । इससे ज्ञात होता है कि महातपस्वी तथा योगी जनोमें भी (मच्छा) धर्मभाव होना अनिवार्य नहीं है । गोखलेको आत्मतत्त्वका उत्तम ज्ञान था, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं । यद्यपि वे सदा ही धार्मिक आडंबरमें दूर रहे, फिर भी उनका संपूर्ण जीवन धर्ममय था । भिन्न-भिन्न युगोंमें मोक्ष-मार्ग पर लगानेवाली प्रवृत्तियाँ देखी गई हैं । जब-जब धर्मवचन ढीला पड़ता है तब-तब कोई एक विशेष प्रवृत्ति धर्म-जागृतिमें विशेष उपयोगी होती है । यह विशेष प्रवृत्ति उस समयकी परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है । आजकल हम अपनेको राजनैतिक विषयोंमें अवनत देखते हैं । एकागी दृष्टिसे विचार करनेसे जान पड़ेगा कि राजनैतिक सुधारसे ही अन्य बातोंमें हम उन्नति कर सकेंगे । यह बात एक प्रकारसे सच भी है । राजनैतिक अवस्थाके सुधारके बिना उन्नति होना संभव नहीं । पर राजनैतिक स्थितिमें परिवर्तन होने हीसे उन्नति न होगी । परिवर्तनके साधन यदि दूषित तथा धृष्टित हुए तो उन्नतिके बदले और अवनति ही होनेकी अधिकतर संभावना है । जो परिवर्तन शुद्ध और पवित्र साधनोंसे किया जाता है वही हमें उच्च मार्गपर ले जा सकता है ।

सार्वजनिक कामोमें पड़ते ही गोखलेको इस तत्वका ज्ञान हो गया था और इसको उन्होंने कार्यमें भी परिणत किया। यह बात सभी लोग जानते थे कि यह भव्य विचार उन्होंने अपने भारत-सेवक-समिति तथा संपूर्ण जन-समुदायके सम्मुख रक्खा कि यदि राजनीतिको धार्मिक स्वरूप दिया जायगा तो यही मोक्ष-मार्ग पर ले जानेवाली हो जायगी। उन्होंने साफ कह दिया कि जबतक हमारे राजनैतिक कार्यको धर्मभावकी सहायता न मिलेगी तब-तक वे सूखे, रसहीन, ही बने रहेंगे। उनकी मृत्युपर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में जो लेख प्रकाशित हुआ था उसके लेखकने इस बातका स्पष्ट उल्लेख किया था और राजनैतिक सन्यासी उत्पन्न करनेके उनके प्रयत्नकी सफलता पर अविश्वास प्रकट करते हुए, उनकी यादगार 'भारत-सेवक-समिति' का ध्यान इसकी ओर आकर्षित किया था। वर्तमान कालमें राजनैतिक सन्यासी ही सन्यासाश्रमकी गौरववृद्धि कर सकते हैं। अन्य गेरुवा वस्त्र-धारी सन्यासी उसकी अपकीर्तिके ही कारण हैं। शूद्धधर्म मार्गमें चलने-वाले किसी भारतवासीका राजनैतिक कामोसे परे रहना कठिन है। उसी बातको मैं दूसरी तरह अंगीकार किए बिना रह ही नहीं सकता। और आजकलकी राज्य-व्यवस्थाके जालमें हम इस तरह फस गए हैं कि राजनीतिसे अलग रहते हुए, लोक-सेवा करना सर्वथा असंभव ही है। पूर्व समयमें जो किसान इस बातको जाने बिना भी कि जिस देशमें हम बसते हैं उसका अधिकारी कौन है, अपनी जीवन-यात्रा भलीभांति निर्वाह कर लेता था, वह आज ऐसा नहीं कर सकता। ऐसी दशामें उसका धर्माचरण राजनैतिक परिस्थितिके अनुसार ही होना चाहिए। यदि हमारे साधु, ऋषि, मुनि, मौलवी और पादरी इस उच्च तत्वको स्वीकार कर ले तो जहा देखिए वही भारत-सेवक-समितिया ही दिखाई देने लगे और भारतमें धर्म-भाव इतना व्यापक हो जाय कि जो राजनैतिक चर्चा आज लोगोको अरुचिकर होती है वही उन्हें पवित्र और प्रिय मालूम होने लगे, फिर पहले ही की तरह भारतवासी धार्मिक साम्राज्यका उपभोग

करने लगे । भारतका बधन एक धनमें दूर हो जाय और वह स्थिति प्रत्यक्ष आखोके सामने आ जाय, जिसका दर्शन एक प्राचीन कविने अपनी अमरवाणीमें इस प्रकार किया है—फौलादमे तलवार बनानेका नहीं बल्कि (हल की) फाल बनानेका काम लिया जायगा और सिंह और बकरे साथ-साथ विचरण करेंगे । ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्ति ही गुरुवर गोखलेका जीवन-मन्त्र थी । यही उनका मद्देग है और मुझे विश्वास है कि शुद्ध और सरल मनसे विचार करनेपर उनके भाषणोंके प्रत्येक शब्दमें यह मन्त्र लक्षित होगा ।*

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय ! तत्कुरुत्व मदर्पणम् ॥

श्रीकृष्णने अर्जुनको जो उपदेश दिया था, वही उपदेश भारत-माताने महात्मा गोखलेको दिया था और उनके आचरणोमें सूचित होता है कि उन्होंने उसका पालन भी किया है । यह सर्वमान्य बात है कि उन्होंने जो-जो किया, जिम-जिसका उपभोग किया, जो स्वार्थ त्याग किया, जिस तपका आचरण किया, वह सभी कुछ उन्होंने भारत-माताके चरणोमें अर्पण कर दिया ।

केवल देश ही के लिए जन्म लेनेवाले इस महात्माका अपने देश-वधुओं के प्रति क्या संदेश है ? 'भारत-सेवक-समिति' के जो सेवक महात्मा गोखलेके अंतिम समयमें उनके पास उपस्थित थे, उन्हें उन्होंने निम्नलिखित वाक्य कहे थे

“(तुम लोग) मेरा जीवन-चरित लिखने न बैठना, मेरी मूर्ति बनवानेमें भी अपना समय मत लगाना । तुम लोग भारतके सच्चे सेवक

*स्वर्गीय गोखलेकी गत पुण्य-तिथिके उपलक्ष्यमें उनके भाषणों तथा लेखोंके गुजराती संग्रहकी भूमिका ।

होगे तो अपने सिद्धांतके अनुसार आचरण करने अर्थात् भारतकी ही सेवा करनेमें अपनी आयु व्यतीत करोगे ।”

सेवाके सबधमें उनके आंतरिक विचार हमें मालूम हैं । राष्ट्रीय सभाका कार्य संचालन, भाषण तथा लेख द्वारा जनताको देशकी सच्ची स्थितिका ज्ञान कराना, प्रत्येक भारतवासीको साक्षर बनानेका प्रयत्न कराना, ये सब काम सेवा ही हैं । पर किस उद्देश्य और किस प्रणालीसे यह सेवा की जाय ? इस प्रश्नका वे जो उत्तर देते वह उनके इस वाक्यसे प्रकट होता है । अपनी सस्था (‘भारत-सेवक-समिति’) की नियमावली बनाते हुए उन्होंने लिखा है “सेवकोका कर्त्तव्य भारतके राज-नैतिक जीवनको धार्मिक बनाना है ।” इसी एक वाक्यमें सब-कुछ भरा हुआ है । उनका जीवन धार्मिक था । मेरा विवेक इस बातका साक्षी है कि उन्होंने जो-जो काम किए, सब धर्मभाव हीकी प्रेरणासे किए । बीस साल पहले उनका कोई-कोई उद्गार या कथन नास्तिकोका-सा होता था । एक बार उन्होंने कहा था—“क्या ही अच्छा होता यदि मुझमें भी वही श्रद्धा होती, जो रानडेमें थी ।” पर उस समय भी उनके कार्योंके मूलमें उनकी धर्म-बुद्धि अवश्य रहती थी । जिस पुरुषका आचरण साधुओंके सदृश्य है, जिसकी वृत्ति निर्मल है, जो सत्यकी मूर्ति है, जो नम्र है, जिसने सर्वथा अहंकारका परित्याग कर दिया है, वह निस्सदेह धर्मात्मा है । गोखले इसी कोटिके महात्मा थे । यह बात मैं उनके लगभग २० वर्षोंकी सगतिके अनुभवसे कह सकता हूँ ।

१८९६ में मैंने नेटालकी शर्त्तबंदीकी मजदूरीपर भारतमें वाद-विवाद आरंभ किया । उस समय कलकत्ता, बंबई, पूना, मद्रास आदि स्थानोंके नेताओंसे मेरा पहले-पहल सबध हुआ । उस समय सब लोग जानते थे कि महात्मा गोखले रानडेके शिष्य हैं । फर्ग्यूसन कालेजको वे अपना जीवन भी अर्पण कर चुके थे, और मैं उस समय एक निरा अनुभव-हीन युवक था । मैं पहले-पहल पूनेमें उनसे मिला । इस पहली ही भेंटमें हम

लोगोंमें जितना घनिष्ट सवध हो गया उतना और किसी नेतामें नहीं हुआ । महात्मा गोखलेके विषयमें जो बातें मैंने सुनी थी वे सब प्रत्यक्ष देखनेमें आई । उनकी वह प्रेम-युक्त और हास्यमय मूर्ति मुझे कभी न भूलेगी । मुझे उस समय मालूम हुआ कि मानो वे साक्षात् धर्म की ही मूर्ति हैं । उस समय मुझे रानडेके भी दर्शन हुए थे । पर उनके हृदयमें मैं स्थान न पा सका । मैं उनके विषयमें केवल इतना ही जान सका कि वे गोखलेके गुरु हैं । अवस्था और अनुभवमें वे मुझमें बहुत अधिक बड़े थे, इस कारण अथवा और किसी कारणमें मैं रानडेको उतना न जान सका, जितना कि गोखलको मैंने जाना ।

१८९६ ई० के अवसरसे ही गोखलेका राजनैतिक जीवन मेरे लिए आदर्श-स्वरूप हुआ । उसी समयमें उन्होंने राजनैतिक गुरुके नाते मेरे हृदयमें निवास किया । उन्होंने सार्वजनिक सभा (पूना) की त्रैमासिक पुस्तकका संपादन किया । उन्होंने फर्ग्यूसन-कालेजमें अध्यापन कार्य करके उसे उन्नत दशाको पहुंचाया । उन्होंने ब्रेल्डी-कमीशनके सामने गवाही देकर अपनी वास्तविक योग्यताका प्रमाण दिया, उनकी बुद्धिमत्ताकी छाप लार्ड कर्जनपर—उन लार्ड कर्जनपर जो अपने सामने किसीको कुछ न गिनते थे—झैठी और वे उनसे शक्ति रहने लगे ।

उन्होंने बड़े-बड़े काम करके मातृभूमिकी कीर्तिको उज्ज्वल किया । पब्लिक-सर्विस-कमीशनका काम करते समय उन्होंने अपने जीने-मरने तककी परवा न की । उनके इन तथा अन्य कार्योंका हमारे व्यक्तियोंने उत्तम रीतिसे वर्णन किया है ।

×

×

×

जनरल बोया तथा स्मट्ससे जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाकी राजधानी प्रिटोरियामें मुलाकात की थी उस समय इस मुलाकातके लिए तैयार होनेमें उन्होंने जितना परिश्रम किया था वह मुझे इस जन्ममें नहीं भूल

सकता। मुलाकातके पहले दिन उन्होंने मेरी और मि० कैलनवेककी परीक्षा ली। वे स्वयं रातके तीन ही बजे जाग पड़े और हम लोगोको भी उन्होंने जगाया। उन्हें जो पुस्तके दी गई थीं उनको उन्होंने अच्छी तरह पढ़ लिया था। अब हम लोगोसे जिरह करके वे इस बातका निश्चय करना चाहते थे कि उनकी तैयारी पूरी हुई या अभी उसमें कसर है। मैंने उनसे विनयपूर्वक कहा कि इतना परिश्रम अनावश्यक है। हम लोगोको तो कुछ मिले या न मिले, लड़ना ही होगा, पर अपने आरामके लिए मैं आपका बलिदान नहीं करना चाहता। पर जिस पुरुषने सर्वदा काममें लगे रहनेकी आदत ही बना रखी थी, वह मेरी बातोंपर कब ध्यान देता। उनकी जिरहोका मैं क्या वर्णन करू। उनकी चिंताशीलताकी कितनी प्रशंसा करू। इतने परिश्रमका एक ही परिणाम होना चाहिए था। मन्त्रि-मंडलने वचन दिया कि आगामी बैठकमें सत्याग्रहियोंकी आकांक्षाओंको स्वीकार करनेवाला कानून पास किया जायगा और मजदूरोंको ४५ रुपयेका जो कर देना पड़ता है वह माफ कर दिया जायगा।

पर इस वचनका पालन नहीं किया गया। तो क्या गोखले निश्चेष्ट हो बैठ रहे? एक क्षणके लिए भी नहीं। मेरा विश्वास है कि १९१३ई० में उक्त वचनको पूरा करानेके लिए उन्होंने जो अविराम श्रम किया, उससे उनके जीवनके दस वर्ष अवश्य छीजे होंगे। उनके डाक्टरकी भी यही राय है। उस वर्ष भारतमें जागृति उत्पन्न करने और द्रव्य एकत्र करनेके लिए उन्होंने जितने कष्ट सहे, उनका अनुमान कठिन है। यह महात्मा गोखलेका ही प्रताप था कि दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नपर भारतवर्ष हिल उठा। लार्ड हार्डिंजने मद्रासमें इतिहासमें यादगार होने योग्य जो भाषण दिया वह भी उन्हींका प्रताप था। उनसे घनिष्ट परिचय रखने-वालोंका कहना है कि दक्षिण अफ्रीकाके मामलेकी चिंताने उन्हें चारपाईपर डाल दिया, फिर भी अततक उन्होंने विश्राम करना स्वीकार न किया।

दक्षिण अफ्रीकामे आधीरातको आनेवाले पत्र-सरीखे लदे-चाँडे तारोको उसी क्षण पटना, जवाब तैयार करना, लार्ड हार्डिजके नाम पर तार भेजना, समाचार-पत्रोमे प्रकाशित कराए जानेवाले लेखका मसविदा तैयार करना और इन कामोकी भीटमे खाने और सोने तककी याद न रहना, रात-दिन एक कर डालना, ऐसी अनन्य निस्स्वार्थ भक्ति वही करेगा जो धर्मात्मा हो ।

हिंदू और मुसलमानके प्रश्नको भी वे धार्मिक दृष्टिमे ही देखते थे । एक बार अपनेको हिंदू कहनेवाला एक साधु उनके पास आया और कहने लगा कि मुसलमान नीच है और हिंदू उच्च । महात्मा गोखलेको अपने जालमे फंसे न देख उसने उन्हे दोष देते हुए कहा कि तुममे हिंदुत्वका तनिक भी अभिमान नहीं । महात्मा गोखलेने भवे चढाकर हृदय-भेदी स्वरमे उत्तर दिया—“यदि तुम जैसा कहते हो वैसा करने हीमे हिंदुत्व है तो मैं हिंदू नहीं । तुम अपना रास्ता पकडो ।”

महात्मा गोखलेमे निर्भयताका गुण बहुत अधिक था । धर्मनिष्ठामे इस गुणका स्थान प्रायः सर्वोच्च है । लेफ्टिनेंट रेडकी हत्याके पञ्चान् पूनामे हलचल मच गई थी । गोखले उस समय इंग्लैंडमे थे । पूनावालोकी तरफसे वहा उन्होंने जो व्याख्यान दिए वे सारे जगतमे प्रसिद्ध हैं । उनमें वे कुछ ऐसी बातें कह गए थे, जिनका पीछे वे सबूत न दे सकते थे । थोड़े ही दिनों बाद वे भारत लौटे । अपने भाषणोमें उन्होंने अग्रेज सिपाहियोपर जो इलजाम लगाया था उनके लिए उन्होंने माफी माग ली । इस माफी मागनेके कारण यहाके बहुतसे लोग उनसे नाराज भी हो गए । महात्माको कितने ही लोगोंने सार्वजनिक कामोसे अलग हो जानेकी सलाह दी । कितने ही नासमझोंने उनपर भीरुताका आरोप करनेमे भी आगापीछा न किया । इन सबका उन्होंने अत्यंत गंभीर और मधुर भाषामे यही उत्तर दिया—“देश-सेवाका कार्य मैंने किसीकी आज्ञासे अंगीकार नहीं किया है और किसीकी आज्ञाने

उसे मैं छोड़ भी नहीं सकता । अपना कर्त्तव्य करते हुए यदि मैं लोकपक्षके साथ रहनेके योग्य समझा जाऊ तो अच्छा ही है, पर यदि मेरे भाग्य वैसे न हो तो भी मैं उसे अच्छा ही समझूँगा ।” काम करना उन्होंने अपना धर्म माना था । जहातक मेरा अनुभव है, उन्होंने कभी स्वार्थ-दृष्टिसे इस बातका विचार नहीं किया कि मेरे कार्योंका जनतापर क्या प्रभाव पड़ेगा । मेरा विश्वास है कि उनमें वह शक्ति थी जिससे यदि देशके लिए उन्हें फासी पर चढ़ाना होता तो भी वे अविचलित चित्तसे हँसते हुए फासी पर चढ़ जाते । मैं जानता हूँ कि अनेक बार उन्हें जिन अवस्थाओं में रहना पड़ा है उनमें रहनेकी अपेक्षा फासीपर चढ़ना कहीं सहज था । ऐसी विकट परिस्थितियोंका उन्हें अनेक बार सामना करना पड़ा, पर उन्होंने कभी पाव पीछे न हटाया ।

इन सब बातोंसे तात्पर्य यह निकलता है कि यदि इस महान् देशभक्तके चरित्रका कोई अंश हमारे ग्रहण करने योग्य है तो वह उनका धर्म-भाव ही है । उसीका अनुकरण करना हमें उचित है । हम सब लोग बड़ी व्यवस्थापिका सभाके सदस्य नहीं हो सकते । हम यह भी नहीं देखते कि उसके सदस्य होनेसे देश-सेवा हो ही जाती है । हम सब लोग पब्लिक-सर्विस-कमीशनमें नहीं बैठ सकते । यह बात भी नहीं है कि उसमें के सब बैठनेवाले देशभक्त ही होते हैं । हम सब लोग उनकी बरादरीके विद्वान् नहीं हो सकते और विद्वान्मात्रके देश-सेवक होनेका भी हमें अनुभव नहीं है । परन्तु निर्भयता, सत्य, धैर्य, नम्रता, न्यायशीलता, सरलता और

व्यवस्था आदि गुणोंका विकास कर उन्हें देशके लिए अर्पण करना सबके लिए साध्य है, यही धर्मभाव है । राजनैतिक जीवनको धर्ममय करनेका यही अर्थ है । उक्त वचनके अनुसार आचरण करनेवालेको अपना पथ सदा ही सूझता रहेगा । महात्मा गोखलेकी सपत्तिका भी वह उत्तराधिकारी होगा । इस प्रकारकी निष्ठासे काम करनेवालेको और भी जिन-जिन विभूतियोंकी आवश्यकता होगी वे सब प्राप्त होगी । यह ईश्वरका

वचन है और महात्मा गोखलेका चरित्र इसका ज्वलत प्रमाण है ।*
(‘महात्मा गांधी’—रामचंद्र वर्मा)

मेरे पास एक गुमनाम पत्र आया है । उसमें मेरी प्रशंसा करते हुए लेखकने लिखा है, “आपने जिस कामको उठाया है वह लोकमान्यको अतिशय प्रिय था । मालूम होता है, उनकी आत्मा आपमें विराजती है । आपको साहम नहीं छोड़ना चाहिए । काम करते जाइए, स्वराज्य आपका है । पर आपने अपनेको गोखलेका शिष्य किस तरह माना है ? यह लिखकर आपने अपनी अप्रतिष्ठा की है ।”

अच्छा हो यदि लेखक गुमनाम पत्र लिखनेकी बुरी आदत छोड़ दे । यदि हम लोग स्वराज्यके लिए वाकई तत्पर हैं तो हमें उचित ही है कि भीरुता त्यागकर साहसीकी भांति अपना मत प्रकट करें । चूंकि पत्र सार्वजनिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण है इसलिए इसका उत्तर दे देना आवश्यक प्रतीत होता है । मैं लोकमान्यका अनुयायी नहीं हूँ । उनके करोड़ों देशवासियोंकी तरह मैं उनके दृढ़ साहम, असीम पांडित्य और अगाध देश-प्रेम की हृदयसे प्रशंसा करता हूँ । सबसे अधिक आदर मैं उनके पवित्र और निःस्वार्थ जीवनकी करता हूँ । वर्तमान समाजके मनुष्योंमें उन्होंने जनताकी दृष्टि अपनी ओर सबसे अधिक आकृष्ट की है । उन्होंने हम लोगोंके हृदयमें स्वराज्यका बीजारोपण किया । वर्तमान शासनकी बुराइयोंको जितना अधिक लोकमान्यने समझा था उतना अधिक और किसीने नहीं, और मैं उनके सदेशको भारतकी भोपड़ियोंतक उसी तरह पहुंचाना चाहता हूँ और फैलानेका यत्न कर रहा हूँ जिस तरह कि उनका अच्छे-से-अच्छा शागिर्द । पर मेरे और उनके तरीकेमें भेद है । यही कारण है कि अभीतक

* बंबईकी ‘भगिनी-समाज’ नामक संस्थासे स्त्रियोंके लिए प्रकाशित एक सामयिक पुस्तिका से ।

चद महाराष्ट्र-नेता मेरे साथ एकमत नहीं हो सके हैं। पर मेरा यह भी दृढ़ मत है कि लोकमान्यको मेरे तरीकेपर अविश्वास नहीं था। मेरे ऊपर उनका दृढ़ विश्वास था। अपनी मृत्युके कोई दस दिन पहले अपने अनेक मित्रोंके सामने उन्होंने कहा था कि आपका तरीका सबसे अच्छा है, यदि जनताको समझाकर आप अपने साथ कर सकें। लेकिन उन्हें इस बातका सदेह था कि जनता मेरे तरीकेको समझ सकेगी। पर मैं दूसरा तरीका जानता ही नहीं। मैं यही चाहता हूँ कि परीक्षाके समय देश अपनी योग्यता दिखलावे कि उसने अहिंसात्मक असहयोगके तत्वको समझ लिया है। मैं अपनी अन्य अयोग्यताओंको भी जानता हूँ। मैं पांडित्यका दावा नहीं करता। मुझमें उनके समान सगठन-शक्ति भी नहीं है। मेरे कार्य-संचालनके लिए शागिर्द भी नहीं हैं और साथ ही बीस वर्षतक विदेशोंमें रहनेके कारण भारतका मुझे अनुभव भी उतना नहीं है जितना लोकमान्यको था। हम लोगोमें दो बातोंमें समता थी देशप्रेम तथा स्वराज्य। यह दोनोंके हृदयमें एक भावसे विद्यमान थे। इसलिए मैं इस गुमनाम पत्रके लेखकको बतला देना चाहता हूँ कि लोकमान्यकी स्मृतिके लिए मेरे हृदयमें किसीसे कम आदर या मान नहीं है और स्वराज्यके प्रतिपादनमें मैं उनके उत्तम-से-उत्तम शिष्यके साथ आगे बढ़ता रहूँगा। मैं जानता हूँ कि उनकी सबसे सच्ची उपासना यही है कि भारतको जल्दी-से-जल्दी स्वराज्य मिल जाय। केवलमात्र इसीसे उनकी आत्माको शांति मिल सकती है।

शिष्य होना परम पवित्र, पर व्यक्तिगत भाव है। मैंने १८८८ ई० में दादाभाईके चरणोंमें अपनेको समर्पित किया, पर मेरे आदर्शसे वे बहुत दूर थे। मैं उनके पुत्रके स्थानपर हो सकता था, उनका शागिर्द नहीं हो सकता था। शिष्यका दर्जा पुत्रसे ऊँचा है। शिष्य, पुत्र रूपसे, दूसरा जन्म ग्रहण करता है। शिष्य होना अपनी स्वकीय प्रेरणासे समर्पित करना है। १८९६ ई० में दक्षिण अफ्रीकाके सबधमें भारतके सभी प्रधान नेताओंसे मिला। जस्टिस रानडेसे मुझे भय लगता था। उनके सामने मुझे बयान

करनेका भी साहस नहीं होता था। बदरुद्दीन तैयबजी पिताकी तरह प्रतीत हुए। उन्होंने मुझे सलाह दी कि फिरोजगढ़ मेहता और गनडेके परामर्शमें काम करो। सर फिरोजगढ़ तो हमारे मरखक बन गए। इसलिए उनकी आज्ञा मुझे गिरोधार्य थी। जो कुछ वे कहते, मैं चुपचाप स्वीकार करता। उन्होंने मुझमें कहा, “२६ मितवरको सार्वजनिक सभामें तुम्हें भाषण देना होगा।” मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। २५ मितवरको मुझे उनमें मिलना था। मैं उनके पास गया। उन्होंने मुझमें पूछा, “क्या तुमने अपना भाषण लिखकर तैयार कर डाला है?” मैंने उत्तर दिया, “जी, नहीं।”

उन्होंने कहा, “इस तरह काम नहीं चलेगा। क्या आज रातभरमें लिखकर तैयार कर सकते हो?” इतना कहकर उन्होंने अपने मुगीमें कहा, “तुम मिस्टर गांधीके साथ जाओ और व्याख्यान लिखवाकर ले आओ और इसे तुरत छपवा डालो और फौरन एक प्रति मेरे पास भेज दो।” इतना कहनेके बाद उन्होंने मुझसे कहा, “लंबा-चौड़ा भाषण मत लिखना। ववईके नागरिक देरतक नहीं ठहर सकते।” मैंने चुपचाप स्वीकार कर लिया।

ववईके उस घरने मुझे आज्ञापालनका मर्म सिखाया। उन्होंने मुझे अपना शागिर्द नहीं बनाया। उन्होंने आजमाइश भी नहीं की।

वहामें मैं पूना गया। मैं एकदम अजनबी था। जिनके यहां मैं ठिका था वे मुझे पहले-पहल लोकमान्य तिलकके पास ले गए। जिस समय मैं उनसे मिला, वे अपने साथियोंमें घिरे बैठे थे। उन्होंने मेरी बातें सुनी और कहा, “आपका भाषण सार्वजनिक सभामें होना जरूरी है। पर आप जानते हैं कि यहां दलबंदी है। इससे ऐसा सभापति चाहिए जो किसी दल-विषेयका न हो। यदि इसके लिए आप डाक्टर भांडारकर से मिलें तो उत्तम हो।” मैंने उनकी सलाह स्वीकार की और लौट आया। निवा इसके कि स्नेहमय मिलापके भावका प्रदर्शन करके उन्होंने मेरी धवराहट

दूर की, नहीं तो लोकमान्यका उस समय मुझपर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। वहासे मैं श्रीयुत गोखलेके पास गया और तब डाक्टर भाडारकरके पास गया। डाक्टर भाडारकरने मेरा उसी तरह स्वागत किया, जिस तरह गुरु शिष्यका करता है।

मिलते ही उन्होंने मुझसे कहा, “आप बड़े उत्साही और तत्पर कार्य-कर्त्ता प्रतीत होते हैं, नहीं तो इतनी गर्मीमें मुझसे कोई भी मिलने नहीं आता। मैंने सार्वजनिक सभाओंमें इधर जाना छोड़ दिया है। पर आपने जिन दयनीय शब्दोंमें अफ्रीकाकी दशाका वर्णन किया है, उससे मुझे लाचार होकर यह पद स्वीकार करना पड़ता है।

उनके चेहरेसे विद्वत्ता टपक रही थी। मेरे हृदयमें श्रद्धाका ज्वार उमड़ आया, पर गुरुभक्तिका भाव फिर भी न भरा। वह हृदय-सिंहासन उस समय भी खाली रह गया। मुझे अनेक धीर-वीर मिले, पर राजाकी पदवी तक कोई न पहुँच सका।

पर जिस समय मैं श्रीयुत गोखलेसे मिलने गया, बातें एकदम बदल गई। मैं नहीं कह सकता कि इसका क्या कारण था। मैं उनके घरपर मिलने गया। यह मिलन ठीक उसी प्रकार था जैसा दो चिर विछोही मित्रों या माता और पुत्रका होता है। उनकी नम्र आकृति देखकर मेरा हृदय शांत हुआ। दक्षिण अफ्रीका तथा मेरे सबधमें उन्होंने जिस तरह पूछताछ की उससे मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया। उनसे विदा होते समय मैंने अपने दिलमें कहा, “बस मेरे मनका आदमी मिल गया।” उसी समयसे श्रीयुत गोखले मेरे हृदयसे अलग न हो सके। १९०१ में दूसरी बार दक्षिण अफ्रीकासे लौटा। इस बार मेरी घनिष्टता और भी प्रगाढ़ हो गई। उन्होंने अपने हाथमें मेरा हाथ लेकर पूछना शुरू किया, “किस तरह रहते हो? क्या कपड़ा पहनते हो? भोजन कैसा होता है?” मेरी माता भी इतनी तत्पर नहीं थी। मेरे और उनके बीच कोई अंतर नहीं था। यह चक्षु-राग था, अर्थात् प्रथम दर्शनसे ही हृदयमें प्रगाढ़ प्रेमका अकुर जम गया

था । १९१३ में डमे कडी परीक्षामे उतरना पडा । उस समय मुझे मालूम हुआ कि उनमें सभी गुण वर्तमान हैं । चाहे इसके पहले उनमें वे सब गुण न रहे हों, पर इसकी मुझे कोई परवाह नहीं । मेरे लिए उतना ही काफी था कि मुझे उनमें कोई दोष नहीं दिखलाई दिए । राजनैतिक क्षेत्रमें वे मुझे सबसे उत्तम व्यक्ति प्रतीत हुए । पर इसमें यह न समझना चाहिए कि उनमें और मुझमें मतभेद नहीं था । सामाजिक नियमोंमें मेरा उनका १९०१ तक मतभेद रहा । पश्चिमी सभ्यताके प्रभावपर भी हम लोगोका मतभेद था । अहिंसापर मेरा जो अटल विश्वास था उसमें भी उनका मतभेद था । पर इसमें हम लोगोमें किसी तरहका अंतर नहीं आ सका । ये सब बातें किसी तरहका मतभेद नहीं उपस्थित कर सकी । यदि आज वे जीते रहते तो क्या होता, यह कहना व्यर्थ है । मैं जानता हू कि मैं उनकी आज्ञाका पालन करता होता । मैंने इसे इसलिए लिखा है कि उस गुमनाम पत्रमें गागिर्दी-सबधी बातोंमें मुझे हार्दिक पीडा हुई । क्या मुझपर इस बातका दोषारोपण किया जा सकता है कि मैंने इस सबबको स्वीकार करनेमें देर की ? इस समय जबकि लोग यह कह रहे हैं कि मैं स्वर्गीय गोखलेके दलसे एकदम विरुद्ध हो गया हू तो मेरे लिए उस पवित्र सबबको व्यक्त कर देना नितात आवश्यक था । (पृ० ३०, पृष्ठ ६०५)

मेरे इस दक्षिणके प्रवासमें कई नवयुवकोंने मुझे लिखा है कि अस्पृश्यता तथा अन्य कुरीतियोंके, जिनसे हिंदू-समाज पीडित हो रहा है, ब्राह्मण ही दोषी हैं । ये सारी बुराइया उन्हींकी बदौलत विद्यमान हैं । स्व० गोखलेके १९ वे पुण्य-वर्षके दिन मैं यह लेख लिख रहा हू । इसलिए स्वभावतः ही मुझे उनका हरिजन-प्रेम याद आ रहा है । अस्पृश्यताके कलकसे सर्वथा मुक्त श्री गोखलेको छोड़कर मुझे कोई अन्य व्यक्ति याद नहीं आता । वह मनुष्य-मनुष्यके बीचमें किसी प्रकारकी अमानताकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे । उनकी दृष्टिमें तो मनुष्यमात्र समान थे ।

एक बार दक्षिण अफ्रीकामें एक सज्जन उन्हें एक सांप्रदायिक सभामें लिवा ले जानेके लिए उनके पास आए, पर उन्होंने इन्कार कर दिया। तब उनके हिंदू-धर्मके प्रति अपील की गई। इसपर वह विगड उठे। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और जरा गर्म पडकर उक्त सज्जनसे बोले, “अगर यही हिंदू-धर्म है तो मैं हिंदू नहीं हूँ।” लोग तो यह सुनकर आश्चर्य-चकित रह गये। किसी व्यक्ति या संप्रदायकी उच्चताकी कल्पनाको वह सहन नहीं कर सकते थे। विश्ववधुत्वकी भावना उन्होंने स्वयं अपने जीवनमें चरितार्थ करके दिखा दी, इस बातको उनके साथी खूब जानते हैं। पारिया (अत्यज) कहे जानेवाले भाइयोसे वह खूब दिल खोलकर मिलते थे। यह बात उनमें नहीं थी कि वह किसी पर कृपा या अहसान कर रहे हैं। उनके हृदयमें तो केवल एक सेवाका ही आदर्श था। उनका विश्वास था कि सार्वजनिक आदमी जनताके नेता नहीं, बल्कि सेवक हैं। उनकी दृष्टिमें सबसे बड़ा सेवक ही सबसे बड़ा नेता था। और स्व० गोखले हर तरह एक सच्चे जन्मना ब्राह्मण थे। वह जन्म-जात अव्यापक भी थे। उनसे जब कोई ‘प्रोफेसर’ कहता तो बड़े प्रसन्न होते थे। विनम्रताकी तो वह मूर्ति थे। राष्ट्रको उन्होंने अपना सर्वस्व दे दिया था। चाहते तो वह मालामाल हो जाते, लेकिन उन्होंने तो स्वेच्छासे गरीबीका ही वाना पसंद किया। गोखले जैसे जन-सेवक पर क्या इन ब्राह्मण-निंदको-को गर्व नहीं होगा? और यह बात नहीं कि ऐसे ब्राह्मण एक गोखले ही थे। मनुष्य-मनुष्यके बीचमें समानताको माननेवाले ऐसे ब्राह्मणोंकी एक खासी लंबी सूची बनाई जा सकती है। ब्राह्मणमात्रको दोषी ठहरानेका तो यह अर्थ हुआ कि जो ब्राह्मण आज खास तौरसे स्वयं निस्स्वार्थ लोक-सेवा करनेको तैयार हैं, उनकी उस सेवाके मधुर फलको हम खुद अस्वीकार कर रहे हैं। उन लोगोंको किसीके प्रशंसा-पत्र की जरूरत नहीं है। उनकी सेवा ही उनका पुरस्कार है। गोखलेने एक महान् अवसरपर लिखा था कि ‘जो सेवा किसी व्यक्तिके कहनेसे हाथमें नहीं ली जाती, वह

किमी दूसरेकी आज्ञासे त्यागी भी नहीं जा सकती । इसलिए सबसे निरापद नियम तो यह है कि मनुष्यको हम उसके वर्तमान रूपमें ही ग्रहण करे, फिर चाहे जिस कुलमें वह पैदा हुआ हो और उनकी जाति या उसका रंग चाहे जो हो । अस्पृश्यता-निवारणके इस आंदोलनमें हमें किमीकी सेवाकी चाहे वह कितनी ही छोटी हो, अवगणना नहीं करनी चाहिए, जहातक कि उसमें सेवाकी भावना है, न कि उद्धार या कृपा की ।
(ह० से० ६३३४)

(सरोजिनी नायडूकी बात करते-करते गोखलेकी बात बताने लगे । गोखलेका उनके वारेमें मत बताने लगे । कहने लगे,)

“मैं तुझमें बहुत सी बातें कर लेता हूँ जो किसीमें नहीं करता । करनेकी है भी नहीं । ऐसे ही गोखले मेरे साथ सब बातें कर लिया करते थे । उनके मित्र तो बहुत थे, मगर ऐसा कोई नहीं था कि जिसके सामने निमकोच अपने मनकी सारी बातें वे कह सके । मुझे उन्होंने विश्वास-पात्र समझा और एक-एक आदमीका पृथक्करण करके बता दिया ।”
(का० क०, २४८४२)

: ५७ :

घोषाल

कांग्रेसके अधिवेशनको एक-दो दिनकी देर थी । मैंने निश्चय किया था कि कांग्रेसके दफ्तरमें यदि मेरी सेवा स्वीकार हो तो कुछ सेवा करके अनुभव प्राप्त करूँ ।

जिस दिन हम आए उसी दिन नहा-धोकर कांग्रेसके दफ्तरमें गया ।

श्रीभूपेन्द्रनाथ वस् और श्रीघोपाल मंत्री थे । भूपेनवावूके पास पहुचकर कोई काम मागा । उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा, “मेरे पास तो कोई काम नहीं है, पर शायद मि० घोषाल तुमको कुछ बतावेगे । उनसे मिलो ।”

मैं घोपालवावूके पास गया । उन्होंने मुझे नीचेसे ऊपर तक देखा । कुछ मुस्कराए और बोले, “मेरे पास कारकुनका काम है । करोगे ?”

मैंने उत्तर दिया, “जरूर करूंगा । अपने बस भर सबकुछ करने-के लिए मैं आपके पास आया हू ।”

“नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसीको कहते हैं ।”

कुछ स्वयं-सेवक उनके पास खड़े थे । उनकी ओर मुखातिव होकर कहा, “देखते हो, इस नवयुवकने क्या कहा ?”

फिर मेरी ओर देखकर कहा, “तो लो, यह चिट्ठियोंका ढेर, और यह मेरे सामने पड़ी है कुरसी । उसे ले लो । देखते हो न, सैकड़ों आदमी मुझसे मिलने आया करते हैं । अब मैं उनसे मिलूँ या जो लोग फालतू चिट्ठियाँ लिखा करते हैं उन्हें उत्तर दूँ ? मेरे पास ऐसे कारकुन नहीं कि जिनसे मैं यह काम करा सकूँ । इन चिट्ठियोंमें बहुतेरी तो फिजूल होगी, पर तुम सबको पढ़ जाना । जिनकी पहुच लिखना जरूरी हो उनकी पहुच लिख देना और जिनके उत्तरके लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना ।”

उनके इस विश्वाससे मुझे बड़ी खुशी हुई ।

श्रीघोषाल मुझे पहचानते न थे । नाम-ठाम तो मेरा उन्होंने बादको जाना । चिट्ठियोंके जवाब आदिका काम आसान था । सारे ढेरको मैंने तुरत निपटा दिया । घोषालवावू खुश हुए । उन्हें बात करनेकी आदत बहुत थी । मैं देखता था कि वह बातोंमें बहुत समय लगाया करते थे । मेरा इतिहास जाननेके बाद तो कारकुनका काम देनेमें उन्हें जरा शर्म मालूम हुई, पर मैंने उन्हें निश्चित कर दिया ।

“कहा मैं और कहा आप । आप कांग्रेसके पुराने सेवक, मेरे नजदीक तो आप मेरे दुजुर्ग हैं । मैं ठहरा अनुभवहीन नवयुवक । यह काम सौंपकर मुझपर तो आपने अह्मान ही किया है, क्योंकि मुझे आगे चलकर कांग्रेसमें काम करना है । उसके काम-काजका समझनेका अलभ्य अवसर आपने मुझे दिया है ।”

“मच पूछो तो यही सच्ची मनोवृत्ति है । परन्तु आजकलके नवयुवक ऐसा नहीं मानते । पर मैं तो कांग्रेसको उसके जन्ममें जानता हूँ । उसकी स्थापना करनेमें मि० ह्यूमके साथ मेरा भी हाथ था ।” घोपालवाबू बोले ।

हम दोनोंमें खासा सबब हो गया । दोपहरके खानेके समय वह मुझे साथ रखते । घोपालवाबूके वटन भी ‘वेरा’ लगाता । यह देखकर ‘वेरा’ का काम खुद मैंने लिया । मुझे वह अच्छा लगता । बड़े-बूढ़ोंकी ओर मेरा बड़ा आदर रहता था । जब वह मेरे मनोभावोंमें परिचित हो गए तब अपना निजी सेवाका सारा काम मुझे करने देते थे । वटन लगवाते हुए मुह पिचकारकर मुझसे कहते, “देखो न, कांग्रेसके सेवकको वटन लगाने तककी फुरमत नहीं मिलती, क्योंकि उस समय भी वे काममें लगे रहते हैं ।” इस भोलेपनपर मुझे मनमें हँसी तो आई, परन्तु ऐसी सेवाके लिए मनमें अरुचि विलकुल न हुई । उससे जो लाभ मुझे हुआ उसकी कीमत नहीं आकी जा सकती । (आ०, १९२७)

: ५८ :

चक्रैया

वह (चक्रैया) सेवाग्रामका आश्रमवासी था । नई तालीमके तरीकेपर सीखा था । बड़ा परिश्रमी और दस्तकार था । भूठ, फरेव, क्रोध-जैसे दोष

उसमें नहीं थे । दैववश उसके दिमागमें कुछ रोग पैदा हो गया । खुद निसर्गोपचारमें ही विश्वास करता था, पर दोस्तोंने और डाक्टरोंने उसका आपरेशन करनेका आग्रह किया । इस रोगसे उसकी आखोंका तेज जाता रहा था । फिर भी उसने आपरेशन-मेजपर जानेसे पहले मुझे बड़ी कोशिश-से पत्र लिखा था कि प्राकृतिक चिकित्सा मुझे प्रिय है, पर आपरेशनका प्रयोग करानेके लिए भी मैं तैयार हूँ और मौत आएगी तो राम-नाम लेता हुआ मरूंगा । आखिर बर्बईके अस्पतालमें आपरेशन किया गया और आपरेशन-मेजपर ही उसके प्राण छूट गए ।

उसके जानेपर रोना आता है, पर मैं रो नहीं सकता, क्योंकि मैं रोऊँ तो किसके लिए रोऊँ और किसके लिए न रोऊँ ? भारतमाताको अगर बच्चे चाहिए तो वकील तुलसीदासजी, ऐसे ही चाहिए, जो या तो दाता हो, या शूर । चक्रैया दाता था, क्योंकि वह नि स्वार्थ सेवक और परम सतोषी था और शूर भी था, क्योंकि उसने अपने हाथसे मृत्युको अपना लिया । वह हरिजन था, पर उसके दिलमें हरिजन-सर्वण, हिंदू-मुसलमान-जैसे भेद न थे । वह सबको इसान मानता था और स्वयं सच्चा इसान था । (प्रा० प्र०, ३१ ५ ४७)

: ५६ :

विन्स्टन चर्चिल

मेरे पास एक बुलद चीज है और वह है लोकमत । लोकमतमें बड़ी प्रचंड शक्ति है । अभी हमारे यहाँ इस शब्दका अर्थ पूरे जोरसे प्रकट नहीं हुआ है, पर अंग्रेजीमें उस शब्दका अर्थ बड़ा जोरदार है । अंग्रेजीमें इसे 'पब्लिक ओपिनियन' कहते हैं और उसके सामने बादशाह भी कुछ

नहीं कर सकता। चर्चिल जो इतना बड़ा बहादुर है और जो ऊँचे खानदान-का, बड़ा भारी वक्ता, बहुत ही विद्वान—मेरे जैसा अनजान विलकुल नहीं है—यह सबकुछ होते हुए भी अपनी गद्दी न मंभाल सका। इसका मतलब यह है कि वहाका लोकमत बहुत जाग्रत है। इसलिए उसके मामले किसीकी नहीं चल सकती। (प्रा० प्र०, १० ६ ४७)

आज सुबहके अखबारोंमें रायटरद्वारा तारसे भेजा हुआ मि० चर्चिलके भाषणका जो सार छपा है, उसे मैं हिंदुस्तानीमें आपको समझाता हूँ। वह सार इस तरह है

“आज रातको यहाँ अपने एक भाषणमें मि० चर्चिलने कहा, ‘हिंदुस्तानमें भयकर खूरेजी चल रही है, उससे मुझे कोई अचरज नहीं होता। अभी तो इन बेरहमीभरी हत्याओं और भयकर जुल्मोंकी शुरुआत ही है। यह राक्षसी खूरेजी वे जातियाँ कर रही हैं, ये जुल्म एक-दूसरी पर वे जातियाँ ढा रही हैं, जिनमें ऊँची-मे-ऊँची सस्कृति और सभ्यताको जन्म देनेकी शक्ति है और जो ब्रिटिश ताज और ब्रिटिश पार्लामेंटके रवादार और गैर-तरफदार शासनमें पीढ़ियोंतक साथ-साथ पूरी शांतिसे रही हैं। मुझे डर है कि दुनियाका जो हिस्सा पिछले ६० या ७० वरससे सबसे ज्यादा शांत रहा है, उसकी आवादी भविष्यमें सब जगह बहुत ज्यादा घटनेवाली है, और आवादीके घटावके साथ ही उस विशाल देशमें सभ्यताका जो पतन होगा, वह एशियाकी सबसे बड़ी निराशापूर्ण और दुःखभरी बात होगी।”

आप सब जानते हैं कि मि० चर्चिल खुद एक बड़े आदमी हैं। वे इंग्लैंडके ऊँचे कुलमें पैदा हुए हैं। मार्लबरो-परिवार इंग्लैंडके इतिहासमें मशहूर है। दूसरे विरव-युद्धके शुरू होनेपर जब ग्रेट ब्रिटेन गतरेमें था तब मि० चर्चिलने उसकी हुकूमतकी वागडोर संभाली थी। वेशक उन्होंने उस समयके ब्रिटिश साम्राज्यको खतरेसे बचा लिया। यह दलील

गलत होगी कि अमेरिका या दूसरे मित्र-राष्ट्रोंकी मदद से बिना ग्रेट ब्रिटेन लड़ाई नहीं जीत सकता था। मि० चर्चिलकी तेज सियासी बुद्धिके सिवा मित्र-राष्ट्रोंको एक साथ कौन मिला सकता था ? मि० चर्चिलने जिस महान् राष्ट्रकी लड़ाईके दिनोमे इतनी गानसे नृमाइदगी की, उसने उनकी सेवाओंकी कदर की। लेकिन लड़ाई जीत लेनेके बाद उस राष्ट्रने ब्रिटिश द्वीपोंको, जिन्होंने लड़ाईमे जन-धनका भारी नुकसान उठाया था, नया जीवन देनेके लिए चर्चिलकी सरकारकी जगह मजदूर-सरकारको तरजीह देनेमे कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई। अंग्रेजोंने समयको पहचान कर अपनी इच्छासे साम्राज्यको तोड़ देने और उसकी जगह बाहरसे न दिखाई देनेवाला दिलोका ज्यादा मशहूर साम्राज्य कायम करनेका फैसला कर लिया। हिंदुस्तान दो हिस्सोमे बंट गया है, फिर भी दोनों हिस्सोंने अपनी मरजीसे ब्रिटिश कामनवेल्थके सदस्य बननेका ऐलान किया है। हिंदुस्तानको आजाद करनेका गौरव-भरा कदम पूरे ब्रिटिश राष्ट्रकी सारी पार्टियोंने उठाया था। इस कामके करनेमे मि० चर्चिल और उनकी पार्टीके लोग शरीक थे। भविष्य अंग्रेजोंद्वारा उठाए गए इस कदमको सही साबित करेगा या नहीं, यह अलग बात है। और इसका मेरी इस बातसे कोई ताल्लुक नहीं है कि चूँकि मि० चर्चिल सत्ता के फेरवदलके काममे शरीक रहे हैं, इसलिए उनसे उम्मीद की जाती है कि वे ऐसी कोई बात नहीं कहे या करे, जिससे इस कामकी कीमत कम हो। यकीनन आधुनिक इतिहासमे तो ऐसी कोई मिसाल नहीं मिलती, जिसकी अंग्रेजोंके सत्ता छोड़नेके कामसे तुलना की जा सके। मुझे प्रियदर्शी अशोकके त्यागकी बात याद आती है। मगर अशोक बेमिसाल है और साथ ही वे आधुनिक इतिहासके व्यक्ति नहीं हैं। इसलिए जब मैंने रायटरद्वारा प्रकाशित किया हुआ मि० चर्चिलके भाषणका सार पढ़ा तो मुझे दुःख हुआ। मैं मान लेता हूँ कि खबरें देनेवाली इस मशहूर संस्थाने मि० चर्चिलके भाषणको गलत तरीकेसे बयान नहीं किया होगा। अपने इस भाषणसे मि० चर्चिलने उस देशको

हानि पहुँचाई है, जिसके वे एक बहुत बड़े मेवक हैं। अगर वे यह जानते थे कि अंग्रेजी हुकूमतके जुएसे आजाद होनेके बाद हिंदुस्तानकी यह दुर्गति होगी तो क्या उन्होंने एक मिनटके लिए भी यह सोचनेकी तकलीफ उठाई कि उसका सारा दोष साम्राज्य बनानेवालोंके सिरपर है, उन 'जातियों' पर नहीं जिनमें चर्चिल माहवकी रायमें 'ऊँची-से-ऊँची' सृष्टिको जन्म देनेकी ताकत है।' मेरी रायमें मि० चर्चिलने अपने भाषणमें मारे हिंदुस्तानको एक साथ समेट लेनेमें बेहद जल्दबाजी की है। हिंदुस्तानमें करोड़ोंकी तादादमें लोग रहते हैं। उनमेंसे कुछ लाखने जगन्नीपन अखिल-यार किया है, जिनकी कि कोई गिनती नहीं है। मैं मि० चर्चिलको हिंदुस्तान आने और यहाँकी हालतका खुद अध्ययन करनेकी हिम्मतके साथ दावत देता हूँ। मगर वे पहलेसे ही किसी विषयमें निश्चित मत रखनेवाले एक पार्टीके आदमीकी हैसियतसे नहीं, बल्कि एक गैरतरफदार अंग्रेजकी तरह आए, जो अपने देशकी इज्जतका किसी पार्टीसे पहले खयाल रखता है और जो अंग्रेज सरकारको अपने इस काममें शानदार मफलता दिलानेका पूरा इरादा रखता है। ग्रेट ब्रिटेनके इस अनोखे कामकी जाँच उसके परिणामोंमें होगी। हिंदुस्तानके विभाजनने बेजाने उसके दो हिस्सोंको आपसमें लड़नेका न्यौता दिया। दोनों हिस्सोंको अलग-अलग स्वराज देना आजादीके इस दानपर धब्बे-जैसा मालूम होता है। यह कहनेमें कोई फायदा नहीं कि दोनोंमेंसे कोई भी उपनिवेश ब्रिटिश कामनवेल्थसे अलग होनेके लिए आजाद है। ऐसा करनेसे कहना सरल है। मैं इस पर और ज्यादा कुछ नहीं कहना चाहता। मेरा इतना कहना यह बतलानेके लिए काफी होगा कि मि० चर्चिलको इस विषयपर ज्यादा सावधानीमें बोलनेकी जरूरत क्यों थी। परिस्थितिकी खुद जाँच करनेके पहले ही उन्होंने अपने साथियोंके कामकी निंदा की है।

आप लोगोमेंसे बहुतोंने मि० चर्चिलको ऐसा कहनेका मौका दिया है। अभी भी आपके लिए अपने तरीकोंको सुधारने और मि० चर्चिलकी

भविष्यवाणीको भूठ साबित करनेके लिए काफी वक्त है। मैं जानता हूँ कि मेरी बात आज कोई नहीं सुनता। अगर ऐसा नहीं होता और लोग उसी तरह मेरी बातोंको मानते होते, जिस तरह आजादीकी चर्चा शुरू होनेसे पहले मानते थे तो मैं जानता हूँ कि जिस जगलीपनका मि० चर्चिलने बड़ा रस लेते हुए बड़ा-बड़ाकर बयान किया है, वह कभी नहीं हो पाता और आप लोग अपनी माली और दूसरी घरेलू मुश्किलोंको सुलझानेके ठीक रास्तेपर होते। (प्रा० प्र०, २८ ६ ४७)

: ६० :

सी० वाई० चिन्तामणि

(आज सुबह निर्णयपर बातें हुईं। जयकर, सप्रू और चिन्तामणिकी रायोंपर चर्चा हुई। बापू कहने लगे)

यह आशा रख सकते हैं कि जयकर सप्रूसे यहाँ अलग हो जायगे।

वल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नहीं है।

बापू—आशा इसलिए रख सकते हैं कि विलायतमें भी इस मामलेमें इनके विचार अलग ही रहें थे। वैसे तो क्या पता ?

वल्लभभाई—चिन्तामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढ़ाई।

बापू—क्योंकि चिन्तामणि हिंदुस्तानी है, जबकि सप्रूका मानस यूरोपियन है। चिन्तामणि समझते हैं कि इस निर्णयमें ही बहुत कुछ विधान आ जाता है। सप्रू यह मानते हैं कि विधान मिल गया तो फिर इन बातोंकी चिन्ता ही नहीं (म० डा०, २१ ८ ३२)

: ६१ :

जगदीशन्

जगदीशन्को खुद भी कोढ़ हो गया था । वे मद्रासके रहनेवाले हैं । वे बड़े सज्जन और विद्वान् पुरुष हैं । वे श्रीनिवास गाम्त्रीजीके भक्त थे । तो उन्होंने अपना जीवन इस काममें लगा दिया है । (प्रा० प्र०, २३ १० ४७)

जिनको कुष्ठ रोग रहता है उनके बारेमें मैंने कल एक बात कही थी । जगदीशन्का भी नाम लिया था । वे बड़े विद्वान् आदमी हैं । उनको यह रोग था । वह बिल्कुल नाबूद तो नहीं हुआ है, लेकिन काफी अकुशमें आ गया है । वे इसमें काफी काम करते हैं, काफी दिलचस्पी लेते हैं, उनसे मिलते-जुलते हैं । मेहनती तो जबरदस्त हैं ही । वे मद्रासमें रहते हैं, वर्धामें नहीं, लेकिन कई दिनोंसे वर्धामें हैं । उन्होंने इस बारेमें मुझमें खतो-कितावत की थी । उनका पत्र मिले कई दिन हो गए । उसको आज मैंने पढ़ लिया । मैंने उसमें एक बात देखी है, जिसे मैं यहाँ साफ कर देना चाहता हूँ । वे कहते हैं कि जिसको कुष्ठ रोग हो गया है उसको कोढ़ी मत कहो । लोग उससे बुरा अर्थ निकाल लेते हैं । उसको वे अछूतने भी बदतर मान लेते हैं । अछूत बड़ी थोड़ा करता है । उनको छूनेमें हम पतित हो जाते हैं, ऐसा हम मान लेते हैं । मैं कह चुका हूँ कि सच्चा कोढ़ तो मनकी मलिनता है । अपने भाइयोंसे घृणा करना, किसी जाति या वर्गके लोगोको बुरा कहना, रोगी मनका चिह्न है और वह कोढ़से भी बुरा है । ऐसे लोग उससे भी बदतर हैं । तो फिर ऐसा नाम क्यों लेना चाहिए ? कुष्ठ रोगसे पीडित कहो, लेकिन कोढ़ी मत कहो । अगर बुरा कहनेसे बुरा बन जाय तो नहीं कहना चाहिए । गुलाबके पुष्पको आप चाहें किसी भी

नामसे कहे, लेकिन उसमे जो सुवास या सुगंध भरी है उसको वह कभी नहीं छोड़ेगा, बुरे-से-बुरा नाम दो तो भी नहीं। यदि यह जगदीशन् ऐसा कहता है, ठीक है, पर जो छूतकी बीमारी है वह कोई एक तो है नहीं। किसीको खजली हो जाती है, उसको जो स्पर्श करेगा उसको खजली हो जायगी। सर्दी है, हैजा है, प्लेग है, इसी तरहसे कृष्ट रोग है। फिर उसके प्रति घृणा क्या करनी? एक आदमी जब सचमुच कुष्ट रोगी बन जाता है तो लोग उसका तिरस्कार करते हैं। वे कहते हैं कि वह तो कमजात है। कमजात तो वे हुए जो तिरस्कार करते हैं। यह घृणा करनेका जो कोढ़ है वह निकल जाना चाहिए। (प्रा० प्र०, २४ १०.४७)

: ६२ :

हीरजी जयराम

चलालाके पड्या खादी-कार्यालयके श्री नागरदासभाई लिखते हैं

“श्री हीरजीभाई जयराम मिस्त्री, जिन्होंने हमें थानामें श्री स्वामी आनंदके आश्रमवाली जमीन दी थी, गुजर गए हैं।

“जब चर्खा-सघने और श्री रामजीभाई हंसराजने काठियावाडमें खादीका काम बढ़ किया तो हीरजीभाईने ही उस कामको टिकाये रक्खा था। सन् १९३७के अंतमें जब मैं यहा आया तो हीरजीभाई करीब दस चर्खोंका काम संभाले हुए थे और उनके लिए वे पीजने भी चलवा रहे थे। उन्होंने इस कामको इतना जिंदा रक्खा, उसीका यह नतीजा है कि आज काठियावाडमें हर साल करीब एक लाख रुपयेकी व्यापारी खादी पैदा होती है। चलालाके और उसकी शाखाओंके कुल मिलाकर २५ केंद्रोंमें

इस समय काम हो रहा है। व्यापारी खादीके साथ-साथ स्वावलंबी खादीका काम भी बढ़ रहा है। जिस समय हमने अपने खादी-कामको फैलाया, हीरजीभाई अपने कताई-पिजाईके कामको जारी रखते हुए थे। कपडेके लिहाजसे उनका सारा परिवार स्वावलम्बी था, अपने खेतसे वे अच्छा फूटा हुआ कपास खुद चुन लाते थे और अपने हाथो उसे ओढ़ते थे। वे नियमसे रोज दो गुडी सूत तो कातते ही थे।

“काठियावाडके खादी और हरिजन कार्यको उन्होंने समय-समयपर सहायता पहुँचाई थी। हमें उनका पूरा-पूरा आघार था। मरनेसे पहले उन्होंने अपनी वसीयत लिखी है, जिसमें मोरवीमें खादी-कार्य शुरू करनेके लिए एक हजार रुपए की मजूरी दी है। मोरवीमें खादी-कार्य चलानेकी उनकी तीव्र इच्छा थी, परंतु वह सफल न हो सकी। मिस्त्रीजीने दो साल पहले अपनी दूसरी पत्नीके देहातके बाद तीसरी बार विवाह किया था। पहली पत्नीसे उनके तीन लडके हैं।

“वे नीचे लिखे सज्जनोको अपनी वसीयतका ट्रस्टी बना गये हैं।

- | | |
|-------------------------|------------------------|
| १. श्री रामजीभाई हसराम | ४ श्री नागरदास |
| २. श्री जगजीवनभाई मेहता | ५. एक स्थानीय व्यापारी |
| ३. श्री छगनलाल जोशी | |

“वसीयतके दस्तावेजकी रजिस्ट्री हो चुकी है। सब मिलाकर स्यावर, णगम और नकद मिल्कियत ५२ हजारकी है।”

मुझे तो भाई हीरजीके इस वसीयतनामैकी कोई खबर ही न थी। मुझे उनका चेहरा अच्छी तरह याद है। भाई हीरजीकी सारी सेवा भूक थी। थानेके नजदीकवाली जमीन भी उन्होंने सक्चाते-सक्चाते ही दी थी। उनकी सेवामें तनिक भी आडवर न था। वे साधारण स्थितिके मामूली पढ़े-लिखे आदमी थे, परंतु उनकी सब सेवाए ठोस थी। नाम या यशका उन्हें कभी लोभ न रहा, उनकी सेवा ही उनका इनाम और प्रमाण-पत्र था। ऐसी आत्मा मदा ही अमर होती है। (ह० मे०, १२ ४ ४२)

: ६३ :

श्रीकृष्णदास जाजू

नए अध्यक्षके रूपमे सघको पूर्व अध्यक्षकी भाति ही एक सुपरीक्षित और धर्मबुद्धिवाला कार्यकर्ता मिल गया है। जाजूजी दर्शनशास्त्री नहीं हैं, वह लेखक भी नहीं हैं, किंतु वह अधिक व्यवहारदक्ष हैं। वह अखिल भारतीय चर्चा सघकी महाराष्ट्र शाखाके प्रधान व्यवस्थापक रहे हैं। उनके परिश्रमसे ही उसे आज इतनी सफलता मिली है। (ह० से०, २३४०)

: ६४ :

मोहम्मद अली जिन्ना

जिन्नासाहबने जिस मुक्ति-दिवसका ऐलान किया था उस दिन मुझे गुलबर्गके मुसलमानोंकी तरफसे यह तार मिला—“नजात-दिवसका मुबारकबाद, काइदे-आजम जिन्ना जिंदाबाद।” मैंने समझा कि यह सदेश मुझे चिढ़ानेके उद्देश्यसे भेजा गया है। मगर भेजनेवाले क्या जाने कि इस तारका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। जब मुझे वह मिला तो मैं भी मन-ही-मन भेजनेवालोंकी इस प्रार्थनामे शामिल होगया—“काइदे-आजम जिन्ना बहुत दिन जाए।” काइदे-आजम हमारे पुरानी साथी है। आज कुछ बातोंमे हमारे-उनके विचार नहीं मिलते तो इससे क्या हुआ? उनके लिए मेरे सद्भावमे कोई अंतर नहीं आ सकता।

मगर काइदे-आजमकी तरफसे एक विशेष कारण उन्हें बधाई देनेके लिए और मिल गया है। ईदके दिन रेडियोपर उन्होंने जो बढिया भाषण दिया था उसपर बधाईका तार भेजनेकी मुझे खुशी हासिल हुई थी।

अब वे और भी मुवारकवादके हकदार हो गए हैं, क्योंकि वे कांग्रेसकी नीति और राजनीतिके विरोधी दलोंके साथ करारनामे कर रहे हैं। इस तरह वे मुस्लिम-लीगको साम्प्रदायिक चक्करसे निकालकर उसे राष्ट्रीय स्वरूप दे रहे हैं। मैं उनके इस कदमको पूरी तरह उचित समझता हूँ। मैं देखता हूँ कि मद्रासकी जस्टिस पार्टी और डॉक्टर अवेडकरका दल जिन्नासाहवसे पहले ही मिल चुका है। अखबारोमें खबर है कि हिंदू महासभाके प्रधान श्रीसावरकर उनसे बहुत जल्द मिलनेवाले हैं। जिन्नासाहवने खुद जनताको सूचना दी है कि बहुत-से गैर-कांग्रेसी हिंदुओंने उनके साथ सहानुभूति प्रकट की है। ऐसा होना मैं पूरी तरह लाभदायक समझता हूँ। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है कि हमारे देशमें दो ही बड़े-बड़े दल रह जाय, एक कांग्रेसियोंका और दूसरा-गैरकांग्रेसियोंका या कांग्रेस-विरोधी शब्द ज्यादा पसंद हो तो, कांग्रेस-विरोधियोंका। जिन्नासाहवकी कृपासे कम तादादवाली जाति शब्द का नया और अच्छा अर्थ हो रहा है। कांग्रेसका बहुमत सवर्ण हिंदुओं, अवर्ण हिंदुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों और यहूदियोंके मेलसे बना है। इसलिए यह एक ऐसा बहुमत है जिसमें एक खास तरहकी राय रखनेवाले सब वर्गोंके लोग शामिल हैं। जो नया दल बनने जा रहा है वह एक खास तरहकी राय रखनेवाले तादादके लोगोंका दल है। निर्वाचकोंको पसंद आनेपर इनका किसी भी दिन बहुमत हो सकता है। इस तरह दलोंका एक होना ऐसी बात है जिसे हम सबको दिलसे चाहना चाहिए। अगर काइदे-आजम इस तरहका मेल साध सके तो मैं ही नहीं, सारा हिंदुस्तान एक आवाजसे पुकारकर कहेगा—“काइदे-आजम जिन्ना जूग-जूग जिए”, क्योंकि वे ऐसी स्थायी और सजीव एकता स्थापित कर देंगे, जिसके लिए मुझे विश्वास है कि सारा राष्ट्र तड़प रहा है। (ह० से०, २० १४०)

: ६५ :

छोटेलाल जैन

सावरमती-सत्याग्रहाश्रमके निवासी और सबधी कुछ इस तरह बिखरे पड़े हैं कि उन्हें एक-दूसरेकी प्रवृत्तिका पता तक नहीं रहता। खास सबध जोड़ने या उसे यत्नपूर्वक रखनेकी प्रथा नहीं डाली गई। सबध केवल सेवा-सबधी रहा है। कहनेका यह आशय नहीं कि सब ऐसा ही करते हैं, किन्तु मूक सेवामे स्व० मगनलाल गाधीके साथ बराबरी करने-वाले आश्रमवासी श्री छोटेलाल जैन का आत्मघात, इन शब्दोंको लिखते हुए अदरसे मुझे काट रहा है। छोटेलालकी मूक सेवाका वर्णन भाषाबद्ध नहीं हो सकता। ऐसा करना मेरी शक्तिसे बाहर है। छोटेलालका कोई परिचय देता तो वह भागते थे। उनकी मृत्युसे उनके विषयमे उनके सगे-सबधी भी जानना चाहेंगे। लेकिन आश्रममे आनेके बाद छोटेलालका कभी किसी दिन अपने सबधियोंके पास जानेका या आश्रममे उनके रिश्तेदारोंके आनेका मुझे स्मरण नहीं आता। उनके नाम व पते-ठिकाने भी नहीं जानता तो भी उनके पास आश्रमकी खबर पहुंचानेका तो मेरा कर्तव्य है ही। उनकी खातिर भी इस टिप्पणीका लिखना उचित है और छोटे-लालकी मृत्युसबधी इस टिप्पणीके साथ भला कौन ईर्ष्या करेगा ?

मेरे सौभाग्यसे मुझे कुछ ऐसे योग्य साथी मिल हैं कि उनके बिना मैं अपनेको अपग अनुभव करता हू। छोटेलाल मेरे ऐसे ही साथी थे। उनकी बुद्धि तीव्र थी। उन्हें कोई भी काम सौपते मुझे हिचकिचाहट नहीं होती थी। वे भाषाशास्त्री भी थे। राजपूताना-निवासी होनेसे उनकी मातृभाषा हिंदी थी। पर वह गुजराती, मराठी, बंगाली, तमिल, संस्कृत और अंग्रेजी भी जानते थे। नई भाषा या नया काम हाथमे लेनेकी उनकी

जैसी शक्ति मैंने और किमीमें नहीं देखी। आश्रमके स्थापना-कालसे ही छोटेलालने उससे अपना भवज जोड़ लिया था।

रसोई बनाना, पाखाना साफ करना, वातना, धुना, हिमाव-किताव रखना, अनुवाद करना, चिट्ठी-पत्री लिखना आदि सब कामोंको वह स्वाभाविक रीतिसे करते और वे उन्हें जोभते थे। मगनलालके लिखे 'दुनाई-गाम्त्र' में छोटेलालका हिस्सा मगनलालके जितना ही था, यह कहा जा सकता है। चाहे जैसे जोसमका काम उन्हें सँपा जाय उसे वह प्रयत्नपूर्वक करते और जबतक वह पूरा न हो जाय, उन्हें शांति नहीं मिलती थी। अविश्रात रीतिमें काम करते हुए भी छोटेलाल दूसरा काम लेनेको हमेशा तैयार रहते थे। उनके शब्दकोषमें 'थकान' के लिए स्थान नहीं था। सेवा करना और दूसरोंसे सेवा-कार्य लेना यह उनका मंत्र था। ग्राम-उद्योग-संघ स्थापित हुआ तो धानीका काम दाखिल करनेवाले छोटेलाल, धान दलनेवाले छोटेलाल और मधुमक्खिया पालने वाले भी छोटेलाल। जिस तरह छोटेलालके वर्ग में अपग जैसा हो गया हूँ ऐसी ही स्थिति आज उनकी मधुमक्खियोंकी भी होगी, क्योंकि यह नोट लिखते समय मुझे पता नहीं कि उनके इस परिवारकी अब इतनी सार-समान कौन रखेगा।

छोटेलाल मधुमक्खियोंके पीछे जैसे दीवाने हो गए थे। उनकी शोधमें उन्हें हलके प्रकारके मियादी वखार (टाइफाइड) ने पकड़ लिया। यह उनके प्राणोंका ग्राहक निकला। मालूम होता है, उन्हें छ सप्ताह दिन-अपनी सेवा कराना भी असह्य लगा। अतः ३१ अगस्त, मंगलवारकी रात-को ग्यारह और दो बजेके बीचमें सबको सोता हुआ छोड़कर वह मगन-वाडीके कुएँमें कूद पड़े। आज पहली तारीखको शामके चार बजे लाश हाथमें आई। मैं सेगावमें बैठा रातके आठ बजे यह लिख रहा हूँ। छोटेलालकी देहका इस समय वर्धामें अग्नि-दाह हो रहा होगा।

इस आत्मघातके लिए छोटेलालको दोष देनेकी मुझमें हिम्मत नहीं।

छोटेलाल तो वीर पुरुष थे। उनका नाम १९१५ के दिल्ली-षडयंत्र-केस-में आया था, पर उसमें वह बरी हो गए थे। किसी आफिसरको मारकर खुद फासीके तख्तेपर चढ़नेका स्वप्न वह उन दिनों देखते थे। इतनेमें मेरे लेखोंके पाशमें आ फसे। दक्षिण अफ्रीकाके मेरे जीवनसे उन्होंने परिचय प्राप्त कर लिया था। अपनी तीव्र हिंसक वृद्धिको उन्होंने बदल दिया और अहिंसाके पुजारी बन गए। जिस तरह साप केचुल उतार देता है उसी तरह उन्होंने अपने हिंसक जीवनकी खोल उतारकर फेंक दी। इतना होते हुए भी वह अपने मनसे क्रोधको नहीं जीत सके। उन्हें इस बीमारीमें अपनी सेवा लेना असह्य मालूम दिया और गहरी पैठी हुई हिंसाको खुद अपनी वलि दे दी। इसके सिवाय, दूसरा अर्थ मैं इस आत्मघातका नहीं लगा सकता।

छोटेलाल मुझे अपना देनदार बनाकर ४५ वर्षकी उम्रमें चल बसे। उनसे मैं अनेक आगाए रखता था। उनकी अपूर्णता मैं सहन नहीं कर सकता था, इससे छोटेलालने मेरे वाग्वाण जितने सहन किए उतने तो शायद मैंने एक-दो को ही सहन कराये होंगे। पर छोटेलालने उन्हें सदैव सहन किया। परन्तु ऐसे वचन सुनानेका मुझे क्या अधिकार था? मुझे तो उन्हें हिंदू-मुसलमानकी लड़ाईमें, या हिंदूधर्ममें से अस्पृश्यता-रूपी कचरा निकाल बाहर करनेमें या गोमाताकी सेवामें होमकर उनका लहना चुकाना था। ऐसा करनेकी शक्ति रखनेवाले साथियोंमें छोटेलाल एक ऊँचा स्थान रखते थे। मेरे लिए तो ये सब स्वराजकी वेदिया हैं।

पर छोटेलालकी मृत्युका रोना रोकर अब क्या करूँ? ऐसे अनेक मूक योद्धाओंकी आवश्यकता होगी। रामराज-रूपी स्वराज लेना आसान नहीं। छोटेलालके जीवनके इस छोटे-से टुकड़ेका परिचय पाकर दूसरे मूक सेवक आगे आवें। (ह० से०, ११ ए ३७)

: ६६ :

पुरुषोत्तमदास टंडन

एक भाईने मेरे पास इस आज्ञिका एक बहुत सन्त पत्र भेजा है कि क्या तुम अब भी पागल ही रहोगे ? अद तो थोड़े दिनोमे इस दुनियासे चले जाओगे, तब भी कुछ सीखोगे नही ? यदि पुरुषोत्तमदास टंडनने यह कहा कि 'सबको तलवार लेनी चाहिए, सिपाही बनना चाहिए और अपना वचाव करना चाहिए' तो तुमको इस बातमे चोट क्यों लगती है ? तुम तो गीताके पढनेवाले हो ? तुम्हे तो इन दृष्टोमे परे हो जाना चाहिए और बात-बातमे चोट लगा लेने या खूब होनेकी भभट छोड देनेी चाहिए। तुम उस कहानीवाले भोले साधु बाबा-जैमी बात करते हो जो पानीमे बहते हुए विच्छूके डक लगानेपर भी उसे हाथमे पकडकर वचानेकी कोशिश करता था। अगर तुमसे अहिंसाका गीत गाए बिना रहा नही जाता तो कम-से-कम जो दूसरे रास्तेसे जाते हैं उन्हें तो जाने दो ! उनके बीचमे रोडा क्यों बनते हो ?

अगर मैं स्थितप्रज्ञ रह सका तो अपनी एक सी पच्चीस वर्षकी उम्रमें मे एक भी वर्ष कम जिंदा नही रहूंगा। अगर हम सब स्थितप्रज्ञ बने तो हममेसे एक भी आदमीको १२५ वर्षमे जरा भी कम जीनेका कोई कारण नही है। वैसे भगवान चाहे तो भले मुझे आज ही उठा ले, पर अभी तुरत मैं चलनेवाला नही हू। मुझे अभी रहना है और काम करना है। पुरुषोत्तमदास टंडन मेरे पुराने साथी है। हम वर्षोंतक साथ-साथ काम करते आए है। मेरे जैसे ही डेङ्गरके वे भक्त हैं। जब मैंने यह मुना कि वे ऐसी बात कर रहे हैं तब मुझे दुःख हुआ। मैंने कहा कि आज तीस वरससे भी अधिक समयसे जो हमने सीखा है और जिसकी हमने लगनसे साधना की है, वह क्या इस तरह गवा दिया जायगा ? वचावके लिए

तलवार पकड़नेकी बात की जाती है, पर आजतक मुझे दुनियामे एक आदमी ऐसा नहीं मिला है, जिसने वचावसे आगे बढ़कर प्रहार न किया हो। वचावके पेटमें ही वह पड़ा है। अब रही मेरे दिलपर चोट लगनेकी बात। अगर मैं पूरा स्थितप्रज्ञ बन गया होता तो मुझे चोट न लगती। अब भी चोट न लगे ऐसी कोशिश मैं कर रहा हूँ। कल जहाँ था वहाँसे आज कुछ-न-कुछ आगे ही बढ़ता हूँ। अगर ऐसा नहीं हो तो रोज-रोज गीता-में से स्थितप्रज्ञके ये श्लोक बोलनेमें मैं दभी ठहरता हूँ, पर ऐसा नहीं हो सकता कि इन श्लोकोके बोलने भरसे ही कोई एक ही दिनमें स्थितप्रज्ञ बन जाय। (प्रा० प्र०, १३ ६ ४७)

आज सबेरे जब मेरा मौन था तो श्री पुरुषोत्तमदास टडन आए। मैंने आपको बताया था कि जब टडनजी ने कहा कि हरेक स्त्री-पुरुषको शस्त्रधारी बनना चाहिए और स्वरक्षा करनी चाहिए तो यह सुनकर मुझे कैसा बुरा लगा था। एक पत्र-लेखकने मुझसे पूछा था कि गीता पढ़ते रहनेपर भी इस तरह आपको बुरा कैसे लग सकता है? उस पत्रसे यह भी पता चलता था कि टडनजी 'शठ प्रति शाठ्य' का सिद्धांत मानते हैं। तब टडनजीसे मैंने पूछा कि आप क्या मानते हैं? इसका खुलासा देते हुए टडनजीने बताया कि मैं 'शठ प्रति शाठ्य' के सिद्धांतको तो नहीं मानता हूँ, लेकिन स्वरक्षाके लिए शस्त्रधारी बनना जरूरी है, ऐसा मैं मानता हूँ। गीताने भी यही सिखाया है।

तब मैंने टडनजीसे कहा कि इतना तो आप उस भाईको लिख दीजिए कि आप 'शठ प्रति शाठ्य' के माननेवाले नहीं हैं ताकि वे भ्रममें न रहे। और स्वरक्षाके लिए हिंसा करनेकी बात गीतामें कही है, यह मैं नहीं मानता। मैंने तो गीताका अलग ही अर्थ निकाला है। मेरी समझमें गीता ऐसा नहीं सिखाती है। गीतामें या दूसरे किसी संस्कृत ग्रंथमें अगर ऐसी बात लिखी है तो मैं उसे धर्मशास्त्र माननेको तैयार नहीं हूँ। महज

मस्कृतमें कुछ लिख देनेमें कोई वाक्य शास्त्र-वाक्य नहीं बन जाता ।

टंडनजीने मुझसे कहा—‘तुमने तो उन बदरोंको मारनेके लिए भी लिखा था, जो बेहद पीडा पहुँचाते हैं और खेती उजाड़ देते हैं ।’ लेकिन मैं तो किसी भी प्राणीको और यहाँ तक कि चींटीतकको भी मारना पसंद नहीं करता । फिर भी खेती-बाड़ीका मवाल अलग है और मनुष्य-मनुष्यका अलग है ।

तब टंडनजीने कहा कि ‘शठ प्रति गाठय’ यानी एक दातके बदलेमें दो दात निकालनेकी बात हम न करें और एक दातके बदलेमें एक दात तथा एक थप्पड़के बदलेमें एक थप्पड़की बात भी नहीं करेंगे, परन्तु हाथमें शस्त्र नहीं लेंगे, अपनी शक्ति नहीं दिखाएंगे तो स्वरक्षा किस तरह होगी ?

इसके बारेमें मेरा यह जवाब है कि स्वरक्षा जरूर की जाय, पर मेरी स्वरक्षा कैसे होगी ? कोई मेरे पास आता है और कहता है कि बोल, राम-नाम लेता है या नहीं ? नहीं लेगा तो यह तलवार देख । तब मैं कहूँगा, यद्यपि मैं हरदम राम-नाम लेता हूँ, लेकिन तलवारके बलपर मैं हरगिज न लूँगा, चाहे मारा क्यों न जाऊँ ? और इस तरह स्वरक्षाके लिए मैं मटंगा । वैसे कलमा पढ़नेमें मेरा कोई धर्म जानेवाला नहीं है । क्या हो गया, अगर मैं ठेठ अरबीमें बोलूँ कि अल्लाह एक है और उसका रनूल एक ही मुहम्मद पैगंबर है । ऐसा बोलनेमें कोई पाप नहीं और इतने भरने वे मुझे मुसलमान माननेको तैयार हैं तो मैं अपने लिए फलकी बात समझूँगा । लेकिन जब तलवारके जोरने कोई कलमा पढ़वाने आवेगा तब कभी भी कलमा न पढ़ूँगा । अपनी जान देकर मैं स्वरक्षा करूँगा । इस बहादुरीको सिद्ध करनेके लिए मैं जिंदा रहना चाहता हूँ । इसके अलावा और तरीकेमें मैं जीना नहीं चाहता । (प्रा० प्र०, १६ ६ ४७)

: ६७ :

काउंट लियो टाल्स्टाय

टाल्स्टायके लेख तो इतने सरस और इतने सरल हैं कि चाहे जो धर्म-प्रेमी उन्हें पढ़कर उनसे लाभ उठा सकता है। उसकी पुस्तक पढ़कर साधारणतः यह विश्वास अधिक होता है कि वह मनुष्य जैसा कहता था वैसा ही करता भी रहा होगा। ('मेरे जेलके अनुभव'—महात्मा गांधी)

सवाल—काउंट टाल्स्टायको आप किस दृष्टिसे देखते हैं ?

जवाब—मैं उनको अत्यंत आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। अपने जीवनकी कितनी ही बातोंके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। (य० इ०, पृष्ठ २०६)

मेरी वर्तमान मानसिक दशा ऐसी नहीं है कि मैं एक भी पर्व पुण्य-तिथि या एक भी उत्सव मनाने के योग्य रहा होऊँ। कुछ दिनों पहले 'नव-जीवन' या 'यग इडिया' के किसी पाठकने मुझसे प्रश्न पूछा था, "आप श्राद्धके विषयमें लिखते हुए कह चुके हैं कि पुरुषोक्ता सच्चा श्राद्ध उनकी पुण्य-तिथिके दिवस उनके गुणोक्ता स्मरण करने से और उन्हें अपने जीवनमें ओतप्रोत कर लेनेसे हो सकता है। इसीसे मैं पूछता हूँ कि आप खुद अपने पुरुषोक्ता श्राद्धतिथि कैसे मनाते हैं ?" पुरुषोक्ता श्राद्धतिथि जब मैं जवान था तब मनाया करता था। परंतु मैं अभी तुम्हें यह कहनेमें शर्माता नहीं हूँ कि मुझे अपने पूज्य पिताजीकी श्राद्धतिथिका स्मरण तक नहीं है। कई वर्ष व्यतीत हो चुके। एक भी श्राद्धतिथि मनानेकी मुझे याद नहीं है, यहा तक कि मेरी कठिन स्थिति या कहिए कि सुदर स्थिति है, अथवा जैसेकि कई एक मित्र मानते हैं, मोहकी स्थिति है, कि ऐसा मेरा

मतव्य है कि जिस कार्यको सिरपर लिया हो उसीमें चौबीस घंटे लगे रहना, उसका मनन करना और जहां तक बन पड़े उसे सुव्यवस्थित रूपमें करनेमें ही सबकुछ आ जाता है। उसीमें पुरुषोंकी आद्वैतित्तिका मनाना भी आ जाता है। टाल्स्टाय-जैमोके उत्सव भी आ जाते हैं। .

तीन महीने पहले एल्मर माड एव टाल्स्टायका साहित्य इकट्ठा करने-वाले दूसरे सज्जनोके पत्र आए थे कि इस गताव्दीके अवसरपर मैं भी कुछ लिख भेजू और इस दिन की याद हिंदुस्तानमें दिलाऊ। एल्मर माडके पत्रका साराग या सारा पत्र तुमने मेरे अखबारोंमें देखा होगा। उसके बाद मैं यह बात विलकुल भूल गया था। यह प्रसंग मेरे लिए एक शुभ अवसर है।

तीन पुरुषोंने मेरे जीवनपर बहुत ही बड़ा प्रभाव डाला है। उसमें पहला स्थान मैं राजचन्द्र कविको देता हूँ, दूसरा टाल्स्टायको और तीसरा रस्किनको। टाल्स्टाय और रस्किनके दरम्यान स्पर्धा खड़ी हो और दोनोंके जीवनके विषयमें मैं अधिक बातें जान लू तो नहीं जानता कि उस हालतमें प्रथम स्थान मैं किसे दूंगा। परन्तु अभी तो दूसरा स्थान टाल्स्टायको देता हूँ। टाल्स्टायके जीवनके विषयमें बहुतेरोंने जितना पढ़ा होगा उतना मैंने नहीं पढ़ा है। ऐसा भी कह सकते हैं कि उनके लिखे हुए ग्रंथोंका वाचन भी मेरा बहुत कम है। उनकी पुस्तकोंमेंसे जिस किताबका प्रभाव मुझपर बहुत अधिक पड़ा उसका नाम है 'Kingdom of Heaven is Within You' उसका अर्थ यह है कि ईश्वरका राज्य तुम्हारे हृदयमें है। उसे बाहर खोजने जाओगे तो वह कहीं न मिलेगा। इसे मैंने चालीस वर्ष पहले पढ़ा था। उस वक्त मेरे विचार कई एक बातोंमें शकाशील थे। कई मर्तवा मुझे नास्तिकताके विचार भी आते थे। विलायत जानेके समय तो मैं हिंसक था, हिंसापर मेरी श्रद्धा थी और अहिंसापर अश्रद्धा। यह पुस्तक पढ़नेके बाद मेरी यह अश्रद्धा चली गई। फिर मैंने उनके दूसरे कई एक ग्रंथ पढ़े। उनमें से प्रत्येकका

क्या प्रभाव पड़ा सो मैं नहीं कह सकता, परन्तु उनके समग्र जीवनका क्या प्रभाव पड़ा वह तो कह सकता हूँ ।

उनके जीवनमें मैं अपने लिए दो बातें भारी समझता हूँ । वे जैसा कहते थे वैसा ही करनेवाले पुरुष थे । उनकी सादगी अद्भुत थी, बाह्य सादगी तो थी ही । वे अमीर-वर्गके मनुष्य थे । इस जगतके छप्पन भोग उन्होंने भोगे थे । धन-दौलतके विषयमें मनुष्य जितनी इच्छा रख सकता है, उतना उन्हें मिला था । फिर भी उन्होंने भरी जवानीमें अपना ध्येय बदला । दुनियाके विविध रंग देखेपर भी, उनके स्वाद चखनेपर भी, जब उन्हें प्रतीत हुआ कि इसमें कुछ नहीं है तो उससे मुह मोड़ लिया और अतः तक अपने विचारोंपर पक्के रहे । इसीसे मैंने एक जगह लिखा है कि टाल्स्टाय इस युगकी सत्यकी मूर्ति थे । उन्होंने सत्यको जैसा माना वैसा ही पालनेका उग्र प्रयत्न किया । सत्यको छिपाने या कमजोर करनेका प्रयत्न नहीं किया । लोगोंको दुःख होगा या अच्छा लगेगा कि नहीं, इसका विचार किए बिना ही उन्हें जिस माफिक जो वस्तु दिखाई दी उसी माफिक कह सुनाई । टाल्स्टाय अपने युगके लिए अहिंसाके बड़े भारी प्रवर्तक थे । अहिंसाके विषयमें परिश्रमके लिए जितना साहित्य टाल्स्टायने लिखा है, जहां तक मैं जानता हूँ, उतना हृदयस्पर्शी साहित्य दूसरे किसीने नहीं लिखा है । उससे भी आगे जाकर कहता हूँ कि अहिंसाका सूक्ष्म दर्शन जितना टाल्स्टायने किया था और उसका पालन करनेका जितना प्रयत्न टाल्स्टायने किया था, उतना प्रयत्न करनेवाला आज हिंदुस्तानमें कोई नहीं । ऐसे किसी आदमीको मैं नहीं जानता ।

मेरे लिए यह दशा दुःखदायक है, मुझे यह भाती नहीं है । हिंदुस्तान कर्मभूमि है । हिंदुस्तानमें ऋषि-मुनियोंने अहिंसाके क्षेत्रमें बड़ी-से-बड़ी खोज की है, परन्तु हम केवल वजुर्गोंकी ही प्राप्त की हुई पूजापर नहीं निभ सकते । उसमें यदि वृद्धि न की जाय तो हम उसे खा जाते हैं ।

इस विषयमें न्यायमूर्ति गनडेने हमें नावधान कर दिया है। वेदादि साहित्यमेंने या जैन साहित्यमेंने हम बड़ी-बड़ी बाने चाहे जितनी करते रहे अथवा मिद्धातोके विषयमें चाहे जितने प्रमाण देने रहे और दुनिया को आश्चर्य-मग्न करते रहे फिर भी दुनिया हमें नच्चा नहीं मान सकती। इसलिए गनडेने हमारा धर्म यह बताया है कि हम इस पूजीमें वृद्धि करते जाय। दूसरे धर्म-विचारकोने जो लिखा हो, उसके साथ मुकाबिला करें, ऐसा करनेमें कुछ नया मिल जाय या नया प्रकाश मिलना हो तो उसका तिरस्कार न करना चाहिए, किन्तु हमने ऐसा नहीं किया। हमारे धर्माध्यक्षोंने एक पक्षका ही विचार किया है। उनके पठन, वचन और वरतनमें समानता भी नहीं है। प्रजाको अच्छा लगे या नहीं, जिस समाजमें वे स्वयं काम करते थे उस समाजको भला लगे या बुरा, फिर भी टाल्स्टायके समान खरी-खरी सुना देनेवाले हमारे यहाँ नहीं मिलते। हमारे इस अहिंसा प्रधान देशकी ऐसी दयाजनक दगा है।

हमारी अहिंसाकी निंदा ही योग्य है। खटमल, मच्छर, बिच्छू, पक्षी और पशुओंको हर किसी तरहमें निभानेमें ही मानो हमारी अहिंसा पूर्ण हो जाती है। वे प्राणी कष्टमें तटपने हो तो उसकी हम पाँवा नहीं करते, दुखी होनेमें यदि स्वयं हिस्सा देते हो तो उसकी भी हमें चिंता नहीं। परन्तु दुखी प्राणीको कोई प्राणमुक्त करे अथवा हम उसमें गरीब हो तो उसमें हम घोर पाप मानते हैं। ऐसा मैं लिख चुका हूँ कि यह अहिंसा नहीं है। टाल्स्टायका स्मरण कराते हुए फिर कहता हूँ कि अहिंसाका यह अर्थ नहीं है। अहिंसाके मानी हैं प्रेमका समुद्र, अहिंसाके मानी हैं वैरभावका सर्वथा त्याग। अहिंसामें दीनता, भीरुता न हो, डर-डरके भागना भी न हो। अहिंसामें दृढ़ता, वीरता, निश्चलता होनी चाहिए।

यह अहिंसा हिंदुस्तानमें शिक्षित समाजमें दिखाई नहीं देती। उनके लिए टाल्स्टायका जीवन प्रेरक है। उन्होंने जो वस्तु मान ली, उसका पालन करनेमें भारी प्रयत्न किया और उसमें कभी डिगें तक नहीं। मैं

यह नहीं मानता कि उन्हें वह हरी छड़ी (सिद्धि) न मिली हो। 'नहीं मिली' यह तो उन्होंने स्वयं कहा है। ऐसा कहना उनको सुहाता था, परन्तु यह मैं नहीं मानता कि उन्हें वह छड़ी न मिली हो, जैसा कि उनके टीकाकार लिखते हैं। मैं यह मान सकता हूँ, यदि कोई कहे कि उन्होंने सब तरहसे उस अहिंसाका पालन नहीं किया जिसका उन्हें दर्शन हुआ था। इस जगत्में ऐसा पुरुष कौन है कि जो अपने सिद्धांतों पर पूरा अमल कर सका हो ? मेरा मानना है कि देह-धारीके लिए संपूर्ण अहिंसाका पालन अशक्य है। जबतक शरीर है तबतक कुछ-न-कुछ तो अहंभाव रहता ही है। जबतक अहंभाव है, शरीरको भी तभीतक धारण करना है ही। इसलिए शरीरके साथ हिंसा भी रही हुई है। टाल्स्टायने स्वयं कहा है कि जो अपनेको आदर्श तक पहुँचा हुआ समझता है, उसे नष्टप्राय ही समझना चाहिए। बस यहीसे उसकी अधोगति शुरू होती है। ज्यों-ज्यों हम आदर्शके समीप पहुँचते हैं, आदर्श दूर भागता जाता है। जैसे-जैसे हम उसकी खोजमें अग्रसर होते हैं, यह मालूम होता है कि अभी तो एक मजिल और बाकी है। कोई भी जल्दीसे मजिले तक नहीं कर सकता, ऐसा माननेमें हीनता नहीं है, निराशा नहीं है, किन्तु नम्रता अवश्य है। इसीसे हमारे ऋषियोंने कहा है कि मोक्ष तो शून्यता है। मोक्ष चाहनेवालेको शून्यता प्राप्त करना है। यह ईश्वर-प्रसादके बिना नहीं मिल सकती। यह शून्यता जबतक शरीर है, आदर्शरूप ही रहती है। इस बातको टाल्स्टायने साफ देख लिया, उसे बुद्धिमें अंकित किया, उसकी ओर दो डग आगे बढ़े और उसी वक्त उन्हें वह हरी छड़ी मिल गई। उस छड़ीका वे वर्णन नहीं कर सकते, सिर्फ मिली इतना ही कह सकते हैं। फिर भी अगर कहा होता कि मिली तो उनका जीवन समाप्त हो जाता।

टाल्स्टायनके जीवनमें जो विरोधाभास दीखता है वह टाल्स्टायनका कलक या कमजोरी नहीं है, किन्तु देखनेवालोंकी त्रुटि है। एमर्सनने कहा है कि अविरोध तो छोटे-से आदमीका पिशाच है। हमारे जीवनमें कभी विरोध

आनेवाला ही नहीं, अगर यह हम दिखलाना चाहें तो हमें मरा ही समझे। ऐसा करनेमें अगर कलके कार्यको याद रखकर उसके साथ आजके कार्यका मेल करना पड़े तो कृत्रिम मेलमें असत्याचरण हो सकता है। नीचा मार्ग यह है कि जिस वक्त जो सत्य प्रतीत हो उसका आचरण करना चाहिए। यदि हमारी उत्तरोत्तर वृद्धि ही हो जाती हो तो हमारे कार्यमें दूसरोंको विरोध दीखे भी तो उसमें हमें क्या सबब है। सच तो यह है कि वह हमारा विरोध नहीं है, हमारी उन्नति है। उमीके अनुसार टाल्स्टायके जीवनमें जो विरोध दीखता है वह विरोध नहीं है, बल्कि हमारे मनका विरोधाभास है। मनुष्य अपने हृदयमें कितने प्रयत्न करता होगा राम-रावणके युद्धमें कितनी विजयें प्राप्त करता होगा, उनका ज्ञान उसे स्वयं नहीं होता, देखनेवालोंका तो हो ही नहीं सकता। यदि वह कुछ फिमला तो वह जगतकी निगाहमें कुछ भी नहीं है, ऐसा प्रतीत होना अच्छा ही है। उसके लिए दुनिया निंदाकी पात्र नहीं है। इसीमें तो सतोंने कहा है कि जगत जब हमारी निंदा करे तब हमें आनंद मनाना चाहिए और स्तुति करे तब काप उठना चाहिए। जगत दूसरा नहीं करता। उसे तो जहां मेल दीखा कि वह उसकी निंदा ही करेगा। परंतु महापुरुषके जीवनको देखने बैठे तो मेरी कही हुई बात याद रखनी चाहिए। उसने हृदयमें कितने युद्ध किए होंगे और कितनी जीते प्राप्त की होंगी, इसका गवाह तो प्रभु ही है। यही निष्फलता और सफलताके चिह्न है।

इतना कहकर मैं यह समझाना नहीं चाहता कि तुम अपने दोषोंको छिपाओ या पहाड़से दोषोंको तनिकमें गिनो। यह तो मैंने दूसरोंके विषयमें कहा है। दूसरोंके हिमालय-से बड़े दोषोंको राईके समान समझना चाहिए और अपने राई-से दोषोंको हिमालयके समान बड़ा समझना चाहिए। अपनेमें अगर जरा-सा भी दोष मालूम हो, जानें-अनजाने असत्य हो गया हो तो हमें ऐसा होना चाहिए कि अब जलमें डूब मरे। दिलमें आग सुलग जानी चाहिए। सर्प या बिच्छूका डक तो कुछ नहीं है, उनका

जहर उतारनेवाले बहुत मिल सकते हैं, परन्तु असत्य और हिंसाके दशसे बचानेवाला कौन है ? ईश्वर हमें उससे मुक्ति दे सकता है और हममें अगर पुरुषार्थ हो तभी वह मिल सकती है। इसलिए अपने दोषोंके बारेमें हम सचेत रहे। वे जितने बड़े देखे जा सकें उन्हें हम देखें और अगर जगत हमें दोषित ठहरावे तो हम ऐसा न मानें कि जगत कितना कजूस है कि छोटे-से दोषको बड़ा बतलाता है। टाल्स्टायनको कोई उनका दोष बतलाता तो वे उसे बड़ा भयकर रूप दे देते थे। उनका दोष बतानेका असर दूसरेको शायद ही उपस्थित हुआ हो, क्योंकि वे बहुत आत्मनिरीक्षण किया करते थे। दूसरोंके बतानेके पहले ही वे अपने दोष देख लेते थे और उसके लिए जिस प्रायश्चित्तकी कल्पना उन्होंने स्वयं की हो वह भी वे कर डाले हुए होते थे। यह साधुताकी निशानी है। इसीसे मैं मानता हूँ कि उन्हें वह छड़ी मिली थी।

दूसरी एक अद्भुत वस्तुका खयाल टाल्स्टायन लिखकर और उसे अपने जीवनमें ओत-प्रोत करके कराया है। वह वस्तु है 'ब्रेड लेबर'। यह उनकी स्वयं की हुई खोज न थी। किसी दूसरे लेखकने यह वस्तु रूसके सर्व-संग्रहमें लिखी थी। इस लेखकको टाल्स्टायन जगतके सामने ला रक्खा और उसकी बातको भी वे प्रकाशमें ले आये। जगतमें जो असमानता दिखाई पड़ती है, दौलत व कगालियत नजर आती है उसका कारण यह है कि हम अपने जीवनका कानून भूल गये हैं। यह कानून 'ब्रेड लेबर' है। गीताके तीसरे अध्यायके आधारपर मैं उसे यज्ञ कहता हूँ। गीताने कहा है कि बिना यज्ञ किए जो खाता है वह चोर है, पापी है। वही चीज टाल्स्टायन बतलाई है। 'ब्रेड लेबर' का उलटा-सुलटा भावार्थ करके हमें उसे उडा नहीं देना चाहिए। उसका सीधा अर्थ यह है कि जो शरीर खपाकर मजदूरी नहीं करता उसे खानेका अधिकार नहीं है। हम भोजनके मूल्यके बराबर मेहनत कर डालें तो जो गरीबी जगतमें दिखाई देती है वह दूर हो जाय। एक आलसी दो भूखोंको मारता है, क्योंकि

उसका काम दूसरेको करना पड़ता है । टाल्स्टायने कहा कि लोग परोप-
कार करनेके लिए प्रयत्न करते हैं, उनके लिए पैसे खर्चते हैं और इलाका
लेते हैं, परन्तु ऐसा न करके थोड़ा-सा ही काम करे अर्थात् दूसरोके कंधोंपर-
से नीचे उतर जाय तो बस यही काफी है । और यही सच्ची बात है । यह
नम्रताका वचन है । करे तो परोपकार, किंतु अपन ऐशोआगममेने लेख-
मात्रभी न छोड़े तो यह वैसा ही हुआ जैसा कि अन्ना भक्तने कहा है
'निहायकी चोरी और सड़का दान ।' ऐसे क्या विमान आ सकता है ?

बात ऐसी नहीं है कि टाल्स्टायने जो कहा वह दूसरोने नहीं कहा हो,
परन्तु उनकी भाषामें चमत्कार था, क्योंकि जो कहा उसका उन्होंने पालन
किया । गद्दी-तकियोंपर बैठनेवाले, मजदूरीमें जुट गये, आठ घंटे खेती का
या दूसरा मजदूरीका काम उन्होंने किया । इससे यह न समझे कि
उन्होंने साहित्यका कुछ काम ही नहीं किया था । जबमें उन्होंने गरीरकी
मेहनतका काम शुरू किया तबसे उनका साहित्य अधिक शोभित हुआ ।
उन्होंने अपने पुस्तकोंमें जिसे सर्वोत्तम कहा है, वह है 'कला क्या है', यह
उन्होंने इस यज्ञकालकी मजदूरीमेंमें वचते वक्तमें लिखा था । मजदूरीमें
उनका गरीर न घिसा और ऐसा उन्होंने स्वयं मान लिया था कि उनकी
बुद्धि अधिक तेजस्वी हुई और उनके ग्रंथोंके अभ्यासी कह सकते हैं कि यह
बात सच्ची है ।

यदि टाल्स्टायके जीवनका उपयोग करना हो तो उनके जीवनमें उल्लि-
खित तीन बातें जान लेनी चाहिए । युवक-मधके मध्योंको ये वचन कहने
हुए मैं उन्हें याद दिलाना चाहता हूँ कि तुम्हारे सामने दो मार्ग हैं एक
स्वेच्छाचारका और दूसरा सयमका । यदि तुम्हें यह प्रतीत होता हो कि
टाल्स्टायने जीना और मरना जाना था तो तूम देख सकते हो कि दुनिया-
में सबके लिए और विशेषतः युवकोंके लिए सयमका मार्ग ही सच्चा मार्ग
है । हिंदुस्तानमें तो खास तौरपर है ही । देशमें पश्चिममें तरह-तरहकी
हवाएँ, मेरी दृष्टिमें जहरी हवाएँ, आती हैं । टाल्स्टायके जीवनके समान

सुंदर हवा भी आती है सही, परंतु वह प्रत्येक स्टीमरमे थोड़े ही आती है। प्रत्येक स्टीमरमे कहो या प्रतिदिन कहो। कारण कि प्रतिदिन कोई-न-कोई स्टीमर बम्बई या कलकत्तेके बंदरगाहमे आता ही है। दूसरे परदेशी सामानके समान उसमे परदेशी साहित्य भी आता है। उनके विचार मनुष्य-को चकनाचूर करनेवाले होते हैं, स्वेच्छाचारकी तरफ लेजानेवाले होते हैं। . . . तिलक महाराज कह गये हैं कि हमारे यहा 'कान्श्यन्स' का पर्याय-वाची शब्द नहीं है। हम यह नहीं मानते कि प्रत्येक व्यक्तिके 'कान्श्यन्स' होता है। पश्चिममे यह बात मानते हैं। व्यभिचारीके लिए, लपटके लिए, कान्श्यन्स क्या हो सकता है ? इसीलिए तिलक महाराजने 'कान्श्यन्स' की जड़ ही उड़ा दी। हमारे ऋषि-मुनियोने कहा है कि अतर्नाद सुननेके लिए अनर्कण भी चाहिए, अतर्चक्षु भी चाहिए और उसे प्राप्त करनेके लिए सयमकी अवश्यकता है। इसलिए पातजल योगदर्शनमे योगाभ्यास करनेवालोके लिए, आत्मदर्शनकी इच्छा रखने वालोके लिए, पहला पाठ यम-नियम पालन करनेका बताया है। सिवाय सयमके मेरे, तुम्हारे या अन्य किसीके पास कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है। यही टाल्स्टायने अपने लम्बे जीवनमे सयमी रहकर बताया। मैं चाहता हूँ, प्रभुसे प्रार्थना करता हूँ कि यह चीज हम उसी तरह साफ देख सकें जैसे कि आखोके आगेका दीया स्पष्ट देखते हैं और आज एकत्र हुए हैं तो ऐसा निश्चय करके बिखरे कि टाल्स्टायके जीवनमेसे हम सयमकी साधना करनेवाले हैं।

निश्चय करलो कि हम सत्यकी आराधना छोड़नेवाले नहीं हैं। सत्यके लिए दुनियामे सच्ची अहिंसा ही धर्म है। अहिंसा प्रेमका सागर है। उसका नाम जगतमे कोई ले सका ही नहीं। उस प्रेमसागरसे हम सराबोर हो जाय तो हममे ऐसी उदारता आ सकती है कि उसमे सारी दुनियाको हम विलीन कर सकते हैं। यह बात कठिन अवश्य है, किंतु है साध्य ही। इसीसे हमने प्रारभमे प्रार्थनामे सुना कि शंकर हो या विष्णु, ब्रह्मा हो

या ड्र, बुद्ध हो या सिद्ध, मेरा सिर तो उसीके आगे झुकेगा जो रागद्वेष-रहित हो, जिसने कामको जीता हो, जो अहिंसा, प्रेमकी प्रतिमा हो। यह अहिंसा लूले-लगटे प्राणियोंको न मारनेमें समाप्त नहीं होती। उसमें धर्म हो सकता है, परन्तु प्रेम तो उससे भी बहुत आगे बढ़ा हुआ है। उसके दर्शन जिसको नहीं हुए वह लूले-लगटे प्राणियोंको बचावे तो उसमें क्या होना जाना था। ईश्वरके दरबारमें इसकी कीमत बहुत कम कूती जायगी। तीसरी बात है 'ब्रेड लेवर'—यज्ञ। शरीरको कष्ट देकर मेहनत करके ही खानेका हमें अधिकार है। पारमार्थिक दृष्टिमें किया हुआ काम यज्ञ है। मजदूरी करके भी सेवाके हेतु जीना है। लम्पट होनेको या दुनियाके भोगोंका उपभोग करनेको जीवित रहना नहीं कहते हैं। कोई कसरतवाज नीजवान आठ घंटे कसरत करे तो यह 'ब्रेड लेवर' नहीं है। तूम कसरत करो, शरीरको मजबूत बनाओ तो इसकी मैं अवगणना नहीं करता, परन्तु जो यज्ञ टाल्स्टायने कहा है, गीताके तीसरे अध्यायमें जो बताया गया है, वह यह नहीं है। जीवन यज्ञकी खातिर है, सेवाके लिए है। जो ऐसा समझेगा वह भोगोंको कम करता जावेगा। इस आदर्श साधनमें ही पुरुषार्थ है। भले ही इस वस्तुको किमीने सर्वांगमें प्राप्त न किया हो, भले ही वह दूर-ही-दूर रहे, किंतु फरहादने जिस तरह शरीरके लिए पत्थर फोड़े उसी तरह हम भी पत्थर तोड़े। हमारी यह शरीरी अहिंसा है। उसमें हमारा छोटा-सा स्वराज्य तो शामिल है ही, बल्कि उसमें तो सभी कुछ समाया है।' (हि० न० २० ६ २८)

रस्किनका *Fors Clavigera* (फोर्स क्लेविजेरा) वापूने बहुत रसके साथ पढ़ना शुरू किया और आज कहने लगे—“यह पुस्तक तो बार-बार

‘गत १० सितंबरको महर्षि टाल्स्टायकी जन्म-शताब्दीके अवसरपर सत्याग्रहाश्रममें दिए गये व्याख्यानका सारांश।

पढ़े तो भी थकान नहीं मालूम होती। इसमेंसे तो नई-नई बातें सूझती हैं।”

शिक्षाकी बुनियादके बारेमें कुछ विचार बहुत सुन्दर लगनेके कारण इस विषय पर एक छोटा-सा लेख आश्रमको भेजा।^१ मैंने (महादेवभाई) रस्किन

^१ जॉन रस्किन एक उत्तम प्रकारका लेखक, अध्यापक और धर्मज्ञ था। उसका देहांत १८८०के आसपास हुआ। उसकी एक पुस्तकका मुझपर बहुत ही गहरा असर पड़ा और उसीके सुझावे हुए रास्तेपर मैंने एक क्षणमें जिंदगीमें महत्वपूर्ण परिवर्तन कर डाला। यह बात ज्यादातर आश्रमवासी तो जानते ही होंगे। उसने सन् १८७१में सिर्फ मजदूर-वर्गको ध्यानमें रखकर एक मासिक पत्र लिखना शुरू किया था। उन पत्रोंकी तारीफ मैंने टॉल्स्टॉयकी किसी रचनामें पढ़ी थी। मगर वे पत्र मैं आज तक जुटा नहीं सका। उसकी प्रवृत्ति और रचनात्मक कार्यके विषयमें एक पुस्तक मेरे साथ आ गयी थी, उसे यहाँ पढ़ा। उसमें भी उन पत्रोंका उल्लेख था। इस परसे मैंने रस्किनकी एक शिष्याको विलायतमें लिखा। वही इस पुस्तककी लेखिका है। वह बेचारी गरीब, इसलिए ये पुस्तकें कहासे भेज सकती थी? मूर्खतासे या झूठे विनयसे मैंने उसे आश्रमसे रुपया मंगा लेनेको नहीं लिखा। इस भली स्त्रीने अपनेसे ज्यादा समर्थ मित्रको मेरा खत भेज दिया। वे ‘स्पेक्टेटर’के मालिक हैं। उनसे मैं विलायतमें मिला भी था। उन्होंने ये पत्र पुस्तकाकार चार भागोंमें छपाये हैं, सो भेज दिये। इनमेंसे पहला भाग मैं पढ़ रहा हूँ। इनके विचार उत्तम हैं और हमारे बहुतसे विचारोंसे मिलते-जुलते हैं—यहां तक कि अनजान आदमी तो यही मान लेगा कि मैंने जो कुछ लिखा है और आश्रममें हम जो भी आचरण करते हैं, वह रस्किनकी इन रचनाओंसे चुराया हुआ है। ‘चुराया हुआ’ शब्दका अर्थ तो समझमें आ ही गया होगा। जो विचार या आचार जिससे लिया हो उसका नाम छिपाकर

और टॉलस्टॉयके बीच एक समानता सुझाई, “टाल्स्टायने अपना कलानिष्ठ जीवन छोड़कर सेवानिष्ठ जीवनकी शुरुआत की और कलाकी पुस्तकोका लिखना बिल्कुल त्याग कर ऐसी घरेलू पुस्तकें और कहानियां लिखना शुरु किया, जिनसे आम लोगोकी उन्नति हो। रस्किनके जीवनका पहला हिस्सा भी कलानिष्ठाका था। इस कलानिष्ठाके कालमें उसने मॉडर्न

यह बताया जाय कि यह हमारी अपनी कृति है, तो वह चुराया हुआ माना जाता है।

रस्किनने बहुत लिखा है। उसमेंसे इस बार तो थोड़ा ही देना चाहता हू। वह कहता है कि इस कथनमें गभीर भूल है कि बिल्कुल अक्षरज्ञान न होनेसे कुछ होना अच्छा ही है। रस्किनकी साफ राय यह है कि जो सच्ची है, आत्माका ज्ञान करानेवाली है, वही शिक्षा है और वही लेनी चाहिए। और वादमें वह कहता है कि इस दुनियामें मनुष्यमात्रको तीन चीजोकी और तीन गुणोकी आवश्यकता है। जो इन्हें हासिल करना नहीं जानता, वह जीनेका मंत्र ही नहीं जानता। और इसलिए ये छ चीजें शिक्षाका आधार होनी चाहिए। इस तरह मनुष्य-मात्रको वचनसे—फिर भले वह लडका हो या लडकी—जानना ही चाहिए कि साफ हवा, साफ पानी और साफ मिट्टी किसे कहते हैं, इन्हें किस तरह रखा जाय और इनका उपयोग क्या है। इसी तरह तीन गुणोंमें उसने गुणज्ञता, आशा और प्रेमको गिना है। जिनमें सत्यादिकी कद्र नहीं, जो अच्छी चीजको पहचान नहीं सकते, वे अपने घमडमें फिरते हैं और आत्मानंद नहीं पा सकते। इसी तरह जिनमें आशावाद नहीं यानी जो ईश्वरके न्यायके बारेमें शका रखते हैं, उनका हृदय कभी प्रफुल्लित नहीं रह सकता, और जिनमें प्रेम नहीं यानी अहिंसा नहीं, जो जीवमात्रको अपने कुटुंबी नहीं मान सकते, वे जीनेका मंत्र कभी नहीं साध सकते।

पेण्टर्स, स्टोन्स ऑव वेनिस आदि पुस्तकें लिखीं। बादमें उसे लगा कि सौन्दर्यकी उपासना चीज तो अच्छी है, मगर आसपास दुःख, दारिद्र्य और फूट हो, तो सौन्दर्यका आनंद कैसे लूटा जा सकता है ? इसलिए उसने अपनी कलम खून और आंसुओंमें डुबोई और 'अण्टु दिस लास्ट' ('सर्वोदय') लिखा। जो आलोचना टाल्स्टायकी हुई वह रस्किनकी भी हुई।" बापूने कहा—

यह तुलना एक खास हृदके वाद नहीं रहती, क्योंकि टाल्स्टायने तो कला-जीवनकी यानी अपने भूतकालकी निंदा की, उससे इन्कार किया, जबकि रस्किनने *Unto this Last* (अण्टु दिस लास्ट) और *Fors* (फोर्स) लिखकर अपने कला-जीवन पर कलश चढ़ा दिया।

इस बातपर रस्किनने अपनी चमत्कारी भाषामें बहुत विस्तारसे लिखा है। यह तो फिर किसी वक्त समाजके समझने लायक ढंगसे दे सकू तो ठीक ही है। आज तो दंतनेसे ही सतोष कर लेता हूँ। साथ ही इतना और कह दूँ कि जो कुछ हम अपने देहाती शब्दोंमें विचारते रहे हैं और आचरणमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं, लगभग वही सब रस्किनने अपनी प्रौढ़ और विकसित भाषामें और अंग्रेज जनता समझ सके इस ढंगसे पेश किया है। यहाँ मैंने तुलना दो अलग भाषाओंकी नहीं की है, बल्कि दो भाषा-शास्त्रियोंकी की है। रस्किनके भाषा-शास्त्रके ज्ञानके साथ मेरे जैसा आदमी मुकाबला नहीं कर सकता। मगर ऐसा समय जरूर आयेगा जब भाषा-मात्रका प्रेम व्यापक होगा। तब भाषाके पीछे धूनी रमानेवाले रस्किन-जैसे शास्त्री निकल आयेंगे और वे उतनी ही प्रभावशाली गुजराती लिखेंगे, जितनी प्रभावशाली अंग्रेजी रस्किनने लिखी है।

२८.३.३२

धरवदा मंदिर

मैंने कहा—‘टाल्टाय तो क्रान्तिकारी था, इसलिए उसने जीवनमें भी परिवर्तन किया, और रस्किन विचार देकर बैठा रहा।’

बापू बोले—

यह तो बहुत बड़ा फर्क है न ? टाल्टायका-भा जीवन-परिवर्तन रस्किनमें नहीं है।

वल्लभभाईने कहा—‘लेकिन आज रस्किनका नाम तो विलायतमें सचमुच कोई नहीं लेता न ?’

बापू बोले—

हां, नहीं लेता, मगर रस्किन भुलाया नहीं जा सकता। उमका जमाना आ रहा है। ऐसा समय आ रहा है कि जिनने रस्किनको नहीं सुना और उमके बारेमें लापरवाही दिखाई, वह रस्किनकी तरफ मुड़ेगा।

(म० टा०, २८ ३ ३२)

टाल्टाय एक बड़ा योद्धा था, पर जब उसने देखा कि लड़ाई अच्छी चीज नहीं है तब लड़ाईको मिटा देनेकी कोशिश करते-करते वह मर गया। उसने कहा है कि दुनियामे सबने बड़ी शक्ति लोकमत है और वह सत्य और अहिंसासे पैदा हो सकता है। (प्रा० प्र०, १० ६ ४७)

: ६८ :

अमृतलाल वि० ठक्कर

ठक्करबापा आगामी २७ नवंबरको ७० वर्षके हा जायंगे। बापा हरिजनोके पिता हैं और आदि-वासियो और उन सबके भी, जो लगभग

हरिजनोकी ही कोटिके है और जिनकी गणना अर्द्धसभ्य जातियोमे की जाती है। दिल्लीके हरिजन-निवास-वासियोकी तजवीज इस प्रकार उनकी ७० वी जयती मनानेकी है कि जिससे ठक्करवापाके हृदयको सात्विक सतोष प्राप्त हो। ये लोग ठक्करवापाके जन्म-दिवसपर, हरि-जन-कार्यके निमित्त, उन्हें ७०००) की एक विनम्र यैली भेंट करना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने मेरा आशीर्वाद मागा है। यह भी चाहते हैं कि उनके इस शुभ प्रयत्नको मैं प्रकाशमे ला दू। पर मैंने तो उन्हें झिडका है कि उनमे आत्म-श्रद्धाकी कमी है। ठक्करवापा एक विरल लोकसेवक है। वे विनम्र स्वभावके हैं। वे प्रशंसाके भूखे नहीं। उनका जीवन-कार्य ही उनका एकमात्र सतोष और विश्राम है। वृद्धावस्था उनके उत्साह-को मद नहीं कर सकी है। वे स्वयं एक सस्था हैं। एक बार जब मैंने उनसे कहा कि वे थोडा आराम ले ले तो तुरत उनका जवाब आया, “जब इतना तमाम काम करनेको पडा है, तब मैं आराम कैसे ले सकता हूँ ? मेरा काम ही मेरा आराम है।” अपने जीवन-कार्यमे वे जिस प्रकार अपनी शक्ति लगा रहे हैं, उसे देखकर तो उनके आस-पास रहनेवाले नवयुवक भी लज्जित हो जाते हैं। इतने महान् कार्यके लिए और उस जन-सेवकके लिए, जो अपने विगल वृद्ध कंधोपर इतना भारी भार वहन कर रहा हैं, ७०००) की यैली एक प्रकारका अपमान है। कार्यकर्त्ताओका तो यह लक्ष्य होना चाहिए कि सारे हिंदुस्तानसे वे ७०,०००) ६० से कम तो किसी हालतमे इकट्ठे नहीं करेगे। महान् सेवा-प्रवृत्ति और उसके सेवा-रत पिताको देखते हुए, यह ७०,०००) की रकम भी कोई चीज नहीं है। लेकिन एक महीनेके अंदर यह रकम इकट्ठी करनी है, इस दृष्टिसे यह ठीक ही है। (ह० से०, २१ १० ३६)

भारत-सेवक-समितिको अपने प्राणोकी तरह प्रिय समझनेवाले एक मित्र श्री ठक्करवापा-कोषके लिए दस रुपयेका चंदा भेजते हुए लिखते हैं

“श्री ठक्करवापाकी प्रशंसामें लिखे गये आपके एक-एक शब्दकामें समर्थन करता हूँ। इस सबबमें मेरी एक ही सूचना है और वह यह कि बापा-के पुण्य कार्योंका सारा श्रेय भारत-सेवक-समितिको महज इसलिए नहीं मिलना चाहिए कि बापा उसके एक सदस्य हैं। समितिने बिना किसी हिचकिचाहटके उनको अपना सदस्य माना है और बापाके द्वारा मानव-जातिकी जो महान सेवा हुई है, उसपर उसने हमेशा ही गर्व किया है।”

यह शिकायत बिल्कुल ठीक है। दरअसल, बात तो यह है कि बापाकी कई विशेषताओंका उल्लेख करते हुए मैं उनकी एक खास विशेषताका उल्लेख करना भूल गया हूँ, इसका मुझे खयाल ही न रहा। बात यह है कि भारत-सेवक-समितिकी सदस्यता स्वीकार करनेमें पहले बापा म्युनि-सिपल कॉरपोरेशन, बंबईके रोड-इंजीनियरका काम करते थे। हरिजन सेवक-संघको उनकी सेवाएँ भारत-सेवक-समितिकी ओरसे ही वनीर कर्जवे मिली हैं। मैं मानता हूँ कि मेरी ओरसे समितिको किसी प्रकारके विज्ञापनकी जरूरत नहीं है और चूँकि मैं अपने आपको इस समितिका एक स्वतन्त्र नियुक्त और अनियमित सदस्य समझता हूँ, इसलिए समितिकी प्रशंसामें कुछ लिखना मैं अपनी ही प्रशंसा करनेके समान समझता हूँ। लेकिन जरूरत पड़नेपर मैं ऐसे नाजुक काम भी अच्छी तरह कर सकता हूँ। समितिके नामका उल्लेख तो अकस्मान् ही छूट गया था। मुझपर कामका काफी बड़ा बोझ रहता है। मैंने सोचा तो था कि मैं बापाका जिक्र करते हुए भारत-सेवक-समितिका भी जिक्र करूँगा, लेकिन आखिर जैसा कि जाहिर है, बात ध्यानमें न रही। (ह० स०, ४ ११ ३६)

बापाकी इकहत्तरवीं जयंती मनानेमें मुझे हाजिर होना चाहिए। लेकिन मैं इस लायक नहीं रहा हूँ। मेरी तो हार्दिक आशा है कि बापा सौ वर्ष पूरे करें। बापाका जन्म ही दलितोंकी सेवाके लिए है, वे भले ही अस्पृश्य हों या भिल्ल या सताल या खामी इत्यादि। उनकी कदर करनेमें

भी हम दलितोंकी कुछ-न-कुछ सेवा करते हैं। बापाकी सेवाने हिंदुस्तानको बढ़ाया है। (ह० से० ६ १२ ३६)

: ६६ :

एस० वी० ठकार

श्री एस० वी० ठकार एक मूक परतु कुशल सेवक हैं। हरिजनोकी सेवाके उपरांत उन्होंने और भी कई क्षेत्रोमे काफी काम किया है। उन्होंने मुझे एक सविस्तर रिपोर्ट भेजी है। उसमे उन्होंने वर्णन दिया है कि कैसे एक जगह भिल्लोके दो पक्षोमे सख्त झगडा पैदा हो गया था, परतु सरकार की मदद लेकर वह बीचमे पड़े, उससे फसाद होते-होते रुक गया। भिल्लोके एक अत्यंत प्रभावशाली सुधारक स्वर्गस्थ श्रीगुले महाराज थे, वह खुद भिल्ल थे। उनकी सरलता और हृदयकी सच्ची लगनके कारण उनकी गहरी छाप भिल्ल जनतापर पड़ी थी। उससे प्रेरित होकर उन्होंने हजारोंकी सख्यामे शराब पीना और दूसरी कई बुराइयोको छोड़ दिया था। साल पहले उनका देहात होनेपर एक और आदमीने उनकी जगह ली। सुधारक पक्षने, जिन लोगोने बुराइयोको नहीं छोड़ा था उनका बहिष्कार किया, इससे काफी वैमनस्य उनमे पैदा हो गया है। एक समय तो ऐसा लगने लगा था कि अभी मारपीट शुरू होगी। श्रीठकारके ठीक समयपर प्रयत्नसे वह तो रुक गई, परतु उसके साथ सुधारकी प्रवृत्तिको भी धक्का पहुंचा है। अभी सुधारकोके विरोधियोका पक्ष प्रबल है और अगर पहलेकी तरह आंदोलनमे शुद्ध धार्मिक प्रेरणा फिरसे पैदा न हो सकी तो अदेशा है कि आंदोलन बिल्कुल बैठ जायगा। इसमेसे जैसे कि श्री-ठकार लिखते हैं हमें पाठ तो यह मिलता है कि हमारा हेतु चाहे कितना नेक हो अगर उसमे हिसाका मिश्रण हो तो सब काम बिगड़ जाता है।

किमी भी सुधारक प्रवृत्तिकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि स्वेच्छा और ज्ञानपूर्वक उमे जनताका सहकार मिले । बलात्कारमे हम लोगोकी आदतें सुधार नहीं सकते । (ह० से०, १८ १४२)

: ७० :

द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर

रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर जो 'बड़े दादा' के नामसे पहचाने जाते हैं उनका, पिताका जैसा पुत्रके प्रति प्रेम होता है वैसा ही, मुझपर प्रेम है । वे मेरे दोष देखनेके लिए साफ इन्कार करते हैं । उनके खयालसे तो मैंने कोई गलती ही नहीं की । मेरा असहयोग, मेरा चरखा, मेरा सनातनीपन, हिंदू-मुसलमान ऐक्यकी मेरी कल्पना, अस्पृश्यताका मेरा विरोध सब यथायोग्य है और इसीमे स्वराज्य है, यह मेरी मान्यता उनकी भी मान्यता है । पुत्रपर मोहित पिता उसके दोष नहीं देखता है, उसी प्रकार बड़े दादा भी मेरे दोष देखना नहीं चाहते हैं । उनके मोह और प्रेमका तो भला मैं यहांपर उल्लेख ही कर सकती हूँ उसका वर्णन मुझसे ही नहीं सकता । उस प्रेमके योग्य बननेका मैं प्रयत्न कर रहा हूँ । उनकी उम्र ८० से भी ज्यादा है । लेकिन छोटी-से-छोटी बातकी वे खबर रखते हैं । उन्हें यह भी खबर है कि हिंदुस्तानमे आज क्या चल रहा है । वे दूसरोसे पढाकर सुनते हैं और यह सब खबर प्राप्त करते हैं । दोनो भाइयोको वेदादिका गहरा अभ्यास है । दोनो संस्कृत जानते हैं । दोनोकी बातचीतमे उपनिषद और गीताके मंत्र और श्लोक बराबर सुनाई देते हैं । (हि० न०, ११ ६ २५)

इस बातपर विश्वास लाना कि द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर अब नहीं रहे, बड़ा ही कठिन है। शातिनिकेतनके तारसे यह शोकजनक समाचार मिला है कि बड़े दादाको चिरशांति प्राप्ति हुई है। उनकी उम्र ६० वर्षके लगभग थी, फिर भी उनमें जो आनंद और उत्साह दिखाई देता था उसके कारण उनके पास जानेवालेको कभी यह मालूम ही नहीं होता था कि उनके भौतिक अस्तित्वके अब थोड़े ही दिन बाकी हैं। प्रतिभासपन्न पुरुषोंके उस कुटुंबमें बड़े दादाका स्थान महत्वका था। वे विद्वान थे, संस्कृत और अंग्रेजी दोनों अच्छी तरह जानते थे, लेकिन इसके अलावा वे बड़े धार्मिक मनुष्य थे और उनका हृदय भी विशाल था। वे श्रद्धासे उपनिषदोंको ही मानते थे, फिर भी ससारकी दूसरी धर्म-पुस्तकोंसे प्रकाश पानेके लिए भी वे स्वतंत्र थे। उन्हें अपने देशसे बड़ा प्रेम था, फिर भी उनकी देशभक्ति दूसरे गुणोंकी विरोधिनी न थी। वे अहिंसात्मक असहयोगके आध्यात्मिक रहस्यको समझते थे, लेकिन इसके साथ यह नहीं कि वे उसके राजनैतिक महत्वको भी न समझते हों। वे चरखेमें दिलसे विश्वास रखते थे और अपनी वृद्धावस्थामें भी उन्होंने खादी धारण की थी। एक युवकमें जितना उत्साह होता है उतने ही उत्साहके साथ वे वर्तमान बातोंको जाननेके लिए प्रयत्न करते थे। बड़े दादाकी मृत्युसे हम लोगोमेंसे एक साधु, तत्त्वज्ञानी और स्वदेशभक्त उठ गया है। मैं कवि और शातिनिकेतनवासियोंके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करता हूँ। (हि० न०, २१ १ २६)

: ७१ :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

लार्ड हार्डिजने डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरको एशियाके महाकविकी पदवी दी थी, पर अब रवीन्द्रबाबू न सिर्फ एशियाके बल्कि मना-भरके महाकवि गिने जा रहे हैं। यदि अभी नहीं तो कम-से-कम बहुत जल्द उनका नाम ससारभरके महाकवियोंमें गिना जाये लगेगा। दिन-पर-दिन उनकी प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ़ रहा है, जिससे उनकी जिम्मेदारी भी दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। उनके हाथसे भारतवर्षकी सबसे बड़ी सेवा यह हुई है कि उन्होंने अपनी कविता द्वारा भारतवर्षका नदेग ससारको सुनाया है। इसीमें रवीन्द्रबाबूको सच्चे हृदयसे इस बातकी चिन्ता है कि भारतवासी भारत-माताके नाममें कोई झूठा या नारहीन नदेशा ससारको न सुनावे। हमारे देशका नाम न डूबने पावे, इस बातकी चिन्ता करना रवीन्द्रबाबूके लिए स्वाभाविक ही है। उन्होंने लिखा है कि मैंने इस आंदोलनकी तानके साथ अपनी तान मिलानेकी भरसक कोशिश की, पर मुझे निराश होना पड़ा। उन्होंने यह भी लिखा है कि अमहयोग आंदोलनके शोरगुलमें मुझे अपनी हृदय-व्रीणाके लिए कोई उचित स्वर नहीं मिल सका। तीन जोरदार पत्रोंमें उन्होंने इस आंदोलनके सबबमें अपना सदेह प्रकट किया है। अंतमें वह इस नतीजेपर पहुंचे हैं कि अमहयोगका आंदोलन ऐसा गभीर और गौरवपूर्ण नहीं है कि वह उस भारतवर्षके योग्य हो सके, जिसे वह अपनी कल्पनाका आदर्श समझे हुए है। उनका मत है कि असहयोगका सिद्धांत खडन और निराशाका मिद्धात है। रवीन्द्रबाबूकी समझमें वह सिद्धांत भेदभाव और अनुदारतामें भरा हुआ है।

रवीन्द्रबाबूके हृदयमें भारतवर्षकी प्रतिष्ठाके लिए जो चिन्ता है उसके लिए हर हिंदुस्तानीको अभिमान होना चाहिए। यह बहुत अच्छी

बात हुई है कि उन्होंने अपना सदेह ऐसी सुदर और सरल भाषामें प्रकट कर दिया ।

मैं रवीन्द्रबाबूके सदेहोका उत्तर बड़ी नम्रताके साथ देनेका प्रयत्न करूंगा । मैं रवीन्द्रबाबू या उन लोगोको जिनके हृदयपर रवीन्द्रबाबूकी कवितापूर्ण भाषाका प्रभाव पडा है शायद विश्वास न दिला सकू, पर मैं उनको और कुल भारतवर्षको यह विश्वास दिलाना चाहता हू कि असहयोगके उद्देश्यके सबधमें उनका जो कुछ सदेह है वह बिल्कुल निर्मूल है । मैं उन्हें यह विश्वास दिलाना चाहता हू कि यदि उनके देशने असहयोगके सिद्धांतको स्वीकार किया है तो इसमें उनके शर्मनेकी कोई बात नहीं है । अगर यह सिद्धांत अमली तौरपर काममें आनेमें असफल हो तो सिद्धांतका दोष न कहा जायगा, क्योंकि अगर सच्चाईको अमली तौरपर काममें लानेवाले आदमी सफल होते हुए न दिखाई पडे तो इसमें सच्चाईका कोई दोष नहीं है । हा, यह सभव है कि असहयोग-आंदोलन शायद अपने समयके पहले ही शुरू हो गया हो । तब हिंदुस्तान और ससार दोनोको उस उचित समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिए । पर हिंदुस्तानके सामने तलवार और असहयोग इन दोनोको छोड़कर और कोई उपाय नहीं था । अपनी सहायताके लिए कोई उपाय चुनना है तो वह इन्ही दोनोमेंसे चुन सकता है ।

रवीन्द्रबाबू को इस बातसे भी न डरना चाहिए कि असहयोग-आंदोलन भारतवर्ष तथा यूरोपके बीचमें एक बड़ी भारी दीवार खड़ी करना चाहता है । इसके विरुद्ध असहयोग आन्दोलन का मशा यह है कि आपसके आदर और विश्वासकी बुनियादपर बिना किसी दवावके सच्चे तथा प्रतिष्ठित सहयोगके लिए पक्का रास्ता तैयार किया जाय । यह आंदोलन इसलिए चलाया गया है कि जिसमें हमसे कोई जबरदस्ती सहयोग न करा सके । हमारे विरुद्ध दल बाधकर हमें कोई नुकसान न पहुंचा सके और सभ्यताके नामसे तथा तलवारके जोरसे आजकल जो तरीके हमारा खून चूसनेके लिए काममें लाये जा रहे हैं वे न लाये जा सके । असहयोग-आंदोलन

इस बातके विरोधमें किया गया है कि हमारी इच्छा बिना और हमारे जाने बिना हमसे दुराईमें सहयोग कराया जा रहा है ।

रवीन्द्रबाबूको अधिकतर चिंता विद्यार्थियोंके बारेमें है । उनका मत यह है कि जबतक दूसरे स्कूल न खुल जाय तबतक उनसे सरकारी स्कूल छोड़नेको न कहा जाय । इस बातमें मेरा उनसे पूरा मतभेद है । मैंने कोरी साहित्यकी शिक्षाको कभी परम आवश्यक नहीं समझा है । अनुभवसे मुझे यह मालूम हो गया है कि अकेली साहित्यकी शिक्षासे मनुष्यके चरित्रकी उन्नति रत्तीभर भी नहीं होती । मेरा यह भी विश्वास है कि चरित्रनिर्माणसे साहित्यकी शिक्षाका कोई सबध नहीं है । मेरा यह पक्का विश्वास है कि सरकारी स्कूलोंने हमें बुजदिल, लाचार और अविश्वासी बना दिया है । उनके सबबसे हमारे हृदयमें असतोष तो उत्पन्न हो गया है, पर उस असतोषको दूर करनेके लिए कोई दवा हमें नहीं बतलाई गई है, जिससे हमारे हृदयमें निराशाने घर कर लिया है । सरकारी स्कूलोंका उद्देश्य हमें क्लर्क और दुभाषिया बनाना था । वह पूरा हो गया है । किसी सरकारकी धाक तभी कायम रहती है जब प्रजा स्वयं अपनी इच्छासे उस सरकारसे सहयोग करती है । अगर सरकार हमें गुलाम बनाये हुए है और ऐसी सरकारके साथ सहयोग करना और उसे सहायता देना अनुचित है, तो हमारे लिए यह जरूरी है कि हम उन सस्थाओंसे अपना नाता तोड़ दें जिनमें हम स्वयं अपनी इच्छासे अबतक सहयोग दे रहे हैं । जातिकी आशा उसके नौजवानोंपर निर्भर होती है । मेरा यह मत है कि अगर हमें इस बातका पता लग जाय कि यह सरकार पूरी तरहसे मरी हुई है तो अपने लड़कोंको उसके स्कूलों और कालेजोंमें भेजना हमारे लिए पापका काम होगा ।

मैंने जो प्रस्ताव राष्ट्रके सामने रखा है उसका खडन इस बातसे नहीं हो सकता कि अधिकतर विद्यार्थी पहली बारका जोश ठंडा होने ही अपने स्कूलोंमें फिरसे वापस चले गये । उनका अपनी बातोंसे टल जाना इस

बातका सबूत नहीं है कि हमारा यह प्रस्ताव गलत है, बल्कि इस बातका सबूत है कि हम किस कदर नीचे गिर गये हैं। अनुभवसे यह पता लगा है कि राष्ट्रीय स्कूलोंके खुलनेसे बहुत ज्यादा विद्यार्थी उनमें भरती नहीं हुए। जो विद्यार्थी सच्चे और अपने विश्वासके पक्के थे वे बिना कोई राष्ट्रीय स्कूल खुले हुए भी सरकारी स्कूलोंसे बाहर निकल आये। मेरा पक्का निश्चय है कि जिन विद्यार्थियोंने पहले-पहल स्कूल-कालेज छोड़ा है उन्होंने देशकी बहुत बड़ी सेवा की है।

वास्तवमें रवीन्द्रबाबू जडसे ही असहयोग सिद्धांतके विरुद्ध हैं। ऐसी हालतमें अगर उन्होंने स्कूल और कालेजोंसे विद्यार्थियोंके निकलनेका विरोध किया तो कोई बड़ी बात नहीं है। उनका ऐसा करना तो स्वाभाविक ही था। रवीन्द्रबाबूके हृदयमें ऐसी हरएक वस्तुसे धक्का पहुंचता है जिसका उद्देश्य खडन करना है। उनकी आत्मा धर्मकी उन आज्ञाओंके विरोधमें उठ खड़ी होती है जो हमें किसी वस्तुका खडन करनेके लिए कहती है। मैं उनका मत उन्हींके शब्दोंमें आपके सामने रख देता हूँ—“एक महाशयने इस वर्तमान आंदोलनके पक्षमें मुझसे अक्सर यह कहा है कि प्रारंभमें किसी उद्देश्यको स्वीकार करनेकी अपेक्षा उसे अस्वीकार करनेका भाव प्रबल रहता है। यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि वास्तवमें बात ऐसी ही है, पर मैं इस बातको सच्ची नहीं मान सकता। भारतवर्षमें ब्रह्मविद्याका उद्देश्य मुक्ति या मोक्ष है, पर बौद्ध धर्मका उद्देश्य निर्वाण प्राप्त करना है। मुक्ति हमारा ध्यान सत्यके मंडनात्मक पक्षकी ओर और निर्वाण उसके खडनात्मक पक्षकी ओर खींचता है। इसीलिए बुद्ध भगवानने इस बात पर जोर दिया कि ससार दुःखमय है तथा उससे छुटकारा पाना हमारा धर्म है और ब्रह्मविद्याने इस बातपर जोर दिया कि ससार आनंदमय है और उस आनंदको प्राप्त करना हमारा परम कर्तव्य है।” इन वाक्यों और इसी तरहके दूसरे वाक्योंसे पाठकगण रवीन्द्रबाबूकी मानसिक वृत्तिका पता लगा सकते हैं। मेरी नम्र रायमें किसी बातका खडन या अस्वीकार करना

वैसा ही आदर्श है जैसा किसी बातका स्वीकार करना या मडन करना । असत्यका अस्वीकार करना उतना ही जरूरी है जितना सत्यका स्वीकार करना । सब धर्म हमें यही शिक्षा देते हैं कि दो विरोधी शक्तियाँ हमपर अपना प्रभाव डाल रही हैं, और मनुष्य जीवनका प्रयत्न इसी बातमें रहता है कि वह लगातार स्वीकार करने योग्य वस्तुको स्वीकार और अस्वीकार करने योग्यको अस्वीकार करता रहे । दुराईके साथ असहयोग करना हमारा जतना ही कर्तव्य है जितना भलाईके साथ सहयोग करना । मैं साहससे कह सकता हूँ कि रवीन्द्रबाबूने निर्वाणको केवल एक खडनात्मक या अभाव-सूचक दिशा बतलाकर बौद्ध धर्मके साथ बड़ा अन्याय किया है । हाँ, मैं मानता हूँ कि उन्होंने यह अन्याय जान-बूझकर नहीं किया । मैं साहसके साथ यह भी कह सकता हूँ कि जिस तरह निर्वाण एक अभावात्मक दशा है, उसी तरहसे मुक्ति भी अभावको सूचित करनेवाली एक अवस्था है । शरीरके बधनसे छुटकारा पाना या उस बधनका विलकुल नाश हो जाना, आनंद प्राप्त करना है । मैं अपनी दलीलके इस हिस्सेको खतम करते हुए इस बातकी ओर ध्यान खींचना चाहता हूँ कि उपनिषदोंके रचयिताओंने ब्रह्मका सबसे अच्छा वर्णन 'नेति' किया है ।

इसलिए मेरी समझमें रवीन्द्रबाबूको असहयोग-आंदोलनके अभावात्मक या खडनात्मक रूपपर चीकनेकी कोई जरूरत नहीं थी । हम लोगोंने 'नहीं' कहनेकी शक्ति विलकुल गवा दी है । सरकारके किसी काममें 'नहीं' कहना पाप और अराजकता गिना जाने लगा था । जिस तरहसे कि बोलनेके पहले निराई करना बहुत जरूरी है उसी तरहसे सहयोग करनेके पहले जान-बूझकर पक्के इरादोंके साथ असहयोग करना हम लोगोंने जरूरी समझा है । खेतीके लिए जितनी बुआई जरूरी है, उतनी ही निराई जरूरी है । वास्तवमें उस समय भी हर रोज निराई जरूरी है जबकि फसलें उगती रहती हैं । इस असहयोग-आंदोलनके रूपमें जातिकी ओरसे सरकारको इस बातका निमंत्रण दिया है कि जिस

तरहसे हर एक जातिका हक और हर एक अच्छी सरकारका धर्म है, उसी तरहसे इस सरकारको भी चाहिए कि वह जातिके साथ सहयोग करे। असहयोग-आंदोलन जातिकी ओरसे इस बातका नोटिस है कि वह अब और ज्यादा दिनोत्तक दूसरोकी सरक्षकतामे रहकर सतोष न करेगी। हिंदुस्तानने तलवार या मारकाटके अस्वाभाविक और अधार्मिक सिद्धातके स्थानपर असहयोगके निर्दोष प्राकृतिक और धार्मिक सिद्धातको ग्रहण किया है। अगर हिंदुस्तान कभी उस स्वराज्यको प्राप्त करेगा जिसका स्वप्न रवीन्द्रवाबू देख रहे हैं तो वह सिर्फ शांतिपूर्ण असहयोग आंदोलनके द्वारा प्राप्त करेगा। वे चाहे तो ससारको अपना शांतिपूर्ण सदेश सुनावे और इस बातका भरोसा रखे कि हिंदुस्तान अगर अपनी बातका धनी बना रहेगा तो अपने असहयोग द्वारा उनके सदेशको अवश्य सच्चा साबित करेगा। रवीन्द्रवाबू जिस देशभक्तिके लिए उत्सुक हो रहे हैं, उसे अमली तौरपर पैदा करनेको ही यह आंदोलन किया गया है। हिंदुस्तान जो यूरोपके पैरोके नीचे पड़ा हुआ है, ससारको कोई आशा नहीं दिला सकता। स्वतंत्र और जाग्रत भारत ही दुखी ससारको शांति और सुखका सदेश सुना सकता है। असहयोग-आंदोलन इसीलिए चलाया गया है कि जिसमे भारतवर्ष एक ऊँचे स्थानसे अपना सदेश ससारको सुना सके। (य० इ०, १६२१)

टैगोरकी क्या बात ! उन्होंने क्या नहीं साधा ? साहित्यका एक भी क्षेत्र उन्होंने छोड़ा है ? और सबमे कमाल एसी अलौकिक शक्ति-वाला आदमी हमारे यहा तो है ही नहीं, लेकिन दुनियामे भी होगा या नहीं, इसमे मुझे शक है।

वल्लभभाई बोले—“मगर उनका शांतिनिकेतन चलेगा ? वे तो बूढ़े हो गये और उनकी जगह लेनेवाला कोई रहा नहीं।” बापूने कहा—
... बात तो जरूर मुश्किल है। मगर यह तो कैसे कहा जा सकता

है। भगवानने इतनी असाधारण प्रतिभावाला आदमी पैदा किया तो उसे यह तो मजर नहीं होगा कि उसका काम योही ब्रह्म हो जाय।

वल्लभभाई कहने लगे—यह तो ठीक है। मगर, उनकी जो असाधारणताएँ हैं उन सबको कौन किस क्षेत्रमें ला सकेगा? मैंने (महादेवभाई) कहा—नदलाल बोस, असित हलदार—जैसे उत्तम चित्रकार वहाँ मौजूद हैं। विधुशेखर शास्त्री भी हैं। वल्लभभाई बोले—चित्रकला तो ठीक है। मगर उसकी पाठशालाएँ कितनी चल सकती हैं? हमारा तो खादी और चरखा है। उसके लिए वापू थोड़े ही चाहिए। ये तो वापू न होंगे तो दूधाभाई भी आकर चलाते रहेंगे। उन्होंने कोई ऐसी चीज नहीं दी, जिसे लोग अपने हाथोंमें ले सकें और जो अखड़ रूपमें चलती ही रहे।

मैंने तुरत कहा—टंगोरके वारेमें यह कहा जा सकता है कि आज तक उनके यहाँ असाधारण प्रतिभावाने लोग खिचकर न आये हों तो शायद अब उनके कामको जारी रखनेके लिए वे आ जाय। शांतिनिकेतनको उनके आदर्शके अनुसार ही जारी रखनेके लिए नये आदमी क्यों न शरीक होंगे? वापूने कहा—

आज उनकी प्रचंड शक्तिसे ज्यादा लोग आकर्षित न हो तो भविष्यमें आकर्षित हो सकते हैं। आज भी रामानंद चटर्जी—जैसे लोग तो हैं ही और ईश्वर कृपा हो तो और लोग भी आ सकते हैं। और उनका श्रीनिकेतनका काम तो जारी हो रहेगा। एमहर्स्ट—जैसा आदमी विलायत छाड़कर इसे चलानेके लिए चला आए तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। (म० डा०)

आप (डा० कागावा) शांतिनिकेतन देखे वगैर चले जाये, यह कैसे हो सकता है

कागावा—मैंने कविके काव्योंको पढ़ा है। मुझे वे बहुत प्रिय हैं।

गावोजी—किंतु कवि आपको प्रिय हैं न?

कागावा—मैं रोज 'गीताजली' पढ़ा करता हूँ तो क्या रोज कविका

सान्निध्य अनुभव नहीं करता ? हो सकता है कि कवि अपने काव्योसे महान् हो ।

गाधीजी—कभी-कभी इसका उल्टा सत्य होता है, पर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके विषयमें यह कहूंगा कि अपने महाकाव्योसे भी वे महान् हैं । अब एक दूसरा प्रश्न पूछता हूँ । आपके प्रवासक्रममें पांडिचेरी है या नहीं ? आप अगर अर्वाचीन भारतवर्षका अध्ययन करना चाहते हैं, तो शातिनिकेतन और अरविंद-आश्रम आपको देखने ही चाहिए । (ह० से०, २८.१.३६)

..

शातिनिकेतनमें आगमन मेरे लिए एक तीर्थ-यात्राके समान था । बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा वहां जानेकी थी, लेकिन यह अवसर मलिकन्दा जाते समय ही मुझे मिल सका । मेरे लिए शातिनिकेतन नया नहीं है । १९१५ में जब इसकी रूपरेखा बन रही थी तब मैं वही था । इसका मतलब यह नहीं कि अब इसका निर्माण-क्रम रुक गया है । गुरुदेव खुद विकसित हो रहे हैं । वृद्धावस्थाके कारण उनके मनके लचीलेपनमें कोई अंतर नहीं पड़ा है । इसलिए जबतक गुरुदेवकी भावनाकी छाया उसके ऊपर है तबतक शातिनिकेतनकी वृद्धि रुक नहीं सकती । वहां प्रत्येक मनुष्यकी उनके प्रति जो श्रद्धा है वह ऊपर उठानेवाली है, क्योंकि वह सहज है । मुझे तो इसने अवश्य ही ऊंचा उठाया । कृतज्ञ छात्रों और अध्यापकोंने उनको जो उपाधि 'गुरुदेव' की दे रखी है उससे शातिनिकेतनमें उनकी स्थिति ठीक-ठीक व्यक्त होती है । यह स्थिति उनकी इसलिए है कि वह उस स्थान और वहांके समूहमें निमग्न हो गये हैं, अपनेको भूल गये हैं । मैंने देखा कि वह अपनी प्रियतम कृति 'विश्व-भारती' के लिए जी रहे हैं । वह चाहते हैं कि यह फूले-फले और अपने भविष्यके विषयमें निश्चिन्त हो जाये । इसके बारेमें उन्होंने मुझसे देरतक बातचीत की । लेकिन इतना भी उनके लिए काफी नहीं था, इसलिए जब हम विदा हो रहे थे तब उन्होंने मुझे नीचे लिखा बहुमूल्य पत्र दिया

प्रिय महात्माजी,

आपने आज सुबह ही हमारे कार्यके 'विश्व-भारती'-केंद्रका विहंगावलोकन किया है। मैं नहीं जानता कि आपने इसकी मर्यादाका क्या अंदाज लगाया है। आप जानते हैं कि यद्यपि अपने वर्तमान रूपमें यह सस्या राष्ट्रीय है, तथापि अन्तर्भावनाको दृष्टि से यह एक सार्वदेशिक—अन्तर्राष्ट्रीय सस्या है और अपने साधनोंके अनुसार भरसक शेष जगतको भारतकी सस्कृतिका आतिथ्य प्रदान करती है।

एक बड़े गाढ़े अवसरपर आपने बिल्कुल टूटनेसे इसे बचाया और अपने पावपर खड़े होनेमें इसकी सहायता की, आपके इस मित्रतापूर्ण कार्यके लिए हम आपके निकट सदा आभारी हैं।

और अब शांतिनिकेतनसे आपके विदा होनेके पहले मैं आपसे जोरदार अपील करता हू कि यदि आप इसे एक राष्ट्रीय संपत्ति समझते हैं तो इस सस्याको अपने सरक्षणमें लेकर इसे स्थायित्व प्रदान करें। 'विश्वभारती' उस नौकाके समान है जो मेरे जीवनके सर्वोत्तम रत्नोंसे भरी हुई है और मुझे आशा है कि अपनी रक्षाके लिए अपने देशवासियोंसे यह विशेष देख-रेख पानेका दावा कर सकती है।

प्रेमपूर्वक

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

इस सस्याको अपने सरक्षणमें लेनेवाला मैं कौन होता हूँ ? चूँकि यह एक ईमानदार आत्माकी कृति है, इसलिए ईश्वरका सरक्षण इसके साथ है। वह कोई दिखावेकी चीज नहीं है। गुरुदेव स्वयं सार्वदेशिक—अन्तर्राष्ट्रीय हैं, क्योंकि वह सच्चे रूपमें राष्ट्रीय हैं। इसलिए उनकी संपूर्ण कृतियां सार्वदेशिक हैं और 'विश्वभारती' उन सबमें श्रेष्ठ है। मुझे इसमें किसी तरहका सदेह नहीं कि जहातक आर्थिक बोझका सबब है इसके भविष्यके बारेमें गुरुदेवको संपूर्ण चिंतासे मुक्त कर देना चाहिए।

उनकी हृदयग्राही अपीलके जवाबमे जो कुछ सहायता करने लायक मैं हूँ, करनेका मैंने उनको वचन दिया है। (ह० से०, २-३-४०)

...

“मैं यहाँ आप लोगोंके लिए कोई अतिथि या महमान बनकर नहीं आया हूँ। शातिनिकेतन तो मेरे लिए घरसे भी अधिक है। जब १९१४ में मैं इंग्लैंडसे लौटनेवाला था तब यही तो मेरे दक्षिण अफ्रिकावाले कुटुंबका प्रेमपूर्वक आतिथ्य हुआ था और यहाँ मुझे भी करीब एक महीनेतक आश्रय मिला था। जब मैं आप सब लोगोंको अपने सामने एकत्रित देखता हूँ तो उन दिनोंकी याद मेरे हृदयपर छा जाती है। मैं कितना चाहता हूँ कि यहाँ ज्यादा दिन ठहरूँ, पर अफसोस कि यह संभव नहीं। यहाँ कर्तव्यका प्रश्न है। उस दिन एक मित्रको एक पत्रमें मैंने लिखा था कि शातिनिकेतन और मलिकदा की यह यात्रा मेरे लिए तीर्थ-यात्रा है। सचमुच इस बार शातिनिकेतन मेरे लिए ‘शाति’ का ‘निकेतन’ सिद्ध हुआ। मैं यहाँ राजनीतिकी सब चिंता और झगड़ छोड़कर मात्र गुरुदेवके दर्शन और आशीर्वाद लेने आया हूँ। मैंने अवसर एक कुशल भिक्षुक होनेका दावा किया है। लेकिन आज गुरुदेवका मुझे जो आशीर्वाद मिला है उससे बढ़कर दान मेरी भोलीमे कभी किसीने नहीं डाला। मैं जानता हूँ कि उनका आशीर्वाद तो मुझे हमेशा ही है। मगर आज मेरा खास सौभाग्य है कि उन्हींके हाथों खूबसूरत मुझे आशीर्वाद मिला और इस कारण मेरे हर्षका पार नहीं। (ह० से०, ३०-३-४०)

.

डा० रवीन्द्रनाथ टैगोरके निधनमें हमने न केवल अपने युगके सबसे बड़े कविको ही, बल्कि एक उत्कट राष्ट्रवादीको, जो कि मानवताका पुजारी भी था, खो दिया है। शायद ही कोई ऐसी सार्वजनिक प्रवृत्ति होगी, जिसपर उनके शक्तिशाली व्यक्तित्वकी छाप न पड़ी हो। शातिनिकेतन और श्रीनिकेतनके रूपमें उन्होंने समस्त राष्ट्रके लिए ही नहीं,

अपितु समस्त ससारके लिए विरासत छोड़ी है। प्रभु उस महान् आत्माको शांति दे और शांतिनिकेतनके जिन सचालकोपर इसका उत्तरदायित्व आ पड़ा है, वे उसके योग्य सिद्ध हो (७-८-४१)

...

१७ तारीख गुरुदेवका श्राद्ध-दिवस है। जो लोग श्राद्धको धार्मिक महत्त्व देते हैं, वे निमदेह उस दिन निर्जल उपवास करेंगे या केवल फलोपर रहेंगे और अपना समय प्रार्थनामें बितायेगे। प्रार्थना व्यक्तिगत रूपमें की जा सकती है अथवा सामूहिक रूपमें। प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्रामके निवासी, जिन्होंने उनके उस ऊँचा उठानेवाले मदेशको सुना है, जो उन्होंने अपनी कृतियोंद्वारा दिया तथा जिसे उन्होंने अपने जीवनमें जिया, स्विधानुसार किमी समय एकत्र होंगे और उस दिव्यजीवनके वारेमें चिंतन करेंगे और अपने आपको देश-सेवाके लिए समर्पित कर देंगे।

गुरुदेवका ध्येय शांति और सद्भावना था। वे साम्प्रदायिक बंधनोंसे अपरचित थे। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि सब वर्ग एक स्वरसे इस पवित्र दिनको मनायेगे और साम्प्रदायिक ऐक्यको बढ़ावा देंगे।

मैं लोगोको यह भी याद दिलाना चाहूँगा कि दीनबधु-स्मारक-कोषका अविकाश अभी इकट्ठा किया जाना है। यह कहते दुःख होता है कि यह कोष अब गुरुदेव-स्मारक-कोष भी बन गया है, कारण कि स्मारक-के लिए इकट्ठा किया जानेवाला सब धन केवल शांतिनिकेतनके, जिसमें विश्वभारती और श्रीनिकेतन भी सम्मिलित है, सचालन और सर्वद्वन्द्व-के लिए व्यय किया जायगा। इससे गुरुदेवके लिए अलग और विशेष स्मारककी आवश्यकता संपाप्त नहीं हो जाता। लेकिन इसपर विचार करना उस समयतक विडम्बनामात्र होगी जबतक कि वह स्मारक पूरा न हो जाय, जिसका बीजारोपण स्वयं गुरुदेवने किया था। (१२-८-४१)

दीनबधु एङ्गूज-स्मारक और गुरुदेव-स्मारक दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। गुरुदेवने दीनबधु-स्मारकका आरम्भ किया था, लेकिन उसकी पूर्त्तिके पहले ही वे दीनबधुके अनुगामी बन गये। इसलिए दीनबधुका स्मारक अब गुरुदेवका भी स्मारक बन गया है। स्मारकका हेतु इन दो महान् आत्माओंके अनुरूप ही है। शातिनिकेतन, विश्वभारती और श्रीनिकेतनकी समृद्धि और रक्षा ही वह हेतु है। ये तीनों सस्थाएँ वास्तवमें एक ही हैं। यह बड़े दुःख और शर्मकी बात है कि पाँच लाखकी यह छोटी-सी रकम धनिकों, विद्यार्थियों या मजदूरोंकी ओरसे अभी तक इकट्ठा नहीं हो पाई है। हर कोई यह मानता है कि गुरुदेवके और उनकी सस्थाके कारण हिंदुस्तानको वह यश और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है जो किसी व्यक्ति या सस्थाके कारण उसे कभी प्राप्त नहीं हुई। शातिनिकेतनका ही यह प्रभाव था कि जिससे प्रभावित होकर चीनके सेनाध्यक्ष चांगकाई शेक और श्रीमती चांगकाई शेकने उसे इतनी बड़ी रकम भेंट की थी। शातिनिकेतनमें जो काम हो रहा है, उसको देखते हुए उसका खर्च न कुछ-सा है। कारण यह है कि जो लोग शुद्ध अवैतनिक काम नहीं करते, वे भी अपेक्षाकृत कम वेतन लेकर काम कर रहे हैं। अबतक स्मारक निधिमें कुल करीब एक लाख रुपए इकट्ठे हुए हैं। मुझे आशा है कि स्मारककी बाकी रकम जल्दी ही जमा हो जायगी और मुझको धन-संग्रहके लिए दौड़ा करनेकी कोई जरूरत न रह जायगी। स्मारककी रकमको पूरी करनेके लिए मैं वचनबद्ध हूँ। जब गुरुदेव मृत्यु-शय्यापर थे, मैंने उन्हें अपने आखिरी पत्रमें लिखा था कि अगर ईश्वरकी मर्जी हुई तो मैं दीनबधु-स्मारककी पूरी रकम वसूल कर लूँगा। दीनबधुको शातिनिकेतनकी आर्थिक स्थितिकी चिंता दिन-रात बनी रहती थी। वे इस चिंताको मेरे पास बतौर धरोहरके छोड़ गये हैं। हिंदुस्तानके और मानवताके इन दो सेवकोंकी इस पुकारकी मैं जरा भी उपेक्षा नहीं कर सकता। जिनके मनमें इन दोनों महापुरुषोंकी स्मृतिके लिए आदर है और जो गुरुदेवकी सजीव कृतिके मूल्यको समझते हैं, उनसे निवेदन

है कि वे स्वेच्छासे लिये हुए इस दायित्वको निवाहनेमे मेरी मदद करें ।
(ह० से०, २६-४-४२)

गुरुदेवकी देह खाकमे मिल चुकी है, लेकिन उनके अदर जो जोत थी, जो उजेला था, वह तो सूरजकी तरह था, जो तबतक बना रहेगा जबतक धरतीपर जानदार रहेगे । गुरुदेवने जो रोशनी फैलाई वह आत्माके लिए थी । सूरजकी रोशनी जैसे हमारे शरीरको फायदा पहुंचाती है, वैसे गुरुदेवकी फैलाई रोशनीने हमारी आत्माका ऊपर उठाया है । वे एक कवि थे और प्रथम श्रेणीके साहित्यिक थे । उन्होंने अपनी मातृ-भाषामे लिखा और सारा बगल उनकी कविताके भरनेसे काव्यरसका गहरा पान कर सका । उनकी रचनाओके अनुवाद बहुत-सी भाषाओमे हो चुके हैं । वे अंग्रेजीके भी बहुत बड़े लेखक थे और शायद बिना अंग्रेजी जाने ही वे उस जवानके इतने बड़े लेखक बन गये थे । मदरसेकी पढाई तो उन्होंने की थी, लेकिन युनिवर्सिटीकी कोई डिग्री उन्होंने नहीं ली थी । वे तो बस गुरुदेव ही थे । हमारे एक बाइसरायने उनको एशियाका कवि कहा था । उससे पहले किसीको ऐसी पदवी नहीं मिली थी । वे समूची दुनियाके भी कवि थे । यही क्यों, वे तो ऋषि थे । हमारे लिए वे अपनी 'गीताजलि' छोड़ गये हैं, जिसने उनको सारी दुनियामे मशहूर कर दिया । तुलसीदासजी हमारे लिए अपनी अमर रामायण छोड़ गये हैं । वेदव्यासजीने महाभारतके रूपमे हमारे लिए मानव-जातिका इतिहास छोड़ा है । ये सब निरे कवि नहीं थे । ये तो गुरु थे । गुरुदेवने भी सिर्फ कविके नाते ही नहीं, ऋषिकी हैसियतसे भी लिखा है । लेकिन सिर्फ लिखना ही उनकी अकेली खासियत नहीं थी । वे एक कलाकार थे, नृत्यकार थे और गायक थे । बढिया-से-बढिया कलाम जो मिठास और पवित्रता होनी चाहिए, वह सब उनमे और उनकी चीजोमे थी । नई-नई चीजे पैदा करनेकी उनकी ताकतने हमको शातिनिकेतन,

श्रीनिकेतन और विश्वभारती जैसी मस्थाएँ दी हैं। अपनी इन सस्थाओंमें वे भावरूपसे विराजमान हैं, और ये अकेले बंगालको ही नहीं, बल्कि समूचे हिंदुस्तानको उनकी विरासतके रूपमें मिली हैं। शांतिनिकेतन तो हम सबके लिए असलमे यात्राका एक धाम ही बन गया है। गुरुदेव अपने जीतेजी इन सस्थाओंको वह रूप नहीं दे पाये जो वे देना चाहते थे, जिसका वे सपना देखते थे। कौन है, जो ऐसा कर पाया हो? आदमीके मनोरथको पूरा करना तो भगवानके हाथमें है। फिर भी ये सस्थाएँ हमें उनकी कोशिशोंकी याद दिलायेगी और हमेशा हमको यह बताती रहेगी कि गुरुदेवके मनमें अपने देशके लिए कितनी गहरी प्रीति थी और उन्होंने उसकी कितनी-कितनी सेवाएँ की हैं। उनके रचे कौमी गीतको आप अभी-अभी सुन चुके हैं। हमारे देशके जीवनमें इस गीतकी अपनी एक जगह बन गई है। हजारों-लाखों लोग एकसाथ इसकी प्रेरणा पहुँचानेवाली कड़ियोंको अक्सर गाते रहते हैं। यह सिर्फ गीत ही नहीं है, बल्कि भक्ति-भावसे भरा भजन भी है। (ह० से०, १६-५-४६)

: ७२ :

जनरल डायर

आर्मी कौंसिलने जनरल डायरको समझकी भूलका दोषी ठहराया और पगमर्श दिया कि उसे सग्कारी सेनामें कहीं नौकरी न मिले। मि० माटेगूने भी जनरल डायरके आचरणकी कड़ी आलोचना करनेमें कोई बात उठा नहीं रखी। इसपर भी किसी कारणवश मुझसे यह कद्वे बिना रहा नहीं जाता कि जनरल डायर ही सबसे बड़ा अपराधी नहीं है। उसकी बर्बरता स्पष्ट है। आर्मी कौंसिलके सामने जनरल डायरने अपने बचावकी

जो बातें कही हैं, उनमेंसे हर एकमें उसकी महा नीच तथा असैनिक कायरता-के चिह्न पाये जाते हैं। निहत्थे स्त्री, पुरुष और बच्चोंको जो खेल-तमाशा तथा छुट्टी मनानेका ही काम जानते थे, उसने वागी सेना बताया है। जनरल डायरने इसलिए अपनेको पजावका रक्षक बताया है कि उसने घिरे हुए आदमियोंको खरहोकी तरह गोलियोंसे मार डाला। ऐसा मनुष्य योद्धा कहलानेके योग्य नहीं है। उसके कार्यमें कोई वीरता नहीं पाई जाती। उसने कोई जोखिम नहीं उठाई। बिना छेड़-छाड़के और बिना सूचना दिये ही उसने गोलियां चलाई, यह समझकी भूल नहीं है। कल्पित विपदके सामने यह उसकी थरथराहट है। इससे बहुत बुरी अयोग्यता तथा कठोर हृदयता ही प्रकट होती है। किंतु जनरल डायर पर जो खर्च किया गया है वह बहुत करके बे-मार्ग हुआ है। इसमें सदेह नहीं कि जनरल डायरकी गोलीवारी भयकर थी। उसकी करतूतसे जितने निर्दोष आदमी मरे, वह घटना भी बड़ी शोकजनक थी। किंतु पीछे धीरे-धीरे जो अत्याचार, जो बेइज्जती और जो घरपकड़ हुई वह बहुत बुरी और आत्माका नाश करनेवाली थी और जिन अफसरोंने यह कार्य किया उन्हें जलियावाला बागमें हत्याए करनेवाले जनरल डायरकी अपेक्षा अधिक दोषी समझना चाहिए। जनरल डायरने तो थोड़ेसे आदमियोंको ही मार डाला, पर इसके बाद अत्याचार करने-वाले अफसरोंने राष्ट्रके प्राण हर लिये। कर्नल फ्रैंक जानसन बड़ा भारी अपराधी है, पर कौन आदमी इसका नाम लेता है? इसने निर्दोष लाहौरमें आतंक फैला दिया और अपनी निष्ठुर आज्ञासे फौजी कानूनके समस्त अफसरोंको कड़ी कार्रवाई करनेको बाध्य किया। किंतु मुझे इस जान-सनपर भी उतना कहना नहीं है। पजाव तथा भारतके समस्त मनुष्योंका पहला कर्तव्य है कि वे कर्नल ओब्रायन, मि० वास्वर्थ स्मिथ, राय श्रीराम तथा मि० मलिक खाको नौकरीसे निकाल बाहर करावें। ये अभी तक सरकारी नौकरीमें बने हैं। इनका दोष वैसा ही सिद्ध हुआ है जैसा जनरल डायरपर

सिद्ध किया गया है। यदि हम सतुष्ट होकर पंजाबके शासनको अन्य अत्याचारियोसे परिष्कृत करना भूल जाय तो हम अपने कर्तव्यमें चूक जायेंगे। यह केवल मंच परसे व्याख्यान देने या प्रस्ताव पास करनेसे नहीं होगा। यदि हम सरकारी कर्मचारियोपर प्रभाव डालकर उन्हें यह दिखाना चाहे कि वे प्रजाके मालिक नहीं, बल्कि रक्षक और नौकर हैं जो बुरा आचरण करनेपर अपने पदपर रह नहीं सकते तो हमें खूब कड़े उपायका अवलंबन करना चाहिए। (म० गा०—रामचंद्र वर्मा पृष्ठ ४०२)

: ७३ :

मिस डिक

टाइप-राइटरोके एजेंटसे मेरा कुछ परिचय था। मैं उससे मिला और कहा कि यदि कोई टाइपिस्ट (भाई या बहन) ऐसा हो जिसे 'काले' आदमीके यहा काम करनेमें कोई उज्र न हो तो मेरे लिए तलाश कर दे। दक्षिण अफ्रिकामे लघु-लेखन (शॉर्टहैंड) अथवा टाइपिंगका काम करने-वाली अधिकांश स्त्रिया ही होती हैं। पूर्वोक्त एजेंटने मुझे आश्वासन दिया कि मैं एक शॉर्टहैंड-टाइपिस्ट आपको खोज दूंगा। मिस डिक नामक एक स्काँच कुमारी उसके हाथ लगी। वह हाल ही स्काटलैंडसे आई थी। जहा भी कही प्रामाणिक नौकरी मिल जाय वहा करनेमें उसे कोई आपत्ति न थी। उसे काममें लगनेकी भी जल्दी थी। उस एजेंटने उस कुमारीकाको मेरे पास भेजा। उसे देखते ही मेरी नजर उसपर ठहर गई। मैंने उससे पूछा—

“तुमको एक हिंदुस्तानीके यहा काम करनेमें आपत्ति तो नहीं है?”

उसने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया—“विलकुल नहीं।”

“क्या वेतन लोगी ?”

“साढ़े सत्रह पौड अधिक तो न होंगे ?”

“तुमसे मैं जिस कामकी आशा रखता हूँ वह ठीक-ठीक कर दोगी तो इतनी रकम विलकुल ज्यादा नहीं है। तुम कब कामपर आ सकोगी ?”

“आप चाहें तो अभी।”

इस वहनको पाकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और उसी समय उसे अपने सामने बैठकर चिट्ठिया लिखवाने लगा। इस कुमारीने अकेले मेरे कार-कुनका ही नहीं, बल्कि सगी लड़की या वहनका भी स्थान मेरे नजदीक सहज ही प्राप्त कर लिया। मुझे उस कभी किसी बातपर डाटना-डपटना नहीं पड़ा। गायद ही कभी उसके काममें गलती निकालनी पड़ी हो। हजारों पौडके देन-लेनका काम एक बार उसके हाथमें था और उसका हिसाब-किताब भी वह रखती थी। वह हर तरहमें मेरे विश्वासका पात्र हो गई थी। यह तो ठीक, पर मैं उसकी गुह्यतम भावनाओंको जानने योग्य उसका विश्वास प्राप्त कर सका था और यह मेरे नजदीक एक बड़ी बात थी। अपना जीवन-साथी पसंद करनेमें उसने मेरी सलाह ली थी। कन्या-दान करनेका सौभाग्य भी मुझीको प्राप्त हुआ था। मिस डिक जब मिसेज मैकडॉनल्ड हो गईं तब उन्हें मुझसे अलग होना आवश्यक था। फिर भी विवाहके बाद भी, जब-जब जरूरत होती मुझे उनमें सहायता मिलती थी। (आ० क०, १६२७)

रेवरेण्ड डुड नीडु

एक तीसरे ख्यातनामा पादरी भी थे। उन्होंने पादरीपन छोड़कर पत्रका संपादन ग्रहण किया था। आप ब्लुमफोटीनमें प्रकाशित होनेवाले 'फ्रैण्ड' नामक दैनिकके संपादक रेवरेण्ड डुडनीडु हैं। उन्होंने गोरोंके द्वारा अपमानित होकर भी अपने पत्रमें भारतीयोंका पक्ष किया था। दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वक्ताओंमें उनकी गणना होती थी। (द० अ० स० १९२४)

श्री जोसेफ डोक

जोसेफ डोक वैप्टिस्ट संप्रदायके पादरी थे। दक्षिण अफ्रीकामें आनेसे पहले वे न्यूजीलैंडमें थे। इस घटनाके छ महीने पहले की बात है, एक दिन वह मेरे दफ्तरमें आये और अपना कार्ड भेजा। उसमें 'रेवरेण्ड' विशेषणका उपयोग किया गया था। इसपरसे मैंने झूठमूठ ही यह कल्पना कर ली कि जिस प्रकार अन्य कितने ही पादरी मुझे ईसाई बननेका उपदेश करने या आंदोलन बढ़ करनेको कहनेके लिए आते हैं, उसी प्रकार अथवा वुजुर्ग बनकर मेरे साथ सहानुभूति दिखानेके लिए वह आयें होंगे। पर ज्योंही मि० डोक अंदर आये और बातचीत करने लगे त्योंही कुछ

दक्षिण अफ्रीकाके पहले समझौतेके अवसर पर मोर आलय द्वारा पिटनेकी घटना।

मिनटोमे ही मैंने अपनी भूलको समझ लिया और दिल हीमे मैंने उनसे क्षमा माग ली। उस दिनसे हम बड़े मित्र बन गए। युद्ध-सबधी तमाम समाचारोसे उन्होंने अपनेको परिचित बताया और कहा “इस युद्धमे आप मुझे अपना मित्र समझिए। मुझसे जो कुछ सेवा बनेगी, वह सब मैं अपना धर्म समझकर करनेकी इच्छा रखता हूँ। ईसाके जीवना-दर्शका चिंतन-मनन करके मैंने तो यही सोखा है कि आपत्कालमे दोन-दुखियोका साथ देना चाहिए।” यह हमारा पहला परिचय था। इसके बाद दिनोदिन हमारा स्नेह-सबध बढ़ता ही गया। .पर डोक-कुटुबने मेरी जो सेवा की, उसका वर्णन करनेसे पहले उनका थोडा-बहुत परिचय दे देना भी आवश्यक था। रात हो या दिन, कोई-न-कोई मेरे पास जरूर बैठा रहता था। जबतक मैं उनके घरमे रहा तबतक उनका मकान केवल एक धर्मशाला ही बन गया था। भारतीयोमे फेरीवाले लोग भी थे। उनके कपड़े मजदूरोके-जैसे और मैले भी रहते। उनके साथमे एक गठरी या टोकरी भी अवश्य रहती। जूतोपर सेर भर धूल भी। मि० डोकके मकानपर ऐसे लोगोमे लगाकर अध्यक्ष तकके सभी दरजेके लोगोकी एक भीड़ लगी रहती। सब मेरा हाल पूछने और डाक्टरकी आज्ञा मिलनेपर मुझसे मिलनेके लिए चले आते। सभीको वे समान भावसे और सम्मान-पूर्वक अपने दीवानखानेमे बैठाते और जबतक मैं उनके यहा रहा, तबतक उनका सारा समय मेरी शुश्रूषामे और मुझसे मिलनेके लिए आनेवाले सैकड़ो सज्जनोके आदर-सत्कार हीमे जाता। रातको भी दो-तीन बार मि० डोक चुपचाप मेरे कमरेमे आकर जरूर देख जाते। उनके घरपर मुझे एक दिन भी ऐसा खयाल नहीं हुआ कि यह मेरा घर नहीं, या मेरे सबधी होते तो इससे अच्छी सेवा करते। पाठक यह भी खयाल न कर ले कि इतने जाहिरा तौरपर भारतीय आंदोलनका पक्ष ग्रहण करने तथा मुझे अपने घरमे स्थान देनेके कारण उन्हें कुछ सहना न पडा होगा। वे अपने पथके गोरोके लिए एक गिरजाघर चला रहे थे।

उनकी आजीविका इन पथवालोंके हाथोंमें थी। सभी लोग तो उदार दिल-के होते नहीं हैं। उन लोगोंके दिलमें भी भारतीयोंके खिलाफ कुछ भाव थे ही। पर डोकने इसकी कोई परवा नहीं की। हमारे परिचय-के आरम्भहीमें एक दिन मैंने इस नाजुक विषयपर चर्चा छेड़ी थी। उनका उत्तर यहाँ लिख देने योग्य है। उन्होंने कहा—

“मेरे प्यारे दोस्त, ईसाके धर्मको आपने क्या समझ रखा है ? मैं उस पुरुषका अनुयायी हूँ जो अपने धर्मके लिए फासी पर लटक गया और जिसका प्रेम विश्वव्यापी था। जिन गोरोंके मुझे छोड़ देनेका आपको डर है, उनकी आँखोंमें ईसाके अनुयायीकी हैसियतमें जरा भी मैं शोभा पाना चाहूँ तो मुझे जाहिरा तौरसे अवश्य ही इस युद्ध-में भाग लेना चाहिए और इसके फलस्वरूप यदि वे मेरा त्याग भी कर दें तो मुझे इसमें जरा भी बुरा न मानना चाहिए। इसमें शक नहीं कि मेरी आजीविकाका आधार उनपर है; पर आप यह कदापि न समझ बैठें कि आजीविकाके लिए मैंने उनसे यह सबध किया है या वे ही मेरी रोजी देनेवाले हैं। मेरी रोजीका देनेवाला तो परमात्मा है। ये हैं केवल निमित्तमात्र। मेरा उनका सम्बन्ध होते समय हमारा उनका यह ठहराव हो चुका है कि मेरी धार्मिक स्वतन्त्रतामें कोई हस्तक्षेप न करेगा। इसलिए आप मेरी ओरसे निश्चिन्त रहें। मैं भारतीयों पर अहसान करनेके लिए इस युद्धमें सम्मिलित नहीं हो रहा हूँ। मैं तो इसे अपना धर्म समझकर ही इसमें भाग ले रहा हूँ। पर असल बात यह है कि मैंने हमारे गिरजाके डीनके साथ बातचीत करके भी इस बातका खुलासा कर लिया है। मैंने उन्हें यह स्पष्ट कह दिया है कि अगर मेरा भारतीयोंसे सम्बन्ध रखना आपको पसन्द न हो तो आप खुशीसे मुझे रखसत दे सकते हैं और दूसरा पादरी तलाश कर सकते हैं। पर उन्होंने इस विषयमें मुझे बिल्कुल निश्चिन्त कर दिया है, बल्कि और उत्साहित

किया है। आपको यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि सभी गोरे आपकी तरफ एकसौ तिरस्कारकी नजरसे ही देखते हैं। आप नहीं जानते कि अतृप्त रूपसे आपके विषयमें वे किनना सद्भाव रखते हैं। इसे तो मैं ही जान सकता हूँ और आपको भी यह कुबूल करना होगा।”

इतनी स्पष्ट बातचीत होनेपर फिर मैंने इस नाजुक विषयपर कभी बातचीत नहीं छोड़ी। इसके कुछ साल बाद डोक रोडेशियामें अपने धर्म-की सेवा करते हुए स्वर्गवासी हो गये। तब हमारा युद्ध समाप्त नहीं हुआ था। उनकी मृत्युके समाचार प्राप्त होनेपर उनके पथवालोंने अपने गिरजा-घरमें एक सभा निश्चित की थी। उसमें काछलिया तथा अन्य भारतीयोंके साथ-साथ मुझे भी बुलाया गया था। मुझे वहाँ भाषण देना पड़ा था।

अच्छी तरह चलने-फिरने लायक होनेमें मुझे करीब दस-न्यारह दिन लगे होंगे। ऐसी स्थिति होते ही मैंने इस प्रेमी कुटुंबसे विदा भागी। वह वियोग हम दोनोंके लिए बड़ा दुःखदाई था। (द० अ० स०, १९२५)

: ७६ :

श्रीमती ताराबहन

मिस मेरी चेस्ले नामकी एक अंग्रेज बहन सन् १९३४में हिंदुस्तानमें थी। उन दिनों बर्मा में कांग्रेसका अधिवेशन हो रहा था। जहाँसे उतरते ही वह कांग्रेस-कैम्पमें पहुँची और मेरे भोपड़ेमें आकर उसने मुझसे कहा, “मैं मीरा बहनको जानती हूँ और मीरा बहनके साथ ही मैं

यहा आनेवाली थी, पर किसी कारणवश उनके एकाध हफ्ते पहले ही मैं विलायतसे रवाना हो गई।" गावोमे रहकर भारतकी सेवा करनेकी उसकी इच्छा थी। उसकी बातचीतसे मैं कुछ खास प्रभावित नहीं हुआ और मुझे लगा कि वह हिंदुस्तानमे कुछ ज्यादा महीने ठहरनेकी नहीं। पर मेरी यह भूल थी। मिस मेरी बार को, जिन्होंने बेतूल (मध्यप्रदेश) से कुछ मील दूर खेडी गावमे पहलेसे ही काम करना शुरू कर दिया था, वह वहन जानती थी। मेरी बार मिस चेस्लेको अपने साथ वर्धा ले आई और कुछ दिन हम सब वहा एक साथ रहे। मिस चेस्लेका निश्चय देखकर तो मैं चकित रह गया। मेरी बारके साथ उसने खेडीमे ग्राम-सेवाका कार्य आरभ कर दिया। भारतीय पोशाक पहन ली और अपना नाम तारावहन रख लिया। खेडीमे उसने इस कदर सख्त परिश्रम-से काम किया कि बेचारी मेरी बार तो देखकर हकबका गई। वह मिट्टी खोदती और सिरपर टोकरी रखकर ढोती। अपना भोजन उसने इतना सादा बना लिया था कि उसका स्वास्थ्यतक खराब हो गया। कनाडासे काफी पैसा आता था, पर उसमेसे वह सिर्फ दस रुपयेके लगभग ही अपने लिए रखती और बाकी सब ग्राम-उद्योग-संघको या हिंदुस्तानके उन भाई-बहनोको दे देती थी, जिनके सपर्कमे वह आती थी और जो उसे मालूम होते थे कि आगे चलकर वे अच्छे ग्राम-सेवक बन सकते हैं और जिन्हे रुपये-पैसेकी कुछ जरूरत होती थी। मैंने उसे बहुत ही निकटसे देखा। उसकी उदरताकी कोई सीमा नहीं थी। मानव-प्रकृतिकी अच्छाईमे उसकी बहुत श्रद्धा थी। अपराधको वह भूल जाती थी। वह सच्ची ईसाई थी। क्वेकर संप्रदायकी, पर उसमे कोई सकीर्णता नहीं थी। दूसरोको अपने धर्ममे मिलानेमे उसका विश्वास नहीं था। 'लदन-स्कूल आव इकनामिक्स' की वह ग्रेजुएट थी और एक अच्छी शिक्षिका थी। लदनमे कई सालतक उसने एक स्कूल चलाया था। उसने फौरन यह महसूस कर लिया कि हिंदी उसे जरूर सीख लेनी चाहिए और नियमित

रीतिसे वह हिंदीका अभ्यास करने लगी। बोलचालकी हिंदी सीखनेके लिए वह कुछ महीने वर्धाके महिला-आश्रममें आकर रही और वही उसने दो बहनोके साथ गरमियोमें बट्टी-कंदार जानेका विचार किया। मैंने उसे इस खतरनाक यात्रासे आगाह कर दिया था। लेकिन जब वह एक बार निश्चय कर लेती थी तो ऐसे-ऐसे साहसिक कामोंसे उसका मन फेरना मुश्किल होता था। बट्टी-कंदारकी भयानक यात्रा उसे करनी ही थी। अतः अपने मित्रोंके साथ उस दिन वह खाना हो गई। १५ मई को कनखलसे मुझे यह सक्षिप्त तार मिला—“तारावहनका शरीरात हो गया।”

हिंदुस्तानके गावोंके लिए उसके हृदयमें जो प्रेम था उसमें कोई उससे बाजी नहीं मार सकता था। हिंदुस्तानकी आजादीके लिए हममेंसे अच्छे-से-अच्छे लोगोंने जितना उत्साह है, उससे कम तारावहनमें नहीं था। दरजेकी छुटाई जहां भी देखती, अधीर हो जाती थी। गरीब स्त्रियों और बच्चोंसे वह इतनी आजादीके साथ मिलती थी कि देखते ही बनता था। सेवा करके वह किसीका उपकार कर रही है, यह भावना तो उसमें थी ही नहीं। किसीसे उसने अपनी सेवा नहीं कराई, किंतु कोई भी हो, उसकी सेवा वह अत्यंत उत्साहके साथ करती थी। उसने अपना अहंकार धो डाला था। ऐसी मूक सेविका थी वह कि उसके बाए हाथ-को पता नहीं लगता था कि दाहिने हाथने क्या काम किया है। ईश्वर उसकी दिवंगत आत्माको चिरशान्ति दे। (ह० से०, २३ ५ ३६)

प्रायः हर विलायती डाकमें मेरे पास स्व० तारावहन (मेरी चेस्ली) के सगे-संबंधियों और मित्रोंके पत्र आते रहते हैं। इनमें उनके अनेक गुणोंका वर्णन रहता है। कई सज्जन उनके अनेक प्रकारके उपकारोंका वर्णन करते हैं, जो स्व० तारावहनने उनपर किये। कुछ लिखते हैं कि उन्होंने हमें फला-फला सहायता देनेका वचन दिया था और कुछ तारावहन द्वारा

छोड़े गये एक या अनेक विरासतनामोंका भी उल्लेख करते हैं। हालांकि महादेव देसाई इन सब पत्र भेजनेवालोंको अपने थोड़े समयमें जितना उनसे बन पड़ता है व्योरेवार जानकारी देनेकी कोशिश करते हैं फिर भी तमाम बाधित लोगोंके लाभके लिए यह जाहिर कर देना जरूरी है कि अपनी शोचनीय मृत्युके कुछ ही समय पहले उन्होंने मेरे नामपर जो विरासतनामा लिख दिया था, वह कानूनदा मित्रोंकी रायमें भारतीय विरासतके कानूनके अनुसार वैध नहीं मालूम होता। पर अगर यह साबित भी हो जाय कि वह वैध है तो भी उनके सगे-सवधियों और मित्रोंकी अनुमतिके बिना उनकी संपत्तिका उपयोग हिंदुस्तानी ग्रामोद्योगोंके लिए करनेकी मुझे जरा भी इच्छा नहीं है, यद्यपि यह काम इधर उन्हें अत्यंत प्रिय था और इसके लिए वे एक गुलामकी तरह काम करते-करते वीरोचित मृत्युकी गोदमें सदाके लिए सो गईं। इस बातकी बहुत ही कम संभावना है कि स्व० ताराबहनकी वह सब संपत्ति मेरे हाथ आ जायगी, जिसका कि वे अपने जीवनकालमें किसी प्रकारका विनियोग नहीं कर गई है; पर अगर ऐसा हुआ तो उसे हाथ लगानेसे पहले मैं उन तमाम वचनों या वादोंकी जांच करूंगा जो उन्होंने पश्चिममें किये और उन्हें पूरा करनेकी कोशिश भी करूंगा।

वैसे उनके नामपर आये हुए कई चेक मेरे पास पड़े हुए हैं जिनका भुगतान भी नहीं हुआ है। उनके परिवारके बहन-भाइयोंसे, जिनकी सख्या मैं देखता हूँ, बहुत बड़ी है, मेरी यह सलाह है कि उनमें जो सबसे नजदीकी हो, राज्यसे इस सबका एक कानूनी अधिकार-पत्र लेकर वह मेरे पास भेजे ताकि मैं और कुमारी मेरी वार हमारे पास रखी हुई, ताराबहनकी चीजें उन्हें सौंप सकें। मेरे पास तो अनभुने चेक पड़े हुए हैं और मेरी वारके पास उनके कुछ छोटे-मोटे जेवर हैं। हिंदुस्तानमें आनेपर अपनी जरूरतें उन्होंने इतनी कम कर दी थी कि शायद ही ऐसी कोई चीज बची हो, जिसकी कोई कीमत आ सके। अपने जीवन-कालमें

उन्हे जो कुछ मिला उन्होंने ग्राम-सेवाके लिए मुझे दे डाला। उस स्वर्गोप उपकारगीला देवीसे सबव रखनेवाली बातोंके विषयमें मेरे पाम तो इतनी ही जानकारी है। आगा है, यह उनके तमाम सबधित लोगोंके लिए काफी होगी। (ह० मे०, २६ ६ ३६)

: ७७ :

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक अब ससारमें नहीं हैं। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे ससारसे उठ गये। हम लोगोंके समयमें ऐसा दूसरा कोई नहीं जिसका जनता पर लोकमान्यके-जैसा प्रभाव हो। हजारों देशवासियोंकी उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह अपूर्व थी। यह अक्षरग सत्य है कि वे जनताके आराध्यदेव थे, प्रतिमा थे, उनके वचन हजारों आदमियोंके लिए नियम और कानून-में थे। पुरुषोंमें पुरुष-सिंह ससारसे उठ गया। केगरीकी घोर गर्जना विलीन हो गई।

देशवासियोंपर उनका इतना प्रभाव होनेका क्या कारण था ? मैं समझता हूँ, इस प्रश्नका उत्तर बड़ा ही सहज है। उनकी स्वदेशभक्ति ही उनकी इन्द्रियवृत्ति थी। वे स्वदेशप्रेमके सिवा दूसरा धर्म नहीं जानते थे।

जन्ममें ही वे प्रजानत्तावादी थे। बहुमतकी आज्ञापर इतना अधिक विश्वास करते थे कि मुझे उससे भयभीत होना पड़ता था। पर यही वह बात है जिससे जनता पर उनका इतना अधिक प्रभाव था। स्वदेशके लिए वे जिस इच्छा-शक्तिसे काम लेते थे वह बड़ी ही प्रबल थी। उनका

जीवन वह ग्रंथ है जिसे खोलनेकी भी जरूरत नहीं, वह खुला हुआ ग्रंथ है। उनका खाना-पीना और पहनावा विल्कुल साधारण था। उनका व्यक्तिगत जीवन बड़ा ही निर्मल और बेदाग है। उन्होंने अपनी आश्चर्य-जनक बुद्धि-शक्तिको स्वदेशको अर्पण कर दिया था। जितनी स्थिरता और दृढ़ताके साथ लोकमान्यने स्वराज्यकी शुभवार्ताका उपदेश किया उतना और किसीने नहीं किया। इसी कारण स्वदेशवासी उनपर अटूट विश्वास रखते थे। साहसने कभी उनका साथ नहीं छोड़ा। उनकी आशावादिता अदम्य थी। उनको आशा थी कि जीवनकालमें मैं ही संपूर्ण रूपसे स्वराज्य स्थापित हुआ देख सकूंगा। यदि वे इसे नहीं देख सके तो उनका दोष नहीं है। उन्होंने निस्संदेह स्वराज्य-प्राप्तिकी अवधि बहुत कम कर दी है। यह अब हम लोगोके लिए है, जो अभीतक जी रहे हैं, कि अपने द्विगुणित उद्योगसे उसको जहातक हो शीघ्र सत्य कर दिखावें।

मैं अंग्रेजोको ऐसी धारणा बनानेसे मना करता हू कि लोकमान्य अंग्रेजोके शत्रु थे। या अधिकारी वर्ग या अंग्रेजी राज्यसे घृणा करते थे।

कलकत्ता-कांग्रेसके समय हिंदीके राष्ट्रभाषा होनेके अवधमें उन्होंने जो कहा था, उसे सुननेका अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ था। वे कांग्रेस पडालसे तुरत ही लौटे थे। हिंदीके अवधमें उन्होंने अपने शांत भाषणमें जो कहा उससे बड़ी तृप्ति हुई। भाषणमें आपने देशी भाषाओपर खयाल रखनेके कारण अंग्रेजोकी बड़ी प्रशंसा की थी। विलायत जानेपर, यद्यपि उन्हें अंग्रेज जूररोके विषयमें बुरा ही अनुभव हुआ तथापि उनका ब्रिटिश प्रजासत्तामें बड़ा ही दृढ़ विश्वास हो गया। उन्होंने यहां तक कहा था कि पंजाबके अत्याचारोका चित्र 'सिनेमेटोग्राफ' यंत्र द्वारा ब्रिटिश प्रजासत्तावादियोको दिखाना चाहिए। मैंने यहां इस बातका उल्लेख इसलिए नहीं किया कि मैं भी ब्रिटिश प्रजासत्तापर विश्वास रखता हू

(जो कि मैं नहीं रखता), पर यह दिखानेके लिए कि वे अंग्रेज-जातिके प्रति घृणाका भाव नहीं रखते थे। पर वे भारत और साम्राज्यकी अवस्थाको इस पिछड़ी अवस्थामे न तो रखना ही चाहते थे और न रख सकते थे।

वे चाहते थे कि गीघ्र ही भारतसे समीनताका भाव रखा जाय और इसे वे देशका जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। भारतकी स्वतंत्रताके लिए उन्होंने जो लड़ाई की उसमे सरकारको छोट नहीं दिया। स्वतंत्रताके इस युद्धमे उन्होंने न तो किसीकी मुरब्बतकी और न किसीकी प्रतीक्षा की। मुझे आशा है, अंग्रेज लोग उस महापुरुषको पहचानेंगे जिनकी भारत पूजा करता था।

भारतकी भावी सततिके हृदयमे भी यही भाव बना रहेगा कि लोकमान्य नवीन भारतके बनानेवाले थे। वे तिलक महाराजका स्मरण यह कहकर करेंगे कि एक पुरुष था जो हमारे लिए ही जन्मा और हमारे लिए ही मरा। ऐसे महापुरुषको मरना कहना ईश्वरकी निंदा करना है। उनका स्थायी तत्व सदाके लिए हम लोगोमे व्याप्त हो गया। आओ, हम भारतके एकमात्र लोकमान्यका अविनाशी स्मारक अपने जीवनमे उनके साहस, उनकी सरलता, उनके आश्चर्य-जनक उद्योग और उनकी स्वदेश-भक्तिको सीखकर बनावे। ईश्वर उनकी आत्माको शांति प्रदान करे।
(य० ड०, ४-८-२०)

लोकमान्य तो एक ही थे। लोगोने तिलक महाराजको जो पदवी, जो उच्च स्थान दिया था वह राजाओके दिये खिताबोसे लाख गुना कीमती था। देशने आज यह बात सिद्ध कर दिखाई है। यह कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी कि सारी बबई लोकमान्यको पहचानेके लिए उलट पड़ी थी।

उनके आखिरी दिनोमे जो दृश्य मैंने अपनी आखोसे देखा वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। लोगोके उस अगाध प्रेमका वर्णन करना असंभव है।

फ्रांसमे कहावत है कि 'राजा मर गये, राजा चिरजीव रहे।' यह विचार इंग्लैंड आदि सारे देशोमे प्रचलित है और जब राजाकी मृत्यु होती है तब यह कहावत कही जाती है। उसका भावार्थ यह है कि राजा तो मरता ही नहीं। राजतंत्र एक मिनिट भी बद नहीं रहता।

उसी प्रकार तिलक महाराज भी मर नहीं सकते, न मरे ही। बबईकी जनताने यह दिखला दिया कि वे जीते हैं और बहुत समय तक जीयेगे। उनके सगे-सवधियोंको भले ही दुःख हुआ हो, उन्होंने भले ही आखोसे मोती टपकाए हो, परंतु दूसरे लोग तो उत्सव मनानेके लिए आये थे। बाजे और भजन लोगोको चेतावनी दे रहे थे कि लोकमान्य मरे नहीं हैं। 'लोकमान्य तिलक महाराजकी जय' ध्वनिसे आकाश गूँज उठता था। उस समय लोग इस बातको भूल गए थे कि हम तो तिलक महाराजके देहके दाहकर्मके लिए आये हैं।

शनिवारकी रातको जब मैंने उनके स्वर्गवासकी खबर सुनी तब मेरा चित्त व्याकुल हो रहा था, पर जयघोष सुनकर मेरी बेचैनी जाती रही। मेरी भी यही धारणा हुई कि तिलक महाराज जीवित हैं। उनका क्षण-भंगुर देह छूट गया है, पर उनकी अमर आत्मा तो लाखों लोगोके हृदयमे विराजमान है।

इस जमानेमे किसी भी लोकनायकको ऐसी मृत्युका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। दादाभाई गये, फिरोजशाह गये, गोखले भी चले गये। सबके साथ हजारों लोग श्मशान तक गये थे, पर तिलक महाराजने तो हृदय कर दी। उनके पीछे तो सारी दुनिया गई। रविवारको बबई वावली हो गई थी।

यह कैसा चमत्कार! ससारमे चमत्कार नामकी कोई वस्तु ही नहीं। अथवा यो कहें कि जगत स्वयं ही एक चमत्कृति है। बिना कारणके कोई काम नहीं होता। इस सिद्धांतमे कोई अपवाद नहीं हो सकता। लोकमान्यका हिंदुस्तानपर अमीम प्रेम था। इसी कारण लोक-

प्रेमकी भी मर्यादा नहीं रह गई थी । स्वराज्यके मन्त्रका जितना जप उन्होंने किया है उतना दूसरा किसीने नहीं किया । जिस समय दूसरे लोग यह मानते थे कि हा, अब भारत स्वराज्यके योग्य होगा, उस समय लोकमान्य सच्चे दिलसे मानते थे कि भारत आज ही तैयार है । लोकमान्यकी इस धारणाने लोगोंके मनको हर लिया था । ऐसा मानकर वे बैठे नहीं रहे, बल्कि जिदगीभर उसके अनुसार काम किया । उससे जनतामें नवीन चैतन्य नया जोश पैदा हुआ । उन्होंने स्वराज्य प्राप्त करनेकी अपनी अधीरताका स्वाद लोगोंको चखाया और ज्यो-ज्यो जनता को उसका स्वाद भालूम होने लगा त्यो-त्यो वह उनकी तरफ खिंचती गई ।

उनपर अनेक तरहकी आफते आईं, तरह-तरहके कष्ट उन्हें सहने पड़े, तो भी उन्होंने उस मन्त्रका अनुष्ठान नहीं छोड़ा । इस तरह वे कठिन परीक्षाओंमें भी पास हुए । इससे जनताने उन्हें अपने हृदयका सम्राट बनाया और उनका वचन उसके लिए कानूनकी तरह मान्य हो गया ।

देहके नष्ट होजानेसे ऐसा महान जीवन नष्ट नहीं होता, बल्कि देह-पातके बाद सँ तो वह शुरू होता है ।

जिसे हम पूजनीय मानते हैं उसकी सच्ची पूजा तो उसके सद्गुणोंका अनुकरण करना ही है । लोकमान्य अत्यंत सादगीके साथ रहते थे । उनके स्मरणके लिए हमें भी अपना जीवन सादा बनाना चाहिए । हमें उस सीमातक वस्तुओंका त्याग करना चाहिए जिस तकके लिए हमारा मन गवाही देता हो । अपने निश्चित कार्यको करनेसे कभी पीछे नहीं हटना चाहिए । वे विचारशील थे । हमें भी विचार करके ही बोलना और काम करना चाहिए । वे विद्वान् थे, अपनी मातृभाषा और संस्कृतिपर उनका खूब प्रभुत्व था । हमें भी उनकी तरह विद्वान् होनेका निश्चय करना चाहिए । व्यवहारमें विदेशी भाषाका त्याग करके मातृ-भाषाका काफी ज्ञान प्राप्त करना और उसीके द्वारा अपने विचारोंको

प्रकट करनेका अभ्यास करना चाहिए । हमे सस्कृत भाषाका अध्ययन करके अपने धर्म-शास्त्रोमे छिपे धर्म-रहस्योको प्रकट करना चाहिए । वे स्वदेशीके प्रेमी थे । हमे भी स्वदेशीका अर्थ समझकर उसका व्यवहार करना चाहिए । उनके हृदयमे अपने देशके प्रति अथाह प्रेम था । हम भी अपने हृदयमे ऐसा प्रेम उदय करे और दिन-प्रतिदिन देश-सेवामे अधिकाधिक तत्पर हो । इसी रीतिसे उनकी पूजा हो सकती है । जिससे इतना न हो सके वे उनकी यादगारके लिए जितना हो सके धन दे और वह स्वराज्यके कार्यमे खर्च किया जाय ।

लोकमान्य वर्त्तमान राज्य-मडलके कट्टर शत्रु थे । पर इससे यह न समझना चाहिए कि वे अंग्रेजोसे द्वेष करते थे । जो लोग ऐसा समझते हैं वे भूल करते हैं । उन्हीके श्रीमुखसे मैंने कई बार अंग्रेजोकी प्रशंसा सुनी है । वे अंग्रेजी-राज्यके सबधको भी अनिष्ट नहीं मानते थे । वे तो सिर्फ अपने को अंग्रेजोके बराबर मनवाना चाहते थे । किसीका भी गुलाम बनकर रहना उन्हे पसंद न था ।

ऐसे प्रौढ देशभक्तके स्वर्गवासका उत्सव हम मना रहे हैं । ऐसे पुरुषका देह चाहें रहे या न रहे, पर देशकी सेवा तो किया ही करता है, देशको आगे बढ़ाया ही करता है । जिसने अपने कार्यकी रूपरेखा बना रखी हो, जिसने उसके अनुसार ४५ वर्षोंतक काम किया हो, जिसने अपनी देहको देशसेवाके ही अर्पण कर दिया हो, उसके देहका नाश भले ही हो जाय, उसकी स्मृति कभी नष्ट नहीं होती, उसकी मृत्यु कभी नहीं होती । अतएव लोकमान्य तिलक मर कर भी हमे जीवनका मंत्र सिखा गये हैं ।
(हि० न०, ६-८-२२)

..

..

.

पहले मैं लोकमान्यसे मिला । उन्होने कहा— 'सब दलोकी सहायता प्राप्त करनेका आपका विचार बिल्कुल ठीक है । आपके प्रश्नके सबधमे मत-भेद हो नहीं सकता, परंतु आपके कामके लिए किसी तटस्थ

सभापतिकी आवश्यकता है। आप प्रोफेसर भाडारकरसे मिलिये। यो तो वह आजकल किसी हलचलमे पडते नहीं है, पर शायद इस कामके लिए 'हा' कर ले। उनसे मिलकर नतीजेकी खबर मुझे कीजिएगा। मैं आपको पूरी-पूरी सहायता देना चाहता हू। आप प्रोफेसर गोखलेमे भी अवश्य मिलिएगा। मुझमे जब कभी मिलनेकी इच्छा हो जरूर आइयेगा।”

लोकमान्यके यह मुझे पहले दर्शन थे। उनकी लोक-प्रियताका कारण मैं तुरत समझ गया। (आ० क०, १६२७)

वह मुझे रिपन कालेज ले गया। वहा बहुतेरे प्रतिनिधि ठहरे हुए थे। सौभाग्यसे जिस विभागमे मैं ठहरा था, वही लोकमान्य भी ठहराये गए थे। मुझे ऐसा स्मरण है कि वह एक दिन वाद आये थे। जहा लोकमान्य होते, वहा एक छोटा-सा दरवार लगा ही रहता था। यदि मैं चितेरा होऊ तो जिस चारपाईपर वह बैठते थे उसका चित्र खींचकर दिखा दू, उस स्थानका और उनकी बैठकका इतना स्पष्ट स्मरण मुझे है। उनसे मिलने आनेवाले असंख्य लोगोमे एकका नाम मुझे याद है—‘अमृत-वाजार पत्रिका’ के स्व० मोतीबाबू। इन दोनोका कहकहा लगाना और राजकर्त्ताओके अन्याय-सबबी उनकी वाते कभी भुलाई नहीं जा सकती।

...

इस विशेष^१ अधिवेशनके अवसरपर मुझे लोकमान्यकी अनुपस्थिति बहुत ज्यादा खटकी थी। आज भी मेरा यह मत है कि अगर वह जिंदा रहते तो अवश्य ही कलकत्तेके प्रसंगका स्वागत करते। लेकिन अगर यह नहीं होता और वह उसका विरोध करते तो भी वह मुझे अच्छा लगता

^१ कलकत्ता-अधिवेशन, १६२०

और मैं उससे बहुत-कुछ शिक्षा ग्रहण करता। मेरा उनके साथ हमेशा मत-भेद रहा करता, लेकिन यह मत-भेद मधुर होता था। उन्होंने मुझे सदा यह मानने दिया था कि हमारे बीच निकटका सबंध है। ये पक्तियां लिखते हुए उनके अवसान का चित्र मेरी आंखोंके सामने घूम रहा है। आधी रातके समय मेरे साथी पटवर्धनने टेलीफोन द्वारा मुझे उनकी मृत्युकी खबर दी थी। उसी समय मैंने अपने साथियोंसे कहा था—“मेरी बड़ी ढाल मुझसे छिन गई।” इस समय असहयोगका आंदोलन पूरे जोर पर था। मुझे उनसे आश्वासन और प्रेरणा पानेकी आशा थी। आखिर जब असहयोग पूरी तरह मूर्तिमान हुआ था तब उनका क्या रख होता सो तो दैव ही जाने, लेकिन इतना मुझे मालूम है कि देशके इतिहासकी इस नाजुक घड़ीमें उनका न होना सबको खटकता था। (आ० क०, १९२७)

...

...

...

आपका यही सवाल है न कि लोग “शठ प्रति शाठ्यम्” को तिलक महाराजका सिद्धांत मानते हैं और हमें उनके जीवनमें इस सिद्धांतकी प्रतीति कहा तक होती है? हम इस प्रश्नमेंसे बहुत अधिक सार ग्रहण नहीं कर सकते। हा, इस वारेमें तिलक महाराजके साथ मेरा कुछ दिनों तक पत्र-व्यवहार हुआ था। उनके जीवनके नम्र विद्यार्थी और गुणोंके एक पुजारीके नाते मैं कह सकता हूँ कि तिलक महाराजमें विनोदकी शक्ति थी। विनोदके लिए अंग्रेजीमें ‘ह्यूमर’ शब्द है। अबतक हम इस अर्थमें विनोदका उपयोग नहीं करने लगे हैं। इसीसे अंग्रेजी शब्द देकर अर्थ समझाना पड़ता है। अगर लोकमान्यमें यह विनोद-शक्ति न होती तो वह पागल हो जाते—राष्ट्रका इतना बोझ वह उठाते थे। लेकिन अपनी विनोद-प्रियताके कारण वह स्वयं अपनी रक्षा तो कर ही लेते थे, दूसरोंको भी विषम स्थितिमेंसे बचा लेते थे। दूसरे, मैंने यह देखा है कि वाद-विवाद करते समय वह कभी-कभी जान-बूझकर अतिशयोक्तिसे भी काम ले-लेते थे। प्रस्तुत प्रश्नके सबंधमें मेरा उनका जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह मुझे ठीक-ठीक याद नहीं, आप

उसे देख ले। “गठ प्रति गाठचम्” तिलक महाराजका जीवन-मन्त्र नहीं था। अगर ऐसा होता तो वह इतनी लोकप्रियता प्राप्त न कर सकते। मेरी जानमें ससार-भरमें ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है, जिसमें किसी मनुष्यने इस सिद्धातपर अपना जीवन-निर्माण किया हो और फिर भी वह लोकमान्य बन सका हो। यह सच है कि इस बारेमें जितना गहरा मैं पैठता हूँ, वह नहीं पैठने थे। हम गठके प्रति गाठचका कदापि उपयोग कर ही नहीं सकते। ‘गीता-रहस्य’में एक-दो स्थानोंमें, सिर्फ एक-ही दो स्थानोंमें, इस बातका थोड़ा समर्थन जरूर मिलता है। लोकमान्य मानते थे कि राष्ट्रहितके लिए अगर कभी गाठचमें, दूसरे शब्दोंमें ‘जैसे को तैसा’ सिद्धातसे, काम लेना पड़े तो ले सकते हैं। माय ही वह यह भी मानते तो थे ही कि गठके सामने भी सत्यका प्रयोग करना अच्छा है, यही सत्य सिद्धात है। मगर इस सबधमें वह कहा करते थे कि सावु लोग ही इस सिद्धातपर अमल कर सकते हैं। तिलक महाराजकी व्याख्याके मुताबिक सावु लोगोंसे अर्थ वैगगियोंका नहीं, बल्कि उन लोगोंसे होता है जो दुनियासे अलिप्त रहते हैं, दुनियादागी-के कामोंमें भाग नहीं लेते। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि अगर कोई दुनियामें रहकर इस सिद्धातका पालन करे तो अनुचित होगा—हा, वह न कर सके यह दूसरी बात है—वह मानते थे कि गाठचका उपयोग करनेका उसे अधिकार है।

लेकिन ऐमें महान् पुरुषके जीवनका मूल्य ठहरानेका हमें कोई अधिकार हो तो हम विवादास्पद बातोंसे उसका मूल्य न ठहरावे। लोकमान्यका जीवन भारतके लिए, समस्त विश्वके लिए, एक बहुमूल्य विरामत है। उसकी पूरी कीमत तो भविष्यमें निश्चित होगी। इतिहास ही उसकी कीमतका अनुमान लगावेगा, वही लगा सकता है। जीवित मनुष्यका ठीक-ठीक मूल्य, उसका सच्चा महत्व, उनके समकालीन कभी ठहरा ही नहीं सकते। उनसे कुछ-न-कुछ पक्षपात तो हो ही जाता है, क्योंकि रागद्वेष-पूर्ण लोग ही इस कामके कर्ता भी होते हैं। सच पूछा जाय तो इतिहासकार भी राग-

द्वेष-रहित नहीं पाये जाते । गिवन प्रामाणिक इतिहासकार माना जाता है, मगर मैं तो उसकी पुस्तकके पृष्ठ-पृष्ठमें पक्षपात अनुभव कर सकता हूँ । मनुष्य-विशेष या सस्था-विशेषके प्रति राग अथवा द्वेषसे प्रेरित होकर उसने बहुतेरी बातें लिखी होंगी । समकालीन व्यक्तिमें विशेष पक्षपात होनेकी संभावना रहती है । लोकमान्यके महान् जीवनका उपयोग तो यह है कि हम उनके जीवनके शाश्वत सिद्धांतोंका सदा स्मरण और अनुकरण करें ।

तिलक महाराजका देशप्रेम अटल था । साथ ही उनमें तीक्ष्ण न्याय-वृत्ति भी थी । इस गुणका परिचय मुझे अनायास मिला था । १९१७ की कलकत्ता-महासभाके दिनोंमें, हिंदी साहित्य सम्मेलनकी सभामें, भी वह आये थे । महासभाके कामसे उन्हें फुर्सत तो कैसे हो सकती थी ? फिर भी वह आये और भाषण करके चले गये । मैंने वही देखा कि राष्ट्रभाषा हिंदीके प्रति उनमें कितना प्रेम था । मगर इससे भी बढ़ कर जो बात मैंने उनमें देखी, वह थी अंग्रेजोंके प्रतिकी उनकी न्याय-वृत्ति । उन्होंने अपना भाषण ही यों शुरू किया था—“मैं अंग्रेजी शासनकी खूब निंदा करता हूँ, फिर भी अंग्रेज विद्वानोंने हमारी भाषाकी जो सेवा की है, उसे हम भुला नहीं सकते” । उनका आधा भाषण इन्हीं बातोंसे भरा था । आखिर उन्होंने कहा था कि अगर हमें राष्ट्रभाषाके क्षेत्रको जीतना और उसकी वृद्धि करना हो तो हमें भी अंग्रेज विद्वानोंकी भाँति ही परिश्रम और अभ्यास करना चाहिए । अपनी लिपिकी रक्षा और व्याकरणकी व्यवस्था-के लिए हम एक बड़ी हद तक अंग्रेज विद्वानोंके आभारी हैं । जो पादरी आरंभमें आये थे, उनमें पर-भाषाके लिए प्रेम था । गुजरातीमें टेलर-कृत व्याकरण कोई साधारण वस्तु नहीं है । लोकमान्यने इस बातका विचार भी नहीं किया कि अंग्रेजोंकी स्तुति करनेसे मेरी लोकप्रियता घटेगी । लोगोका तो यही विश्वास था कि वह अंग्रेजोंकी निंदा ही कर सकने हैं ।

तिलक महाराजमें जो त्याग-वृत्ति थी, उसका सौदा या हजारवा भाग भी हम अपनेमें नहीं बता सकते । और उनकी सादगी ? उनके कमरेमें

न तो किसी तरहका फर्नीचर होता था, न कोई खाम सजावट । अपरिचित आदमी तो खयाल भी नहीं कर सकता था कि वह किसी महान् पुरुषका निवास-स्थान है । रगरगमे भिदी हुई उनकी इस सादगीका हम अनुकरण करे तो कैसा हो ? उनका धैर्य तो अद्भुत था ही । अपने कर्तव्यमें वह सदा अटल रहते और उसे कभी भूलते ही न थे । बर्मपत्नीकी मृत्युका समाद पानेपर भी उनकी कलम चलती ही रही । . . क्या हम तिलक महाराजके जीवनका एक भी ऐसा क्षण बतला सकते हैं जो भोग-विलासमें बीता हो ? उनमें जवर्दस्त महिष्णुता थी । यानी वह चाहे जैसे उद्दड़-से-उद्दड़ आदमीमें भी काम करवा लेते थे । लोकनायकमें यह शक्ति होनी चाहिए । इससे कोई हानि नहीं होती । अगर हम सकुचित हृदय बन जाय और सोच ले कि फला आदमीसे काम लेगे ही नहीं, तो या तो हमें जंगलमें जाकर बस जाना चाहिए, या घर बैठे-बैठे गृहस्थका जीवन बिताना चाहिए । इसमें शर्त यही है कि स्वयं अलिप्त रह सके ।

मुझे तिलक महाराजका बखान करके ही हम चुप न हो बैठे । काम, काम और काम ही हमारा जीवन-मूल होना चाहिए । जब कि हम स्वराज्य-यज्ञको चालू रखना चाहते हैं, हमें चाहिए कि हम निकम्मे साहित्यका पढ़ना बंद कर दे, निरर्थक बातें करना छोड़ दे और अपने जीवनका एक-एक क्षण स्वराज्यके काममें बिताने लगे । आप पूछेंगे कि क्या पढाई छोड़कर यह काम करे ? १९२१ में भी विद्यार्थियोंके साथ मेरा यही झगडा था कि तिलक महाराजने क्या किया था ? उन्होंने जो बटे-बड़े ग्रंथ लिखे, वे बाहर रहकर नहीं, जेलमें रहकर लिखे थे । 'गीता रहस्य' और 'आर्क्टिक होम' वह जेलमें ही लिख सके थे । बटे-बड़े मौलिक ग्रंथ लिखनेकी शक्ति होते हुए भी उन्होंने देशके लिए उसका बलिदान किया था । उन्होंने मोचा, "घरके चारों ओर आग भभक उठी है । इसे जितनी बुझा सकू, उतनी तो बुझाऊ ।" उन्होंने अगर हजार घंटे पानीसे वह बुझाई

हो, तो हम एक ही घड़ा डालें, मगर डालें तो सही। पढाई आदि आवश्यक होते हुए भी गौण बातें हैं। अगर स्वराज्यके लिए इनका उपयोग होता हो तो करना चाहिए, अन्यथा इन्हें तिलाजलि देनी चाहिए। इसमें न हमारा नुकसान है और न ससारका।

तिलक महाराज अपने जीवन द्वारा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण छोड़ गये हैं। जिनके जीवनमेंसे इतनी सारी बातें ग्रहण करने योग्य हो, जिनकी विरासत इतनी जवर्दस्त हो, उनके सबधमें उक्त प्रश्नके लिए गुंजाइश ही नहीं रहती है। हमारा धर्म तो गुणग्राही बननेका है।

आज हमें जो काम करना है, वह मुर्दार आदमियोंके करनेसे तो हो नहीं सकता। स्वराज्यका काम कठिन है। भारतमें आज एक लहर बह रही है। उसमें खिंचकर हम भाषण करते हैं, धीगाधीगी मचाते हैं, तूफान खड़े करते हैं, मनमाने तौरपर सस्थाओंमें घुस जाते हैं और फिर उन्हें नष्ट करते एवं धारासभाओंमें जाकर भाषण करते हैं। तिलक महाराजके जीवनमें ये बातें हमारे देखनेमें भी नहीं आती। उनके जीवनके जो गुण अनुकरणीय हैं, सो तो मैं ऊपर कह ही चुका हूँ।^१

आप लोगोंने तिलक महाराजकी प्रसिद्ध पुस्तक 'गीता-रहस्य' का नाम सुना होगा। उसमें इतना ज्ञान भरा है कि उसके अनेक पारायण करने चाहिए। मैंने वह यरवदा जेलमें पढी थी। यह बात सही है कि मैं उनकी सभी बातोंसे सहमत नहीं हूँ, पर इसमें कोई सदेह नहीं कि तिलक महाराज बहुत बड़े विद्वान थे और उन्होंने संस्कृत साहित्यका बहुत गहरा अध्ययन किया था। उनकी वह गीता पढ़े मुझे बहुत समय हो गया, इसलिए उनके ठीक शब्द मुझे याद नहीं हैं, पर उनके लिखनेका भावार्थ मैं बताऊंगा। वह बात मुझे बहुत ठीक लगती है।

^१लोकमान्यकी पुण्य तिथिपर गुजरात विद्यापीठमें दिया गया भाषण।

उन्होंने एक जगह कहा है कि अंग्रेजी भाषामें अतरात्माके लिए 'कान्शस' शब्द अच्छा है, परजब यह कहा जाता है कि हम अपने 'कान्शस'के मुताबिक चलते हैं तब इसका सही अर्थ यह नहीं होता कि हम अतरात्माके कहनेपर चलते हैं। हमारे वैदिक धर्मके मुताबिक 'कान्शस' सभीमें (जड-चेतनमें) होता है। पर बहुतोका 'कान्शस' सोया हुआ रहता है, अर्थात् उनकी अतरात्मा मूढ़ अवस्थामें होती है। तो उस अवस्थामें उसे 'कान्शस' कैसे कहा जाय ? हमारे धर्मके अनुसार मनुष्यकी अतरात्मा तब जाग्रत होती है जब यम-नियमादिका पालन और दूसरी भी बहुत-सी चेष्टा आदि करें। तिलक महाराजकी इस बातको मैंने पचा लिया है। शास्त्रकी जो चीज हम पचा सके वही सार्थक है। जैसे वही आहार हमारे लिए सार्थक बनता है जिसका हम रक्त बनाए। तो तिलक महाराजकी इस बातको मैंने पचा लिया है, जिसके जरिये कौन-सी आवाज अतरात्माकी है और कौन-सी नहीं, उसकी परख मैं कर लेता हू। (प्रा प्र., १.६ ४७)

: ७८ :

अब्बास तैयबजी

सबसे पहले सन् १९१५ में मैं अब्बास तैयबजीसे मिला था। जहां कहीं मैं गया, तैयबजी-परिवारका कोई-न-कोई स्त्री-पुरुष मुझसे आकर जरूर मिला। ऐसा मालूम पड़ता है, मानो इस महान और चारों तरफ फैले हुए परिवारने यह नियम ही बना लिया था। हमारे बीच इस अटूट सबबका खास कारण क्या था, यह सिवा इसके मुझे और कुछ मालूम नहीं कि जिस सुप्रतिष्ठित न्यायाधीशके कारण यह वंश प्रसिद्ध है उससे सन् १८९० में मेरी मित्रता हो गई थी, जब कि मैं दक्षिण अफ्रीकासे हिंदुस्तान

वापस आया था और विल्कुल अनजान व्यक्ति था। कुछ लोगोके विचार-मे तो मैं सभवतः एक दुःसाहसी आदमी था, लेकिन वदरुद्दीन तैयबजी और कुछ अन्य व्यक्ति ऐसे भी थे जिनका यह खयाल नहीं था।

मगर मुझे तो वडीदाके अक्वास मियाके विषयपर ही आना चाहिए। जब हम एक-दूसरेसे मिलते और मैं उनके मुहकी ओर देखता तो मुझे स्व० जस्टिस वदरुद्दीन तैयबजीका स्मरण हो आता था। हमारी उस मुलाकातसे हमारे बीच जन्मभरके लिए मित्रताकी गाठ बंध गई। मैंने उन्हें हरिजनोका मित्र ही नहीं, बल्कि उन्हीमे का एक पाया। बहुत दिन पहले गोधरामें, शामको हरिजनोकी बस्तीमे होनेवाले एक अस्पृश्यता-विरोधी सम्मेलनमें जब मैंने उन्हें बुलाया तो दर्शकोको बड़ा आश्चर्य हुआ, लेकिन अक्वास मियाने हरिजनोके काममे उसी उत्साहसे भाग लिया, जैसे कोई कट्टर हिंदू ले सकता है। इतनेपर भी वह कोई साधारण मुसलमान नहीं थे। इस्लामके लिए उन्होने मुक्तहस्तसे दान दिया और कई मुस्लिम सस्थाओको वह सहायता देते रहते थे। मगर हरिजनोको मुसलमान बनाने जैसा कोई विचार उनके मनमे नहीं था। उनके इस्लाममे भूमंडलके तमाम महान् धर्मोके लिए गुजाइश थी। इसीलिए अस्पृश्यता-विरोधी-आंदोलन-मे वह हिंदुओकी ही तरह उत्साह-पूर्वक भाग लेते थे, और मैं जानता हूँ कि जबतक वह जिंदा रहे तब तक उनका यह उत्साह बराबर वैसा ही बना रहा।

असल बात यह है कि उन्होने आधे मन से कभी कोई काम नहीं किया। अक्वास तैयबजी अपने मनमे कोई बात छिपाकर नहीं रखते थे। पंजाबकी पुकारका उन्होने तत्क्षण जवाब दिया। उनकी आयुके और ऐसे व्यक्तिके लिए, जिसने जीवनमे कभी कोई मुसीबत नहीं भेली, जेलोकी सख्तिया बर्दाश्त करना कोई मजाक नहीं था। लेकिन उनकी श्रद्धाने हरएक कठिनाईको विजय कर लिया। हँसते-हँसाते खेडाके किसानोकी तरह ही सादा जीवन व्यतीत करते, उन्हीका-सा खाना खाते और सब

मौसमोंमें उन्हीकी रद्दी-सद्दी गाड़ियोंमें सफर करनेकी क्षमतासे अनेक नौजवानोंको उनके सामने गर्मिन्दा होना पडा । ऐसी असुविधाओंके बारेमें, जिन्हे कि बचाया जा सकता हो, मैंने उनको कभी शिकायत करते हुए नहीं सुना । 'क्यों ?' का प्रश्न करना उनका काम नहीं था, वह तो काम करने और अपनेको भोजन देनेकी बात जानते थे । हालांकि एक समय चीफ जज-की हैसियतसे उन्हें किसीको मृत्यु-दण्ड देने और अपनी आज्ञा-पालन करानेकी सत्ता प्राप्त थी, फिर भी बिना किसी उज्रके अनुशासन पालन करनेकी आश्चर्यजनक क्षमता उन्होंने प्रदर्शित की । वह मनुष्य-जातिके विरले सेवकोंमेंसे थे । भारत-सेवक भी वह इसीलिए थे कि वह मनुष्य-जातिके सेवक थे । ईश्वरको वह दरिद्रनारायणके रूपमें मानते थे । उनका विश्वास था कि परमेश्वर दीन-दुखियोंके बीच ही रहता है । अव्वास भियाका शरीर यद्यपि इस समय कब्रमें विश्राम कर रहा है, पर वह मरे नहीं है । उनका जीवन हम सबके लिए एक स्फूर्ति है, एक प्रेरणा है । (ह० से०, २०-८-३६)

: ७६ :

बदरुद्दीन तैयबजी

मैं श्री मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, मनमोहन घोष, बदरुद्दीन तैयबजी इत्यादिकी याद आपको दिला दगा जिन्होंने अपनी कानूनी लिया-कत विल्कुल मुफ्त वाटी और अपने देशकी बड़ी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की । आप शायद मुझे ताना देगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमें बड़ी लबी-लबी फीस लेते थे । मैं इस तर्कको इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा

और सबसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोंने भारतको आवश्यकता पडनेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई सबध नहीं है। मैंने उनको बडे सतोषसे दीनता-पूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हि० न०, १२-११-३१)

: ८० :

डॉक्टर दत्त

फोरमन क्रिश्चियन कालेजके प्रिंसिपल डॉक्टर दत्तके देहातसे देशका एक कट्टर राष्ट्रवादी क्रिश्चियन उठ गया है। दक्षिण अफ्रीकासे लौटनेके बाद तुरत ही उनको निकटसे जाननेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। वे स्वर्गीय दीनबधु एण्ड्रूजके एक अतरंग मित्र थे। उन्होंने अपने हरएक मित्रसे मेरा परिचय करा दिया था और तभी उन्हें सतोष हो पाया था। सन् १९२४ मे एकता परिषद्के उन चिंताजनक दिनोमे, जब मैं दिल्लीमे २१ दिनका उपवास कर रहा था, उन्होंने रात-दिन लगकर काम किया था। दूसरी गोलमेज परिषद्के समय भी मैंने उन्हें उतनी ही लगनके साथ काम करते देखा था। देशके इतिहासके इस नाजुक अवसरपर उनका देहात दुगुना कष्टदायक होगा। मैं श्रीमती दत्तके साथ अपनी समवेदना प्रकट करता हू। डॉक्टर दत्तके अनेकानेक मित्र इस शोकमे उनके साथ हैं। (ह० से०, २८-६-४२)

: ८१ :

गोपबन्धुदास

प० गोपबन्धुदास, जो पहले एम० एल० सी०, वकील इत्यादि थे, अति त्यागी नेता हैं। उनसे मुझे विदित हुआ है कि ये और उनका दल केवल भात-दालपर गुजारा करते हैं, घी उन्हें शायद ही मिलता है। असहयोग करनेके अनंतर कार्यकर्ताओंने अपनी आवश्यकताएँ एक वारगी कम कर दी हैं, यहातक कि दस रुपये जैसी छोटी रकमपर ये अपना निर्वाह कर लेते हैं। मुझे तनिक भी सदेह नहीं कि ऐसे अदम्य उत्साही कार्यकर्ताओंके द्वारा स्वराज्य इसी वर्षमें प्राप्त हो सकता है। पंडित गोपबन्धुदासकी एक पाठशाला साखी-गोपालमें पुरीसे १२ मील पर है। यह एक कुज पाठशाला है। यह देखने योग्य है। मैंने उसके छात्रों और शिक्षकोंके बीच एक दिन बड़े आनन्दसे काटा। यह खुले मैदानमें शिक्षापद्धतिकी बड़ी अच्छी परीक्षा है। वहाके कुछ छात्र जबर्दस्त कुस्तीबाज हैं। (य० ड० ३४२१)

: ८२ :

देशबन्धु चित्तरंजन दास

फरीदपुरसे लौटकर सोमवारको ये सस्मरण मैं लिख रहा हूँ। देशबन्धुदासके पुराने महलकी छतपर बैठा हुआ हूँ। बगालमें आये आज मुझे चार रोज हुए हैं, परंतु इस महलमें मेरे दिलपर पहलेपहल जो चोट लगी है वह अभीतक मुझे छोट नहीं रही है। मैं

जानता था कि यह मकान देशबन्धुने सार्वजनिक कामके लिए दे दिया है। मुझे पता था कि उनके सिरपर कर्ज था, पर उसके साथ ही मुझे इस बातका भी ज्ञान था कि वे यदि वकालत करे तो थोड़े समयमें यह कर्ज अदा करके अपने महलपर कब्जा कर सकते हैं। पर उन्हें वकालत तो करनी थी नहीं, या यो कहे कि वे तो बिना फीस लिये देशकी वकालत करना चाहते थे। इसलिए महलके सदृश मकानको दे डालनेका ही निश्चय उन्होंने किया और उसका कब्जा ट्रस्टियोंको दे दिया। उनकी इच्छा थी कि इस यात्रामे मैं कलकत्तेमें तो उन्हींके इसी पुराने मकानपर ठहरू। इसीसे यहाँ आ कर रहा हूँ।

परन्तु जानना एक बात है और देखना दूसरी। घरमें प्रवेश करते समय मेरा हृदय रो उठा। आखे छलछला उठी। इस महलके मालिकके बिना और उनकी मालिकीके बिना वह मुझे जेलखाना मालूम हुआ। उसमें रहना मुश्किल हो गया और अभी तक इस भावका प्रभाव मुझपर बना हुआ है।

— मैं जानता हूँ कि यह मोह है। मकानका कब्जा देकर देशबन्धुने अपने सिरसे एक बोझ कम किया है। उस मकानसे, जिसमें ये दपती न जाने कहाँ खो जाय, उन्हें क्या लाभ ? यदि वे मनमें लावे तो भोपडीको राजमहल बना सकते हैं। दोनोंने स्वेच्छासे उसे त्यागा है। इसपर खेद किसलिए ? यह तो हुई ज्ञानकी बात। यह ज्ञान यदि मुझे न हो तो मुझे आजसे ही महल बनानेका उद्यम शुरू करना पड़े।

परन्तु देहाध्यास कही जाता है ? ससार कही दासकी तरह करता है ? दुनिया तो यदि महल हो तो उसे चाहती है। पर इस पुरुषने उसका त्याग कर दिया। धन्य है उसे। मेरे आसू प्रेमके हैं। चोट भी यह प्रेम ही लगाता है। और स्वार्थ क्यों न हो ? यदि देशबन्धुके साथ मेरा कुछ भी सवध न होता तो यह आघात न पहुँचता। बहुतेरे महल देखे हैं, जिनके मालिक उन्हें छोड़कर दुनियासे ही चले गये हैं। परन्तु उनमें प्रवेश करते

हुए आखोसे आसू नहीं गिरे । इसलिए यह रोना स्वार्थ-मूलक भी है । चित्तरजन दासने महलका परित्याग भले ही किया हो, पर उनकी सेवाकी कीमत बढ़ गई है ।

परिपद्मे देगवुका गरीर बहुत ही दुर्बल दिखाई दिया । आवाज वैठ गई है । कमजोरी खूब है । सच कहे तो अभी तवीयत ऐसे कामोके योग्य नहीं हो पाई है । अभी तो डाक्टरोंने उन्हे सलाह दी है कि वे शक्ति प्राप्त करनेके लिए या तो यूरोप या दार्जिलिंग जावे, पर वहा तो वे मज-बूरीकी अवस्थामे ही जाना चाहते हैं ।

देशबुका भाषण सक्षिप्त और दिलचस्प था । प्रत्येक वाक्यमें अहिंसाकी ध्वनि थी । उन्होंने उस भाषणमे साफ तौरपर बताया कि हिंदुस्तानका उद्धार अहिंसामय संग्रामसे ही हो सकता है । इस भाषणके नीचे यदि कोई मुँहसे सही करनेके लिए कहे तो मुँहे शायद ही कोई वाक्य या शब्द बदलनेकी जरूरत हो ।

उनके भाषणके अनुसार ही प्रस्तावोका होना स्वाभाविक था । इसमे विषय-सम्बन्धितमे खामा भगडा भी हुआ । अतमे देगवुको त्याग-पत्र देना कहने तककी नीवत आगई थी । लेकिन आखिर उनके प्रभावकी जय हुई और परिपद्मे महत्वपूर्ण प्रस्ताव निर्विघ्न पास हुए ।

जब हृदय चोटसे व्यथित होता है तब कलमकी गति कुठित हो जाती है । मैं यहा इस तरह शोकमय वायुमंडलमे हू कि तार द्वारा पाठकोके के लिए अधिक कुछ भेजनेमे असमर्थ हू । अभी दार्जिलिंगमें उस महान् देशभक्तके साथ ५ रोज तक मेरा समागम रहा । उसने हम एक दूसरेको पहलेसे अधिक एक-दूसरेके नजदीक कर दिया । मैंने केवल यही अनुभव नहीं किया कि देशबन्धु कितने महान् थे, बल्कि यह भी अनुभव किया कि वे कितने भले थे । भारतका एक लाल चला गया । हमें चाहिए कि हम स्वराज्य प्राप्त करके उसे पुन प्राप्त करें । (हि० न०, १८ ६ २५)

आप लोगोंने आचार्य रायसे सुन लिया कि हम लोगोपर कैसा भीषण प्रहार हुआ है। परंतु मैं जानता हूँ कि अगर हम सच्चे देशसेवक हैं तो कितना ही बड़ा वज्र-प्रहार हो, हमारे दिलको नहीं तोड़ सकता। आज सबेरे यह शोकसमाचार सुना तो मेरे सामने दो परस्पर विरुद्ध कर्तव्य आ खड़े हुए। मेरा कर्तव्य था कि पहले जो गाड़ी मिले उसीसे मैं कलकत्ते चला जाता; पर मेरा यह भी कर्तव्य था कि आपके निर्धारित कार्यक्रम-को पूरा करूँ। मेरी सेवावृत्तिने यही प्रेरणा की कि यहाँका कार्य पूरा किया जाय। यद्यपि मैं दूर-दूरसे आये हुए लोगोसे मिलनेके लिए ठहर गया हूँ तथापि उनके सामने महासभाके कार्यकी विवेचना न करके स्वर्गीय देशबन्धुका ही स्मरण करूँगा। मुझे विश्वास है कि कलकत्ता दौड़ जानेकी अपेक्षा यहाँका काम पूरा करनेसे उनकी आत्मा अधिक प्रसन्न होगी।

देशबन्धु दास एक महान् पुरुष थे।^१ मैं गत छ वर्षोंसे उन्हें जानता हूँ। कुछ ही दिन पहले जब मैं दार्जिलिंगसे उनसे विदा हुआ था तब मैंने एक मित्रसे कहा था कि जितनी ही घनिष्टता उनसे बढ़ती है उतना ही उनके प्रति मेरा प्रेम बढ़ता जाता है। मैंने दार्जिलिंगमें देखा कि उनके मनमें भारतकी भलाईके सिवा और कोई विचार न था। वे भारतकी स्वाधीनताका ही सपना देखते थे, उसीका विचार करते थे और उसीकी बातचीत करते थे, और कुछ नहीं। दार्जिलिंगसे विदा होते समय भी उन्होंने मुझसे कहा था कि आप विछुड़े हुए दिलोको एक करनेके लिए बगालमें अधिक समय तक ठहरिए, ताकि सब लोगोकी शक्ति एक कार्यके लिए युक्त हो जाय। मेरी बगाल-यात्रामें उनसे मतभेद रखनेवालोंने भी बिना हिचकिचाहटके इस बातको स्वीकार किया है कि बगालमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो उनका स्थान ले सके।

^१ इतना कहते-कहते गांधीजीकी आखोंमें आसूँ प्राणमें और एक-दो मिनट तक कुछ बोल न सके।

वे निर्भीक थे, वीर थे । बगालमें नवयुवकोंके प्रति उनका निस्सीम स्नेह था । किसी नवयुवकने मुझे ऐसा नहीं कहा कि देशबन्धुसे सहायता मागने पर कभी किसीकी प्रार्थना खाली गई । उन्होंने लाखों रुपया पैदा किया और लाखों रुपया बगालके नवयुवकोंमें बांट दिया । उनका त्याग अनुपम था, और उनकी महान् बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञताकी बात मैं क्या कह सकता हूँ । दार्जिलिंगमें उन्होंने मुझमें अनेक बार कहा कि भारतकी स्वाधीनता अहिंसा और सत्यपर निर्भर है ।

भारतके हिंदुओं और मुसलमानोंको जानना चाहिए कि उनका हृदय हिंदू और मुसलमानका भेद नहीं जानता था । मैं भारतके मत्र अग्नेजोसे कहता हूँ कि उनके प्रति उनके मनमें दुरा भाव न था । उनकी अपनी मातृभूमिके प्रति यही प्रतिज्ञा थी—“मैं जीऊंगा तो स्वराज्यके लिए और मरूंगा तो स्वराज्यके लिए ।” हम उनकी स्मृतिको कायम रखनेके लिए क्या करें ? आसू वहाना सहज है, परन्तु आसू हमारी या उनके स्वजनो-परिजनोकी सहायता नहीं कर सकता । अगर हममेंमें हर कोई हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई उस कामको करनेकी प्रतिज्ञा करे जिसमें वे रहते थे तो समझा जायगा कि हमने कुछ किया । हम सब ईश्वरको मानते हैं । हमें जानना चाहिए कि शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य है । देशबन्धुका शरीर नष्ट हो गया, परन्तु उनकी आत्मा कभी नष्ट न होगी । न केवल उनकी आत्मा, बल्कि उनका नाम भी—जिन्होंने इतनी बड़ी सेवा और त्याग किया है—अमर रहेगा और जो कोई जवान या बूढ़ा उनके आदर्शपर जरा भी चलेगा वह उनकी यादगार बनाये रखनेमें मदद देगा । हम सबमें उनके जैसी बुद्धिमत्ता नहीं है, पर हम उस भावको अपनेमें ला सकते हैं जिससे वे देशकी सेवा करते थे ।

देशबन्धुने पटना और दार्जिलिंगमें चरखा कातनेकी कोशिश की थी । मैंने उनको चरखाका पाठ पढ़ाया था और उन्होंने मुझसे वादा किया था कि मैं कातना सीखनेकी कोशिश करूंगा और जबतक शरीर रहेगा तबतक

कातूंगा। उन्होंने अपने दार्जिलिंगके निवास-स्थानको 'चरखाक्लब' बना दिया था। उनकी नेक पत्नीने वायदा किया कि वीमारीकी हालत छोड़कर मैं रोज आध घंटे तक स्वयं चरखा चलाऊंगी और उनकी लडकी, बहन और बहनकी लडकी तो बराबर ही चरखा कातती थी।

देशबधु मुझसे अक्सर कहा करते—“मैं समझता हूँ कि धारासभामें जाना जरूरी है मगर चरखा कातना भी उतना ही जरूरी है। न सिर्फ जरूरी है, बल्कि बिना चरखेके धारासभाके कामको कारगर बनाना असंभव है।” उन्होंने जबसे खादीकी पोशाक पहनना शुरू किया तबसे मरनेके दिनतक पहनते आए।

मेरे लिए यह कहनेकी बात नहीं है कि उन्होंने हिंदू-मुसलमानोंमें मेल करनेके लिए कितना बड़ा काम किया था। अच्छीतोसे वे कितना प्रेम रखते थे। इसके विषयमें सिर्फ वही एक बात कहूंगा जो मैंने बारी-सालमें कल रातको एक नाम-शूद्र नेतासे सुनी थी। उस नेताने कहा—“मुझे पहली आर्थिक सहायता देशबधुने दी और पीछे डाक्टर रायने।” आप सब लोग धारासभाओंमें नहीं जा सकते। परंतु उन तीन कामोंको कर सकते हैं जो उनको प्रिय थे। मैं अपनेको भारतका भक्तिपूर्वक सेवा करनेवाला मानता हूँ। मैं घोषणा करता हूँ कि मैं अपने सिद्धांतपर अटल रहकर, आगेसे सभव हुआ तो, देशबधु दासके अनुयायियोंको उनके धारासभाके कार्यमें पहलेसे अधिक सहायता दूंगा। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह उनके कामको हानि पहुंचानेवाला काम करनेसे मुझे बचाये रखे। हमारा धारासभा-संबंधी मतभेद बना हुआ था और है। फिर भी हमारा हृदय एक हो गया था। राजनैतिक साधनोंमें सदा मतभेद बना रहेगा। परंतु उसके कारण हम लोगोंको एक-दूसरेसे अलग न हो जाना चाहिए, या परस्पर शत्रु न बन जाना चाहिए। जो स्वदेश-प्रेम मुझे एक कामके लिए प्रेरित करता था वही उनको कुछ दूसरा काम करनेको उत्साहित करता था। और ऐसा पवित्र मत-भेद देशके काममें बाधक

नहीं हो सकता। साधन-सबकी मतभेद नहीं, बल्कि हृदयकी मलिनता ही अनर्थकारी है। दार्जिलिंगमें रहते समय मैं देखता था कि देशबन्धुके दिलमें अपने राजनैतिक विरोधियोंके प्रति नम्रता प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। मैं उन पवित्र बातोंका वर्णन यहां न करूंगा। देशबन्धु देश-सेवकोंमें एक रत्न थे। उनकी सेवा और त्याग बेजोड़ था। ईश्वर करे, उनकी याद हमें सदा बनी रहे और उनका आदर्श हमारे सदुद्योगमें सार्थक हो। हमारा मार्ग लंबा और दुर्गम है। हमको उसमें आत्मनिर्भरताके सिवा और कोई सहारा नहीं देगा। स्वावलंबन ही देशबन्धुका मुख्य मूत्र था। वह हमें सदा अनुप्राणित करता रहे। ईश्वर उनकी आत्माको शांति दे। (हि० न०, २५ ६ २५)

मनुष्योंमें से एक दिग्गज पुरुष उठ गया। बगाल आज एक विधवाकी तरह हो गया है। कुछ सप्ताह पहले देशबन्धुकी समालोचना करनेवाले एक सज्जनने कहा था, “यद्यपि मैं उनके दोष बताता हूँ, फिर भी यह सच है, मैं आपके सामने मानता हूँ कि उनकी जगह पर बैठने लायक दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है।” जबकि मैंने खुलनाकी सभामें, जहां कि मैंने पहले-पहल यह दिल दहलानेवाली दुर्वांता सुनी, इस प्रसंगका जिक्र किया—आचार्य रायने छूटते ही कहा—“यह बिल्कुल सच है। यदि मैं यह कह सकूँ कि रवीन्द्रनाथके बाद कविका स्थान कौन लेगा तो यह भी कह सकूँगा कि देशबन्धुके बाद नेता का स्थान कौन ले सकता है। बगालमें कोई आदमी ऐसा नहीं है जो देशबन्धुके समीप भी कहीं पहुंच पाता हो।” वे कई लड़ाइयोंके विजयी वीर थे। उनकी उदारता एक दोषकी सीमातक बढ़ी हुई थी। बकालतमें उन्होंने लाखों रुपये पैदा किये, पर उन्हें जोड़कर वे कभी

‘देशबन्धुके अवसानका शोक-समाचार मिलनेके बाद खुलनामें दिया गया भाषण।

धनी नहीं बने, यहा तक कि उन्होंने अपना पैतृक महल भी दे डाला ।

१९१९ मे, पंजाब महासभा जाच समितिके सिलसिलेमें, उनसे पहले-पहल मेरा प्रत्यक्ष परिचय हुआ । मैं उनके प्रति सशय और भयके भाव लेकर उनसे मिलने गया था । दूरसे ही मैंने उनकी धुआधार वकालत और उससे भी अधिक धुआधार वक्तृत्वका हाल सुना था । वे अपनी मोटर-कार लेकर सपत्नीक, सपरिवार आये थे और एक राजाकी शान-वान-के साथ रहते थे । मेरा पहला अनुभव तो कुछ अच्छा न रहा । हम हटरकमिटीकी तहकीकातमे गवाहिया दिलानेके प्रश्न पर विचार करनेके लिए बैठे थे । मैंने उनके अदर तमाम कानूनी वारीकियोंको तथा गवाहको जिरहमे तोड़कर फौजी कानूनके राज्यकी, बहुतेरी गरारतोकी कलई खोलनेकी, वकीलोचित तीव्र इच्छा देखी । मेरा प्रयोजन कुछ भिन्न था । मैंने अपना कथन उन्हें सुनाया । दूसरी मुलाकातमे मेरे दिलको तसल्ली हुई और मेरा तमाम डर दूर हो गया । उनको मैंने जो कुछ कहा उसको उन्होंने उत्सुकताके साथ सुना । भारतवर्षमे पहली ही बार बहुतेरे देश-सेवकोंके घनिष्ठ समागममे आनेका अवसर मुझे मिला था । तबतक मैंने महासभाके किसी काममे वैसे कोई हिस्सा न लिया था । वे मुझे जानते थे—एक दक्षिण अफ्रीकाका योद्धा है । पर मेरे तमाम साथियोंने मुझे अपने घरका-सा बना लिया, और देगके इस विख्यात सेवकका नवर इसमे सबसे आगे था । मैं उस समितिका अध्यक्ष माना जाता था । “जिन बातोमे हमारा मतभेद होगा उनमे मैं अपना कथन आपके सामने उपस्थित कर दूंगा । फिर जो फैसला आप करेंगे उसे मैं मान लूंगा । इसका यकीन मैं आपको दिलाता हूँ ।” उनके इस स्वयस्फूर्त आश्वासनके पहले ही हममे इतनी घनिष्ठता हो गई थी कि मुझे अपने मनका सग्य उनपर प्रकट करनेका साहस हो गया । फिर जब उनकी ओरसे यह आश्वासन मिल गया तब मुझे ऐसे मित्रनिष्ठ साथीपर अभिमान तो

हुआ, किंतु माय ही कुछ सकोच भी मालूम हुआ, क्योंकि मैं जानता था कि मैं तो भारतकी राजनीतिमें एक नौमिस्त्रिया था और गायद ही ऐसे पूर्ण विध्वामका अधिकारी था। परन्तु तत्रनिष्ठा छोटे-बड़ेके भेदको नहीं जानती। वह राजा जो कि तत्र-निष्ठाके मूल्यको जानता है, अपने मेवक की भी बात, उस मामलेमें मानता है, जिसका पूरा भाग उसपर छोड़ देता है। इस जगह मेरा स्थान एक मेवकके जैसा था। और मैं इस बातका उल्लेख कृतज्ञता और अभिमानके साथ करता हूँ कि मुझे जितने मित्र-निष्ठ साथी वहाँ मिले थे, उनमें कोई इतना मित्रनिष्ठ न था जितना चित्तरजन दास थे।

अमृतसर-धारामभामें तत्रनिष्ठाका अधिकार मुझे नहीं मिल सकता था। वहाँ हम परस्पर योद्धा थे, हर एकको अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार राष्ट्रहित-सबधी, अपने ट्रस्टकी रक्षा करनी थी। जहाँ तक अथवा अपने पक्षकी आवश्यकताके अलावा किसीकी बात मान लेनेका मवाल न था। महामभाके सत्रपर पहली लड़ाई लड़ना मेरे लिए एक पूरे आनंद और तृप्ति-का विषय था। बड़े सभ्य, उम्मी तरह न झुकनेवाले महान् मालवीयजी बलाबलको सामने रखनेकी कोशिश कर रहे थे। कभी एकके पाम जाने थे, कभी दूसरेके पाम। महासभाके अध्यक्ष पंडित मोतीलालजीने मोचा कि खेल खतम हो गया। मेरी तां लोकमान्य और देवबन्धुसे खामी जम रही थी। सुधार-सबधी प्रस्तावका एक ही सूत्र उन दोनोंने बना रखा था। हम एक-दूसरेको समझा देना चाहते थे, पर कोई किसीका कायल न होता था। बहुतोंने तो मोचा था कि अब कोई चारा नहीं था और इसका अंत बुरा रहेगा। अलीभाई, जिन्हें मैं जानता था और चाहता था, पर आजकी तरह जिनसे मेरा परिचय न था, देवबन्धुके प्रस्तावके पक्षमें मुझे समझाने लगे। मुहम्मद अलीने अपनी लुभावनी नम्रताने कहा, “जाच-समितिमें आपने जो महान् कार्य किया है, उसे नष्ट न कीजिए।” पर वह मुझे न पटा सके। तब जयरामदास, वह ठंडे दिमागवाला मित्री

आया, और उसने एक चिट्ठे में समझौते की सूचना और उसकी हिमायत लिखकर मुझे पहुँचाई। मैं शायद ही उन्हें जानता था। पर उनकी आखों और चेहरे में कोई ऐसी बात थी जिसने मुझे लुभा लिया। मैंने उस सूचना को पढ़ा। वह अच्छी थी। मैंने उसे देशबन्धु को दिया। उन्होंने जवाब दिया,—“ठीक है, वशतः कि हमारे पक्ष के लोग उसे मान लें।” यहाँ ध्यान दीजिए उनकी घनिष्ठता पर। अपने पक्ष के लोगों का समाधान किये बिना वे नहीं रहना चाहते थे। यही एक रहस्य है लोगों के हृदय पर उनके आश्चर्यजनक अधिकार का। वह सब लोगों को पसंद हुई। लोकमान्य अपनी गरुड़ के सदृश तीखी आँखों से वहाँ जो कुछ हो रहा था सब देख रहे थे। व्याख्यान-मंच से पड़ित मालवीयजी की गंगा के सदृश बागधारा वह रही थी। उनकी एक आँख सभामंच की ओर देख रही थी जहाँ कि हम साधारण लोग बैठकर राष्ट्र के भाग्य का निर्णय कर रहे थे। लोकमान्य ने कहा—“मेरे देखने की जरूरत नहीं। यदि दासने उसे पसंद कर लिया है तो मेरे लिए वह काफी है।” मालवीयजी ने उसे वहाँ से सुना, कागज मेरे हाथ से छीन लिया और धीरे करतल-बनिमि घोषित कर दिया कि समझौता हो गया। मैंने इस घटना का सविस्तर वर्णन इस लिए किया है कि उसमें देशबन्धु की महत्ता और निर्विवाद नेतृत्व, कार्य-विषयक दृढ़ता, निर्णय-सबधी समझदारी और पक्षनिष्ठा के कारणों का सग्रह आ जाता है।

अब और आगे बढ़िए। हम जूहू, अहमदाबाद, दिल्ली और दार्जिलिंग पहुँचते हैं। जूहू में वे और पड़ित मोतीलालजी मुझे अपने पक्ष में मिलाने के लिए आये। वे दोनों जोड़वा भाई हो गये थे। हमारे दृष्टिबिंदु-अलग-अलग थे। पर उन्हें यह गवारा न होता था कि मेरे साथ मतभेद रहे। यदि उनके बसका होता तो वे ५० मील चले जाते जहाँ मैं सिर्फ २५ मील चाहता, परंतु वे अपने एक अत्यंत प्रिय मित्र के सामने भी एक इंच न झुकना चाहते थे, जहाँ कि देशहित सकट में था। हमने एक प्रकार का समझौता कर लिया। हमारा मन तो न भरा, पर हम निराश

न हुए । हम एक-दूसरेपर विजय प्राप्त करनेके लिए तुने हुए थे । फिर हम अहमदावादमे मिले । देवबन्धु अपने पूरे रगमे थे और एक चतुर खिलाडीकी तरह सब रग-ढग देखते थे । उन्होंने मुझे एक गानकी शिकस्त दी । उनके जैसे मित्रके हाथों ऐसी कितनी शिकस्त मैं न खाऊंगा । पर अफमोस ! वह शरीर अब दुनियामे नहीं रहा ! कोई यह खयाल न करे कि साहावाले प्रस्तावके कारण हम एक-दूसरेके जन्म हो गये थे । हम एक-दूसरेको गलतीपर समझ रहे थे, पर वह मतभेद स्नेहियोंका मतभेद था । वफादार पति और पत्नी अपने पवित्र मतभेदोंके दृश्योंको याद करे—किरु तरह वे अपने मतभेदोंके कारण कष्ट सहते हैं, जिसमे कि उनके पुनर्मिलनका सुख अति बढ जाय । यही हमारी हालत थी । सो हमे फिर दिल्लीमे उम भीषण जवडेवाले शिष्ट पंडित और नम्र दासमे, जिनका कि बाहरी स्वरूप किमी सरसरी तौरपर देखनेवालेको अशिष्ट मालूम हो सकता है, मिलना होगा । मेरे उनके प्रस्तावका ढाचा बहा तैयार हुआ और पसंद हुआ । वह एक अटूट प्रेम-वचन था जिसपर कि अब एक दलने उनकी मृत्युकी मुहर लगा दी है ।

वे अकसर आध्यात्मिकताकी बातें करते थे और कहते थे कि धर्मके विषयमे आपका मेरा कोई मतभेद नहीं है । पर यद्यपि उन्होंने कहा नहीं तथापि हो सकता है कि उनका भाव यह रहा हो कि मैं इतना काव्यहीन हू कि मुझे हमारे विश्वासोंकी एकात्मता नहीं दिखाई देती । मैं मानना हू कि उनका खयाल ठीक था । उन बहुमूल्य पाच दिनोंमे मैंने उनका हर कार्य धर्म-मय देखा और न केवल वे महान् थे, बल्कि नेक भी थे, उनकी नेकी बढती जा रही थी । पर इन पाच दिनोंके बहुमूल्य अनुभवोंको मुझे किसी अगले दिनके लिए रख छोड़ना चाहिए । जबकि क्रूर दैवने लोकमान्यको हमसे छीन लिया तब मैं अकेला असहाय रह गया । अभीतक मेरी वह चोट गई नहीं है, क्योंकि अबतक मुझे उनके प्रिय शिष्योंकी आराधना करनी पडती है ।

पर देशबधुके वियोगने तो मुझे और भी बुरी हालतमे छोड़ दिया है। जब लोकमान्य हमसे जुदा हुए थे, देश आशा और उमगसे भरा हुआ था, हिंदू-मुसलमान हमेशाके लिए एक होते हुए दिखाई दिये थे, हम युद्धका शख फूकनेकी तैयारीमे थे। पर अब ? (हि० न० २५ ६ २५)

कलकत्तेने कल दिखला दिया कि देशबधुदासका बगालपर, नहीं सारे भारतवर्षके हृदयपर, कितना अधिकार था। कलकत्ता, बर्बईकी तरह पचरंगी प्रजाका नगर है। इसमे हर प्रातःके लोग वसते हैं और इन तमाम प्रातःके लोग, बगालियोकी तरह ही अपने दिलसे उस जुलूसमे योग दे रहे थे। देशके कोने-कोनेसे तारोकी जो झड़ी लग रही है उससे भी यही बात और जोरके साथ प्रकट होती है कि सारे देशभरमे वे कितने लोकप्रिय थे।

जिन लोगोका हृदय कृतज्ञतासे भर रहा है, उनके सबबमे इससे भिन्न अनुभव नहीं हो सकता था। और देशबधु इस सारे कृतज्ञताज्ञापनके पात्र भी थे। उनका त्याग महान था। उनकी उदारताकी सीमा नहीं थी। उनकी मुट्ठी सदा सबके लिए खुली रहती थी। दान देनेमे वे कभी आगा-पीछा न सोचते थे। उस दिन जबकि मैंने बड़े मीठे भावसे कहा, “अच्छा होता, आप दान देनेमे अधिक विचारसे काम लेते।” उन्होंने तुरत उत्तर दिया, “पर मैं नहीं समझता कि अपने अविचारके कारण मेरी कुछ हानि हुई है।” अमीर और गरीब सबके लिए उनका रसोईघर खुला था। उनका हृदय हरएककी मुसीबतके समय उसके पास दौड़ जाता था। सारे बगालमे ऐसा कौन नवयुवक है जो किसी-न-किसी रूपमे देशबधुका कृतज्ञ नहीं है ? उनकी बेजोड़ कानूनी प्रतिभा भी सदा गरीबोकी सेवाके लिए हाजिर रहती थी। मुझे मालूम हुआ है कि उन्होंने यदि, सबकी नहीं तो, बहुतेरे राजनैतिक कैदियोकी पैरवी बिना एक कौड़ी लिये की है। पजाबकी जाचके समय जब वे पजाब गये थे तो अपना सारा खर्च अपनी जेबसे किया था। उन दिनों अपने साथ वे एक राजाकी तरह लवाजमा

ले गये थे । उन्होंने मुझसे कहा था कि पञ्जावकी उस यात्रामे उनके ५०,००० रुपये खर्च हुए थे । जो उनके द्वारपर आता था उसीके लिए उनकी उदारताका हाथ आगे बढ़ जाता था । उनके इसी गुणनें उन्हें हजारों नवयुवकोंके दिलका राजा बना दिया था ।

जैसे ही वे उदार थे वैसे ही निर्भीक भी थे । अमृतसरमे उनकी धुआधार वक्तृताओंने मेरा दम खुशक कर दिया था । वे अपने देशकी मुक्ति तुरत चाहते थे । वे एक विशेषणको हटाने या बदलनेके लिए तैयार न थे । इसलिए नहीं कि वे जिद्दी थे, बल्कि इसलिए कि वे अपने देशको बहुत चाहते थे । उन्होंने विशाल शक्तियोंको अपने कब्जेमें रक्खा । अपने अदम्य उत्साह और अव्यवसायके द्वारा उन्होंने अपने दलको प्रबल बनाया । परन्तु यह भीषण शक्तिप्रवाह उनकी जान ले बैठा । उनका यह बलिदान स्वेच्छापूर्वक था । वह उच्च था । उदात्त था ।

फरीदपुरमे तो उनकी विजय हुई । उनके बहाके उद्गार उनकी अत्यन्त समझदारी और राजनीतिज्ञताके नमूना थे । वे विचार-पूर्ण और असदिग्ध थे और (जैसा कि मुझे उन्होंने कहा था) उनके अपने लिए तो उन्होंने अहिंसाको एकमात्र नीति और इसलिए भारतवर्षका राजनैतिक धर्म (Creed) स्वीकार किया था ।

प० मोतीलाल नेहरू तथा महाराष्ट्रके तन्त्रनिष्ठ सैनिकोंमे मेल करके उन्होंने शून्य-से स्वराज्य-दलको एक महान् और वर्धमान् दल बना लिया और ऐसा करके उन्होंने अपने निश्चयबल, मौलिकता साधन-बहुलता और किसी वस्तुको अच्छा मान लेनेके बाद फिर परिणामकी चिन्ता न करनेके, गुणोंका परिचय दिया । और आज हम स्वराज्य-दलको एक एकत्र और सुतन्त्रनिष्ठ सगठनके रूपमे देखते हैं । धारासभा-प्रवेशके सबबमे मेरा मतभेद था और है । पर मैंने सरकारको तग करने और लगातार उसकी स्थितिको विषम बनानेके सबबमे धारासभाकी उपयोगितासे कभी इन्कार नहीं किया । धारासभामे इस दलने जो काम किया उसकी महत्तासे

कोई इन्कार नहीं कर सकता और उसका श्रेय मुख्यतः देशबन्धुको ही है। मैंने अपनी आखें खुली रखकर उनके साथ प्रस्ताव किया था। तबसे मैंने जो कुछ हो सकी उस दलकी सहायता की है। अब उनके स्वर्गवासके कारण, उसके नेताके चले जानेके बाद, मेरा यह दुहरा कर्तव्य हो गया है कि उस दलके साथ रहूँ। यदि मैं उसकी सहायता न कर पाया तो मैं उसकी प्रगतिमें तो किसी तरह बाधक न होऊँगा।

मैं फिर उनके फरीदपुरवाले भाषणपर आता हूँ। स्थानापन्न बड़े लाट साहबने श्रीमती वासन्ती देवी दासके नाम जो शोक-सदेश भेजा है उसके गुणको राष्ट्र मानेगा। एंग्लो-इंडियन पत्रोंने स्वर्गीय देशबन्धुकी स्मृतिमें जो उनका यशोगान किया है उसका उल्लेख मैं कृतज्ञतापूर्वक करता हूँ। भालूम होता है कि फरीदपुरवाले भाषणकी पारदर्शनी निर्मल-हृदयताने अंग्रेजोंके दिलपर अच्छा असर किया है। मुझे इस बातकी चिन्ता लग रही है कि कहीं उनके स्वर्गवासके कारण इस शिष्टाचार प्रदर्शनके साथ ही उसका अंत न हो जाय। फरीदपुरवाले भाषणके मूलमें एक महान् उद्देश्य था। एंग्लो-इंडियन मित्रोंने चाहा था कि देशबन्धु अपनी स्थितिको स्पष्ट कर दे और अपनी तरफसे आगे कदम बढ़ावे। इसीके उत्तरमें उस महान् देशभक्तने वह भाषण किया था और अपनी स्थिति स्पष्ट की थी। पर क्रूर कालने उस उद्गारके कर्ताको हमसे छीन लिया। परन्तु उन अंग्रेजों को, जो अब भी देशबन्धुकी नीयतपर शक करते हो, मैं यकीन दिलाना चाहता हूँ कि जबतक मैं दार्जिलिंगमें रहा, मेरे दिल पर जो बात सबसे अधिक जोरके साथ अंकित हुई वह थी, देशबन्धुके उन वचनोंके निर्मल भाव। क्या इस गौरवमय अन्तका सदुपयोग हमारे घावोंको भरने और अविश्वासको मिटानेमें किया जा सकता है? मैं एक मामूली बात सुभाता हूँ। सरकार देशबन्धु चित्तरजन दासकी स्मृतिमें, जो कि अब हमारे साथ अपने पक्षकी पैरवी करनेके लिए दुनियामें नहीं है, उन तमाम राजनैतिक कैदियोंको छोड़ दे, जिनके सबधमें

उनका कहना था कि वे निर्दोष हैं। मैं निरपराधताकी विना पर उन्हें छोड़नेको नहीं कहता। हो सकता है कि सरकारके पास उनके अपराधके लिए अच्छे-मे-अच्छे सबूत हों। मैं तो सिर्फ उस मृत-आत्माके गुणकी स्मृतिमें और विना पहलेमें कोई बुरा खयाल बनाये, उन्हें छोड़ देनेके लिए कहता हूँ। यदि सरकार भारतीय लोक-मतके अनुरजनके लिए कुछ भी करना चाहती है तो इमते बटकर अनुकूल अवसर न मिलेगा और राजनैतिक कैदियोंके छुटकारेमें बटकर अनुकूल वायुमटल बनानेका अच्छा मगलाचरण न होगा। मैं प्रायः सारे बगालका दौरा कर चुका हूँ। मैंने देखा कि इस बातमें लोगोंके दिलमें चोट पहुँची है—इनमें सभी लोग आवश्यक रूपमें स्वराजी नहीं हैं। परमात्मा करे वह आग जिनमें कि कल देशबन्धुके नश्वर शरीरको भरम कर डाला, हमारे नरवर अश्विन्वाम, सदेह और डरको भस्ममात्कर डाले। फिर यदि सरकार चाहे तो वह भारतवासियोंकी मागकी पूर्तिके सर्वोत्तम उपायोपर विचार करनेके लिए एक सम्मेलन कर सकती है।

यदि सरकार अपने जिम्मेका काम करेगी तो हमें भी अपनी तरफका काम करना होगा। हमें यह दिखा देना होगा कि हमारी नीका एक आदमीके भरोसे पर नहीं चल रही है। श्री विन्सेट चर्चिलके शब्दोंमें, जो कि उन्होंने युद्धके समयमें कहे—“हमें यह कहनेमें समर्थ होना चाहिए, सब काम ज्यो-जा-त्यो चलता रहे।” स्वराज्य-दलकी पुनर्रचना तुरत होनी चाहिए। पंजाबके हिंदू और मुसलमान भी इस दैवी कोप-प्रहारको देखकर अपने लडाई-भगडे भूलते हुए दिखाई देते हैं। क्या दोनों पक्षके लोग इतनी दृढ़ता और समझदारीका परिचय देंगे कि अपने लडाई-भगडोका अंत कर लें? देशबन्धु हिंदू-मुस्लिम-एकताके प्रेमी थे। उसपर उनका विश्वास भी था। उन्होंने अत्यन्त विकट परिस्थितिमें हिंदू और मुसलमानोंको एक बनाए रखा। क्या

उनकी चिताग्नि हमारे अनैक्यको न जला सकेगी ? शायद इसके पहले-तमाम दलोके एक सस्थाके अतर्गत होनेकी आवश्यकता हो । देशबधु इसके लिए उत्सुक थे । वे अपने प्रतिपक्षियोंके लिए बहुत बुरा-भला कहा करते थे । परंतु दार्जिलिंगमे मैंने देशबधुके मुहसे उनके किसी भी राज-नैतिक प्रतिपक्षीके प्रति एक भी कठोर शब्द निकलते न देखा । उन्होंने मुझसे कहा कि सब दलोके एक करनेमे आप भरसक सहायता दीजिए । सो अब हम शिक्षित भारतवासियोंका कर्तव्य है कि देशबधुके इस विचारको कार्यरूपमे परिणत करे और उनके जीवनकी इस एक महाकाक्षाको पूर्ण करे । यदि हम फिलहाल स्वराज्यकी सीढीपर ठेठ ऊपरतक न पहुच सके तो तुरत उसकी कुछ सीढिया तो चढ़े सही । तभी हम अपने हृदय-स्तलसे पुकार सकते हैं—“देशबधु स्वर्गवासी हुए, देशबधु चिरायु रहे ।” (हि० न०, २५ ६.२५)

इस अकमे लिखनेके लिए और क्या बात लिखना सूझेगी ?

पहाड-जैसे देशबधु उठ गये, सो अखबार उन्हीकी बातोंसे भरे हुए हैं । देशबधुकी छोटी-से-छोटी बात अखबारवाले बड़ी उत्सुकताके साथ छाप रहे हैं । ‘सर्वट’ ने विशेष अक निकाला है । ‘वसुमती’ ‘बंगालका सबसे बड़ा समाचारपत्र’ है । यह विशेष अककी तैयारी कर रहा है । हजारसे ज्यादा शोक-सूचक तार श्रीमती वासुदेवी दासके पास आये हैं और सुदूर देशोंसे आ ही रहे हैं । जगह-जगह सभाएं हुई हैं । कोई भी गांव, जहां महासभाका झंडा फहराता हो, शायद ही खाली होगा, जहां सभा न हुई हो ।

कलकत्ता १८ ता० को पागल हो गया था । अक-शास्त्री कहते हैं कि २ लाखसे कम आदमी इकट्ठे न हुए थे । रास्तोपर खड़े, तारके खम्भों-पर चढ़े, ट्रामकी छतपर खड़े, झरोखोमे राह देखते हुए बैठे स्त्री-पुरुष इससे जुदा हैं ।

साथ भजन-कीर्तन तो था ही । पुष्पोंकी वृष्टि हो रही थी । शव

खुला हुआ था, परतु उसपर फूलोके हार का पहाड बिछ गया था ।

रथीके जुलूमके आगे स्वयंसेवक फुलवाडी लेकर चल रहे थे । उसमे फूलोसे सुसज्जित चरखा था । जुलूस स्टेजनमे ७-३० पर चलकर श्मशानमे ३ वजे पहुचा । ३-३० वजे अग्नि-सम्कार शुरु हुआ ।

श्मशान-घाटपर भीड उमडी थी । पीछेमे जो भीड उमडती थी उमे रोकना अति कठिन था और मै समझता हू कि यदि मुझे हट्टे-कट्टे लोगोने अपने कवेपर बिठाकर इस उमडती हुई भीडके सामने न उठा रक्खा होता तो भयकर दुर्घटना हो जाती । दो सज्जत आदमियोने मुझे अपने कवेपर बिठा रक्खा और उस हालतमे मै लोगोको रोक रहा था और उनसे बैठ जानेकी प्रार्थना कर रहा था । लोग जबतक मुझे देखते थे तबतक तो मानते थे, पर मै जहा अशांतिकी आशका होती उस ओर गया कि मेरी पीठ फिरते ही लोग तुरत उठ खडे हो जाते थे । सब लोग दीवाने हो गये थे । हजारो आखे रथीकी ओर लगी हुई थी । जब दाहकर्म शुरु हुआ तब लोग धीरज खो बैठे । सब वरवस खडे हो गये और चिताकी ओर खिच पडे । यदि एक भी क्षणका विलव होता तो सबके चितापर गिर पडनेका अदेशा था । अब क्या करे ? मैने लोगोमे कहा, “अब काम पूरा हुआ । सब अपने-अपने घर जावे ।” और मुझे उठानेवाले भाइयोसे कहा, “अब मुझे इस भीडसे हटा ले चलो ।” लोगोको मै पुकार पुकारकर और इशारेसे कहता चला कि मेरे पीछे आओ । इसका असर बहुत अच्छा हुआ, वह हजारोकी भीड वापस लौटी और दुर्घटना होते-होते बची ।

चिता चदनकी लकडीकी बनाई गई थी ।

लोग ऐसे मालूम होते थे मानो वन-भोजन को आये हो । गभीरता तो सबके चेहरे पर थी, पर ऐसा नही मालूम होता था कि वे शोक-भारसे दब गये हैं । कुटुम्बियोका और मेरा शोक स्वार्थ-पूर्ण मालूम होता था । हमारे तत्त्व-ज्ञानका अन्त आ गया, लोगोका कायम रहा,

क्योंकि वे तटस्थ थे । उनके अन्दर सम्मानका भाव तो पूरा-पूरा था । उनकी पूजा नि स्वार्थ थी । वे तो भारत-पुत्रको, अपने बन्धुको, प्रमाण-पत्र देनेके लिए आये थे । वे अपनी आखोसे और चेष्टासे ऐसा कहते हुए दिखाई देते थे, "तुमने बड़ा काम किया, तुम्हारे जैसे हजारो हो ।"

देशबधु जैसे भव्य थे वैसे ही भले थे । दार्जिलिंगमे इसका बड़ा अनुभव मुझे हुआ । उन्होंने धर्म-सवयी बातें कीं । जिनकी छाप उनके दिलपर गहरी बैठी, उनकी बातें कीं । वे धर्मका अनुभव-ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उत्सुक थे । "दूसरे देशमे जो कुछ हो, पर इस देशका उद्धार तो शांतिमार्गसे ही हो सकता है । मैं यहांके नवयुवकोको दिखला दूंगा कि हम शांतिके रास्ते स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं ।" "यदि हम भले हो जायेंगे तो अंग्रेजोको भला बना लेंगे ।" "इस अवकार और दममे मुझे सत्य के सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं दिखाई देता । दूसरे की हमें आवश्यकता भी नहीं ।" 'मैं तमाम दलोमे मेल कराना चाहता हूँ । बाधा सिर्फ इतनी ही है कि हमारे लोग भीरु हैं । उनको एकत्र करनेके प्रयत्नमे होता क्या है कि हमें भीरु बनना पड़ता है । तुम जरूर सबको मिलानेकी कोशिश करना और मिलना, पत्र-संपादकोको समझाना कि मेरी और स्वराज्य-दलकी खाहमखाह निंदा करनेसे क्या लाभ ? मैंने यदि भूल की हो तो मुझे बतावे । मैं यदि उन्हें सतुष्ट न करूँ तो फिर शौकसे पेट भरके मेरी निंदा करे ।" "तुम्हारे चरखेका रहस्य मैं दिन-दिन अधिक समझता जाता हूँ । मेरा कथा यदि दर्द न करता हो और इसमे मेरी गति कुठित न हो तो मैं तुरंत सीख लूँ । एक बार सीखनेपर नियम-पूर्वक कातनेमे मेरा जी न ऊबेगा । पर सीखते हुए जी उकता उठता है । देखो न, तार टूटते ही जाते हैं ।" "पर आप ऐसा किस तरह कह सकते हैं ? स्वराज्यके लिए आप क्या नहीं कर सकते ।" "हा, हा, यह तो ठीक ही है । मैं कहा सीखने-से नाहीं करता हूँ ? मैं तो अपनी कठिनाई बताता हूँ । पूछो तो वासती-देवीसे कि ऐसे काममे मैं कितना मदबुद्धि हूँ ?" वासतीदेवीने उनकी मदद

की, “ये सच कहते हैं। अपना कलमदान खोलना हो तो ताना लगाने मुझे आना पड़ता है।” मैंने कहा, “यह तो आपकी चान्नाकी है। इस तरह आपने देशबन्धुको अपग बना रक्खा जिससे उन्हें सदा आपकी सुशामद करनी पड़े और आपपर सहारा रखना पड़े।” हमीमे कमरा गूज उठा। देशबन्धु मध्यस्थ हुए। “एक महीने बाद मेरा परीक्षा लेना। उस समय मैं रस्सिया निकालता न मिलूंगा।” मैंने कहा “ठीक है आपके लिए मतीशबाबू शिक्षक भी भेज दंगे। आप जब पास हो जायंगे तो समझिएगा कि म्बराज्य नजदीक आ गया।” ऐसे सब विनोदोका वर्णन करने लगू तो आत्मा नहीं हो सकता।

कितने ही सस्मरण तो ऐसे हैं जिनका वर्णन मैं कर ही नहीं सकता।

मैं जिस प्रेमका अनुभव वहा कर रहा था उसकी कुछ झलक यदि यहा न दिखाऊ तो मैं कृतघ्न माना जाऊंगा। वे छोटी-छोटी-सी बातकी सभाल रखते थे। मेवे खुद कलकत्तेसे मगवाते। दार्जिलिंगमे बकरी या बकरीका दूध मिलना मुश्किल पड़ता है। इसलिए ठेठ तनहटीमे पाच बकरिया मगवाकर रखी। मेरी जरूरतकी एक-एक चीजका इतजाम किये वगैर न रहते थे। हमारे कमरेके दरम्यान मिर्फ एक दीवार थी। सुबह होते ही, काम-काजसे निवटकर, मेरी राह देखते बैठते। चारपाई पर बैठते थे, चारपाई अभी नहीं छूटी थी। पत्थी मारकर बैठनेकी मेरी आदतसे परिचित थे। सो कुरसीपर नहीं बैठने देते थे। खटियापर ही अपने सामने मुझे बैठते। गद्देपर भी कुछ खास तीरपर बिछवाते और तकिया भी लगवाते। मुझसे दिल्लगी किये विना न रहा गया, “यह दृश्य तो मुझे चालीस बरस पहलेकी याद दिलाता है। जब मेरी गादी हुई थी तब हम दुलहे-दुलहिन इस तरह बैठे थे। अब यहा पाणिग्रहणकी ही कसर है।” मेरे कहनेकी देर थी कि देशबन्धुके कहकहेमे सारा घर गूज उठा। देशबन्धु जब हँसते तो उनकी आवाज दूर तक पहुँचे विना न रहती।

देशबधुका हृदय दिन-पर-दिन कोमल होता जाता था। रुढिके अनु-सार मास-मछली खानेमें उन्हें कोई विधि-निषेध न था। फिर भी जब असहयोग शुरू हुआ तब मासाहार, मद्यपान और चुरट तीनों चीजें उन्होंने छोड़ दी थी। पीछे जाकर फिर उन्होंने अपना जोर जमाया था, परत् उनका भुकाव इनको छोड़नेकी ओर ही रहता था। अभी कुछ दिनोंसे राधास्वामी संप्रदायके एक साधुसे उनका समागम हुआ। तबसे निरामिष भोजनकी उत्सुकता बढ़ गई थी। सो जबसे वे दार्जिलिंग गये, निरामिष भोजन शुरू किया था। और मेरे रहने तक घरमें मास-मछली न आने दिया। मुझसे अनेक बार कहा, “यदि मुझसे हो सका तो अबसे मैं मास मछलीको छुऊंगा तक नहीं। मुझे वे पसंद भी नहीं और मैं समझता हूँ कि इससे हमारी आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधा पहुचती है। मेरे गुरुने मुझे खास तौरपर कहा कि साधनाके खातिर तुम्हें मासाहार अवश्य छोड़ देना चाहिए।” (हि० न०, २ ७ २५)

यदि हमें देशबधुकी आत्माको शांति दिलाना हो तो हमारे पास एक ही इलाज है। उनके तमाम सद्गुणोंको हम अपने अदर पैदा करें। कितने ही सद्गुण तो अवश्य पैदा कर सकते हैं। उनके सदृश अग्रेजी चाहे हमें न आ सके, उनकी तरह वकील हम सब न हो सके, धारा-सभामें जानेकी शक्ति उनके सदृश हमारे पास न हो, पर हमारे अदर उनके जैसा देशप्रेम तो हो सकता है। उनके बराबर उदारता हम सीख सकते हैं। उनके बराबर धन हम चाहे न दे सके, परत् जो यथाशक्ति देते हैं उन्होंने बहुत कुछ दे दिया है। विधवाके एक ताबेके छल्लेकी कीमत महाराजके करोड़ोंमेंसे दिये हजारकी कीमतसे ज्यादा है। देशबधुने खादी पहननेके बाद फिर घरमें या बाहर उसका त्याग नहीं किया। क्या हम खादी पहनेंगे? देशबधुने महीन खादी कभी न चाही। उन्होंने तो मोटी खादीको ही पसंद किया था। देशबधुने कातनेका प्रयत्न किया। जिन्होंने

शुरू नहीं किया, क्या वे अब करेंगे ? (हि० न०, ६७२५)

मैं श्री मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, मनमोहन घोष, बदरुद्दीन तैयबजी इत्यादिकी याद आपको दिला दूंगा जिन्होंने अपनी कानूनी योग्यता विल्कुल मुफ्त वाटी और अपने देशकी बड़ी अच्छी तथा विध्वस्त सेवा की। आप शायद मुझे ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमें बड़ी लंबी-लंबी फीस लेते थे। मैं इस तर्कको इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा और सबसे परिचय रहा है। अविकल्प होनेकी वजहसे इन लोगोंने भारतको आवश्यकता पड़नेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विनाशसे रहनेकी योग्यतासे कोई संबंध नहीं है। मैंने उनको बड़े सतोषमें दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हि० न०, १२११३१)

: ८३ :

दासप्पा

मैसूरमें कई वकीलोंने मैसूर-सत्याग्रहकी हलचलमें हिस्सा लिया था। मैसूरकी चीफ कोर्टने उनके वकालतनामे छीन लिये हैं। इस सिलसिलेमें कोर्टके सबसे आखिरी शिकार श्री दासप्पा हैं। श्री दासप्पाकी मैसूरमें खूब प्रतिष्ठा है और वह बीस सालसे वकालत कर रहे हैं। वकालत-जैसे स्वतंत्र पेशेमें किसीकी इस तरह सनद जप्त की जाना बेशक एक गंभीर बात है। पर पहले भी काफी कारणके बिना, या केवल राजनैतिक कारणोंसे ऐसी घटनाएँ घट चुकी हैं। ऐसे अन्यायोंको हमें धीरज और बहादुरीसे

वदशित करना है। पर श्री दासप्पाके बारेमें चीफ जजके हुक्मनामेकी रिपोर्ट 'हिंदू' में पढकर बहुत दुःख हुआ है। श्री दासप्पाने मैसूरके एक खास भागमें सभाओंमें भाषण न देनेके मजिस्ट्रेट साहबके हुक्मको तोड़नेका साहस किया था और साथ ही मेरी सलाहके अनुसार सत्याग्रही कैदियोंको, जज श्री नागेश्वर आइरकी महकमाना जाचका बहिष्कार करनेकी सलाह देकर अपनी धृष्टताका सबूत दिया था। इन और अन्य अपराधोंके कारण श्री दासप्पाका वकालतनामा हमेशाके लिए जप्त हो गया। अगर जज-साहबकी चले, तो श्री दासप्पाको गरीबीका मुख देखना होगा। अगर उनके फैसलेका असर सरकारी मिसलके आगे जा सके, तो श्री दासप्पा समाजमें अपनी सब प्रतिष्ठा खोकर तिरस्कार और घृणाके पात्र बन जायेंगे। श्री दासप्पाको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वह एक निर्दोष चरित्रके शुद्ध ईमानदार आदमी हैं। अपनी शक्तिके अनुसार वह अहिंसाका पालन करनेका मर्दानगीसे प्रयत्न कर रहे हैं। जो उन्होंने किया है वही कई वकील और दूसरे लोग ब्रिटिश भारतमें कर चुके हैं। जज ऐसी बातोंकी तरफ ध्यानतक नहीं देते, और जनताने उनको जन-नायकका पद दिया है। श्री भूलाभाई बबईकी हाईकोर्टके एडवोकेट-जनरल रह चुके हैं। उन्होंने कानून तोड़े हैं। इसी तरह श्री मुशीने और श्री चक्रवर्ती राज-गोपालाचार्यने भी कानून तोड़े हैं। मगर उन लोगोंके वकालतनामेको किसीने हाथ नहीं लगाया। इसमेंसे पिछले दो तो अपने-अपने सूबेमें मंत्री पदपर भी रह चुके हैं। सार्वजनिक जाचका आजसे पहले बिना किसी निजी हानिके बहिष्कार किया गया है। मगर इससे बहिष्कारके कर्त्ता-धर्त्ताओंकी इज्जत या आचरणपर कभी हमला नहीं किया गया। मेरी रायमें अपना फैसला सुनाते समय मैसूर कोर्टके जज अपने कर्तव्यको भूल गये हैं। इससे श्री दासप्पाको कोई नुकसान नहीं पहुँचा। उलटे वह मैसूरकी जनताकी नजरोंमें और ऊँचे चढ जायेंगे। मगर मैं यह दावेसे कह सकता हूँ कि अपने पूर्वाग्रहोंके वश होकर जजसाहबने अपने आपको

नुकसान पहुँचाया है। इस तरह न्यायका मजाक पहले भी उड़ाया जा चुका है। (ह० से०, १३ ७ ४०)

: ८४ :

मनोहर दीवान

एक परोपकारी पुरुष, मैं तो उनको महात्मा ही कहूँगा मनोहर दीवान हैं। वे वर्धामें रहते हैं और विनोवा भावेके बड़े शिष्य हैं। विनोवा-जी तो बहुत बड़े आदमी हैं। तो मनोहरके दिलमें हुआ कि चलो, कुछ-न-कुछ करे। तो उन्होंने कोढ़ियोकी सेवा करनेका काम पसंद किया। विनोवाने भी उनको ऐसा करनेके लिए प्रेरणा दी। वे निर्लप रहते हैं। पैसेकी उनको दरकार नहीं। वे डाक्टर तो नहीं हैं, लेकिन उन्होंने उसका काफी अभ्यास कर लिया है। काफी लोग उनकी मदद लेते हैं। (प्रा० प्र०, २३ १० ४७)

: ८५ :

गोपाल कृष्ण देवधर

श्री गोपाल कृष्ण देवधरके स्वर्गवाससे देश एक महान् समाज-सेवक और हरिजनोका एक सूदृढ और विश्वसनीय वधु गवा बैठा। स्व० गोखलेकी स्थापित की हुई 'सर्वेण्ट् आफ इंडिया सोसाइटी' के श्री देवधर मस्थापक सदस्योमेसे थे। प्रातीय हरिजन-सेवक-सघके वे अध्यक्ष भी थे। देशमें

ऐसा एक भी दुर्भिक्ष नहीं पड़ा या ऐसी बाढ़ नहीं आई जहाँ उनकी याद न की गई हो। वे चाहते तो आसानीसे काफी पैसा पैदा कर सकते थे, पर उन्होंने तो गरीबीका ही बाना धारण किया, क्योंकि लोक-सेवकका जीवन-सिद्धांत ही गरीबी है। उनकी अथक कार्यशक्ति सक्रामक थी। जब भी उनकी समाज-सेवाकी मांग हुई, वे कभी उससे पीछे नहीं रहे। उनका जीवन एक निष्कलक पवित्रताका जीवन था। अपने प्रिय पूना-सेवा-सदनके तो वे प्राण थे। उसके लिए उन्होंने इतनी अच्छी तरह परिश्रम किया कि एक छोटी-सी चीजसे बढ़ते-बढ़ते वह आज इतनी अच्छी सस्था बन गई है कि भारतवर्षमें जितनी भी इस प्रकारकी सस्थाएँ हैं उनसे वह किसी तरह पीछे नहीं। दिवंगत आत्माके परिवारके साथ मैं सादर समवेदना प्रकट करता हूँ। (ह० से०, २३ ११ ३५)

: ८६ :

दुर्गाबेन देसाई

श्रीमहादेव देसाईकी धर्मपत्नी प्रयागमें है। वे खुद भी स्वयंसेविका हुई हैं, सेवा करनेके लिए जगह-जगह जाती हैं, दूसरे स्वयंसेवकोको खाना पकाकर खिलाती हैं और दूसरी तरहसे उनकी सहायता करती हैं, रोज चरखा कातती हैं। श्रीमहादेवभाईके गिरफ्तार होते ही उन्होंने मुझे एक पत्र भेजा, जिसे पढ़कर पाठक प्रसन्न होंगे। इसी खयालसे उसे यहाँ प्रकाशित करता हूँ —

“आप यह जानकर प्रसन्न होंगे कि आप और वे जो बात चाहते थे, वही हुई। उन्हें एक वर्षकी सजा और सौ रुपया जुर्माना हुआ। जुर्माना न दें तो एक मास अधिक कैद। यह समाचार तो आपको मिल

हो चुका होगा। मैं तो आपको सिर्फ इसीलिए यह लिख रही हूँ कि आप मेरी चिन्ता न करें। इस समय तो मुझे कुछ भी दुःख नहीं हुआ, पर नहीं कह सकती, यह हालन कबतक कायम रहेगी, क्योंकि मन तो स्वभावतः ही चंचल ठहरा। इसमें वह कभी सुख और कभी दुःख मानकर व्यर्थ दुःखी होता है।

देवदासभाई जबतक जेलके बाहर हैं और यन्त्रा काम कर रहे हैं तबतक तो मैं यहीं रहूँगी। उनके पकड़े जानेके बाद मैं आश्रम (सत्याग्रह आश्रम, सावरमती) आऊँगी।

यह पत्र कल लिखकर बंसा ही छोड़ दिया था। आज मैं और देवदासभाई उनसे मिलने गये थे। उसका हाल देवदासभाईने आपको लिखा ही है, अतएव उस विषयमें मैं कुछ नहीं लिख रही हूँ। जेलमें उनके साथ जिस तरहका व्यवहार किया जाता है, उसका हाल जानकर मनके धर्मके अनुसार, मुझे कुछ दुःख हुआ। पर अब उसका अंतर बिल्कुल नहीं है। जब-जब मैं सोचती हूँ तब-तब यही मालूम होता है कि ऊपरसे उन्हें चाहे कितना ही कष्ट दिया जाय, पर यदि ईश्वरकी कृपा होगी तो उन्हें और मुझे उसके सहन करनेका बल प्राप्त होगा। आप मेरी चिन्ता न कीजिएगा। क्योंकि यदि आपकी लड़की ही इतनेसे दुःखसे दुःखी होकर रोने-पीटने लगे तो फिर आपको इस संग्राममें विजय ही कैसे प्राप्त हो। मैं आपसे इतना तो जरूर चाह सकती हूँ कि आप यह आशीर्वाद दीजिए कि ईश्वर मुझे यह सहन करनेका बल दे।”

मेरी आशीर्ष तो हुई है। पर मैं आशीर्वाद देने वाला कौन ? भारतकी महिलाएँ तो अपने ही तपोबलसे साहस प्राप्त कर रही हैं। एक-दो आदमी तो जेल गये ही नहीं हैं। कितने ही लोग गये हैं और बहुतांश की धर्मपत्नियाँ हिम्मत और धीरज धारण कर रही हैं और खुशी-खुशी अपने पतिको तथा दूसरे रिश्तेदारोंको जेलमें भेज रही हैं और म्रव्य भी

जानेको तैयार होती है । मुझे यह खबर मिल गई है कि श्री देसाईके साथ जो निष्ठुर व्यवहार किया जा रहा था वह अब बद कर दिया गया है । धीरज तथा विनययुक्त वर्तावसे अनुचित दुःखका निवारण हुए बिना रह ही नहीं सकता । पर ऐसा हो चाहे न हो, जेलके दुःख चाहे कितने ही भयानक क्यों न हो, उनको सहन किये बिना दूसरी गति ही नहीं है ।
(हि० न० ८ १.२२)

: ८७ :

प्रागजी देसाई

एक भाई प्रागजी देसाई थे । उन्होंने अपने जीवनमें कभी धूप-जाड़ा नहीं सहा था । और यहा तो जाड़ा था, धूप थी और बारिशका मौसिम था । हमने अपना श्रीगणेश तो तबूमें रहकर दिया था । मकान बँधकर तैयार हो तब उनमें सोये । करीब दो महीनोके अंदर मकान तैयार हो गये । मकान टीनके थे, इसलिए उनको बनानेमें कोई देरी नहीं लगी । आवश्यक आकार-प्रकारकी लकड़ी तैयार मिल सकती थी । केवल नाप-जोख कर टुकड़ेमात्र करना पड़ते । दरवाजे—खिड़किया आदि ज्यादा नहीं बनाने थे । इसलिए इतने समयमें सभी मकान तैयार हो गये, पर इस काम-काजमें भाई प्रागजीकी खूब खबर ले डाली । जेलकी बनिस्वत फार्मका काम जरूर ही अधिक सख्त था । एक दिन तो परिश्रम और बुखारके कारण वह बेहोश तक हो गये । पर वह यो इतनी जल्दी हारने वाले आदमी नहीं थे । यहा उन्होंने अपने शरीरको पूरी तरह मेहनत पर चढ़ा दिया और अंतमें इतनी शक्ति प्राप्त कर ली कि वह सबके साथ-साथ काम करने लग गये । (द० अ० स० १६२५)

: ८८ :

भूलाभाई देसाई

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन, राष्ट्रीय ऋणको मबवमे जाच करनेके लिए महासमिति (ग्राल इडिया कांग्रेस कमेटी) ने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट, विशेषकर वर्तमान अवसरपर, एक अत्यन्त महत्त्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा, कांग्रेसका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे बिना न रहेगा। श्री बहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल शाह और कुमारप्पा अपने इस प्रेम—परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनन्दनके अधिकारी हैं। 'यंग इडिया' के विदग्ध पाठक जानते हैं कि श्री बहादुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनों ही एक बार एडवोकेट-जनरल थे। इन्होंने एडवोकेट-जनरलके पद का उपयोग किया है, यह बात यो ही छोड़ दी जाय तो दोनों धूमधामसे चलनेवाले धकेके व्यवसायी और अनु-भवी कानून विशेषज्ञ हैं। एडवोकेट-जनरलके पदने इनकी प्रतिष्ठामें कुछ वृद्धि की है ऐसी कोई बात नहीं है। यह तो उनकी प्रतिष्ठा की और उनके व्यवसायमे उनका जो पद है, उसकी स्वीकृति-मात्र है। खुशाल शाह भारतप्रख्यात अर्थशास्त्री हैं, कितनी ही बहुमूल्य पुस्तकोंके लेखक हैं और बहुत वर्ष तक, आज अभी तक, बंबई यूनिवर्सिटीके अर्थशास्त्रके अध्यापक थे। ये तीनों सज्जन सदैव काममें रुके रहते हैं, इसलिये राष्ट्रीय महासभाके सौंपे हुए इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नहीं था। रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैंने इसलिए दिया है कि विदग्ध पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोंका लिया हुआ लेख नहीं, बरन जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले हैं और जो बाधलीबाज उपदेशक नहीं, बरन स्वयं जिस विषयके ज्ञाता हैं, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोंको

तौलकर व्यवहारमें लाने वालीकी यह कृति है। (हि० न०, ६८३१)

बारडोलीके किसानोकी बहादुरीने और उनकी आफतो व मुसीबतोने श्री भूलाभाई देसाई-जैसोको जनताकी सेवाका काम सभाल लेनेकी प्रेरणा दी, वरना वे एक मशहूर सरकारी नोकर रहे होते और बबई हाईकोर्टके जज बनकर उन्होने अपना काम पूरा किया होता। कानूनके एक पंडितके नाते उनकी होशियारीके कारण जब आजाद हिंद फौजके कैदी रिहा कर दिए गये तो उनकी कीर्ति अपनी अंतिम सीमा तक पहुंच गई। उनके बेटे और उनकी बहूके शोकमें मैं और मेरे-जैसे दूसरे बहुतेरे उनके हिस्सेदार हैं। आशा है कि स्वर्गीय भूलाभाईमें देश-सेवाका जो प्रेम था, उसे विरासतमें पाकर वे दोनों अपने शोकको आनंदमें बदल डालेंगे। यही एक चीज है, जो जीवनको जीने योग्य बनाती है। (ह० से०, १२ ५ ४६)

: ८६ :

महादेव देसाई

पाठक यह जानकर खुश होंगे कि महादेव देसाईका स्वास्थ्य अब दिन-प्रतिदिन उन्नति करता जा रहा है। लगातार कई सालसे स्वास्थ्य पर जोर पड़नेके बाद विश्राम तो उन्हें लेना ही चाहिए था, पर वह नहीं ले सके। और मैंने भी आग्रह नहीं किया। अच्छा हुआ कि दयालु प्रकृतिने आकर उन्हें विश्राम लेनेके लिए बाध्य कर दिया, जिसे कि स्वेच्छा-पूर्वक लेनेको वह तैयार न होते। श्री राजकुमारी अमृतकोर उन्हें अपने घर शिमला ले गई हैं। वहा पहाडोकी शुद्ध ताजी हवा तो है ही, पर इससे भी अधिक जो स्वास्थ्यप्रद चीज उन्हें वहा मिल रही है वह है राजकुमारीकी प्रेमपूर्ण सेवा और उपचार। इससे निश्चय ही शिमलाके

शक्तिवर्द्धक जलवायुमे उनका स्वास्थ्य उन्नति करेगा । (ह० मे०, २३ १०.३८)

महादेवकी अकस्मात मृत्यु हो गई । पहले जरा भी पता नहीं चला । रात अच्छी तरह सोये । नाश्ता किया । मेरे साथ टहले । मुशीला और जेलके डाक्टरोंने जो कुछ कर सकते थे किया, लेकिन ईश्वरकी मर्जी कुछ और थी । मुशीला और मैंने शवको स्नान कराया । गरीर शातिमे पड़ा है, फूलोमे ढका है, धूप जल रही है । मुशीला और मैं गीता-पाठ कर रहे हैं । महादेवकी योगी और देशभक्तकी भाति मृत्यु हुई है । दुर्गा, वावला और सुशीलासे कहो, शोक करनेकी मनाई है । ऐसी महान् मृत्युपर हर्ष ही होना चाहिए । अत्येष्टि मेरे सामने हो रही है । भस्म रख लूंगा । दुर्गाको सलाह दो कि आश्रममे रहे, लेकिन अगर वह जाना ही चाहे तो घरवालोके पास जा सकती है । आशा है, वावला बहादुरीमे काम लेगा और महादेवका सुयोग्य उत्तराधिकारी बननेके लिए अपनेको तैयार करेगा । सप्रम, (आगा खा महलसे १५ व ४२को दिया तार)

भावना तो महादेवकी खुराक थी (का० क० ३)

महादेवका वलिदान कोई छोटी चीज नहीं है । अकेला भी वह बहुत काम करेगा । (का० क० १६ व ४२)

(वा कह रही थीं, “देखो, महादेव गये । ब्राह्मणकी मृत्यु हुई, अपशकुन है न । इतनी बड़ी ताकतके खिलाफ वापू लड़ रहे हैं, कैसे जीतेंगे ।” वापूने सुना तो कहने लगे—)

“मैं इसे शुभ जकुन मानता हू । शुद्धतम वलिदान हुआ है, इसका परिणाम अशुभ नहीं हो सकता ।” (का० क०, २८ व ४२)

(आज 'बॉम्बे क्रानिकल' के सब पुराने अंक आगये । मालूम होता है, महादेवभाईकी मृत्युको देशने चुपचाप सह लिया है । यह चीज बापूको काफी चुभी है । घूमते समय कहने लगे—)

आखिर तो महादेव इनके जेलमें मरा है न ? महादेवका खून इनके सिर है । मैं उस दिन गवर्नरको लिखने वाला था, मगर फिर काट डाला । जिन्दा रहा तो किसी दिन मैं जरूर उन्हें यह सुनाऊंगा कि महादेवकी मृत्युका कारण आप है । मैं मानता हू कि वह जेल न आते तो कम-से-कम इस वक्त तो हर्गिज न मरते । बाहर वह कई तरहके कामोमें उलझे रहते । यहा वह एक ही विचारमें डूबे रहे, एक ही चिंता उनके सिरपर सवार रही । वह उन्हें खागई । उनपर भावनाका कुछ इतना जोर पडा कि वह खतम हो गये । देशने कुछ भी नहीं किया । बैकुंठ मेहताकी श्रद्धाजलि तो आने ही वाली थी और बरेलवीकी भी । मगर महादेव तो सारे देशके थे और देशके लिए वह गये है । भगतसिंहकी मृत्युके बाद जब मैं लॉर्ड अविनसे समझौता करके कराची जा रहा था तो लोगोके भुड-के-भुड हर स्टेशनपर मेरे पास आते थे और चिल्लाते थे, “लाओ भगतसिंहको ।” इसी तरह इस बार भी वे सरकार-को कह सकते थे, “लाओ महादेवको ।” सरकार लाती तो कहासे ? कह देती कि जो लोग इतने भावुक, इतने विक्षुब्ध और इतने सवेदनशील है, वे जेलमें आते ही क्यों है ? न आए—वगैरा ।

(फिर बापू कहने लगे—)

मगर लोग शायद सोचते होंगे कि आज सरकारके साथ ऐसा घमासान युद्ध चल रहा है कि उसमें दूसरी किसी चीजका विचार करनेका अवकाश ही कहा रह जाता है ?

(मैंने कहा, “और आपने भी तो तारमें लिखा था न कि जो किया जा सकता था, किया गया । इसके कारण भी लोग शान्त रह

गये होंगे। समझे होंगे कि यह तो स्वाभाविक मृत्यु थी, जो कहीं भी हो सकती थी।” बापू ने कहा—)

सो तो है, लेकिन मृत्यु हुई तो सरकारके जेलमें न ? (का० क०, १०.६ ४२)

(शामको महादेवभाईके समाधि-स्थानसे लौट रहे थे तब बापू कहने लगे—)

यहां आ जाना मेरे लिए बहुत शांतिदायक है और उममें जो प्रेरणा मुझे लेनी होती है मैं ले लेता हूँ।

(मैंने कहा, “अब आप महादेवभाईसे प्रेरणा लेते हैं, कभी वह आपसे लेते थे।” कहने लगे—)

क्यों नहीं, प्रेरणा तो एक वच्चेसे भी ले सकते हैं, और वच्चा चला जाता है, तो भी क्या? उसका स्मरण तो २४ घंटे चलता ही है। जो राजाजी ने कहा है वह विलकुल सही है। महादेव मेरा अतिरिक्त शरीर था। कितनी दफा मैंने उसे मैक्सवेलके पास भेजा है, दूसरोके पास भेजा है। मान लेता था कि महादेवको काम सोंपा है तो वह कर लेगा।” (का० क०, १८ ६ ४२)

(सुबह धूमते समय बापू कहने लगे—) महादेवको मेरा वारिस होना था, पर मुझे उसका वारिस होना पड़ा है। मीराबहनको महादेवभाईकी समाधिपर मेरा जाना खटकता है, मगर मेरे लिए वह विलकुल—महज बन गया है। मैं न जाऊ तो बेचैन हो जाऊ। वहां जाकर मैं कुछ करना नहीं चाहता, समय भी नहीं देना चाहता, मगर हो आता हूँ, इतना ही मेरे लिए बस है। अगर मैं जिंदा रहा तो यह जमीन आगाध्यासे माग लूंगा। वह न दे, यह संभव हो सकता है। मगर किसी रोज तो हिंदुस्तान आजाद होगा। तब यह यात्राका स्थान बनेगा। मैं वहां जाता हूँ तो महादेवके गुणोंका स्मरण करनेके लिए, उन्हें ग्रहण

करनेके लिए । मैं उसकी स्मृतिको खोना नहीं चाहता । और जिस तरहसे वह यहा मरा, उसमे उसकी स्त्री और उसके लडके प्रति मेरी वफादारी भी मुझे बताती है कि मुझे वहा नियमित रूपसे जाना चाहिए । हो सकता है कि मेरी जिन्दगीमे यह जगह मुझे न मिल सके और इस जगहको यात्रा-स्थल बनते मैं न देख सकू, मगर किसी-न-किसी दिन वह जरूर बनेगा, इतना मैं जानता हू । आज तो मैं सब काम उसका काम समझकर करता हूँ । बाहर जाऊंगा तब भी उसीका काम करूंगा । (का० क०, १० ६ ४२)

(सुबह समाधिसे लौटते समय बापू महादेवभाईवाली गीताजीके पन्ने उलट रहे थे । आखिरी पन्ने पर 'आउज बिल्ला'वाली आयत लिखी हुई थी । पूछने लगे—)

ये किसके अक्षर हैं ? महादेवके या प्यारेलालके ?

(मैंने बताया कि १ अगस्तको बम्बईसे चलते समय महादेवभाईने भाईको वह आयत लिख देनेको कहा था, सो भाईके अक्षर हैं । बापू कहने लगे—)

बस छ दिन उसने यह आयत गाई ।

(फिर थोडा ठहरकर बोले—)

लगता ही नहीं है कि महादेव सदाके लिए गया । कल रातको स्वप्नमे वह लडकी कहती है, "महादेवभाई कहा है ?" मैं उत्तर देता हू, "वहन, मैं तो उसे स्मशानमे छोड आया हू ।" पीछे वह पागल-सी हो जाती है । कहती है, "लाओ महादेवभाईको । उसे वहा क्यों छोड आए ?" (का० क०, २३ १२ ४२)

(भाईसे कहने लगे—) मान लो इस उपवासके कारण मैं लोप हो जाऊ तो तुम लोगोसे मैं क्या आशा रखूंगा, यह समझ लो । महादेवकी

मैं भाटकी तरह स्तुति करता हूँ, मगर मेरा मन उसकी शिकायत भी करता है। उसकी मिसाल सपूर्ण या आदर्श नहीं मानना चाहिए। वह इस विचारका जप करते-करते चला गया कि 'मैं वापूके बाद क्या कर सकता हूँ ? वापूसे पहले चला जाऊँ तो अच्छा है।' मगर उसे तो कहना चाहिए था कि 'नहीं, मुझे तो जिंदा रहना है और वापूका काम करना है।' यह दृढ़ संकल्प उसे मरनेसे रोक भी लेता। (का० क०, ६ २ ४३)

मेरे विचारसे महादेवके चरित्रकी सबसे बड़ी खूबी थी, मौका पड़ने-पर अपनेको भूलकर शून्यवत बनजानेकी उनकी शक्ति। (ह० से०, १२ ८ ४६)

जमनालाल, मगनलाल और महादेव—इनमेंसे हर एक अपने-अपने क्षेत्रमें अनूठे थे। मेरा खयाल है कि उनकी जगह दूसरे नहीं ले सकते। मगर मैं कहूँगा कि इन तीनोंमेंसे महादेव मुझमें पूरी तरह खो गया था। मैं यह कह सकता हूँ कि मुझमें अलग उसकी कोई हस्ती ही नहीं रह गई थी।

महादेवकी एक बड़ी खूबी यह थी कि जो काम उन्हें सौंपा जाता था, उसे करनेके लिए वे सदा तैयार रहते और बड़े उत्साहमें करते थे। इसी तरह वे एक अच्छे लेखक, अच्छे रमोडया और अच्छे कुली बन सके थे। अक्सर जो लोग मेरे साथ काम करनेके लिए आते हैं, वे ऐसे ही बन जाते हैं। (ह० से०, ८ १८ ४६)

...

महादेव गुलाबका फूल है। (ह० से०, १८ ८ ४६)

..

वे मेरे वाँसवेल (जीवनी लिखनेवाले) बनना चाहते थे, फिर भी मुझसे पहले मरना चाहते थे। इससे बेहतर वे क्या कर सकते थे ? सो वे तो चले गये और मुझे उनकी जीवनी लिखनेके लिए छोड़ गये।

बच्चे अपने मा-बापके पहले मरना चाहे तो इससे बढकर बेरहमी और क्या हो सकती है? यह उनका निरा स्वार्थ है । भले ही मैं दूसरोको इस बातका यकीन न दिला सकू लेकिन यह मैं जरूर महसूस करता हू कि मौत कभी वक्तसे पहले नहीं आती दुनियामे अपना काम खत्म करनेसे पहले कोई मर्द या औरत कभी नहीं मरता । महादेवने पचास सालमें सौ बरसका काम पूरा कर डाला था । सो वह आराम करने चले गए, जिसपर उनका पूरा हक था । (ह० से० १८.८ ४६)

महादेवदेसाईके मित्र और प्रशंसक उनके प्रिय काम करके ही उनकी बरसी मनाते हैं । वे बड़े शक्तिशाली पुरुष थे । वे सुंदर और सुडौल अक्षर लिखते थे । वे कई चीजोंसे प्यार करते थे । लेकिन उन सबमें चर्खेकी जगह पहली थी । एक कलाकार होनेके नाते वे नियमसे बहुत बढिया कताई करते थे । कामकाजके भारी बोझसे थककर चूर हो जाने पर भी वे हमेशा कातनेका वक्त निकाल लेते थे । चर्खा उन्हें फिर तरौ-ताजा बना देता था ।

उनकी कई खूबियोंमे उनके बेजोड अक्षर भी कोई कम महत्व नहीं रखते थे । उसमे कोई उनका सानी न था । रामदासस्वामीने अपने एक दोहेमे खूबसूरत अक्षरोंकी चमकीले मोतियोंसे तुलना की है । महादेवकी कलमसे निकले हुए अक्षर खरे मोती जैसे होते थे ।

उनकी तीसरी खूबी थी, हिंदुस्तानकी भाषाओंसे उनका प्रेम । आप सबको भी यह गुण अपनेमे पैदा करनेकी कोशिश करनी चाहिए । वे भाषाशास्त्री थे । बंगाली, मराठी और हिंदीपर उनका पूरा अधिकार था और वे उर्दू भी सीख चुके थे । जेलमे उन्होंने ख्वाजा साहब एम० ए० मजीदसे, जो उनके साथ कैद थे, फारसी और अरबी सीखनेकी भी कोशिश की थी । (ह०से० ८.९.४६)

: ६० :

जयरामदास दौलतराम

मुझे जिनके बारेमें चेतावनी दी गई है उनमें सबसे आखिरी नंबर है श्री जयरामदास और डा० चोड्यरामका । जयरामदासके नामपर तो मैं कम ख़ा सकता हूँ । इनसे अधिक सच्चा आदमी मुझे अपनी जिंदगी-में अभी नहीं मिला । जेलमें इनके चाल-चलनपर हम लोग लट्टू थे । उनकी नेकचलनीकी सीमा न थी । इनके दिलमें मुसलमानोंके विरुद्ध रक्तीभर भाव नहीं । डा० चोड्यरामसे मेरी जान-पहचान तो पहलेसे है, पर मैं उन्हें पूरी तरह नहीं जानता, परंतु जितना मैं उन्हें जानता हूँ, उतने परमें मैं उनका परिचय सिवा इसके दूसरी तरह देनेसे इन्कार करता हूँ कि वे हिंदू मुसलमान एकताके सभी हामी हैं । (हि० न० १ ६ २४)

: ६१ :

आनंदशंकर ध्रुव

श्रीआनंदशंकर भाईकी क्षति न केवल गुजरातको अपितु काशी हिंदू विश्वविद्यालयकी उनकी वर्गोंकी अमूल्य सेवाके कारण यू० पी० को भी उतनी ही मालूम होगी । आनंदशंकर भाईकी जोड़ ढ़टना असंभव नहीं तो कठिन तो है ही । वे अत तक शिक्षक और शिक्षा-शास्त्री ही रहे । उनकी मृत्युसे अनेक विद्यार्थियोंने अपना निजी मित्र गवाया है । मालवीय जीके तो वे दाहिने हाथ ही थे । उनकी इस समयकी मनोदशाकी तो हम कल्पना ही कर सकते हैं ।

परतु आनदशकरभाई केवल शिक्षा-शास्त्री ही न थे । उनकी रुचि अनेक प्रकारकी थी । वे राजनीतिके गहरे अभ्यासी थे । स्वतन्त्रताके पुजारी थे । समाज-सुधारक थे । सनातनियोंके साथ उनकी खूब पटती थी, क्योंकि उनके बहुतसे रिवाजोंका वे अनुसरण करते थे । परतु उनकी बुद्धि और उनका हृदय हमेशा सुधारकोंके साथ ही था । वे निर्भयतासे अपने विचार व्यक्त करते थे । संस्कृतके विद्वान् और शास्त्रोंके जानकार होनेकी वजहसे उनके विचारोंका सब आदर करते थे । हिंदूधर्मको उन्होंने शोभित किया था ।

स्वयं मुझे तो उनकी सहायता मिला ही करती थी । वे मजदूरों और मालिकोंके एक समान मित्र थे और दोनोंके विश्वासपात्र थे । इसलिए वे दोनोंकी अच्छी सेवा कर सके थे ।

आनदशकर भाईके कुटुंबी यह समझे कि उनके इस शोकमें बहुतरे उनके साथ हैं, क्योंकि उन्होंने अपने कुटुंबका बहुत विस्तार किया था । (ह० से०, १९ ४ ४२)

: ६२ :

नटेशन

यह कहे तो अत्युक्ति न होगी कि इस समय प्रवासी भारतवासियोंके दुखोंपर विचार करनेवाले, उनकी सहायता करनेवाले, उनके विषयमें उचित रीतिसे और ज्ञानपूर्वक लिखनेवाले सारे भारतवर्षमें अकेले नटेशन ही थे । मेरे और उनके बीच बराबर नियमित रूपसे पत्र-व्यवहार चल रहा था । जब ये देशनिकालेकी सजा पाये हुए भाई मदरास पहुँचे तब मि० नटेशनने उनकी हर तरहसे सेवा-सहायता की । भाई नायडू-

जैसे समझदार आदमी उनके साथमें थे । इसलिए मि० नटेमनको भी काफी सहायता मिली । म्यानीय चदा एकत्रकर मि० नटेमनने उनकी इस कदर सेवा की कि उन्हें यह याद तक नहीं होने पाया कि वे घर-बार छोड़कर देश-निकालेकी मजामें आये थे । (द० अ० स० १९२५)

: ६३ :

गुलजारीलाल नन्दा

गुजरातमें ओतप्रोत हो जानेवाला प्यारेलालकी तरह यह दूसरा पजाबी है । प्यारेलालमें भी एक तरहसे बढ़कर है, क्योंकि प्यारेलालके रास्तेमें आनेवाला कोई नहीं है । इसके मामले स्त्री-वच्चे वगैरह बहुतेका विरोध है और यह आदमी बड़ी व्यवस्था-शक्तिवाला और सत्यका जबरदस्त पुजारी है । (म० डा०)

: ६४ :

चार निडर नवयुवक

इस लोकेशनका कब्जा म्युनिसिपैलिटीने ले तो लिया, परंतु तुरत ही हिंदुस्तानियोंको वहांमें हटाया नहीं था । हा, यह तय जरूर हो गया था कि उन्हें दूसरी अनुकूल जगह देदी जायगी । अबतक म्युनिमिपैलिटी वह जगह निश्चित न कर पाई थी । इस कारण भारतीय लोग उमी 'गंदे' लोकेशनमें रहते थे । इसमें दो बातोंमें फर्क हुआ । एक तो यह

कि भारतवासी मालिक न रहकर सुधार-विभागके किरायेदार बने और दूसरे गदगी पहलेसे अधिक बढ़ गई। इससे पहले तो भारतीय लोग मालिक समझे जाते थे। इससे वे अपनी राजीसे नहीं तो डरसे ही, कुछ-न-कुछ तो सफाई रखते थे, किंतु अब 'सुधार' का किसे डर था ? मकानोमे किरायेदारोकी भी तादाद बढ़ी और उसके साथ ही गदगी और अव्यवस्थाकी भी बढ़ती हुई।

यह हालत हो रही थी, भारतवासी अपने मनमे झल्ला रहे थे, कि एकाएक 'काला प्लेग' फैल निकला। यह महामारी मारक थी। यह फेफडेका प्लेग था और गाठवाले प्लेगकी अपेक्षा भयकर समझा जाता था। किंतु खुशकिस्मतीसे प्लेगका कारण यह लोकेशन न था, बल्कि एक सोनेकी खान थी। जोहान्सबर्गके आसपास सोनेकी अनेक खाने हैं। उनमे अधिकांश हब्शी लोग काम करते हैं। उनकी सफाईकी जिम्मेदारी थी सिर्फ गोरे मालिकोके सिर। इन खानोपर कितने ही हिंदुस्तानी भी काम करते थे। उनमेसे तेईस आदमी एकाएक प्लेगके शिकार हुए और अपनी भयकर अवस्था लेकर वे लोकेशनमे अपने घर आए।

इन दिनों भाई मदनजीत 'इंडियन ओपीनियन' के ग्राहक बनाने और चढ़ा वसूल करने यहा आये हुए थे। यह लोकेशनमे चक्कर लगा रहे थे। वह काफी हिम्मतवर थे। इन बीमारोको देखते ही उनका दिल टूक-टूक होने लगा। उन्होंने मुझे पेंसिलसे लिखकर एक चिट भेजी, जिसका भावार्थ यह था

“यहा एक-एक काला प्लेग फैल गया है। आपको तुरंत यहा आकर कुछ सहायता करनी चाहिए, नहीं तो बड़ी खराबी होगी। तुरंत आइए।”

मदनजीतने बेवडक होकर एक खाली मकानका ताला तोड़ डाला और उसमे इन बीमारोको लाकर रक्खा। मैं साइकिलपर चढ़कर लोके-

शनमे पहुचा । वहामे टाउन-क्लर्कको खबर भेजी और कहलाया कि किस हालतमें मकानका ताला तोटना पडा ।

×

×

×

डाक्टर विलियम गाडफ्रे जोहान्मवर्गमे डाक्टरी करते थे । वह खबर मिलते ही दीडे आए और बीमारोके डाक्टर और परिचारक दोनों बन गये, परतु बीमार थे तेर्डम और सेवक थे हम तीन । इतनेसे काम चलना कठिन था ।

अनुभवोके आधापर मेरा यह विश्वास बन गया है कि यदि नीयत साफ हो तो मकटके समय सेवक और साधन कही-न-कहीमे आ जुटते हैं । मेरे दफ्तरमे कल्याणदास, माणिकलाल और दूसरे दो हिंदुस्तानी थे । आखिरी दोके नाम इस समय मुझे याद नहीं हैं । कल्याणदासको उसके बापने मुझे सौंप रखा था । उनके जैसे परोपकारी और केवल आज्ञा-पालनमे काम रखनेवाले सेवक मैंने कहा बहुत थोडे देखे होंगे । सीभाग्यसे कल्याणदास उस समय ब्रह्मचारी थे । इसलिए उन्हें मैं कैसे भी खतरेका काम सौंपते हुए कभी न हिचकता । दूसरे व्यक्ति माणिकलाल मुझे जोहान्मवर्गमे ही मिले थे । मेरा खयाल है कि वह भी कुवारे ही थे । इन चारोको चाहे कारकुन कहिए, चाहे साथी या पुत्र कहिए, मैंने इममे होम देनेका निश्चय कर लिया । कल्याणदामसे ता पूछनेकी जन्गन ही नहीं थी, और दूसरे लोग पूछते ही तैयार हो गये । “जहा आप तहा हम”—यह उनका मक्षिप्त और मीठा जवाब था ।

मि० रीचका परिवार बडा था । वह खुद तो कूद पडनेके लिए तैयार थे, किंतु मैंने ही उन्हें ऐसा करनेसे रोका । उन्हें इस खतरेमे डालनेके लिए मैं बिलकुल तैयार न था, मेरी हिम्मत ही नहीं होती थी । अतएव उन्होंने ऊपरका सब काम सम्हाला ।

शुश्रूपाकी यह रात भयानक थी । मैं इससे पहले बहुत-से रोगियोकी सेवा-शुश्रूपा कर चुका था । परतु प्तोगके रोगीकी सेवा करनेका अवसर

मुझे कभी न मिला था। डाक्टरोंकी हिम्मतने हमें निडर बना दिया था। रोगियोंकी शुश्रूषाका काम बहुत न था। उन्हें दवा देना, दिलासा देना, पानी-वानी दे देना, उनका मैला वगैरा साफ कर देना—इसके सिवा अधिक काम न था।

इन चारों नवयुवकोंके प्राणपणसे किये गए परिश्रम और ऐसे साहस और निडरताको देखकर मेरे हर्षकी सीमा न रही।

डाक्टर गाडफ्रेकी हिम्मत समझमें आ सकती है, मदनजीतकी भी समझमें आ जाती है—पर इन नवयुवकोंकी हिम्मतपर आश्चर्य होता है। ज्यो-त्यों करके रात बीती। जहां तक मुझे याद पड़ता है, उस रात तो हमने एक भी बीमारको नहीं खोया। (आ० क० १६२७)

: ६५ :

दादाभाई नवरोजी

दादाभाईका एक पवित्र स्मरणीय प्रसंग लिख देना चाहता हूँ। दादाभाई कमिटीके अध्यक्ष नहीं थे, तथापि हमें तो यही मालूम हुआ कि रुपये आदि इन्हींके द्वारा भेजना शोभा देगा। फिर वे भले ही हमारी ओरसे अध्यक्षको दे दिया करें। पर पहले-पहल ही जो रुपये उन्हें भेजे गये, उन्हें उन्होंने लौटा दिया और लिखा कि रुपए आदि भेजनेका कमिटी-सदधी काम हमें सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा ही करना चाहिए। दादाभाईकी सहायता तो थी ही, पर कमिटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा काम लेने हीसे बढ़ती। मैंने यह भी देखा कि यद्यपि दादाभाई इतने वयोवृद्ध थे, तथापि पत्र आदि भेजनेके काममें बड़े ही नियमित थे। अगर उनके पास लिखनेके लिए

और कुछ न होता तो कम-से-कम हमारे पत्रकी पहुँच तो लौटती ठाकसे अवश्य ही आ पहुँचती। उस पत्रमें भी आश्वामनके दो-एक शब्द रहते। ऐसे भी वे स्वयं ही लिखते और उन पहुँचनेवाले पत्रोंको भी अपने टिग्यूपेपर बुझमें छाप देते। (द० अ० म०, १९२५)

दादाभाई नवरोजीकी सीवी जयन्ती आगामी ४ मितबरको पड़ती है। श्रीभरुचाने समयपर ही उसकी याद हमें दिना दी है। हम दादाभाईको भारतका पितामह कहते थे। दादाभाईने अपना नारा जीवन भारतके अर्पण कर दिया था। दादाभाईने भारतकी सेवाको एक धर्म बना डाला था। स्वराज्य शब्द उन्होंने हमें मिला है। वे भारतके गरीबोंके मित्र थे। भारतकी दरिद्रताका दर्शन पहले-पहल दादाभाईने ही हमें कराया था। उनके तैयार किये अकोंको आजतक कोई गनन साबित न कर पाया। दादाभाई हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई किसीमें भेदभाव न रखने थे उनकी दृष्टिमें वे सब भारतकी मत्तान थे। और इसलिए सब समान रूपमें उनकी सेवाके पात्र थे। उनका यह स्वभाव उनकी दो पीढ़ियोंमें मोलहो आता दीख पड़ता है।

इस महान् भारत-सेवककी शताब्दी हम किस तरह मनावें ? नभाए तो होगी ही, वह भी अकेले शहरोंमें नहीं, बल्कि देहातमें भी, जहाँ-जहाँ तक महासभाकी आवाज पहुँचती है, वहाँ सब जगह। वहाँ करेंगे क्या ? उनकी स्तुति ? यदि यही करना हो तो फिर भाट-चारणोंको बुलाकर, उनकी कल्पना-शक्तिका तथा उनकी वाणीके प्रवाहका उपयोग करके क्यों न बैठ रहे ? पर यदि हम उनके गुणोंका अनुकरण करना चाहते हो तो हमें उनकी छानवीन करनी होगी और अपनी अनुकरण-क्षमताकी नाप निकालनी होगी।

दादाभाईने भारतकी दरिद्रता देखी। उन्होंने लिखाया कि 'स्वराज्य'

मुझे कभी न मिला था। डाक्टरोंकी हिम्मतने हमें निडर बना दिया था। रोगियोंकी शुश्रूषाका काम बहुत न था। उन्हें दवा देना, दिलासा देना, पानी-वानी दे देना, उनका मैला वगैरा साफ कर देना—इसके सिवा अधिक काम न था।

इन चारों नवयुवकोंके प्राणपणसे किये गए परिश्रम और ऐसे साहस और निडरताको देखकर मेरे हर्षकी सीमा न रही।

डाक्टर गाडफ्रेकी हिम्मत समझमें आ सकती है, मदनजीतकी भी समझमें आ जाती है—पर इन नवयुवकोंकी हिम्मतपर आश्चर्य होता है। ज्यो-त्यों करके रात बीती। जहां तक मुझे याद पड़ता है, उस रात तो हमने एक भी बीमारको नहीं खोया। (आ० क० १६२७)

: ६५ :

दादाभाई नवरोजी

दादाभाईका एक पवित्र स्मरणीय प्रसंग लिख देना चाहता हूँ। दादाभाई कमिटीके अध्यक्ष नहीं थे, तथापि हमें तो यही मालूम हुआ कि रुपये आदि इन्हींके द्वारा भेजना शोभा देगा। फिर वे भले ही हमारी ओरसे अध्यक्षको ठे दिया करें। पर पहले-पहल ही जो रुपये उन्हें भेजे गये, उन्हें उन्होंने लौटा दिया और लिखा कि रुपए आदि भेजनेका कमिटी-सबधी काम हमें सर विलियम बेडरवर्नके द्वारा ही करना चाहिए। दादाभाईकी सहायता तो थी ही, पर कमिटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम बेडरवर्नके द्वारा काम लेने हीसे बढ़ती। मैंने यह भी देखा कि यद्यपि दादाभाई इतने वयोवृद्ध थे, तथापि पत्र आदि भेजनेके काममें बड़े ही नियमित थे। अगर उनके पास लिखनेके लिए

और कुछ न होता तो कम-से-कम हमारे पत्रकी पहुच तो लीटती डाकसे अवश्य ही आ पहुचती। उस पत्रमे भी आग्वसनके दो-एक शब्द रहते। ऐसे भी वे स्वयं ही लिखते और उन पहुचनेवाले पत्रोको भी अपने टिश्यू पेपर बुकमे छाप लेते। (द० अ० स०, १९२५)

दादाभाई नवरोजीकी सौवी जयती आगामी ४ सितवरको पडती है। श्रीभरुचाने समयपर ही उसकी याद हमे दिला दी है। हम दादाभाईको भारतका पितामह कहते थे। दादाभाईने अपना सारा जीवन भारतके अर्पण कर दिया था। दादाभाईने भारतकी सेवाको एक धर्म बना डाला था। स्वराज्य शब्द उन्हीसे हमे मिला है। वे भारतके गरीबो-के मित्र थे। भारतकी दरिद्रताका दर्शन पहले-पहल दादाभाईने ही हमे कराया था। उनके तैयार किये अकोको आजतक कोई गलत साबित न कर पाया। दादाभाई हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई किसीमे भेद-भाव न रखते थे उनकी दृष्टिमे वे सब भारतकी सतान थे। और इसलिए सब समान रूपसे उनकी सेवाके पात्र थे। उनका यह स्वभाव उनकी दो पीत्रियोमे सोलहो आना दीख पडता है।

इस महान् भारत-सेवककी शताब्दी हम किस तरह मनावे ? सभाए तो होगी ही, वह भी अकेले गहरोमे नही, बल्कि देहातमे भी, जहा-जहा तक महासभाकी आवाज पहुचती है, वहा सब जगह। वहा करेगे क्या ? उनकी स्तुति ? यदि यही करना हो तो फिर भाट-चारणोको बुलाकर, उनकी कल्पना-शक्तिका तथा उनकी वाणीके प्रवाहका उपयोग करके क्यों न बैठ रहे ? पर यदि हम उनके गुणोका अनुकरण करना चाहते हो तो हमे उनकी छानवीन करनी होगी और अपनी अनुकरण-क्षमताकी नाप निकालनी होगी।

दादाभाईने भारतकी दरिद्रता देखी। उन्होने सिखाया कि 'स्वराज्य'

उसकी औषधि है। परतु स्वराज्य प्राप्त करनेकी कुजी तलाश करनेका काम वह हमारे जिम्मे छोड़ गये। दादाभाईकी पूजाका मुख्य कारण दादाभाईकी देशभक्ति थी और उस भक्तिमे वे बड़े लीन हो गये थे।

हम जानते हैं कि स्वराज्य प्राप्त करनेका सबसे बड़ा साधन चरखा है। भारतकी दरिद्रताका कारण है भारतके किसानोका सालमे छ या चार मास तक बेकार रहना। और यदि यह अनिवार्य बेकारी ऐच्छिक हो जाय अर्थात् काहिली हमारा स्वभाव बन बैठे तो फिर इस देशकी मुक्ति-का कोई ठिकाना नही। यही नही, बल्कि सर्वनाश इसका निश्चित भविष्य है। उस काहिलीको भगानेका एक ही उपाय है—चरखा। अतएव चरखा-कार्यको प्रोत्साहित करनेवाला हरेक कार्य दादाभाईके गुणोका अनुकरण है।

चरखेका अर्थ है खादी, चरखेका अर्थ है विदेशी कपडेका बहिष्कार, चरखेका अर्थ है गरीबोके भोपडोमे ६० करोड रुपयोका प्रवेश।

अखिल-भारत-देशवधु स्मारकके लिए भी चरखा ही तजवीज हुआ है। अतएव इस कोषके लिए उस दिन द्रव्य एकत्रित करना मानो दादाभाईकी जयती ही मनाना है। इसलिए उस दिन एकत्र होकर लोग विदेशी कपडोका सर्वथा त्याग करे। सिर्फ हाथ-कते सूतकी खादी पहने, निरतर कम-से-कम आधा घटा सूत कातनेका निश्चय दृढ करे और खादी-प्रचारके लिए धन एकत्र करे। कपास पैदा करनेवाले अपनी जरूरतका कपास घरमे रख ले।

परतु जिसे चरखेका नाम ही पसंद न हो वह क्या करे? उसके लिए मैं क्या उपाय बताऊँ? जिसे स्वराज्यका नाम तक न सुहाता हो उसे मैं शताब्दी मनानेका क्या उपाय सुझाऊँ? उसे अपने लिए खुद ही कोई उपाय खोज लेना चाहिए। मेरी सूचना सार्वजनिक है। यही हो भी सकता है। दादाभाईके अन्य गुणोकी खोज करके कोई उनका

अनुकरण चाहे तो जुदी बात है। वैसे दूसरे तरीकेमे जयती मनाने-का उमे हक है। अथवा फर्ज कीजिए, गहरोमे स्वराज्यवादी दल कोई खास बात करना चाहे तो वह अवश्य करे। मैं तो सिर्फ वही बात बता सकता हूँ जिसे क्या गहराती और क्या देहाती क्या बृद्ध और क्या बालक, क्या स्त्री और क्या पुरुष, क्या हिंदू और क्या मुसलमान, सब कर सकते हैं।

यदि हम लोग मेरी तजवीजके अनुसार ही दादाभाईकी जयती मनाना चाहते हो तो हमें आजसे ही तैयारी करनी चाहिए। आजसे हम उसके लिए चरखा चलाने लग जाय। आज हीमे हम उसके निमित्त खादी उत्पन्न करे और ऐसी सभाएं स्थान-स्थानपर करे जो हमें तथा देशको शोभा दे। (हि० न०, ६ ८ २५)

दूसरे, जिन कानूनको मैंने पढ़ा उनमे भारतवर्षके कानूनोका नाम तक न था। न यह जाना कि हिंदू-शास्त्र तथा इस्लामी कानून क्या चीज है। अर्जी-दावा तक लिखना न जानता था। मैं बड़ी दुविधामे पड़ा। फीरोजगढ़ मेहताका नाम मैंने सुना था। वह अदालतमे सिंह-ममान गर्जना करते हैं। यह कला वह इंग्लैंडमे किस प्रकार सीखे होंगे? उनके जैसी निपुणता इस जन्ममे तो नहीं आनेकी, यह तो दूरकी बात है, किंतु मुझे तो यह भी जवरदस्त गक था कि एक वकीलकी हैमियतमे मैं पेट पालनेतकमे भी समर्थ हो सकूँ या नहीं।

यह उथल-पुथल तो तभी चल रही थी, जब मैं कानूनका अध्ययन कर रहा था। मैंने अपनी यह कठिनाई अपने एक-दो मित्रोंके सामने रखी। एकने कहा—दादाभाईकी सलाह लो। दादाभाईके नाम परिचय-पत्रका उपयोग मैंने देरमे किया। ऐसे महान पुरुषमे मिलने जानेका मुझे क्या अविकार है? कहीं यदि उनका भाषण होता तो मैं सुनने चला जाता और एक कोनेमे बैठकर आख-कानको तृप्त करके वापस लौट आता।

उन्होंने विद्यार्थियोंके सपर्कमें आनेके लिए एक मडलकी स्थापना की थी। उसमें मैं जाया करता। दादाभाईकी विद्यार्थियोंके प्रति चिन्ता और दादाभाईके प्रति विद्यार्थियोंके आदर-भाव देखकर मुझे बड़ा आनन्द होता। आखिर हिम्मत बाधकर वह पत्र एक दिन दादाभाईको दिया। उनसे मिला। उन्होंने कहा—“तुम जब कभी मिलना चाहो और सलाह-मशविरा लेना चाहो, जरूर मिलना।” लेकिन मैंने उन्हें कभी तकलीफ न दी। वगैर जरूरी कामके उनका समय लेना मुझे पाप मालूम हुआ। इसलिए उस मित्रकी सलाहके अनुसार, दादाभाईके सामने अपनी कठिनाइयोंको रखनेकी मेरी हिम्मत न हुई। (आ० क०, १९२७)

(मद्यनिषेध विरोधी शिष्टमडलसे बातचीत करते हुए गांधीजीने कहा—)

शराबददी मुझे सिखानेवाले स्व० दादाभाई नवरोजी थे। मद्यनिषेध और मितपानके बीच भेद करना भी उन्होंने ही मुझे सिखाया था। (ह० से०, ७ ६ ३६)

: ६६ :

हरदयाल नाग

उन्होंने अनासक्तियोग साधा है। (म० डा० १० ७ ३२)

प्रिय हरदयाल बाबू,

आपका पत्र पाकर हम सबको बहुत आनन्द हुआ। इतनी पकी उमरमें आपने तकली सीखी, यह जानकर मुझे आपसे ईर्ष्या होती है। और यह भी बड़ी खुशीकी बात है कि आपका वजन १६ पौंड बढ़ गया।

सेवा करनेके लिए आप बहुत वर्ष जिये । आपके और आपकी तदुरुस्तीके वारेमें हम बहुत वार वाते करते हैं । हम सबका नमस्कार । (म० डा०, ५ ८ ३२)

ऐन मौकेपर सच्चा सदेश भेजनेमे आप हमेशा नियमित रहे हैं । इतनी उम्रमे इतना उत्साह दिखाकर आप देशके नौजवानोको गरमाते हैं । अभीके जैसा ही जोश कायम रखकर ईश्वर आपसे सौ बरस काम कराए । (म० डा०, १० १० ३२)

: ६७ :

नागप्पा

ट्रांसवालका जाडा बडा सख्त होता है । जाडा इतना भयकर पडता था कि सुबह काम करते-करते हाथ-पैर ठिठुर जाते थे । ऐसी स्थितिमे कितने ही कैदियोको एक छोटी-सी जेलमे रखा गया, जहा उन्हे कोई मिलने भी न पाए । इस दलमे नागप्पा नामक एक नौजवान सत्याग्रही था । उसने जेलके नियमोका पालन किया । उसे जितना काम दिया गया, सभी कर डाला । सुबह, पी फटते ही सडकोपर मिट्टी डालनेको वह जाता । नतीजा यह हुआ कि उसे फेफडेका सरत रोग हो गया और अतमे उसने अपने प्यारे प्राण अर्पित कर दिये । नागप्पाके साथी कहते हैं कि अत समय तक उसे लडाईकी ही धुन थी । जेल जानेसे उसे कभी पश्चात्ताप नही हुआ । देश-कार्य करते-करते आई मृत्युका उसने एक मित्रकी तरह स्वागत किया । हमारे नापसे नापा जाय तो नागप्पाको निरक्षर ही कहना पडेगा । अंग्रेजी, जुलु आदि भाषाए वह अपने अभ्यासके कारण बोल सकता

था, कुछ-कुछ अंग्रेजी लिख भी सकता था। पर विद्वानोंकी पक्षिमे तो उसे कदापि नहीं रखा जा सकता था। फिर भी नागप्पाके धीरज, उसकी शांति, देव-भक्ति और मौतकी घडी तक दिखाई गई उसकी दृढतापर विचार किया जाय तो कहना होगा कि उसमे किनी ऐसी बातकी न्यूनता न थी कि जिसकी हमें उससे आगा करनी चाहिए। हमें बहुत बड़े-बड़े विद्वान नहीं मिले, पर फिर भी द्रासवालका युद्ध रका नहीं। यदि नाग-प्पा जैसे गूर सिपाही हमें नहीं मिलते तो क्या वह युद्ध चल सकता था ?^{१०}
(द० अ० स०, १९२५)

: ६८ :

थंबी नायडू

थंबी नायडू तामिल सज्जन थे। उनका जन्म मारीशसमें हुआ था। उनके माता-पिता मद्रास इलाकेसे वहां आजीविकाके लिए गये हुए थे। श्री नायडू एक सामान्य व्यापारी थे। उन्होंने कोई भी शिक्षा पाठशालामें नहीं पाई। पर उनका अनुभव-ज्ञान बड़े ऊंचे दर्जेका था। अंग्रेजी अच्छी तरह बोल और लिख भी सकते थे, हालांकि भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे उसमें वे अवश्य गलतियां करते थे। तामिल भाषाका ज्ञान भी अनुभवसे ही प्राप्त किया था। हिंदुस्तानी अच्छी तरह समझ लेते और बोल भी सकते थे। तेलगूका भी कुछ ज्ञान रखते थे। पर हिंदी और तेलगूकी लिपियोंका ज्ञान उन्हें जरा भी न था। मारीशसकी भाषा भी जिसका नाम फ्रीओल है और जो अपभ्रष्ट फ्रेंच कही जा सकती है, उन्हें बहुत अच्छी तरह अवगत थी। इतनी भाषाओंका ज्ञान दक्षिण अफ्रीकामें कोई आश्चर्य-जनक बात न थी। दक्षिण अफ्रीकामें आपको ऐसे सैकड़ों भारतीय मिलेंगे

जिन्हें इन सभी भाषाओंका मामूली ज्ञान है । और इन सबके अतिरिक्त हवशियोंकी भाषाका ज्ञान तो उन्हें अवश्य ही होता है । इन सभी भाषाओंका ज्ञान वे अनायास प्राप्त करते हैं कर भी सकते हैं । इसका कारण मैंने यह देखा कि विदेशी भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करते-करते उनके दिमाग थके हुए नहीं होते । उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र होती है । उन भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियोंके साथ बोल-बोलकर और अवलोकन करके ही वे उन भाषाओंका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं । इससे उनके दिमागको जरा भी कष्ट नहीं होता, बल्कि इस रोचक व्यायामके कारण उनकी बुद्धि-का स्वाभाविक विकास ही होता है । यही हाल थवी नायडूका हुआ । उनकी बुद्धि भी बहुत तीव्र थी । नवीन प्रश्नोंको वे बड़ी फुर्तीके साथ समझ लेते । उनकी हाजिरजवाबी आश्चर्यजनक थी । भारत कभी नहीं आए थे पर फिर भी उनका उस पर अगाध प्रेम था । स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमें भरा हुआ था । उनकी दृढ़ता चेहरेपर ही चित्रित थी । उनका शरीर बड़ा मजबूत और कसा हुआ था । मेहनतसे कभी थकते ही न थे । कुर्सीपर बैठकर नेतापन करना हो तो उस पदकी भी शोभा बढ़ा दे । पर साथ ही हरकारेका काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीतिसे वे कर सकने थे । सिरपर बोझा उठाकर बाजारसे निकलनेमें थवी नायडू जरा भी न शरमाते थे । मेहनतके समय न रात देखते, न दिन । कौमके लिए अपने सर्वस्वकी आहुति देनेके लिए हर किसीके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे । अगर थवी नायडू हृदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता तो आज वह वीर पुरुष ट्रासवालमें काछलियाकी अनु-पस्थितिमें आसानीसे कौमका नेतृत्व ग्रहण कर सकता था । ट्रासवालके युद्धके अत तक उनके क्रोधका कोई विपरीत परिणाम नहीं हुआ था, बल्कि तबतक उनके अमूल्य गुण जवाहिरोके समान चमक रहे थे । पर बादमें मैंने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रबल शत्रु मावित हुए और उन्होंने उनके गुणोंको छिपा दिया । पर कुछ भी हो, दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-

युद्धमे थबी नायडूका नाम हमेशा पहले ही वर्गमे रहेगा । (द० अ० स०, १९२५)

: ६६ :

पी० के० नायडू

देश-निकालेकी सजा पाये हुए भाइयोके विषयमे यही तय हुआ कि उनके लिए वह सब किया जाय जो सहानुभूति और हमदर्दी कर सकती है । उनको आश्वासन दिया गया कि उनकी सहायताके लिए भारतमे यथाशक्ति व्यवस्था की जायगी । पाठकोको यह स्मरण रखना चाहिए कि इनमेसे अधिकांश तो गिरमिट-मुक्त ही थे । भारतमे कोई रिश्तेदार वगैरा उन्हें नहीं मिल सकते थे । कितनोका तो जन्म ही अफ्रीका-का था । सबको भारतवर्ष विदेशके समान मालूम होता था । इस तरहके निराधार मनुष्योको भारतके किनारेपर उतारकर उन्हें यहा-वहा भटकनेके लिए छोड़ देना तो जघन्य दुष्टता होती । इसलिए उनको यह विश्वास दिलाया गया कि भारतमे उनके लिए पूरी व्यवस्था कर दी जायगी ।

यह सब कर देनेपर भी उन्हें तबतक शांति कैसे मिल सकती थी, जब-तक कि कोई खास मददगार उनके साथ न कर दिया जाय ? देश-निकाले-की सजा पानेवालोका यह पहला ही दल था । स्टीमर छूटनेको कुछ ही घटोकी देरी थी । पसदगी करनेके लिए समय नहीं था । साथियोमेसे भाई पी० के० नायडूपर मेरी नजर गई । मैंने पूछा—

“इन गरीब भाइयोको भारत छोड़नेके लिए आप जा सकते हैं ?”

“बड़ी प्रसन्नताके साथ ।”

“पर स्टीमर तो अभी खुलने ही को है ।”

“तो मुझे कौन देरी है ?”

“पर आपके कपड़े वगैरह और खर्चा?”

“कपड़े तो शरीरपर है ही। रही खर्चकी बात, सो तो स्टीमरमे ही मिल जायगा।”

मेरे हर्ष और आश्चर्यकी सीमा न रही। पारसी रुस्तमजीके मकानपर यह बातचीत हुई थी। वहीसे उनके लिए कुछ कपड़े, कवल वगैरा माग-मूग कर उन्हें रवाना कर दिया।

‘देखिए भाई, राहमे इन भाइयोको अच्छी तरह सभालकर ले जाइए। इनको सुलाकर फिर आप सोइए और खिलाकर खाइए। मदरासके मि० नटसनके नाम मैं तार भेज देता हू। वह जैसा कहे वही कीजिए।’

“एक सच्चा सिगाही बननेको मैं कोशिश करूँगा।” यह कहकर वह निकल पड़े। मुझे निश्चय हो गया कि जहा ऐसे-ऐसे वीर पुरुष हैं, वहा कभी हार हो ही नहीं सकती। भाई नायडूका जन्म दक्षिण अफ्रीकामे ही हुआ था। उन्होंने कभी भारतवर्षका दर्शन तक नहीं किया था।
(द० अ० स० १९२५)

: १०० :

श्रीमती सरोजिनी नायडू

सरोजिनीदेवी आगामी वर्षके लिए महासभाकी सभानेत्री निर्वाचित हो गईं। यह सम्मान उनको पिछले वर्ष ही दिया जाने वाला था। बड़ी योग्यता द्वारा उन्होंने यह सम्मान प्राप्त किया है। उनकी असीम शक्तिके लिए और पूर्व और दक्षिण अफ्रीकामे राष्ट्रीय प्रतिनिधिके रूपमे की गई महान सेवाओके लिए वे इस सम्मानकी पात्र हैं और आजकलके दिनोमे जब कि स्त्री-जातिके अदर भारी जागृति हो रही है, स्वागत-

कारिणी-समितिका भारतवर्षकी एक सर्वोत्तम प्रतिभागालिनी पुत्रीको सभापति चुनना भारतवर्षकी स्त्री-जातिका समुचित सम्मान करना है। उनके सभापति चुने जानेसे हमारे प्रवासी देगभाइयोको पूर्ण सतोष होगा और इससे उनके अदर वह साहस पैदा होगा, जिससे वे अपने सामने उपस्थित लड़ाईको लड़ सकेंगे। राष्ट्रद्वारा दिये जानेवाले सबसे ऊँचे पदपर उनका होना स्वतन्त्रताको हमारे अधिक समीप लावे। (हि० न०, ८ १०.२५)

अमेरिकाके लिए श्री सरोजिनीदेवीने गत १२ ता० को हिंदुस्तानका किनारा छोड़ा। यूरोप, अमेरिका, इत्यादि मुल्कोमें अपनी स्थायी सभाएं स्थापित करके या समय-समयपर अपने प्रतिनिधि भेजकर हमारे वारेमें जो भूठी मान्यताएं प्रचलित हो गई हैं, उन्हें दूर करनेकी आगा अनेको आदमी रखते हैं। मुझे यह आशा हमेशा ही गलत जान पड़ी है। ऐसा करनेसे हम सार्वजनिक धनका और जिनका और अच्छा उपयोग हो सकता है उन लोगोंके समयका दुरुपयोग करेंगे। किंतु पश्चिममें अगर किसीका जाना फल सकता है तो सरोजिनी देवीका या कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका जाना अवश्य फल सकता है। सरोजिनीदेवीका नाम उनके काव्योंसे पश्चिममें प्रसिद्ध है। उनमें चतुराई भी वैसी ही है। उन्हें यह भली भांति मालूम है कि कहा, क्या और कितना कहना चाहिए। किसीको दुःख पहुंचाये बिना खरी-खरी सुना देनेकी कला उन्होंने साधी है। जहां कहीं वे जाती हैं, उनकी बात सुने बिना लोगोंका काम चलता ही नहीं है। दक्षिण अफ्रीकामें अपनी शक्तिका संपूर्ण उपयोग करके उन्होंने वहांके अंग्रेजोंका मनहरण किया था और सुंदर विजय प्राप्त करके सर हवी-बुल्ला-प्रतिनिधि-मंडलका रास्ता साफ किया था। वहांका काम कठिन था। किंतु वहापर उन्होंने अपनी मर्यादा निश्चित करके कानूनके जाल-पेचोंमें न पड़ते हुए, मुख्य बातमें लगे रहकर अपना काम भलीभांति किया

था और हिंदुस्तानका नाम चमकाया था। ऐसा ही काम वे अमेरिका आदि देशोंमें भी करेगी। अमेरिकामें उनकी हाजिरी ही मिस मेयोके असत्यका जवाब हो जायगी। उनका साहस भी उनकी दूसरी शक्तियोंके ही समान है। परदेश जानेमें न तो उन्हें किसीकी सहायताकी आवश्यकता रहती है और न किसी मंत्रीकी ही। जहाँ कहीं जाना हो वे अकेले निर्भयतासे विचर सकती हैं। उनकी ऐसी निर्भयता स्त्रियोंके लिए तो अनुकरणीय है ही पुरुषोंको भी लजानेवाली है। हम अवश्य यह आशा रख सकते हैं कि उनकी पश्चिमकी यात्रामेंसे अच्छा फल निकलेगा।
(हि० न०, २०-६-२८)

अमेरिकामें कई-एक मित्रोंके पत्र बराबर मेरे पास आते रहते हैं, जिनमें सरोजिनीदेवीके कामकी प्रगति रहती है। मित्र लिखते हैं कि सरोजिनी देवी अमेरिकामें बड़े महत्वका काम कर रही है और अपनी सारी ईश्वरदत्त प्रतिभाका इस देशके लिए पूरा-पूरा उपयोग कर रही है। इसमें शक नहीं कि उन्होंने अमेरिकावासियोंका मन मोह लिया है। कनाडाकी एक बहनने एक लंबे पत्रमें अपने कुछ अनुभव लिखकर भेजे हैं, उसमें थोड़ी से बातें नीचे देता हूँ

“सरोजिनीदेवी थोड़े समयके लिए मेरी मेहमान बनी थीं। आपके उन मित्र और दूतसे मिलकर मैंने अपने आपको बड़ा भागी पाया है। मैं खुद एक स्त्री हूँ, वह भी स्त्री ही हैं। साथ ही वह तो कवि और सुधारक हैं, इसीलिए उन्होंने मेरा हृदय और भी चुरा लिया है। उनकी आत्माका मुझपर बहुत ज्यादा असर हुआ है और इतने दिनोंके बाद भी उनके मिलापकी बात हमारे हृदयमें जैसी-की-तैसी बनी हुई है। जिस गिरजाघरमें सरोजिनीदेवीने व्याख्यान दिया था वह तो श्रोताओंसे खचाखच भर गया था। उनके ज्ञानकी, उनके अनुभवकी, उनकी काव्यशक्तिकी, उनके मधुर व्यक्तिकी, उनके विनोदकी

और अंग्रेजी भाषापर उनके प्रभुत्वकी मैं आपसे क्या बात कहूँ ? जैसे-जैसे उनकी वाणीका प्रवाह बढ़ता गया, वैसे-वैसे लोग मारे आश्चर्यके चकित होते गये और आखिरकार उनके गुणोपर पूरे-पूरे मुग्ध होगये । उन्होंने हमारे सामने जितनी भी समस्याएँ रखी, हममेसे कोई भी उनका उत्तर न दे सका । मेरे पास एक व्यवहार-कुशल व्यापारी बैठे हुए थे, उन्होंने समाधिचिह्न होकर उनका सारा व्याख्यान सुना । जो प्रश्न पूछे गये सरोजिनीदेवीने उनके ठीक-ठीक उत्तर दिये और बीच-बीचमे जिस ढंगसे उन्होंने विनोदका सहारा लिया उसे देखकर तो पूर्वोक्त व्यापारी महाशयसे बोले बिना न रहा गया । उन्होंने कहा, “ऐसी शक्ति तो मैंने किसी भी दूसरी स्त्रीमें नहीं देखी । अगर सच कहूँ, मेरी रायमें कोई भी पुरुष इनके मुकाबलेमें खड़ा नहीं रह सकता ।” वर्तमान भारतके विषयमे उन्होंने जो कुछ कहा, वह बहुत ज्यादा असर करनेवाला था । उन्होंने हमारी न्याय-प्रियताको जागृत किया, हमारे हृदयोको पानी-पानी कर दिया और हमे उसी समय यह अनुभव होने लगा कि आपके वहाँ भी उसी तरहका राज्यतंत्र होना चाहिए जैसा हमारे यहाँ है । सरोजिनीदेवीकी रचनामे मालूम होता है, ईश्वरने कई रंग पूरे हैं । उन्हें भोजनके समय मिलिये या सम्मेलनोंमें मिलिये, सामान्य वार्तालापके लिए मिलिये अथवा और किसी कामके लिए, हर हालतमे उनकी प्रतिभा बिखरी पड़ती थी । उनके उत्साहका तो पार ही नहीं है । कई निमंत्रणोको स्वीकार कर चुकी हैं, एक ही दिनमें कई जगह जाती हैं, लेकिन मालूम नहीं होता कि थकी हुई हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके पास शक्तिका कोई अटूट भंडार है ! लोकप्रियतासे वह फूल नहीं उठती, यहाँकी सब अच्छी चीजें उन्हें पसंद हैं । वह बच्चोंको प्यार करती हैं, सुंदर फूल उनका मन चुरा लेते हैं, हमारे वृक्ष, हमारे सरोवर और हमारी नदियाँ उन्हें आनंद प्रदान करती हैं, फिर भी वह भविष्यको नहीं भूलतीं । यानी, स्त्री-

जातिमें जो कमजोरिया रहती है और प्रशंसाके कारण जिस तरह बहुधा रित्रया अपना आपा भूल जाती है, उस तरहका भय मुझे सरोजिनीदेवीके बारेमें नहीं है ।”

मैं नहीं समझता कि इन वहनने जिस शब्दोंमें सरोजिनीदेवीकी शक्तिका वर्णन किया है उनमें कोई बात बढाकर लिखी गई है । सरोजिनीदेवीमें वस्तुस्थितिको पलभरमें समझ लेनेकी अपूर्व शक्ति है । वह अपनी मर्यादाको समझती है । अर्थशास्त्रियों और राजनैतिक नेताओंकी वारीकीमें वह कभी नहीं उतरती । इस तरहके ज्ञानका न तो वह कभी दावा करती है और न आडवर ही । साधारण आदमीके पास जितना ज्ञान होता है, उतने ही ज्ञानकी पूजासे वह अपना काम इतनी चतुराईसे कर लेती है कि सामनेवाला आदमी उन्हें कभी उलझनमें डाल ही नहीं सकता । उलटे जो कुछ उनसे ग्रहण करता है उसीमें इतना सतोष अनुभव करता है, मानो उसे सबकुछ मिल गया हो । (हि० न०, २१ २ २६)

सरोजिनी नायडूको वह चीज लागू नहीं होती । वह कोई आश्रमवासी तो है नहीं, बहुत चीजोंमें मेरा विरोध भी कर लेती है । मैं तो गुणोंको ही देखता हूँ । मैं खुद कहा दोषरहित हूँ कि किसीके दोष देखू । वह तो अपना स्वतंत्र स्थान रखती है । उसने अपना मार्ग निकाल लिया है । (का०क०, २४ ६ ४२)

‘मैंने रात भी कहा था कि यह सब जो तुम लोगोंने किया है,’ करने जैसा नहीं था । सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढ़िया कर लेती है, मगर सच्ची सस्कृतिकी कीमत देकर । जो चीज मैं कहता हूँ उसमें सच्ची सस्कृति है ’ (का०क०, ३-१०-४२)

‘अपने जन्मोत्सवकी ओर सकेत है ।

: १०१ :

जयप्रकाश नारायण

श्री जयप्रकाश नारायण और श्री संपूर्णनिदजीने साफ शब्दोंमें कह दिया है कि हम २६ जनवरीको ली जानेवाली प्रतिज्ञामें जो भाग जोड़ा उसके खिलाफ हैं। मुझे उनका बड़ा लिहाज है। वे योग्य हैं, वीर हैं और उन्होंने देशकी खातिर कण्ठ उठाए हैं। लड़ाईमें वे मेरे साथी बन सके तो इसे मैं अपना सौभाग्य समझू। मैं उन्हें अपने विचारका बना सकू तो मुझे कितनी खुशी हो। लड़ाई आनी ही है और मुझे उसका नायक बनना है तो यह काम मैं ऐसे सहायकोंके भरोसे नहीं कर सकता, जिनका कि कार्य-क्रम पर अबूरा विश्वास हो या जिनके दिलमें उसके बारेमें शकाए हो।

श्री जयप्रकाश नारायणने अपनी और समाजवादी दलकी स्थिति साफ करके अच्छा किया। रचनात्मक कार्य-क्रमके बारेमें वे कहते हैं— हमने इस अपनी लड़ाईके एकमात्र या पूरी तरह कारगर हथियारके रूपमें कभी स्वीकार नहीं किया है। इन मामलोंमें हमारे विचार ज्यों-के-त्यों बन हुए हैं। मौजूदा सकटकालमें हमारे राष्ट्रीय नेताओंकी लाचारी देखकर वे विचार कुछ सजदूत ही हुए हैं। उस दिन विद्यार्थियोंको स्कूल-कालेजोंसे निकल आना चाहिए और मजदूरोंको काम बंद कर देना चाहिए।

अगर अधिकांश कांग्रेसियोंका यही विचार है जो श्री जयप्रकाशने समाजवादी दलकी तरफसे प्रकट किया है तो मैं इस तरहकी सेनाको साथ लेकर सफलता पानेकी कभी आशा नहीं रख सकता। उनकी न कार्य-क्रममें श्रद्धा है, न वर्तमान नेताओंमें। मेरे खयालसे जिस कार्यक्रमपर वे सिर्फ राष्ट्रके नेताओंकी इच्छाके कारण ही चलनेकी बात कहते हैं

उसकी उन्होंने बिल्कुल अनजानमे ही सही निंदा कर दी। जरा ऐसी फौजकी कल्पना तो कीजिए जो लडाईके लिए कूच करनेवाली है, लेकिन न तो जिन हथियारोसे काम लेना है उनमें उसका विश्वास है और न जिन नेताओने यह हथियार बताये है उनपर श्रद्धा है। ऐसी सेना तो अपना, अपने नायकोका और कामका सत्यानाश ही कर सकती है। मैं श्री जयप्रकाशकी जगह होऊ और मुझे लगे कि मैं अनुशासनका पालन कर सकता हू तो मैं अपने दलको चुपचाप घरमे बैठे रहनेकी सलाह दू। अगर ऐसा न कर सकू तो निकम्मे नेताओकी बुरी योजनाओको मटियामेट करनेके लिए खुनी वगावतका भडा फहरा दू।

श्री जयप्रकाश चाहते हैं कि विद्यार्थी स्कूल-कालिजोसे निकल आए और मजदूर काम छोड़ बैठे। यह तो अनुशासन भग करनेका पाठ पढाना हुआ। मेरी चले तो मैं हर विद्यार्थीसे कहू कि छुट्टी न मिले या प्रिंसोपल छव्रोस जनवरीको उत्सवमे भाग लेनेके लिए स्कूल या कालिज बद करनेका फैसला न करे तो उन्हें स्कूल या कालेजमे ही रहना चाहिए। इसी तरहकी सलाह मैं मजदूरोको दूंगा। श्री जयप्रकाशकी गिकायत है कि स्वाधीनताके दिन जो काम करना है उसके वारेमे कार्यसमितितने कोई तफसील नहीं बताई। मैंने समझा था कि जब भाईचारेका और खादीका कार्यक्रम है तो फिर तफसीलवार हिदायत देनेकी क्या जरूरत है? मुझे आशा है कि हर जगह कांग्रेस-कमेटिया कताई-प्रदर्शन, खादी-फेरी और ऐसे ही दूसरे आयोजन करेगी। मैं देखता हू कि कुछ कमेटिया तो ऐसा कर भी रही हैं। मैंने कांग्रेस कमेटियोसे आगा तो यह रक्खी थी कि जिस दिन कार्यसमितिका प्रस्ताव प्रकाशित हो जाय उसी दिनसे तैयारिया शुरू हो जायगी। मैं राष्ट्रकी तैयारी सिर्फ इसी बातसे नहीं जानूंगा कि देश-भरमे कितना सूत काता गया, बल्कि मुख्यत इस बातसे जानूंगा कि खादी कितनी बिकी।

अतमे श्री जयप्रकाशका कहना है कि हमने अपनी तरफसे तो एक

नया कार्य-क्रम मजदूर और किसान संगठनका बनाया है, ताकि उसके पायेपर क्रांतिकारी सार्वजनिक आंदोलन चलाया जाय ।

इस तरहकी भाषासे मुझे डर लगता है । मैंने भी संगठन तो किसान और मजदूर दोनोंका किया है, मगर शायद उस तरहपर नहीं किया जैसा श्री जयप्रकाशके जीमें है । उनके वाक्यको और खोलकर समझानेकी जरूरत है । अगर उनका संगठन पूरी तरह शांतिपूर्ण न हो तो उससे अहिंसक कार्रवाईको उसी तरह नुकसान पहुंच सकता है जिस तरह कि रोलट कानून-वाले सत्याग्रहको पहुंचा था और बादमें ब्रिटिश युवराजके आने पर बंबईकी हडतालके समय पहुंचा था । (ह० से०, २० १.४०)

श्री जयप्रकाश नारायणकी गिरफ्तारी एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना है । वे कोई साधारण कार्यकर्त्ता नहीं हैं । समाजवादके वे महान् विशेषज्ञ हैं । कहा जा सकता है कि पाश्चात्य समाजवादकी जो बात उन्हें मालूम है उसे हिंदुस्तानमें और कोई भी नहीं जानता । वे कुशल योद्धा भी हैं । देशकी स्वाधीनताके लिए उन्होंने सर्वस्व त्याग किया है । वे अविरत उद्योगशील हैं । उनकी कष्टसहिष्णुता अतुलनीय है । मैं नहीं जानता कि उनका कौन-सा भाषण कानूनके पजेमें आ गया है । लेकिन अगर दफा १२४ 'ए' या भारत-रक्षा कानूनकी अति कृत्रिम धाराएं असुविधाजनक व्यव्थितियोंको गिरफ्तार करनेके काममें लाई जाती हैं तो कोई भी व्यक्ति, जिसे अधिकारी चाहे, कानूनकी बर्दशमें आ सकता है । मैं इससे पहले ही कह चुका हू कि सरकार चाहे तो सघर्ष अविलंब आरंभ कर सकती है । ऐसा करनेका उसे पूरा हक है । लेकिन मैं दृढ़तासे यह आशा बांधे हू कि युद्धको उसी समय तक अपने उचित मार्गपर चलने दिया जायगा जबतक कि वह सर्वथा अहिंसात्मक रहेगा । चाहे जो हो, भ्रमजाल नहीं चलने देना चाहिए । अगर श्री जयप्रकाश नारायण पर हिंसा का अभियोग है तो उसे प्रमाणित किया जाना चाहिए । सच तो यह है कि इस

गिरफ्तारीसे लोगोको ऐसा लगने लगा है कि ब्रिटिश सरकार दमन करना चाहती है। ऐसी स्थितिसे इतिहासकी पुनरावृत्ति होगी। पहले सविनय-भंग आन्दोलनके समय सरकारने अली-बन्धुओको गिरफ्तार कर दमनका श्रीगणेश किया था। पता नहीं कि यह गिरफ्तारी पूर्व निश्चित कार्यक्रमके अनुसार की गई है या किसी बहुत जोशीले अधिकारीकी भूल है। अगर यह किसी अधिकारीकी भूल ही है तो इसका सुधार हो जाना चाहिए। (ह० से०, २३ ३४०)

श्रीजयप्रकाशनारायणने अदालतमे जो वयान दिया उसकी नकल उन्होंने मेरे पास भेजी थी। यह उनके योग्य है, वीरोचित है, छोटा-सा और मुद्देसर है। जैसा कि उन्होंने खुद कहा है, यह दुर्भाग्यकी बलिहारी है कि उन्हे देश-प्रेमके लिए सजा दी जा रही है। जो बात लाखों सोचते और हजारों बातचीतमे कहते हैं वही श्रीजयप्रकाशने सार्वजनिक रूपमे और जो लोग लडाईका सामान तैयार करते हैं, उन्हीके सामने कह दी। यह सही है कि उनकी बातका असर हो और वह बार-बार कही जाय तो सरकार तग होगी। मगर इस तरह तग होकर उसे किसी देश-भक्तको, उसके खुलकर विचार करनेका दंड देनेके बजाय, यह सोचना चाहिए कि हिंदुस्तानके साथ कैसा वर्ताव करना चाहिए।

वयानके आखिरी हिस्सेसे वयान देनेवालेकी गहरी मानवीयताका प्रमाण मिलता है। उनके दिलमे कोई मैल नहीं। वे साम्राज्यवाद और नात्सीवादका नाश करना चाहते हैं। उनका अंग्रेजों या जर्मनोंसे कोई झगडा नहीं। उन्होंने सच कहा है कि इंग्लैंड साम्राज्यवाद छोड़ दे तो न सिर्फ भारत, बल्कि तमाम दुनियाके स्वतंत्रता-प्रेमी मनुष्य नात्सीवादकी हार और स्वतंत्रता और लोकतंत्रकी विजयके लिए पूरी कोशिश करेंगे (ह० से०, ३० ३४०)

श्री जयप्रकाशनारायण और डॉक्टर राममनोहर लोहियाके नाम तो आपने सुने ही हैं। दोनों विद्वान् हैं। उन्होंने अपनी विद्वताका प्रयोग पैसा कमानेके लिए नहीं किया। देशकी गुलामीको देखकर वे अवीर हो उठे। उन्होंने अपना सबकुछ देशके अर्थण कर दिया और उसको गुलामोंकी जजोरीको तोड़नेमे लग गये। सरकारको उनसे डर लगा और उसने उन्हें जेलमे डाल दिया। अगर मैं राज्य चलानेवाला होऊ तो शायद मैं भी ऐसे लोगोसे डरू और उन्हें जेलमे रखू।

सरकारने यह समझकर कि अब हमे आजादीसे वंचित नहीं रखना है, श्री जयप्रकाशनारायण और श्री राममनोहर लोहियाको छोड़ दिया है। सरकार समझ गई है कि उन्होंने उसका पाप भले ही किया हो, सत्याग्रही गांधीका भी पाप किया हो, लेकिन ४० करोड़ जनताका उन्होंने कोई पाप नहीं किया। जेलसे भागना आदि मेरी समझमे पाप है। लेकिन मैं जानता हू कि उनके मनमे भी आजादीकी उतनी ही लगन है, जितनी मेरेमे। इसलिए वे मेरी नजरमे गिरते नहीं हैं। मैं उनकी बहादुरीको कदर करता हू।

सरकारका उन दोनोंको और आजाद हिंद फौजवालोको छोड़ देना मेरी समझमे शुभ शकुन है। उसके लिए हम सरकारको धन्यवाद दे और ईश्वरका उपकार माने कि उसने उसे सन्मति दी। (ह० से० २१ ४ ४६)

: १०२ :

निवारणबाबू

पुरुलियाके निवारणबाबू, जिनका अभी हालमें स्वर्गवास हो गया है, बड़े ही विनम्र स्वभावके पुरुष थे। जिस तरह हरिजनोके सच्चे सेवक

थे, उसी तरह वे समस्त दीन-हीनोके सच्चे वरु थे । अहिंसाकी अनुपम सुंदरताका उन्होंने खूब गहरे जाकर साक्षात्कार किया था और उमें अपने जीवनमें उतारनेका वे अहर्निश प्रयत्न करते रहते थे । उनका जीवन उनके अनेक मित्रों और अनुयायियोंके लिए प्रेरणाप्रद था और वे भारीसे भी भारी संकटके समय निवारण वावूसे पथ-प्रदर्शन तथा आश्वासनकी आशा रखते थे । उनके मित्रों और अनुयायियोंको उनके जीवनकी स्मृति सदा शक्तिप्रद रहे और उन्हें सन्मार्गपर उत्तरोत्तर प्रगति करनेकी स्फूर्ति दे । (ह० से०, ६ न ३५)

: १०३ :

भगिनी निवेदिता

मैं भूल ही नहीं सकता कि इसने पहली ही मुलाकातमें अंग्रेजोंके लिए अत्यंत तिरस्कार और द्वेषके वचन कहे थे । मुझपर कुछ दिखावटकी छाप पड़ी थी, मगर दूसरे कई लोग कहते हैं कि वह गरीब-से गरीब भगियोंके मुहल्लेमें रहती थी । इसलिए यह सबूत मेरे लिए काफी है । दूसरी बार पादशाहके यहां मिली थी । वहां पादशाहकी बूढ़ी माने एक कटाक्ष किया था वह याद रह गया है—इस वहनसे कहिये कि इसने अपना धर्म तो छोड़ दिया है । अब मुझे क्या मेरा धर्म समझाती है ? (म० डा० १ न ३२)

: १०४ :

कमला नेहरू

गत १६ तारीखको इलाहाबादमे मुझे कमला नेहरू स्मारक अस्पताल की आधार-शिला रखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह अस्पताल एक सच्ची देश-सेविका और महान् आध्यात्मिक सौन्दर्य रखनेवाली महिलाका न केवल उपयुक्त स्मारक होगा, बल्कि उन्हें दिये हुए मेरे इस वचनकी पूर्ति भी उससे हो जायगी कि उनकी मृत्युके बाद भी मैं यह देखते रहनेका प्रयत्न करता रहूंगा कि जिस कामकी उन्होंने अपने ऊपर जिम्मेदारी ले रखी थी वह ठीक तरहसे चल रहा है या नहीं। वे अपने स्वास्थ्यकी शोधमे यूरोप जा रही थी। उनकी वह यूरोप-यात्रा मृत्यु-शोधकी यात्रा साबित हुई। जाते वक्त उन्होंने मुझे लिखा था कि मैं या तो उनके साथ-साथ बबईतक चलू या उन्हें देखने सीधे बबई पहुँच जाऊँ। मैं बबई गया। उन्हें जो थोड़ा-सा वक्त मैं दे सका, उस बीचमे उन्होंने मुझसे कहा—“अगर मेरा शरीर यूरोपमे छूट जाय तो जवाहरलालजीने स्वराज्य-भवनमे जो अस्पताल खोल रखा है और जिसे कायम रखनेके लिए मैंने इतना परिश्रम किया है उसे देखते रहनेका आप प्रयत्न करते रहेगे न कि उसकी नीव स्थायी हो गई है?” मैंने उन्हें वचन दे दिया कि मुझसे जो कुछ हो सकेगा वह जरूर करूंगा। इस स्मारक-कोषके लिए जो अपील निकाली गई थी उसमे मेरे शामिल होनेका आधार अशत मेरा यह वचन भी था। (ह० से०, २५ ११ ३६)

: १०५ :

जवाहरलाल नेहरू

५

“महासभाके सभापतिकी जिम्मेदारी हरसाल अधिकाधिक बढ़ती जाती है । इस वक्त हमारे सामने वह गभीर प्रश्न उपस्थित है कि अगले सालके लिए राष्ट्रपतिका ताज कौन पहने ? क्योंकि अबकी बार तो मेरी सम्मतिमे पडित जवाहरलाल नेहरूको यह ताज पहनना चाहिए । अगर मैं निर्णयके समय अपना प्रभाव डाल सका होता तो वह चालू वर्षके भी राष्ट्रपति होते, मगर वगालकी जोरदार मागने ‘पुराने साथी’ को ही सिंहासनपर बैठानेको विवश किया ।

बूढ़े नेता अब अपना कार्यकाल समाप्त कर चुके हैं । भावी सग्राममे जूझनेका काम नवयुवको और नवयुवतियोंका है । और यह उचित ही है कि उनके नेतृत्वके लिए उन्हीमे से कोई खडा किया जाय । बूढ़ोको चाहिए कि समयकी गतिको परखे, नही तो जो चीज वे अपनी सहज उदारतासे न देगे वह उनसे जवर्दस्ती छीन ली जायगी । जब जिम्मेदारीका बोझ सरपर आ पड़ेगा, नोजवान अपने आप सौम्य और गभीर बनेगे और उस उत्तरदायित्वको उठानेके लिए तैयार रहेंगे, जो उन्हीको सम्हालना है । पडित जवाहरलाल हर तरह सुयोग्य है । उन्होने वर्षोतक अनन्य योग्यता और निष्ठाके साथ महासभाके मंत्रीका काम किया है । अपनी बहादुरी, दृढ़ सकल्प, निष्ठा, सरलता, सचाई और धैर्यके कारण उन्होने देशके नौजवानोंका मन मुट्ठीमे कर लिया है । वह किसानों और मजदूरोंके भी सपर्कमें आये हैं । यूरोपीय राजनीतिका जो सूक्ष्म परिचय उन्हें है, उससे उन्हें स्वदेशकी राजनीतिको समझने और निर्माण करनेमे बड़ी सहायता मिलेगी ।

लेकिन कुछ वयोवृद्ध नेता कहते हैं कि जबकि हमे सभवत महासभाके

बाहरके अनेक दलोके साथ गभीर और नाजुक चर्चा छेड़नी पड़ेगी, जब सम्भवतः ब्रिटिश कूटनीतिसे मोर्चा लेनेका भी समय आवेगा और जबकि हिंदू-मुस्लिम समस्या अभी हमारे सामने उलझी ही पड़ी है, ऐसे समयमें नेतृत्वके लिए आप-जैसे किसी व्यक्तिके हाथमें देशकी बागडोरका होना आवश्यक है। इस दलीलमें तथ्यकी जितनी बात है, उसका पर्याप्त उत्तर इस कथनमें आ जाता है कि क्षेत्र-विशेषके लिए मुझमें जो भी खूबियां हैं, उनका प्रयोग मैं उस हालतमें और भी अच्छी तरह कर सकूंगा जबकि मैं हर तरहके पद-भारसे मुक्त और पृथक् रहूंगा। जबतक जनताका मुझ-पर विश्वास और प्रेम बना हुआ है, इस बातका जरा भी डर नहीं है कि पदाधिकारी न होनेकी वजहसे मैं, अपनी शक्तियोंका, जो मुझमें हो सकती है, संपूर्ण उपयोग न कर सकूंगा। ईश्वर-कृपासे बिना किसी पदको स्वीकार किये ही मैं १९२० से देशके जीवनको प्रभावित करनेमें समर्थ हो सका हूँ। मैं नहीं समझता कि बेलगाव महासभाका सभापति बननेसे मेरी सेवा-क्षमता थोड़ी बड़ी हो।

और जिन्हें यह पता है कि जवाहरलालका और मेरा क्या संबंध है, वे यह भी जानते हैं कि वह सभापति हुए तो क्या और मैं हुआ तो क्या। विचार या बुद्धिके लिहाजसे हममें मतभेद भले ही हो, हमारे दिल तो एक हैं। दूसरे, जीवन-सुलभ उन्नताके रहते हुए भी, अपने कड़े अनुशासन और एकनिष्ठादि गुणोंके कारण वह एक ऐसे अद्वितीय सखा है, जिनमें पूरा-पूरा विश्वास किया जा सकता है।

इतनेमें एक दूसरे आलोचक कानोंके पास आकर कहते हैं—क्या जवाहरलालका नाम अंग्रेज-बुलके लिए लाल चीथड़ेका काम नहीं करेगा? मैं कहता हूँ कि जब हम इन कल्पित आलोचकोंकी तरह तर्क करते हैं तब न तो राजनीतिज्ञोंकी व्यवहार-पटुता और कूट चातुर्यकी कद्र करते हैं और न स्वयं अपनी शक्तिमें ही विश्वास रखते हैं। राष्ट्रपति चुनते समय इस बातका खयाल रखना कि अंग्रेज राजनीतिज्ञ

हमारे चुनावपर क्या कहेंगे, अपनेमे आत्मविश्वासकी कमी प्रकट करना है। आलोचक अंग्रेज-स्वभावके जितने पारखी हो सकते हैं, उनसे अधिक उसका पारखी मैं हूँ। एक अंग्रेजकी दृष्टिमें सच्चाई वीरता, धैर्य और स्पष्टवादिता बहुमूल्य गुण हैं और जवाहरलालमें ये सब प्रचुर परिमाणमें पाये जाते हैं। अतएव अगर चुनावके समय ब्रिटिश राज-नीतिज्ञोंका भी विचार कर लिया जाय तो भी पंडित जवाहरलाल उनके अंदाजसे किसी कदर कम नहीं उतरते।

और आखिर यह तो है कि महासभाका सभापति कोई एकाधिकारी या निरकुश नहीं होता। उसका दर्जा एक प्रतिनिधिका है, जिमें एक प्रख्यात परंपरा और सुसंवर्धित संगठनके भीतर रहकर काम करना होता है। ब्रिटेनके राजाको जनतापर अपने विचार लादनेका जितना हक है उससे ज्यादा हमारे राष्ट्रपतिको ही नहीं सकता। महासभा एक ४५ वर्ष पुरानी संस्था है और उसका महत्व एव प्रतिष्ठा उसके अत्यंत सुप्रसिद्ध सभापतियोंसे भी बढ़कर है। दूसरे जब समय आवेगा, ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंको किसी एक व्यक्तिसे नहीं, बल्कि सारी महासभामें मोर्चा लेना पड़ेगा। अतएव सब तरह विचार करनेके बाद उन लोगोंको, जिन पर इस विषयका उत्तरदायित्व है, यही सलाह देता हूँ कि वे मेरा विचार छोड़ दें और पूरी-पूरी आशा और विश्वासके साथ पंडित जवाहरलालको ही उच्चपदके लिए वरण करें। (हि० न० १ ८ २६)

बहादुरीमें कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देज-प्रेममें उनसे आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वह जल्दबाज और अवीर है। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहां उनमें एक वीर-योद्धाकी तेजी और अवीरता है वहां एक राजनीतिज्ञका विवेक भी है। वह स्फटिक मणिकी भांति पवित्र है, उनकी सत्यशीलता सदेहके परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा है। राष्ट्र उनके हाथमें सुरक्षित है। (५० जवाहर

लाल नेहरू'—श्रीरामनाथ 'सुमन,' पृष्ठ २)

जवाहरलालके समान नवयुवक राष्ट्रपति हमे बार-बार नहीं मिलेंगे । भारतमें युवकोकी कमी नहीं है, लेकिन जवाहरलालके मुकाबलेमें खड़े होनेवाले किसी नवजवानको मैं नहीं जानता । इतना मेरे दिलमें उनके लिए प्रेम है, या कहिये कि मोह है । लेकिन यह प्रेम या मोह उनकी शक्तिके अनुभवपर स्थापित है और इसलिए मैं कहता हू कि जब तक उनके हाथमें लगाम है, हम अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त करले तो कितना अच्छा हो । लेकिन हम तभी कुछ कर सकेंगे, जब मुझे आप लोगोकी पूरी-पूरी मदद मिलेगी । मुझे आशा है कि स्वराज्यके भावी सग्राममें आप लोग सबसे आगे होंगे । अगर नौ वर्षोंका यहाका आपका अनुभव सफल हुआ हो और आपको अपने आचार्योंके प्रति सच्चा आदर तथा प्रेम हो तो उसे बतानेका, आपमें जो जौहर हो उसे प्रकट करनेका, समय आगे आ रहा है । ('विद्यार्थियोसे,' पृष्ठ २०३)

पंडित नेहरूने अपने देश और उसकी वेदीपर अपने जीवनकी समस्त अभिलाषाओं तथा ममताओंका बलिदान किया है । सबसे बड़ी विशेषताकी बात यह है कि उन्होंने किसी दूसरे देशकी सहायतासे मिलनेवाली अपने देशकी आजादीको कभी सम्मानपूर्ण नहीं समझा ।

जवाहरलालका जहातक सवाल है, हम जानते हैं कि हममेंसे किसीका भी एक-दूसरेके बिना काम नहीं चल सकता, क्योंकि हम लोगोमें ऐसी आत्मीयता है जिसे कोई बौद्धिक मतभेद नष्ट नहीं कर सकते । (ह० से०, ३ ६ ३६)

हमें अलग करनेके लिए केवल मतभेद ही काफी नहीं है । हम जिस क्षणसे सहकर्मी बने हैं उसी क्षणसे हमारे बीचमें मतभेद रहा है, लेकिन

फिर भी मैं वर्षोंसे कहता रहा हूँ और अब भी कहता हूँ कि जवाहरलाल मेरा उत्तराधिकारी होगा, राजाजी नहीं। वह कहता है कि मेरी भापा उसकी समझमें नहीं आती। वह यह भी कहता है कि उसकी भापा मेरे लिए अपरिचित है। यह सही हो या न हो, किंतु हृदयोंकी एकतामें भापा बाधक नहीं होती।

और मैं यह जानता हूँ कि जब मैं चला जाऊंगा, जवाहरलाल मेरी ही भापामें बात करेगा। (ह०, २५ १ ४२)

सवाल—आपने भी उस रोज वर्षामें कहा था कि जवाहरलाल आपके कानूनी वारिस हैं। आपके कानूनी वारिसने जापानियोंके खिलाफ कावेवाजीसे लड़नेकी जो हिमायत की है, उसकी कल्पना आपको कैसी लगती है? जब जवाहरलाल खुल्लमखुल्ला हिंसाका प्रचार कर रहे हैं और राजाजी सारे देशको शस्त्र और शस्त्रोंकी शिक्षा देना चाहते हैं, तो आपकी अहिंसाका क्या होगा?

उत्तर—जिस तरह आपने लिखा है, उसे देखते हुए तो परिस्थिति भयकर मालूम होती है, मगर आपको जितनी भयकर वह लगती है, दर-असल उतनी है नहीं। पहली बात तो यह है कि मैंने कानूनी वारिस शब्द अपने मुहसे नहीं कहा। मेरी तकरीर हिंदुस्तानीमें थी। मैंने तो कहा था कि वे मेरे कानूनी वारिस नहीं, बल्कि असली वारिस हैं। मेरा मतलब यह था कि जब मैं न रहूंगा, तो वे मेरी जगह लेंगे। उन्होंने मेरे तरीकेको पूरे तौरपर कभी अंगीकार नहीं किया। उन्होंने तो उसकी साफ-साफ आलोचना की है। परंतु बावजूद इसके कांग्रेसकी नीतिका उन्होंने वफा-दारीके साथ पालन भी किया है। यह नीति या तो मेरी ही निर्धारित की हुई थी, या अधिकांशमें मुझसे प्रभावित थी। सरदार वल्लभभाई जैसे नेता, जिन्होंने हमेशा बिना किसी प्रकारकी शका या सवालके मेरा अनुसरण किया है, मेरे वारिस नहीं कहे जा सकते। यह तो हर कोई

स्वीकार करता है कि और किसीमे जवाहरलालकी सी क्रियात्मक शक्ति नहीं है। और क्या मैं यह नहीं कह चुका हूँ कि मेरे चले जानेके बाद के तमाम मतभेदको, जिसका जिक्र वे अकसर किया करते हैं, भूल जायेंगे।

मुझे इस बातका खेद है कि कावेवाजीकी युद्ध प्रणालीने उनके दिलमे घर कर लिया है। मगर मुझे जरा भी शक नहीं कि वह चार दिनकी चादनी ही साबित होगी। देशपर उसका कुछ असर न होगा। यहाकी भूमि उसके अनुकूल नहीं। २२ वर्ष तक जिस अहिंसाका लगातार आचार और प्रचार हुआ है चाहे वह कितना ही अपूर्ण क्यों न रहा हो, उसका असर जवाहरलालजी या राजाजीकी इच्छासे—फिर वे कितने ही प्रभावशाली क्यों न हो—एक क्षणमे नहीं मिट सकता। इसलिए मैं जवाहरलालजी या राजाजीके अहिंसा-मार्गसे च्युत होनेसे विचलित नहीं होता। अपने प्रयत्नके होनेपर वे नई शक्ति और नए उल्लासके साथ अहिंसा-मार्गपर लौटेंगे। उनमेसे कोई भी हिंसाको इसलिए ग्रहण नहीं करना चाहता कि वह उन्हें पसंद है। अगर आज वे हिंसाकी शरण लेते भी हैं, तो गालिबन इसलिए कि उनको लगता है कि अहिंसापर आनेसे पहले हिंदुस्तानको हिंसाके दावानलमे से गुजरना ही चाहिए। (ह० से०, २६ ४.४२)

(शामको घूमते समय कुछ दिन पहलेके इस प्रश्नके उत्तरमें कि सत्याग्रही जडवत-से क्यों लगते हैं, बापूने कहा—) सत्याग्रही जडवत लगते हैं, यह मैं स्वीकार कर लेता हूँ। इसके कारणको ढूँढो तो पहली याद रखने-वाली बात यह है कि किस वर्गमेंसे मेरे पास सत्याग्रही आए। लेनिनके पास काम करनेवाले धनहीन थे, क्योंकि वह उनके लिए काम कर रहा था। कुछ भी हो, लेनिनको उनसे सतोष मानना था। इसी तरह मेरे पास जो कार्यकर्त्ता हैं उनसे मुझे सतोष मानना है। दूसरी बात यह है कि जबतक वे लोग मेरे अकुशके नीचे रहकर काम करते हैं, उन्हें जडवत लगना

ही है। कारण यह है कि सत्याग्रहका संचालक मैं रहा। मुझसे आगे उनमेंमें कोई कैसे जा सकता है? वे लोग अपनी बुद्धि चलाने लगे तो उनका राजाजी-जैसा हाल होगा। मैंने राजाजीमें कहा था कि जबतक मैं हूँ, तुम मुझे समझानेका प्रयत्न करो। न समझा सको तो अतमें तुम्हें मेरी बात मानकर चलना चाहिए। वे कहने लगे, “कभी नहीं।” तो मैंने कहा, “अच्छी बात है। ऐमें ही कह तो जवाहरलाल भी देता है कि ‘कभी नहीं’, मगर पीछे करता वही है जो मैं कहता हूँ। (का० क०, २ १२ ४२)

अगर लोग जरा-सी समझदारीसे चले तो स्वराज्य उनके हाथोंमें आ चुका है, क्योंकि हमारी सरकारके उप-प्रधान जवाहरलालजी हैं। वाइसराय प्रधान हैं सही, पर उन्हें अब गातिमें बैठना है। आपके असली चादगाह जवाहरलाल हैं। वे ऐसे चादगाह हैं जो हिंदुस्तानको तो अपनी सेवा देना चाहते ही हैं, पर उसके माफत सारी दुनियाको अपनी सेवा देना चाहते हैं। उन्होंने सभी देशोंके लोगोंसे परिचय किया है और उनके राजदूतोंका सत्कार करनेमें वह बड़े कुशल हैं। लेकिन वह अकेले कहातक कर सकते हैं?

वह नेताजके चादगाह आपके खिदमतगार हैं। तो क्या वह बंदूकसे आपकी बदअमनीको दवा देंगे? अगर आज एकको दवायेंगे तो कल दूसरेको इसी तरह दवाना पड़ेगा। फिर वह स्वराज्य तो नहीं हुआ। पचायती राज्य भी नहीं हुआ। जब आप लोग अनुगासनसे रहेंगे तभी जवाहरलालकी चादगाहत चलेगी और हमारा स्वराज्य सुखरूप होगा।

खुद जवाहरलालजी भी किस तरह अनुगासनमें रहते हैं इसका उदाहरण सुनिए। पिछले वर्ष जब वह काश्मीर चले गए थे तब वेवल साहबको उनकी जरूरत पड़ गई। मौलाना साहबने उन्हें बुलाना चाहा

और मेरे समझानेपर वह वहाका सघर्ष छोडकर राष्ट्रपतिका हुक्म मानकर यहा चले आये थे ।

आज भी जवाहरलालका चित्त काश्मीरमे है, जहा प्रजाके नेता शेख अब्दुल्ला सीखचोमे बंद पडे है । मैने जवाहरलालसे कहा है कि तुम्हारी आवश्यकता यहापर ज्यादा है । इसलिए जरूरत हुई तो मै काश्मीर जाऊंगा और तुम्हारा काम करूंगा । तुम यही रहो । मैने यह भी उनसे कहा कि यद्यपि मै वचनसे बिहार और नवाखालीमे ही करने या मरनेके लिए बंधा हूँ, परंतु काश्मीरमे भी मुसलमान भाइयोका ही सवाल है, इसलिए वहा जा सकता हू । वहा जाकर काश्मीरके राजासे मित्रता करूंगा और मुसलमानोकी भलाईका काम करूंगा । लेकिन जवाहरलालने अभी इस बातकी 'हा' नहीं भरी है । (प्रा० प्र०, १४.४७)

कल मैने जवाहरलालजीके अमूल्य कामके बारेमे जिक्र किया था । मैने उन्हे हिंदुस्तानका बेताजका बादशाह कहा था । आज जब अंग्रेज अपनी ताकत यहासे उठा रहे है तब जवाहरलालकी जगह कोई दूसरा ले नहीं सकता । जिसने विलायतके मशहूर स्कूल हैरो और केन्नजिके विद्यापीठमे तालीम पाई है और जो वहा बैरिस्टर भी बने है उनकी आज अंग्रेजोके साथ बातचीत करनेके लिए बहुत जरूरत है । (प्रा० प्र०, २.४.४७)

मै परसो हरिद्वार जाऊंगा । मेरे साथ जवाहरलाल जायगे । वे तो युक्तप्रातमे अद्वितीय है । आज तो वे सारे हिंदुस्तानमे भी अद्वितीय हो रहे है । (प्रा० प्र०, २६.४.४७)

लेकिन आज क्या हो रहा है ? सरदार ऊचा सिर रखकर चलने-वाला, आज मै आपको कहता हू कि उसका सिर नीचा हो गया है । वह

जवाहरलाल, वह बहादुर जवाहरलाल, हवामे उड़नेवाला, किसीकी पर-वाह न करनेवाला, आज वह लाचार बनकर बैठ गया है। क्यों लाचार बना? हमने उसको लाचार बनाया। वह जवाहरलाल कोई ईश्वर तो है नहीं। सरदार ईश्वर थोड़े ही है। दूसरे जो उनके मंत्री पड़े हैं वे ईश्वर तो है नहीं। उनके पास ईश्वरीय ताकत तो कोई नहीं है। बाहरकी ताकत, दुनियाकी ताकत भी, कहा उनके पास पड़ी है? (प्रा० प्र०, १३ ६ ४७)

दूसरी बात यह है कि यहाँ जितने दुखी लोग हैं, उनके लिए तो पड़ित जी—उनको मैं बहुत पहचानता हूँ—ऐसे हैं कि दूसरोको सुलाकर सोनेवाले हैं। मानो एक ही विछीना है, जो सूखा है, बाकी गीला है, तो वह सूखेमे दुखीको सुलायगे, खुद चाहे घूमते रहे। मैं यह पढ़कर बहुत खुश हुआ। वे कहते हैं कि उनके घरमे जगह नहीं है, दूसरे आदमी भी चले आते हैं, इसलिए जगह नहीं रहती है। वह तो मुख्य प्रधान है। तो मिलनेवाले जाते हैं, दोस्त हैं, अंग्रेज भी जाते हैं, तो क्या वहाँसे उनको निकाल दे? तो भी कहते हैं कि मेरी तरफसे एक कमरा या दो कमरा, जितना निकल सकता है निकालूंगा और दुखी लोगोको रखूंगा। फिर दूसरे मुख्य प्रधान भी करें, फिर फौजके अफसर हैं वे भी ऐसा करें। इस तरहसे सब अपने धर्मका पालन करें तो कोई दुखी नहीं रहेगा। ऐसा जो जवाहरने किया, उसे देखा, तो मैं उनको और आपको धन्यवाद देता हूँ कि हमारे यहाँ एक रत्न है। (प्रा० प्र०, २१ १ ४८)

अब मेरा दिल आगे बढ़ता है कायदे आजम जिन्नाकी तरफ। उनको मैं पहचानता हूँ। मैं तो उनके घर जाता था और एक दफा तो १८ बार गया था। मैं उसको तपश्चर्या मानता हूँ। बादमे भी उन्होंने और मैंने एक चीजमे दस्तखत किये थे और उसमे भी हम दोनों हिस्सेदार

बन गये थे । तब भी उनके साथ मीठी बातें होती थी । इसलिए मैं तो उनसे, लियाकतअली साहबसे और उनके मन्त्रिमंडलसे कहूंगा कि यह बात है कि आप जवाहरलाल-जैसे आदमीको कहते हैं कि आप धोखेबाजी करते हैं । जवाहरलाल और उनकी सरकारको इसमें धोखेबाजी क्या करनी थी ! मैं कहूंगा कि जवाहर तो किसीसे भी धोखा करनेवाला नहीं है, जैसा उसका नाम है वैसा उसका गुण है । उनकी सरकारमें सरदार या जो दूसरे आदमी हैं उनको भी मैं पहचानता हूँ । वे भी कोई धोखेबाज नहीं हैं । अगर वे काश्मीरसे मशविरा करना चाहते हैं तो उसका यह मतलब नहीं है कि वे फुसला रहे हैं । जवाहरलाल तो पहले भी उनसे बातें करता था और अकेला शेख अब्दुल्लाके लिए उनसे लड़ता था । तो उसको इसमें धोखा क्या करना था ! (प्रा० प्र०, २११४७)

..

..

वे आसानीसे पिता, भाई, लेखक, यात्री, देशभक्त या अंतर्राष्ट्रीयताके रूपमें प्रकाशमान हैं, तो भी पाठकोंके सामने इन लेखोंमेंसे उनका जो रूप उभरेगा वह अपने देश और उसकी स्वतंत्रताके, जिसकी वेदीपर उन्होंने अपनी दूसरी सभी कामनाओंका बलिदान कर दिया है, निष्ठावान् भक्त-का रूप होगा । यह श्रेय उन्हें मिलना ही चाहिए कि वे किसी अन्य देशकी सहायताकी कीमतमें अपने देशकी आजादी प्राप्त करना अपनी शानके खिलाफ समझे । उनकी राष्ट्रियता अंतर्राष्ट्रीयता-जैसी है । ('नेहरू-यौर नेवर' के प्राक्कथनसे)

: १०६ :

मोतीलाल नेहरू

महासभाका सभापतित्व अब फूलोका कोमल ताज नहीं रह गया है । फूलके दल तो दिनो-दिन गिरने जाते हैं और काटे उघड़ते जाते हैं । अब इस काटोके ताजको कौन धारण करेगा ? बाप या बेटा ? मैकडो लडा-इयोके लडाका पडित मोतीलाल नेहरू इस काटोके ताजको पहुँचेंगे या समय-नियमके पक्के जवान सिपाही पडित जवाहरलाल नेहरू, जिन्होंने अपनी योग्यता और महत्तामे देशके युवकोके हृदयोपर अविकार कर लिया है ? श्रीयुत वल्लभभाई पटेलका नाम स्वभावतः ही सबकी जवान पर है । पडितजी एक व्यक्तिगत पत्रमे लिखते हैं कि इस समय तो वल्लभ-भाई पटेलको ही, उनकी वीरताके लिए सभापति चुनना चाहिए और सरकारको यह दिखला देना चाहिए कि उनपर सारे राष्ट्रका विश्वास है । खैर, मगर अभी तो श्री वल्लभभाईका कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता । उस समय उनके पाम काम भी इतना पडा हुआ है कि वे वारडोली छोड़कर दूसरी ओर ध्यान ही नहीं दे सकते । और फिर दिसवर आनेसे पहले ही संभव है कि वे सरकारके अनेक बड़ीगृहोमेसे किमी एकमें उसके अतिथि बनकर पहुँच जाय । मेरा अपना विचार तो यह है कि यह काटोका ताज पडित जवाहरलालको ही मिलना चाहिए । भविष्य तो देशके युवकोके ही हाथमें होना चाहिए । मगर बगाल तो अगले साल, जबकि बहुतसे तूफानोका भय है, पडित मोतीलालके ही हाथो महासभाकी पतवार देना चाहता है । हम लोगोमे आपसमे फूट है और चारो ओरसे हमें एक ऐसा शत्रु घेरे हुए है जो जितना शक्तिशाली है, उतना ही नीति-अनीतिसे लापरवाह भी । बगालको इस समय किमी बड़े-बूढ़ेकी विशेष आवश्यकता है और वह भी ऐसे आदमीकी जिसने, उसके गाढ़े अवसरपर, उसे सभाला

हो। अगर सारे हिंदुस्तानके लिए आगे सुखका समय नहीं आनेवाला है तो बगालके लिए तो और भी नहीं। इसके तो हजारो कारण हैं कि पंडित मोतीलालजीको ही क्यों यह काटोका ताज धारण करना चाहिए। वे वीर हैं, उदार हैं, उनपर सभी दलोका विश्वास है, मुसलमान उन्हें अपना मित्र मानते हैं, उनके विरोधी भी उनका आदर करते हैं और अपनी जोरदार दलीलोसे वे उन्हें प्राय ही अपनी रायसे सहमत कर लेते हैं और फिर इसके अलावा उनके स्वभावमे सवि और समझौतेकी भावनाकी ऐसी पुट भरी हुई है, जिससे वे किसी ऐसे राष्ट्रके अत्यंत योग्य दूत होने लायक हैं, जिसे सम्मानित समझौतेकी आवश्यकता है और जो उसे करनेके लिए तैयार हैं। इन्ही बातोंपर विचार करके, अत्यंत साहसी बगाली देशभक्त पंडित मोतीलाल नेहरूको ही अगले वर्षके लिए राष्ट्रका कर्णधार बनाना चाहते हैं। (हि० न०, २६ ७ २८)

हमारे देशके इस बहादुर वीरके शवके सामने खड़े होकर गगा और जमुनाके किनारे हममेसे हर पुरुष और स्त्रीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि जबतक हिंदुस्तान आजाद न होगा वह चैन न लेगे, इसलिए कि यही वह काम है जो मोतीलालजी दिलसे चाहते थे। इसी खातिर उन्होंने अपनी जान देदी। ('कोई शिकायत नहीं', पृष्ठ ७३)

मेरी हालत विधवा स्त्रीसे भी बुरी है। एक विधवा अपने पतिकी मृत्युके बाद वफादारीसे जीवन बिताकर अपने पतिके अच्छे कामोका फल पा सकती है। मैं कुछ भी नहीं पा सकती। मोतीलालजीकी मृत्युसे जो कुछ मैंने खोया है वह मेरा सदाके लिए नुकसान है। ('कोई शिकायत नहीं', पृष्ठ ७३)

...

...

..

मोतीलालजीकी मृत्यु हरेक देशभक्तके लिए ईर्ष्यास्पद होनी चाहिए,

क्योंकि अपना सबकुछ न्यौछावर करके वे मरे हैं और अतः समय तक देशका ही ध्यान करते रहे हैं। इस वीरकी मृत्युमें हमारे अंदर भी वलिदानकी भावना आनी चाहिए। हममेंसे हरेकको चाहिए कि जिस स्वतंत्रताके लिए वे उत्सुक थे और जो हमारे बहुत नजदीक आ पहुँची है, उसको प्राप्त करनेके लिए अपना सर्वस्व नहीं तो कम-से-कम इतना वलिदान तो करें ही कि जिससे वह हमें प्राप्त हो जाय।

(मोतीलालजीकी मृत्युपर, ७ फरवरीको, इलाहाबादमें दिया सदेश।)

मैं श्री मोतीलाल नेहरू इत्यादिकी याद आपको दिला दूँगा जिन्होंने अपनी कानूनी लियाकत विल्कुल मुफ्त बाटी और अपने देशकी बड़ी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप मुझे गायद ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमें बड़ी लंबी फीस लेते थे। मैं इस तर्कको इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा और सबमें परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोंने भारतको आवश्यकता पड़नेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई संबंध नहीं है। मैंने उनको बड़े सतोषसे दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हि० न०, १२ ११ ३१)

स्वर्गीय मोतीलालजीके चित्रके उद्घाटनका जो सम्मान तुम लोगोंने मुझे दिया है, उसके लिए मैं तुम्हारा आभारी हूँ। तुम्हारे पास उनकी छवि रहे और उनके पवित्र भावोंको तुम सदा अपने हृदयमें अंकित रखो, यह उचित ही है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि जैसा सबंध दो सगे-सहोदर भाइयोंके बीच होता है, वैसा ही प्रगाढ़ प्रेम-संबंध मोतीलालजीके और मेरे बीच था। मोतीलालजीकी देश-सेवा, मोतीलालजीका त्याग, मोतीलालजीका अपने पुत्र-पुत्रियोंके प्रति अनुपम प्रेम, इन सब बातोंका

परिचय जैसा मुझे था, लगभग वैसा ही तुम्हें भी होना चाहिए । जबसे मुझे मोतीलालजीका प्रथम परिचय प्राप्त हुआ, तबसे उनके जीवनके अंतिम समयतक उनके निकट ससर्गमे रहनेका सद्भाग्य ईश्वरन मुझे दिया था । मैंने देखा कि वह प्रतिक्षण स्वदेशहितका ही चिन्तन करते थे । उनके लिए स्वराज्य स्वप्न नहीं, बल्कि प्राण था । स्वराज्यकी उन्हें सदा तृष्णा-पिपासा रही और वह दिन-दिन बढ़ती ही गई । ऐसे आदर्श देशभक्तका चित्र अपने सम्मुख रखना उचित ही है । इतनी आशा मुझे अवश्य है कि स्वर्गीय पंडितजीके गुणोका तुम लोग अनुकरण करोगे । पंडित मोतीलालजीके सद्गुणोमे एक गुण यह भी था कि वह अस्पृश्यता नहीं मानते थे । वह मानते एक राजपुरुष थे । उन्होंने तो बेहद रुपया कमाया, उसे सत्कार्योमे, स्वराज्यके कार्योमे लुटाया । मुझे उनके ऐसे दृष्टांत मालूम है कि उनके हृदयमे ऊच-नीचका भाव था ही नहीं । (ह० से०, २६.१२.३३)

..

...

उस जमानेमे हमने विदेशी कपडेके पहाड चिन-चिनकर जला दिये थे और कोई यह नहीं कहता था कि इससे राष्ट्रकी निधि वरबाद हो रही है । श्रीमती नायडूने अपनी पेरिसकी साडी जला दी थी और स्व० मोतीलालजीने भी अपने विलायती कपडोमे दियासलाई लगा दी थी । उनके पास तो आलमारी-की-आलमारिया विदेशी कपडे थे । इसके बाद जब वे जेल गए तब उन्होंने मेरे पास एक खत भेजा था—आज वह खत मैं खोज नहीं सकता—पर उसमे था कि मैं सच्चा जीवन अब ही जी रहा हूँ, आनंदभवनमे मेरे पास जो समृद्धि थी उससे मुझे यह सुख नहीं मिलता था । वहाँ उन्हें सिगार, शराब, गोشت कुछ नहीं मिलता था । पूरा भोजन भी नहीं मिलता था, फिर भी उसमें उन्हें सुख मालूम हुआ । यह सही है कि उनकी यह चीज हमेशा नहीं चली । (प्रा० प्र०, २० ६ ४७)

: १०७ :

सुशीला नैयर

मुर्शीलावहन वहावलपुर चली गई है। वहावलपुरमे दु खी आदमी है।
 उनको देखनेके लिए चली गई है। फ्रेड्स मर्विसके लेसली क्रॉसके साथ
 चली गई है। फ्रेड्स यूनिटमेमे किनीको भेजनेका मैंने इरादा किया था,
 ताकि वह वहा लोगोको देखे, मिले और मुझको वहाके हाल बता दे। उस
 वक्त मुर्शीलावहनके जानेकी बात नहीं थी, लेकिन जब सुर्शीलावहनने
 सुन लिया तो उसने मुझमे कहा कि इजाजत देदो तो मैं क्रॉससाहबके साथ
 चली जाऊ। वह जब नोआखालीमे काम करती थी तबसे वह उनको
 जानती थी। वह आव्गिर कुगल डाक्टर है और पजावके गुजरातकी है।
 उसने भी काफी गवाया है, क्योंकि उसकी तो वहा काफी जायदाद है,
 फिर भी दिलमे कोई जहर पैदा नहीं हुआ है। तो उसने बताया कि मैं
 वहा क्यों जाना चाहती हूँ, क्योंकि मैं पजाबी बोली जानती हूँ, हिंदुस्तानी
 जानती हूँ, उर्दू और अंग्रेजी भी जानती हूँ, तो वहा मैं क्रॉससाहबको मदद
 दे सकूंगी। तो मैं यह सुनकर खुश हो गया। वहा खतरा तो है, लेकिन उसने
 कहा कि मुझको क्या खतरा है? ऐसा डरती तो नोआखाली क्यों जाती?
 पजावमें बहुत लोग मर गये हैं, विन्कुल मटियामेट हो गये हैं, लेकिन
 मेरा तो ऐसा नहीं है। खाना-पीना सब मिल जाता है। ईश्वर सब करता
 है। अगर आप भेज दे और क्रॉससाहब मुझे ले जाय तो वहाके लोगोको
 देख लूंगी। तो मैंने क्रॉससाहबसे पूछा कि क्या आपके साथ सुर्शीलावहनको
 भेजू? तो वे खुश हो गये और कहा कि यह तो बड़ी अच्छी बात है।
 मैं उनके मारफत दूसरोसे अच्छी तरह बातचीत कर सकूंगा। मित्रवर्गमें
 हिंदुस्तानी जाननेवाला कोई रहे तो वह बड़ी भारी चीज हो जाती है।
 इससे बेहतर क्या हो सकता है? वे रेडक्रॉसके हैं। तो डाक्टर

सुशीला काससाहबके साथ गई है या डाक्टर सुशीलाके साथ काससाहब गये है यह पेचीदा प्रश्न हो जाता है। लेकिन कोई पेचीदा है नहीं, क्योंकि दोनों क-दूसरेके दोस्त हैं और दोनों एक दूसरेको चाहते हैं, मोहब्बत करते हैं। वे सेवा-भावसे गये हैं, पैसा कमाना तो है नहीं। वे जो देखेंगे, मुझे बतायेंगे और सुशीलाबहन भी बतायेंगी। मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसा गुमान रखे कि वह तो डाक्टर है और काससाहब दूसरे है। कौन ऊंचा है, कौन नीचा है, ऐसा कोई भेदभाव न करे। (प्रा०प्र०, २६ १ ४८)

: १०८ :

वल्लभभाई पटेल

श्रीयुत वल्लभभाई पटेल पुराने सिपाही हैं और सेवाके सिवा उनका दूसरा काम भी नहीं है। (हि० न०, १५ ८ २७)

अभी जो भयकर अफवाहे उड रही हैं उनको ध्यानमे रखकर मुझे यह स्पष्ट कर देना आवश्यक मालूम होता है कि वारडोलीसे मेरा क्या संबंध है। पाठक जान ले कि वारडोली सत्याग्रहके अरम्भसे ही मैं उसमें शामिल हूँ। उसके नेता वल्लभभाई हैं। उन्हें जब कभी मेरी जखुरत हो, वे मुझे वहा ले जा सकते हैं। यह कोई बात नहीं कि उन्हें मेरी सलाहकी आवश्यकता हो, तथापि कोई भी भारी काम करनेसे पहले वे मुझसे परामर्श करते हैं। पर वहाका सारा काम, चाहे वह छोटा हो या बड़े-से-बड़ा, वे अपनी जिम्मेदारीपर ही करते हैं। इस बातके विषयमे मैंने उनसे पहले हीसे समझौता कर लिया है कि मैं सभा आदिमे नहीं जाऊंगा।

मेरा शरीर अब इस लायक नहीं रहा कि मैं हर एक काममें दिलचस्पी ले सकू। इसलिए उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अहमदाबादमें या गुजरातमें अन्यत्र विना कारण वे मुझे नहीं ले जावेंगे, और इस प्रतिज्ञाका उन्होंने अक्षरशः पालन किया है। इस सत्याग्रहमें उनके साथ मेरी संपूर्ण सहानुभूति रही है। अब तो गभीर स्थिति खड़ी होनेकी संभावना है और उसका सामना करनेके लिए वल्लभभाई जो-जो करेंगे उसमें भी उनके साथ मेरी पूरी सहानुभूति रहेगी। यदि वे कहीं पकड़े गये तो वारडोली जानेके लिए भी मैं पूरी तरह तैयार हू। उनके वारडोलीमें रहते वहां जाने अथवा अन्य किसी तरह सक्रिय भाग लेनेकी न मुझे कोई जरूरत दिखाई दी, न उन्हें। जहां आपसमें संपूर्ण विश्वास है वहां गिफ्टाचार अथवा किसी प्रकारके बाह्य आडवरकी जरूरत नहीं होती। (हि० न०, १३ ३ १९२६)

जिस सरदारके सेनापतित्वमें आपने इस प्रतिज्ञाका इतना सुंदर पालन किया उसीके सेनापतित्वमें आप यह भी करें। ऐसी स्वार्थत्यागी सरदार आपको और नहीं मिलेगा। यह मेरे सगे भाईके समान है, तथापि इतना प्रमाण-पत्र उन्हें देते हुए मुझे जरा भी सकोच नहीं होता। ('विजयी वारडोली', पृष्ठ ३२५)

वल्लभभाई जैसे नामके पटेल हैं वैसी ही उनकी साख भी है। वारडोलीकी विजय प्राप्तकर उन्होंने अपनी साखको कायम रखा। ('विजयी वारडोली', पृष्ठ ४२६)

सरदार वल्लभभाई हसीमें कहा करते थे कि उनके हाथकी रेखाओंमें जेलकी रेखा नहीं है। उन लोगोंके लिए जेल है ही नहीं, जिनके मनमें जेल महलके समान है और जो जेल और महलमें कोई भेद नहीं सम-

भते । जहा आज सरदार विराजे है, वहा हम सबको जाना है । पर बिना योग्यता प्राप्त किये जेल नही मिलती । सरदार वल्लभभाईकी अमूल्य सेवाओके हम पात्र थे या नही, इसे प्रमाणित करनेका अवसर अब आ गया है । उन्हे गुजरातसे आशा क्यो न हो ? उन्होने मजदूरोकी सेवामे कौन कमी रक्खी है ? डाकवालो और रेलवेके नौकरोने उनके पास बैठकर स्वराज्यका पाठ कौन कम पढा है ? अहमदावादका ऐसा कौन नागरिक है जो नही जानता कि उन्होने अपना सर्वस्व होम कर गहरकी सेवा की है ? शहरमे जब भीषण महामारी फैली थी उन दिनो गरीबोकी सेवाका इतजाम करने वाला कौन था ? वल्लभभाई । अकाल पडनेपर अकाल पीडितोकी मददके लिए दौड पडनेवाला कौन था ? वल्लभभाई । गुजरातमे ऐतिहासिक बाढ आई, लाखो लोग घरबार-विहीन बन गये, खेतोकी फसल बह गई । उस समय सारे गुजरातका सकट टालनेके लिए सैकडो स्वयसेवकोको तैयार करनेवाला, लोगोके लिए एक करोड रुपए सरकारके खजानेसे निकलवानेवाला कौन था ? वल्लभभाई ही । और वह भी वल्लभभाई ही थे, जिन्हे वारडोलीकी जीतके लिए ऋणी जनताने सरदार कहकर पुकारा और जो सपूर्ण स्वराज्यकी आखिरी लडाईके लिए जनताको तैयार कर रहे थे । वल्लभभाई तो अपने कर्तव्यका पालन करते हुए जेल पहुच गये । अब हमे क्या करना चाहिए ? इस सवालका एक जवाब तो साफ ही है । हम हिम्मत न हारें, उलटे हममेसे हरएक दुगुनी दृढता और दुगुनी हिम्मतके साथ सविनय भगके लिए तैयार हो जाय और जेलकी, या मौत मिले तो मौतकी राह पकड ले । सरदारके जानेके बाद अब रहनुमा कौन होगा ? इस तरहका नामर्दीसे भरा हुआ सवाल कोई अपने मनमे न उठने दे । जिसे सविनय भग करना है, उसके पास आज बहुतेरे साधन पडे हुए है और सरकार नए-नए साधन पैदा कर रही है । जैसे हमारे लिए यह जीवन-मरणका खेल है, वैसे ही सरकारके लिए भी है । मालूम होता है कि उसकी

हस्तीका आधार ही स्वतंत्र स्वभावके मनुष्योंको दवानेपर है, नहीं तो वह वल्लभभाईके समान गतिरक्षाके लिए प्रसिद्ध आदमीको क्यों पकड़ती ? (हि० न०, १३.३ ३०)

सरदारके लिए सब ममान है, एक नन्हा बालक भी इसे जानता है । उन्हें तो गरीबमात्रकी सेवा करनी है । फिर भूने ही वह भगी हो या ब्राह्मण, गुजराती हो या मद्रासी । राष्ट्रने उनकी इस विशेषताको पहचाना और पहचानकर राष्ट्रपति बनाया । (हि० न, १४.५ ३१)

वल्लभभाईके लिफाफोकी और संस्कृतकी पढ़ाईकी तारीफ हर पत्रमें करते हैं । कल काकाके खतमें लिखा था कि .

उच्चैः श्रवाकी गतिसे वल्लभभाईकी पढ़ाई चल रही है ।

आज प्यारेलालको लिखा

वल्लभभाई अरबी घोंडेकी तेजीसे दीड रहे हैं । संस्कृतकी किताब हाथसे छूटती ही नहीं । इसकी मुझे आशा नहीं थी । लिफाफोमे तो कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता । लिफाफे वे नापे बिना बनाने हैं और अदाजसे काटते हैं, मगर बराबरके निकलते हैं और फिर भी ऐसा नहीं लगता कि इसमें बहुत समय लगता है । उनकी व्यवस्था आश्चर्यजनक है । जो कुछ करना हो उसे याद रखनेके लिए छोड़ते ही नहीं । जैसे आग वैसे ही कर डाला । कातना जबसे शुरू किया है, तबसे बराबर समयपर कातते हैं । इस तरह सूतमें और गतिमें रोज सुधार होता जा रहा है । हाथमें लिया हुआ भूल जानेकी बात तो शायद ही होती है । और जहां इतनी व्यवस्था हो, वहां धावली तो हो ही कैसे ? (म० छा०, २८ ८ ३२)

सरदार वल्लभभाई पटेलके साथ रहना मेरा बड़ा सौभाग्य था । उनकी अनुपम वीरतासे मैं अच्छी तरह परिचित था, परंतु पिछले १६

महीनेमे जिस प्रकार रहा वैसा सौभाग्य मुझे कभी नहीं मिला था । जिस प्रकार उन्होंने मुझे स्नेहमे ढक लिया वह मुझे मेरी माकी याद दिलाता है । मैं यह कभी नहीं जानता था कि उनमे माके गुण भी है । बार-डोली और खेडाके किसानोके लिए उनकी चिंता मैं कभी नहीं भूल सकता । (म० डा०)

दूसरी बात तो यह है कि हर जगहसे शिकायतें आ रही हैं । यह ठीक था कि अंग्रेजी जमानेमे तो जो देशी रियासतें थी वे अपने दिलमे आए वैसा करती थी । थोड़ा-सा अकुश तो अंग्रेजी सल्तनत रखती थी । उसको तो रखना ही था, क्योंकि उसको सल्तनत चलानी थी । आज तो वह चली गई है । हा, यह तो है कि आज सरदार पटेल हैं—उनके हाथमे उनका महकमा है, इसलिए वह तो कुछ करे ? लेकिन वे बेचारे क्या कर सकते हैं ? उनकी तो अपनी जवान पड़ी है—हिंदुस्तानकी सेवा कर ली है, इसलिए सरदार बने हैं । लेकिन उनके पास तलवार नहीं, बंदूक नहीं, लश्कर नहीं । वे खुद थोड़े लश्करी हैं, वे कमांडर भी नहीं हैं कि उनका हुक्म चले । (प्रा० प्र०, २२.१०.४७)

पीछे सरदारका नाम आ जाता है । वे कहते हैं कि सरदारको हटा दो, तुम अच्छे हो । पीछे सुनाते हैं कि जवाहर भी अच्छा है । तूम हकूमतमे आ जाओ तो हकूमत अच्छी चले । सब अच्छे हैं, सरदार अच्छे नहीं हैं । तो मैं मुसलमानोसे कहूंगा कि मुसलमान ऐसा कहेंगे तो कोई बात चलनी नहीं है । क्यों नहीं ? क्योंकि आपका हाकिम वह मन्त्रिमंडल है । हकूमतमे न अकेला सरदार है और न जवाहर है । वे आपके नौकर हैं । उनको आप हटा सकते हैं । हा, ऐसा है कि सिर्फ मुसलमान तो हटा नहीं सकते हैं, लेकिन इतना तो करे कि सरदार जितनी गलती करते हैं—लोगोमे आपस-आपसमे बात करनेसे निपटता नहीं है—उनको बताओ ।

ऐसा नहीं कि उन्होंने यह बात कही, वह बात कही, लेकिन उन्होंने किया क्या, यह बताओ। मुझको बता दो। उनसे मैं मिलता रहता हूँ और सुनता भी हूँ तो मैं कह दूँगा। वही जवाहर, वही सरदार दोनों हुक्मत चलाते हैं। जवाहर तो उनको निकाल सकते हैं, लेकिन ऐसा नहीं करते हैं तो कुछ है। वे उनकी तारीफ करते हैं। फिर मन्त्रि-मंडल है, वह हुक्मत है। सरदार जो कुछ करता है उसके लिए सारी हुक्मत जवाबदार है। आप भी जवाबदार हैं, क्योंकि वे आपके नुमायंदे हैं।

सरदार सीधी बात बोलनेवाले हैं। वे बोलते हैं तो कड़वी लगनी है। वह सरदारकी जीभमें है। मैंने उनसे कहा कि आपकी जीभसे कोई बात निकली कि काटा हो गई। तो उनकी जीभ ही ऐसी है कि काटा है, दिल वैसा नहीं है। उसका मैं गवाह हूँ। उन्होंने कलकत्तेमें कह दिया, लखनऊमें कह दिया कि सब मुसलमानोंको यहाँ रहना है, रह सकते हैं। साथ ही मुझको यह भी कहा कि उन मुसलमानोंका एतवार नहीं करता हूँ, जो कल तक लीगवाले थे और अपनेको हिंदू-सिखका दुश्मन मानते थे, वे जब कल तक ऐसे थे तब आज एक रातमें दोस्त कैसे बन सकते हैं? पीछे ऐसा है कि लीग रहेगी तो वे लोग किसकी मानेंगे—हमारी हुक्मतकी या पाकिस्तानकी? लीग अभी भी वैसा ही कहती है तो उनको शक होता है। उनको शक करनेका अधिकार है। सबको शक करनेका अधिकार है। सरदारने जो कहा है उसका सीधा अर्थ निकाल ले तो काम बन जाता है। जैसे कोई मेरा भाई है, लेकिन उसपर शक है तो क्या करूँ? शक साबित हो तब काटूँ, यही मैं कर सकता हूँ। लेकिन मैं पहलेसे ही भाईकी बुराई करूँ, ऐसा कैसे हो सकता है? वे कहने हैं कि हमारे दिलमें आज मुस्लिम लीगके मुसलमानोंके बारेमें ऐतवार नहीं है, उनपर कैसे भरोसा रखे? मुसलमान सबूत दे कि वे ऐसे नहीं हैं। ऐसा करे तो सब अजाम पहुँच जाता है। पीछे मुझे यह कहनेका हक मिल जाता है

कि हिंदू, सिख क्या करे । इस यूनियनमें सरदार क्या करे, जवाहर क्या करे, उसमें कोई भी क्या करे, मैं क्या करू ? (प्रा० प्र०, १३ १४८)

“आपने कहा है कि मुसलमान भाई अपने डरकी और अपनी असुरक्षितताकी कहानी लेकर आपके पास आते हैं, तो आप उन्हें कोई जवाब नहीं दे सकते । उनकी शिकायत है कि सरदार—जिनके हाथोंमें गृह-विभाग है—मुसलमानोंके खिलाफ है । आपने यह भी कहा है कि सरदार पटेल पहले आपकी हा-भे-हा मिलाया करते थे, ‘जीहुजूर’ कहलाते थे, मगर अब ऐसी हालत नहीं रही । इससे लोगोंके मनपर यह असर होता है कि आप सरदारका हृदय पलटनेके लिए उपवास कर रहे हैं । आपका उपवास गृह-विभागकी नीतिकी निंदा करता है । अगर आप इस चीजको साफ करेंगे तो अच्छा होगा ।”

मैं समझता हू कि मैं इस बातका साफ-साफ जवाब दे चुका हू । मैंने जो कहा है, उसका एक ही अर्थ हो सकता है । जो अर्थ लगाया गया है, वह मेरी कल्पनामें भी नहीं आया । अगर मुझे पता होता कि ऐसा अर्थ किया जा सकता है तो मैं पहलेसे इस चीजको साफ कर देता ।

कई मुसलमान दोस्तोंने शिकायत की थी कि सरदारका रख मुसलमानोंके खिलाफ है । मैंने कुछ दुखसे उनकी बात सुनी, मगर कोई सफाई पेश न की । उपवास शुरू होनेके बाद मैंने अपने ऊपर जो रोक-थाम लगाई हुई थी वह चली गई । इसलिए मैंने टीकाकारोंको कहा कि सरदारको मुझसे और पंडित नेहरूसे अलग करके और मुझे और पंडित नेहरूको खामख्याह आसमानपर चढाकर वे गलती करने दें ।

इससे उनको फायदा नहीं पहुंच सकता । सरदारके बात करनेके ढंगमें एक तरहका अक्खडपन है, जिससे कभी-कभी लोगोंका दिल दुख जाता है, अगरचे सरदारका इरादा किसीको दुखी बनानेका नहीं होता ।

उनका दिल बहुत बड़ा है। उसमें सबके लिए जगह है। सो मैंने जो कहा, उसका मतलब यह था कि अपने जीवनभरके वफादार साथीको एक बेजा इलजामसे बरी कर दूँ। मुझे यह भी डर था कि मुननेवाले कही यह न समझ बैठे कि मैं सरदारको अपना 'जीहुजूर' मानता हूँ। सरदारको प्रेमसे मेरा 'जीहुजूर' कहा जाता था। इसलिए मैंने सरदारकी तारीफ करने समय कह दिया कि वे इतने गक्तिशाली और मनके मजबूत हैं कि वे किसीके 'जीहुजूर' हो ही नहीं सकते। जब वे मेरे 'जीहुजूर' कहलाते थे तब वे ऐसा कहने देते थे, क्योंकि जो कुछ मैं कहता था वह अपने आप उनके गले उतर जाता था। वे अपने क्षेत्रमें बहुत बड़े थे। अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटीमें उन्होंने ग्रासन चलानेमें बहुत काबिलियत बतलाई थी। मगर वह इतने नम्र थे कि उन्होंने अपनी राजनैतिक तालीम मेरे नीचे शुरू की। उन्होंने उसका कारण मुझे बताया था कि जब मैं हिंदुस्तानमें आया था उन दिनों जिस तरहका राज-काज हिंदुस्तानमें चलता था, उसमें हिस्सा लेनेका उन्हें मन नहीं होता था। मगर अब जब सत्ता उनके गले आ पड़ी तब उन्होंने देखा कि जिस अहिंसाको वे आजतक सफलतापूर्वक चला राके अब वह नहीं चला सकते। मैंने कहा है कि मैं समझ गया हूँ कि जिस चीजको मैं और मेरे साथी अहिंसा कहा करते थे वह सच्ची अहिंसा न थी। वह तो नकली चीज थी और उसका नाम है निष्क्रिय प्रतिरोध। हा, किनके हाथोंमें निष्क्रिय प्रतिरोध किमी कामकी चीज है ? जरा सोचिए तो सही कि एक कमजोर आदमी जनताका प्रतिनिधि बने तो वह अपने मालिकोंकी हँसी और बेइज्जती ही करवा सकता है। मैं जानता हूँ कि सरदार कभी उन्हें सीपी हुई जिम्मेदारीको दगा नहीं दे सकते। वे उसका पतन वर्दाश्त नहीं कर सकते। मैं उम्मीद करता हूँ कि यह सब सुननेके बाद कोई ऐसा खयाल नहीं करेंगे कि मेरा उपवास गृह-विभागकी निंदा करनेवाला है। अगर कोई ऐसा खयाल करनेवाला है तो मैं उसको कहना चाहता हूँ कि वह अपने-आपको नीचे गिराता है और अपने-आपको

नुकसान पहुँचाता है, मुझे या सरदारको नहीं । (प्रा० प्र०, १५ १४८)

सरदारने बबईमे क्या कहा, उसे गौरसे पढे तो पता चल जायगा कि सरदार और पंडित नेहरू दूर नहीं हैं, अलग-अलग नहीं हैं । कहनेका तरीका अलग हो सकता है, लेकिन करते एक ही चीज है । वे हिंदुस्तान या मुसलमानके दुश्मन नहीं हो सकते । जो मुसलमानका दुश्मन है वह हिंदुस्तानका भी दुश्मन है, इसमे मुझे कोई शक नहीं । (प्रा० प्र०, २० १४८)

: १०६ :

विठ्ठलभाई जे० पटेल

पाठकोको एक खुशखबरी न सुनानेका मुझे खेद है । अब वह नीचे दिये गए श्रीयुत विठ्ठलभाई पटेल और मेरे बीचके पत्र-व्यवहारसे प्रकट होगा

(१)

आर्य-भवन

सैडहर्स्ट रोड, बबई,

१० मई, १९२६

प्रिय महात्माजी,

जब मैंने लेजिस्लेटिव असेम्बलीका सभापतित्व स्वीकार किया था तो उस समय अपने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि मेरे वेतनसे जो कुछ बचत होगी, उसका किसी राष्ट्रोपकारी काममें उपयोग करूंगा । कई कारणोंसे, पहले ६ महीनोंसे मैं कुछ कहने-सुनने लायक रकम नहीं बचा सका । पिछले महीनेसे, मुझे कहते हुए खुशी होती है कि, मैं कठि-

नाइयोसे पार हो गया हू और एक भारी रकम वचा सकता हू । मैं देखता हू कि मुझे औसतन दो हजार रुपये महीनेकी जरूरत पड़ती है । इन्कम टैक्स देकर, मेरा माहवारी वेतन ३,६२५ रुपये है । इसलिए मैं चाहता हू कि पिछले महीनेसे गुरु करके मैं हर महीने १,६२५ रु० अलग निकाल दूं और इसका आप जिस काममें, जैसे चाहें, उपयोग करें । खैर, मेरे मनमें इस विषयमें कुछ विचार तो है, और समयानुसार मैं उनपर आपसे चर्चा करूंगा, मगर आप मुझसे उन विचारोंमें सहमत हो या नहीं, वह रकम आपके अधिकारमें रहेगी । साथमें अप्रैल मासके वेतनमेंसे मैं १,६२५ रु० का एक चेक भेजता हू ।

मुझे विश्वास है कि इस जिम्मेदारीको आप अस्वीकार नहीं करेंगे ।

आपका

(ह०) बी० जे० पटेल

(२)

‘सुखडेल’

शिमला, ३१ मई, १९२६

प्रिय महात्माजी,

साथमें मैं ४३२५ रु० का चेक भेजता हू । इसमें १,६२५ रु० तो मईके मेरे वेतनमेंसे मेरा हिस्सा है और २७०० रु० उस ३२०० रु० के बाकी है जो बवई कार्पोरेशनके मेरे सहकारियोंने मेरे कार्पोरेशनके सभापतित्वका कार्यकाल समाप्त होनेपर, ५,००० रु० की थैली मुझे भेंट करनेके लिए, इकट्ठे किये थे । आखिरी बार जब मैं आपसे सावर-मतीमें मिला था तो मैंने आपको समझा दिया था कि इस रकमको जो मैंने यो साधारणतः स्वराजदलके या बवई-राष्ट्रीय-म्युनिसिपल-दलके, ऐसे कामोंके लिए खर्च करनेका निश्चय किया था, जिन्हें मैं उचित समझता,

अब उसे क्यों आपको देना चाहता हूँ ताकि मेरे वेतनमें से मेरी मासिक सहायताके कोषमें वह मिला दिया जाय ।

आपका

(ह०) बी० जे० पटेल

(३)

आश्रम

साबरमती, २५-७-२६

प्रिय विट्ठलभाई,

मेरे पास आपके पत्र और सब मिलाकर ७,५७५) ६० के चेक मिले जिसमें असेम्बलीके प्रमुखके रूपमें आपके तीन महीनोके वेतनके हिस्से हैं और ५०००) की थैलीकी बचत है । आप मुझे यह रकम किसी ऐसे देशोपकारी काममें खर्च करनेको कहते हैं, जिसे मैं पसन्द करूँ । वह पत्र लिखनेके बाद आपने मेरे साथ अपने सुंदर दानके उपयोगके विषयमें अपने विचारोंकी चर्चा करली है । मैंने इसपर खूब विचार किया है कि उस रकमका मैं सचमुचमें क्या उपयोग करूँ और अंतमें इस निश्चयपर आया हूँ कि अभी हालमें तो उसे जमा होते जाने दूँ । इसलिए आश्रमके एजेंसी खातेमें उसे ६ महीनेकी बधी मुद्दतके लिए जमा करता जा रहा हूँ जिसमें सूदकी अच्छी रकम इकट्ठी हो सके और दलादलीका भगडा खत्म होते ही कुछ पारस्परिक मित्रोंकी सहायता लेकर, आपकी और उनकी सलाहसे किसी प्रशासनीय राष्ट्रीय काममें लगाऊँ ।

इस बीचमें मैं आपको इस उदार भावके लिए, जिससे आप अपने वेतनका एक बड़ा भाग सार्वजनिक कामके लिए दे देते हैं आपको साधुवाद देता हूँ । मैं आशा करता हूँ कि आपका उदाहरण और लोगो-पर असर करेगा ।

आपका

(ह०) मो० क० गांधी

(४)

२०, अकबर रोड

नई दिल्ली, ६ मार्च, १९२७

प्रिय महात्माजी,

जैसा कि आप जानते हैं, मैंने आपको पहले ही जैसा, पिछले अप्रैल मासके मेरे पत्रमें बतलाये हुए कामके लिए, हर महीने कोई ऐसी रकम देनेका निश्चय किया है, जो मैं अपने वेतनमें से बचा सकूँगा। असेम्बलीके सभापतित्वके सारे कार्य-काल भर, जहाँ तक संभव हो, मैं यही प्रवच जारी रखना चाहता हूँ।

फरवरीके अंत तक जो कुछ बचत हो सकी है, उसके लिए २०००) रु० का चेक सायमें भेजता हूँ।

आपका

(ह०) बी० जे० पटेल

यह पत्र-व्यवहार, श्रीयुत विठ्ठलभाई पटेलकी इच्छामें ही रका रहा। चुनावके दिनमें इसे प्रकाशित करनेमें उन्हें कुछ सकोच-सा मालूम हुआ। चुनावके बाद भी मैं पिछले ही हफ्ते, उनकी स्वीकृति पा सका। अगर इसके प्रकाशनमें सार्वजनिक लाभ न होता तो मैं स्वयं इस अभिमान-को बढ़ावा ही देता। मैं जानता हूँ कि विठ्ठलभाई चाहते हैं कि लोग उनके उदाहरणकी नकल करें। अगर किसी-न-किसी कारणसे, हिंदुस्तानकी स्थितिके हिसाबसे, बेहिसाब बड़े वेतन जरूर लेने ही पड़े तो उनका एक अच्छा हिस्सा, सार्वजनिक लाभके किसी कामके लिए, अलग निकालकर रक्खा जा सकता है। मैं जानता हूँ कि ऐसे कितने ही बड़े वेतनवाले आदमी हैं जो अपनी आमदनी, अपनी व्यक्तिगत मीजमें नहीं उड़ाने, मगर सार्वजनिक मेवामें लगाते हैं। मगर उसका खर्च अपनी ही इच्छाके अनुसार करते हैं। विठ्ठलभाई ऐसे चंदोंका एक विशेष कोष खोलना चाहते हैं जिसका प्रवच जाने-सुने प्रतिष्ठित पुरुष करें। अगर इस उद्देश्यको

सफल होना है तो ट्रस्टियोंका मडल राष्ट्रीय हो और उसमें उन सभी दलोंके प्रतिनिधि हो जो एक कार्यक्रमपर सहमत हो सकें। इसलिए जिन लोगोंको यह प्रस्ताव पसंद हो, उनसे मैं आलोचनाएँ और सूचनाएँ मांगता हूँ। कोषकी सारी जिम्मेदारी लेने या केवल उन्हीं कामोंमें उसका उपयोग करनेकी मेरी इच्छा नहीं है, जिनके लिए मैंने अपना जीवन उत्सर्ग किया हुआ है। मैं जानता हूँ कि मैं विठ्ठलभाईके महान उपहारका मतलब सबसे अच्छी तरह पूरा कर सकूँगा अगर मैं उन सबका सहयोग मागूँ जो सहायता करनेको तैयार हो। (हि० न०, १७ ३ २७)

धारासभाके सभापति और सरकारके बीचके मतभेदका परिणाम चाहे जो हो, इतना तो सच है कि धारासभाने श्री विठ्ठलभाई पटेलको अपना सभापति चुनकर जो काम किया था उसके औचित्यका श्री पटेलने अपने कार्य द्वारा जरूरतसे ज्यादा प्रमाण दे दिया है। अपनी कठोर निष्पक्षता द्वारा उन्होंने अपने पदके सम्मानकी रक्षा की है। साथ ही परंपरा द्वारा और कानून द्वारा जो मर्यादा उनके लिए बन चुकी है, उसके भीतर रहकर भी, राष्ट्रीय हितका एक भी अवसर उन्होंने हाथसे नहीं जाने दिया है। इस कारण सहज ही उनमें और सरकारमें हर बार मतभेद पैदा होता गया है। फिर भी हरएक वक्त जीत उनकी ही हुई है। वह ऐसे अवसरोंपर भी विजयी हुए हैं जब कि उपस्थित समस्याकी विकटताके कारण ऐसा भ्रम होता था कि वह अपना सहज उदात्त स्वभाव कायम न रख सकेंगे। ऐसा होनेपर भी दूसरे ही दिन उन्होंने स्वेच्छासे, उपयुक्त, सम्मानपूर्ण, शब्दोंमें प्रार्थना करते हुए अपनी गलती सुधार ली है। उन्होंने कभी अपने हृदयके भाव छिपाये नहीं हैं। सभापति की हैसियतसे निर्भीकता-पूर्वक कार्य-संचालन करके उन्होंने राष्ट्रकी प्रतिष्ठाको बढ़ाया है।

अतएव यहाँ उनकी महान् सफलताके कारणकी जांच करना अनुचित न होगा। उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। सादा जीवन

वित्तानेके कारण उनकी आर्थिक जरूरतें बहुत थोड़ी हैं । यही कारण है कि न तो ऊँचा पद और न बड़ा वेतन ही उन्हें ललचा पाते हैं । अपनी इस विरक्तिके कारण उनका उद्यम घटा नहीं, बल्कि आश्चर्यकारक ढंगसे बढ़ गया है, जिसके कारण इतने उच्च पदका कार्य-मचालन करनेके लिए जिन नियमों और कार्य-प्रणालीका ज्ञान आवश्यक है, उस पर उनका अनन्य प्रभुत्व हो गया है । विठ्ठलभाई पटेलके लिए राजनीति फुर्मतके वक्तका मनोरंजन नहीं है, वह तो उनके जीवनका प्रधान अंग बन गई है । अतएव उन्होंने राजनीतिक अध्ययनमें अपनी सारी बुद्धि और सारा समय खर्च कर दिया है । फलस्वरूप अपने क्षेत्रमें उन्होंने अपने आपको अजेय बना लिया है । (हि० न०, १८ ४ २६)

विठ्ठलभाई पटेलने अपनी आखिरी कारगुजारी द्वारा अपूर्व साहस और जागरूकताका परिचय दिया है । धारासभाके प्रति मुझे कभी मोह पैदा हुआ ही न था । अब तो वह पहलेसे भी ज्यादा बुरी मालूम होती है । इस धारासभाकी वजहसे हिंदू-मुसलमानोंमें दुश्मनी बढ़ी है । नेताओंके स्वार्थमें वृद्धि हुई है । फिर भी अगर किसीका धारामभामे जाना सार्थक और सफल हुआ है तो वह विठ्ठलभाईका ही । बड़ी धारासभाके अव्यक्षके नाते उन्होंने अपना सारा जाँहर जताया है और भारतवर्षका गौरव बढ़ाया है । (हि० न०, २५ ४ २६)

सन् १९१७ की गोधराकी राजनैतिक परिपद्धके अवसरपर विठ्ठलभाई को मैंने हरिजन-वस्तीमें जो देखा था, वह दृश्य कभी भूलनेका नहीं । राजनैतिक परिपद्धके साथ-साथ गोवरामे दूसरे सम्मेलन भी किये जाने थे । उनमें एक सुधार-सम्मेलन भी वहाँ था । उसमें एक प्रस्ताव हरिजननोंके मद्दक था । मैंने परिपद्धमें कहा कि जहाँ उगलियोंपर गिनने लायक भी हरिजन मौजूद न हों वहाँ उस प्रस्तावका रखना व्यर्थ है । इससे

यह अच्छा होगा कि रातको हरिजन-वस्तीमें जाकर वह प्रस्ताव पास किया जाय। सभाको यह बात पसंद आ गई। हरिजन-वस्ती सवर्ण हिंदुओंसे खूब भर गई। गोधराके इतिहासमें यह बात अपूर्व थी। तिल रखनेको जगह न थी। अन्बास साहब, उनकी बेगम साहिबा वगैरा तो थे ही। पर वहां मैंने एक दाढीवाले भाईको कफनी, धोती और साधुओं-का-सा कनटोप लगाए देखा। इस अजीब भेषमें विट्ठलभाईको इससे पहले कभी नहीं देखा था। इसलिए मैं उन्हें भटसे पहचान न सका। पर जब पहचाना तब तो हम एक-दूसरेसे लिपट गये और खूब ही हसे। इस भेषमें विट्ठलभाईका एक नाटकीय स्वाग तो था ही, किन्तु इसके अदर उनकी सादगी और जनसाधारणमें घुल-मिल जानेकी एक कला भी थी। विट्ठलभाईकी वहाकी उपस्थितिसे मैंने उनके हरिजन-प्रेमका परिचय पाया। और फिर ज्यो-ज्यो उनका अधिक अनुभव मुझे होता गया, यह सिद्ध हुआ कि उनका उस दिन हरिजन-वस्तीमें जाना शुद्ध हार्दिक था।

उनके अदर छुआछूतके लिए जरा भी जगह न थी। ऊच-नीच-भाव उनमें नहीं था। उनका दृढ़ विश्वास था कि जो अधिकार या पद सवर्ण हिंदुओंको प्राप्त हो सके, वही सब हरिजनोंको भी मिलने चाहिए। उनका यह विश्वास ही नहीं, बल्कि भी इसी प्रकारका था। इसीसे मैं आशा करता हू कि आगामी ६ नवंबरको जब उनके शवका अग्नि-संस्कार भारतमें होगा, उस दिन समस्त जनताके आसुओंमें हरिजन भी अपने श्रद्धापूर्ण आसू मिलाएंगे। (ह० से०, १० ११ ३३)

सिर्फ विट्ठलभाईका चित्र कालेज हालमें लटका देनेसे ही तुम लोग उत्तीर्ण नहीं हो सकते। उनसे ऋणमुक्त तो तुम तभी हो सकोगे जब उनकी नि स्वार्थता, उनकी सेवा-भावना और उनकी सादगीको तुम लोग ग्रहण करोगे। वह चाहते तो वकालत या दूसरा कोई अच्छा-सा धंधा

करके लाखों रुपया कमाकर मालामाल हो जाते । पर वह तो सारी जिंदगी सादगीसे ही रहे और अंतमें गरीबीकी हालतमें ही मरे । क्या ही अच्छा हो कि तुम लोग भी स्व० विट्ठलभाई पटेलका इसी तरह पदानुसरण करो । ('विद्यार्थियोमें' पृष्ठ १७२)

: ११० :

विजयालक्ष्मी पण्डित

आप सब श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डितको जानते हैं । वह हिंदुस्तानी नृमाडदा-मडलकी मुमिया इसलिए नहीं है कि पण्डित जवाहरलालकी बहन है, बल्कि इसलिए है कि वह उसके लायक है और अपना काम होगियारीसे करती है । (प्रा० प्र०, १६ ११ ४७)

: १११ :

नागेश्वरराव पन्तलु

नागेश्वररावमें विनय है और सचाई कूट-कूटकर भरी है । मुझे उनकी मित्रता और साथी होनेका गर्व है । मेरा जबमें उनके साथ परिचय हुआ है, मैंने उनमें यह विशेषता देखी है कि जिन्हें उनकी या उनकी सहायताकी आवश्यकता होती है उनके हाथमें वे अपनी गर्दन दे देते हैं । उनके दाहिने हाथका दिया हुआ उनके बाये हाथको मालूम नहीं होता । (ह० मे०, १२ १ ३४)

: ११२ :

पेस्तनजी पादशाह

यहा मुझे पेस्तनजी पादशाह याद आते हैं । विलायतसे ही उनका मेरा मधुर सबध हो गया था । पेस्तनजीसे मेरा परिचय लदनके अन्ना-हारी भोजनालयमे हुआ था । उनके भाई बरजोरजी एक 'सनकी' आदमी थे । मैंने उनकी ख्याति सुनी थी, पर मिला न था । मित्र लोग कहते, वह 'चक्रम' (सनकी) है । घोडेपर दया खाकर ट्राममे नही बैठते, शताव-धानकी तरह स्मरण-शक्ति होते हुए भी डिग्रीके फेरमे नही पडते । इतने आजाद मिजाज कि किसीके दम-भासेमे नही आते और पारसी होते हुए भी अन्नाहारी । पेस्तनजीकी डिग्री इतनी बढी हुई नही समझी जाती थी, पर फिर भी उनका बुद्धि-वैभव प्रसिद्ध था । विलायतमे भी उनकी ऐसी ही ख्याति थी, परतु उनके मेरे सबधका मूल तो था उनका अन्ना-हार । उनके बुद्धि-वैभवका मुकाबला करना मेरे सामर्थ्यके बाहर था ।

बर्बईमे मैंने पेस्तनजीको खोज निकाला । वह प्रोथोनोटरी थे । जब मैं मिला तब वह बृहद् गुजराती शब्द-कोषके काममे लगे हुए थे । दक्षिण अफ्रीकाके काममे मदद लेनेके सबधमे मैंने एक भी मित्रको टटोले बिना नही छोडा था । पेस्तनजी पादशाहने तो मुझे ही उलटे दक्षिण अफ्रीका न जानेकी सलाह दी—'मैं तो भला आपको क्या मदद दे सकता हूँ, पर मुझे तो आपका ही वापस लौटना पसद नही । यही अपने देशमे ही, क्या कम काम है ? देखिए, अभी अपनी मातृ-भाषाकी सेवाका ही कितना क्षेत्र सामने पडा हुआ है ? मुझे विज्ञान-सबधी शब्दोंके पर्याय खोजने हैं । यह हुआ एक काम । देशकी गरीबीका विचार कीजिए । हा, दक्षिण अफ्रीकामे हमारे लोगोको कष्ट है, पर उसमे आप जैसे लोग खप जाय, यह मुझे बरदाश्त नही हो सकता । यदि हम यही राज-सत्ता

अपने हाथमे ले सके तो वहा उनकी मदद अपने-आप हो जायगी । आपको शायद मैं न समझा सकूंगा, परंतु दूसरे सेवकोंको आपके साथ ले जानेमें मैं आपको हरगिज सहायता न दूंगा ।' ये बातें मुझे अच्छी तो नहीं लगी, परंतु पेस्तनजी पादशाहके प्रति मेरा आदर बढ़ गया । उनका देश-प्रेम व भाषा-प्रेम देखकर मैं मुग्ध हो गया । उस प्रसंगकी वदीलत मेरी उनकी प्रेम-गाठ मजबूत हो गई । उनके दृष्टि-विंदुको मैं ठीक-ठीक समझ गया, परंतु दक्षिण अफ्रीकाके कामको छोड़नेके बदले, उनकी दृष्टिमें भी, मुझे तो उसी पर दृढ़ होना चाहिए—यह मेरा विचार हुआ । देश-प्रेमी एक भी अगको, जहातक हो, न छोड़ेगा, और मेरे सामने तो गीताका श्लोक तैयार ही था—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।

स्वधर्मो निधन श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

(गीता ३।३५)

बड़े-बड़े पर-धर्ममें घटिया स्वधर्म अच्छा है । स्वधर्ममें मौत भी उत्तम है, किंतु पर-धर्म तो भयकर्ता है । (आ० क०)

: ११३ :

जी० परमेश्वरन् पिल्ले

यहा मुझे बड़ी-से-बड़ी सहायता स्वर्गीय जी० परमेश्वरन् पिल्लेसे मिली । वह 'मद्रास स्टैंडर्ड' के संपादक थे । उन्होंने इस प्रश्नका अच्छा अध्ययन कर लिया था । वह बार-बार अपने दफ्तरमें बुलाते और सलाह देते । 'हिंदू'के जी० सुब्रह्मण्यम्से भी मिला था । उन्होंने तथा डा० सुब्रह्मण्यम्ने भी पूरी-पूरी हमदर्दी दिखाई, परंतु जी० परमेश्वरन् पिल्लेने

तो अपना अखबार इस कामके लिए मानो मेरे हवाले ही कर दिया और मैंने भी दिल खोलकर उसका उपयोग किया। (आ० क०)

: ११४ :

पुरुषोत्तम (बापू गायधनी)

श्रीयुत जी० वी० केतकरने महान् वीरताकी एक घटनाका हाल भेजा है, जो यहा उल्लेखनीय है

“श्रीयुत पुरुषोत्तम, जो बापू गायधनीके नामसे अधिक पहचाने जाते हैं, नासिकके एक नौजवान कार्यकर्ता थे। पिछले कुछ वर्षोंमें वह नासिककी गुलालवाडी सार्वजनिक व्यायामशालाके सहायक मंत्रीका काम कर रहे थे। वह समय-समयपर महासभा और स्वदेशी प्रचारके कामोंमें भी हाथ बटाया करते थे। ४ अप्रैलके दिन नासिकमें एक मकानमें आग लगी। बापू गायधनीने आग बुझानेके काममें बहुत अधिक मेहनत की। यह मालूम होनेपर कि मकानमें बालक रह गये हैं, परिणामकी तनिक भी चिंता न करके, वह मकानमें घुस पड़े और बच्चोंको निकाल लाये। ढोरोको बचानेके लिए वह फिरसे घरमें घुसे। बदकिस्मतीसे इस वक्त तक आग चारों ओर फैल चुकी थी। एक जलता हुआ पाट अर्थात् उनके सरपर फट पडा। वह बुरी तरह जल गये और शरीर कई जगह घायल हो गया। घायल दशामें वह सिविल अस्पताल पहुँचाए गये, जहा ११ वी अप्रैलको उनका स्वर्गवास हो गया।”

उनके माता-पिताको, अगर वे जीवित हैं, अपने बहादुर पुत्रके लिए गर्व होना चाहिए। बापू गायधनी ऐसी भव्य मृत्यु पाकर अमर हो गये हैं। (हि० न०, ३० ४ ३१)

: ११५ :

सरदार पृथ्वीसिंह

‘हरिजन’ के पाठक जानते हैं कि सरदार पृथ्वीसिंह पच्चीस सालके बाद आजाद हुए हैं। इन पच्चीस सालोका एक भाग तो उन्होंने जेलमें बिताया और सोलह साल फरारीकी हालतमें डबेर-डबेर छिपते हुए। उन सोलह सालकी जिंदगीको वह आजादीकी जिंदगी नहीं कह सकते, जबकि खुफिया पुलिस उनके पीछे लगी रहती थी और जब जैमा अवसर हो उसके अनुसार वह नए-नए नाम रखते और नए-नए भेष धारण करने रहते थे। पाठकोको याद होगा कि पिछले साल जब मैं स्वास्थ्य-सुधारके लिए जूटमें था तब पृथ्वीसिंहने मुझमें मिलकर अपने पिछले पापोंको स्वीकार करने और भविष्यमें मेरे आदेशानुसार अपना जीवन बनानेका निश्चय किया। मैंने उन्हें मलाह दी कि पुलिसको आत्म-समर्पण कर दो और अपने पिछले पापोंसे मुक्त होनेके लिए स्वेच्छा-पूर्वक जेलके नियमोंका पालन करनेवाले कैदी बन जाओ। मैंने उनमें कहा था कि मैं तम्हें रिहा करानेकी कोशिश तो करूंगा, लेकिन तुम्हें यह न समझना चाहिए कि मैं उसमें सफल हो ही जाऊंगा, बल्कि जरूरत हो तो अपना शेष जीवन जेलमें काटनेमें ही सन्तोष करना चाहिए। बड़ी प्रसन्नता और सच्चे जीके साथ वह आजन्म कारावास भुगतनेके लिए तैयार हो गये। सच्चे जीसे उन्होंने यह सचार्ड कबूल कर ली कि स्वेच्छापूर्ण कैदमें भी देशकी गायद उत्तनी ही सेवा होगी, जितनी कि जेलमें बाहर रहकर की जा सकती है। मैं बड़ी खुशीके साथ यह कह सकता हू कि वह अपनी बातके पक्के रहे हैं। पाठक जानते हैं कि महादेव देसाईने रावलपिंडी-जेलमें उनमें मिलनेके बाद उस मुलाकातका वर्णन करते हुए उन्हें सी फीसदी आदर्श कैदी बतलाया था। वह अपने जेलरोंके प्रिय बन गये हैं और जेलरोंने उनमें

जो विश्वास किया उसके लिए उन्हें कभी पछताना नहीं पड़ा। वह उन्होंने ऊन और सूतकी कताई सीखी और ऊन-कताईका काम ऐसी मेहनतसे किया कि उनका हट्टा-कट्टा गरीर भी लगातार परिश्रमसे थक जाता था। सरदार पृथ्वीसिंहके आदर्श जेल-जीवनके बारेमें पहले प्यारेलालने और फिर महादेव देसाईने जो कुछ कहा उसपरसे मैंने अपने कर्तव्यका निश्चय कर लिया। महादेव देसाईको इस बातका पूरा विश्वास हो गया कि उनके मामलेमें वह सफलताके साथ सर सिकंदर हयातखासे बातचीत कर सकते हैं। मैंने उन्हें इसकी आज्ञा दे दी। सर सिकंदर भी बड़ी उदारतासे पेश आये। महादेवने जो कुछ कहा उसकी सचाईसे, जिसकी पुष्टि पृथ्वीसिंह जिन जेलोंमें रहे उनके अफसरों द्वारा प्राप्त रिपोर्टोंसे भी होती थी, वह प्रभावित हुए। महादेवने इसके लिए वाइसराय-भवनके भी द्वार खटखटाए। इस सबका फल यह हुआ कि २२ सितंबरको अधिकारियोंने सरदार पृथ्वीसिंहको लाकर मेरे पास छोड़ दिया। मैंने उनका स्वागत करते हुए कहा—“तुमने अपनेको एक जेलमें दूसरी जेलमें बदल दिया है, जो किसी कदर ज्यादा ही सख्त है।” उन्होंने हँसकर अपनी हार्दिक स्वीकृति प्रकट की। वह जानते हैं कि वह कसौटीपर कसे जा रहे हैं। अपने देशकी आजादीके लिए एकमात्र हिंसामें उनका पक्का विश्वास रहा। उन्होंने ऐसे-ऐसे साहसपूर्ण काम किये हैं, जिनकी बराबरी चाहे कोई कर सके, लेकिन उनसे बढ़कर किसी भी क्रांतिकारीने नहीं किया है। उनका जीवन अद्भुत घटनाओंमें भरा हुआ है। लेकिन धीरजके साथ आत्म-निरीक्षण करनेसे उन्हें मालूम पड़ा कि मूलभूत रूपमें उनका जीवन असत्यपूर्ण है और असत्यसे सच्ची मुक्ति कभी नहीं हो सकती। लुका-छिपीके उनके जीवनमें जो मोहकता थी और उनके साहसपूर्ण कार्योंसे चकाचौंध होकर उनके मित्र उनकी जो सहायता करते थे, उसके बावजूद वह लुका-छिपीके ऐसे असत्यपूर्ण जीवनसे ऊब गये। सैकड़ों नौजवानोंको उन्होंने जो व्यायाम सिखलाया, उससे उन्हें कोई सतोष नहीं हुआ। सौभा-

ग्यवग, उन्हें दक्षिणामूर्तिके नानाभाई जैसे साथी मिल गये। उन्होंने उनके कदम मेरी तरफ मोड़े। मैंने उनमें कह दिया कि मुझे तबतक सतोष न होगा, जबतक कि वह सक्रिय रूपमें अहिंसाके ऐसे उदाहरण न बन जाय जैसा कि मैं कभी भी हो सकता हूँ। मैं तो सक्रिय रूपमें कभी पूरा हिंसक नहीं रहा, बल्कि हिंसाकी जो भावना मुझमें रही वह कायरोकी-सी ही थी। लेकिन वह तो हिंसाके मूर्तरूप ही रहे हैं। अब अगर उन्होंने अहिंसाको हृदयगम कर लिया है। तो उनकी अहिंसा पहलेकी उनकी हिंसासे अधिक अद्भुत और ग्राह्य रूपमें नमृद्ध होनी चाहिए। ईश्वरकी कृपासे उन्हें इस लोकोक्तिको पूरा करके बतलाना चाहिए कि “जो जितना अधिक पापी होता है वह उतना ही बड़ा सत बनता है।” उन्होंने मुझे अपनी डायरीके वे प्रामाणिक पृष्ठ दिखलाये हैं, जिनमें उन्होंने स्वेच्छापूर्ण कैदी-के रूपमें बिताई अपनी पहली रातका मृत्युके रूपमें वर्णन किया है। उनमेंसे नीचे लिखे महत्वपूर्ण वाक्य मैं यहाँ देता हूँ

“आज मेरे आत्म-समर्पणका दिन है, जबकि दैवी आदेशसे प्रेरित होकर मैं ऐसी हर एक वस्तुका समर्पण करता हूँ जिसे कि मैं अपनी कह सकूँ। २५ साल तक मैंने सब खतरोंका सामना करते हुए ऐसा प्रकाश पानेके लिए सरत मेहनत की है जो मुझे सेवाका मार्ग बतला सके। काफी अनुभववाला क्रांतिकारी होनेके कारण मैं अपनी सफलताओंपर गर्व करता था। १६ मईका दिन मेरे जीवनमें एक महत्वपूर्ण दिन है। यह वह दिन है जब मुझे यह महसूस हो गया है कि उसी चले हुए रास्तेपर चलकर मैं न तो अपने राष्ट्रको समृद्ध कर सकूँगा और न मानवताके उद्धारमें ही अपनी कोई देन दे सकूँगा। १६ मईका यह दिन मेरे जीवनमें सबसे बड़े साहसका दिन है। वर्तमान जीवनका मेरे लिए न कोई आकर्षण है और न कोई अर्थ। मुझे नए जीवनमें प्रवेश करना ही चाहिए। मृत्युका आलिङ्गन किये बिना भला मैं उसे कैसे पा सकता हूँ ? लेकिन मृत्युका आलिङ्गन करना कोई उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य तो नया जीवन ही है। किंतु मृत्युके सिवा और कैसे

मैं उसे पा सकता हूँ ? तर्ककी इसमें विशेष गुजाइश नहीं। यह तो श्रद्धा थी, जिसने मुझे चुनावका रास्ता बतलाया।”

क्या अच्छा हो कि सरदारको जो आजादी अब मिली है वह इस बातको सिद्ध कर दे कि उनका यह नोट गर्म कल्पनाकी उपज नहीं, बल्कि छटपटाती हुई आत्माका प्रदर्शन है। (ह० से०, ३० ६ ३६)

: ११६ :

हेनरी पोलक

तीसरे मित्र पोलक हैं। वेस्टकी तरह इनके साथ भी मेरा परिचय भोजन-गृहमे हुआ। वह ट्रांसवालके ‘क्रिटिक’ के उप-संपादककी जगह छोड़कर ‘इंडियन ओपिनियन’ में आये थे। सब कोई जानते हैं कि उन्होंने युद्ध (सत्याग्रह) के लिए इंग्लैंड और सारे भारतवर्षमें भ्रमण किया था। रिच विलायत गये कि मैंने उन्हें फिनिक्समें अपने दफ्तरमें बुला लिया। वहां आर्टिकल्स दिये और ये भी वकील बन गये। वादमें उन्होंने शादी की। मिसेज पोलकको भी भारतवर्ष जानता है। इस महिलाने भी अपने युद्धके काममें पतिकी बड़ी सहायता की थी। एक दिन भी उसमें विघ्न नहीं डाला। और यद्यपि आज वे दोनों असहयोगमें हमारा साथ नहीं दे रहे हैं, तथापि वह यथाशक्ति भारतकी सेवा अब भी किया ही करते हैं। (द० अ० स० १९२५)

गोखलेकी इच्छा थी कि पोलक भारतवर्ष जाकर उनकी कुछ सहायता करे। मि० पोलकका स्वभाव ही ऐसा है कि वे जहां कहीं रहे, मनुष्यके लिए उपयोगी हो जाते हैं। जिस कामको वे उठाते हैं उसीमें तन्मय हो

जाने हैं। इसलिए उनको भारतवर्ष भेजनेकी तैयारियां चल रही थी। मैंने तो लिख दिया था कि वे चले जावे। पर बिना मुझसे मिले, सभी सूचनाएं प्रत्यक्ष मेरे मुहसे मुने बिना ही वे जाना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने इस सफरमें ही मुझसे मिल लेनेकी इजाजत मागी। मैंने उन्हें तारमें उत्तर दिया—“गिरफ्तार हो जानेकी जोखिम उठाना चाहे तो चले आवे।” सिपाही सभी आवश्यक जोखिमोंका स्वागत कर लेते हैं। यह युद्ध तो ऐसा था कि सरकार यदि सबको पकड़ना चाहती तो सभीको गिरफ्तार हो जाना चाहिए था। जबतक सरकार गिरफ्तार नहीं करती है तबतक गिरफ्तार होनेके लिए सरल और नीतियुक्त कोशिशें करते जाना धर्म था। इसलिए मि० पोलक अपनी गिरफ्तारीकी जोखिम उठाकर भी आ पहुंचे।

हम लोग हेडलवर्गके करीब पहुंच चुके थे। नजदीकवाले स्टेशनसे उतरकर वे हमे वही मिले। हमारी बात-चीत हो रही थी। अर्थात् वह पूरी भी नहीं हो पाई थी। दोपहरके तीन बजे होंगे। हम दोनों दलके मुहानेपर थे। दूसरे साथी भी हमारी बातें सुन रहे थे। शामको मि० पोलकको डरबन जानेवाली ट्रेन पकड़नी थी। किंतु रामचंद्रजी जैसे महापुरुषपतकको राजतिलकके समय वनवास मिला। फिर पोलक कीन होते थे? हमारी बातचीत हो रही थी कि एक घोड़ा-गाड़ी सामने आकर ठहर गई। उसमें ऐगियाट्टी विभागके उच्च अधिकारी मि० चमनी और एक पुलिस अधिकारी भी थे। दोनों नीचे उतरे। मुझे जरा दूर ले जाकर कहा, “मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ।” इस तरह चार दिनमें मैं तीन बार पकड़ा गया। मैंने पूछा—“इस दलको?”

“यह सब होता रहेगा।”

मैं कुछ न बोला। केवल अपने गिरफ्तार होनेकी खबर देनेका समय हो मुझे दिया गया। मैंने पोलकसे कह दिया कि वे दलके साथ जावे।
(द० अ० स० १९२५)

जिस तरह वेस्टसे मेरी मुलाकात निरामिष भोजनालयमें हुई, उसी तरह पोलकसे भी हो गई। एक दिन मेरे खानेकी मेजसे दूसरी मेजपर एक नवयुवक भोजन कर रहा था। उसने मुझसे मिलनेकी इच्छासे अपना नाम मुझ तक पहुंचाया। मैंने उन्हें अपनी मेजपर खानेके लिए बुलाया और वह आये।

“मैं ‘क्रिटिक’ का उप-सपादक हू। प्लेग-सबधी आपका पत्र पढ़नेके बाद आपसे मिलनेकी मुझे बड़ी उत्कंठा हुई। आज आपसे मिलनेका अवसर मिला है।”

मि० पोलकके शुद्ध भावने मुझे उनकी ओर खींचा। उस रातको हमारा एक-दूसरेसे परिचय हो गया और जीवन-सबधी अपने विचारोमें हम दोनोंको बहुत साम्य दिखाई दिया। सादा जीवन उन्हें पसंद था। किसी बातके पट जानेके बाद तुरंत उसपर अमल करनेकी उनकी शक्ति आश्चर्यजनक मालूम हुई। उन्होंने अपने जीवनमें कितने ही परिवर्तन तो एकदम कर डाले। (आ० क० १६२७)

फिनिक्स जैसी संस्था स्थापित करनेके बाद मैं खुद थोड़े ही समय उसमें रह सका। इस बातपर मुझे हमेशा बड़ा दुःख रहा है। उसकी स्थापनाके समय मेरी यह कल्पना थी कि मैं भी वही बसूंगा। वही रहकर जो-कुछ सेवा हो सकेगी वह करूंगा और फिनिक्सकी सफलताको ही अपनी सेवा समझूंगा, परंतु इन विचारोके अनुसार निश्चित व्यवहार न हो सका।

हमारी धारणा यह थी कि हम लोग खुद मिहनत करके अपनी रोजी कमायेंगे, इसलिए छापेखानेके आस-पास हर एक निवासीको तीन-तीन एकड़ जमीनका टुकड़ा दिया गया। इसमें एक टुकड़ा मेरे लिए भी नापा गया। हम सब लोगोकी इच्छाके खिलाफ उनपर टीनके घर बनाए गये। इच्छा तो हमारी यह थी कि हम मिट्टी और फूसके, किसानोके लायक

अथवा ईंटके मकान बनावे, पर वह न हो सका। उसमें अधिक रुपया लगता था और अधिक समय भी जाता था। फिर सब लोग इस वानके लिए आतुर थे कि कब अपने घर बना ले और काममें लग जाय।

यद्यपि 'इंडियन ओपिनियन' के संपादक तो मनसुखलाल नाजर ही माने जाते थे, तथापि वह इस योजनामें सम्मिलित नहीं हुए थे। उनका घर डरवनमें ही था। डरवनमें 'इंडियन' ओपिनियन' की एक छोटी-सी शाखा भी थी।

छापेखानेमें कपोज करने यानी अक्षरजमानेके लिए यद्यपि वैतनिक कार्यकर्त्ता थे, फिर भी उसमें दृष्टि यह रखी गई थी कि अक्षर जमानेकी क्रिया सब सस्थावासी जान ले और करे। क्योंकि यह है तो आसान, पर इसमें समय बहुत जाता है। इसलिए जो लोग कपोज करना नहीं जानते थे वे सब तैयार हो गये। मैं इस काममें अतक सबसे ज्यादा पिछड़ा रहा और मगनलाल गांधी सबसे आगे निकल गये। मेरा हमेशा यह मत रहा है कि उन्हें खुद अपनी गतिकी जानकारी नहीं रहती थी। उन्होंने इससे पहले छापेखानेका कोई काम नहीं किया था, फिर भी वह एक कुशल कपोजीटर बन गये और अपनी गति भी बहुत बढ़ा ली। इतना ही नहीं, बल्कि थोड़े ही समयमें छापेखानेकी सब क्रियाओंमें काफी प्रवीणता प्राप्त करके, उन्होंने मुझे आश्चर्य-चकित कर दिया।

यह काम अभी ठिकाने लगा ही न था, मकान भी अभी तैयार न हुए थे कि इतनेमें ही इस नए रचे कुटुंबको छोड़कर मुझे जोहासवर्ग भागना पड़ा। ऐसी हालत न थी कि मैं वहाका काम बहुत समयतक यो ही पटक रखता।

जोहासवर्ग आकर मैंने पोलकको इस महत्त्वपूर्ण परिवर्तनकी सूचना दी। अपनी दी हुई पुस्तकका यह परिणाम देखकर उनके आनंदकी

सीमा न रही। उन्होंने बड़ी उमंगके साथ पूछा—“तो क्या मैं भी इसमें किसी तरह योग नहीं दे सकता ?”

मैंने कहा—“हा क्यों नहीं, अवश्य दे सकते हैं। आप चाहे तो इस योजनामें भी शरीक हो सकते हैं।”

“मुझे आप शामिल कर ले तो मुझे तैयार ही समझिए।” पोलकने जवाब दिया।

उनकी इस दृढताने मुझे मुग्ध कर लिया। पोलकने ‘क्रिटिक’ के मालिकको एक महीनेका नोटिस देकर अपना इस्तीफा पेश कर दिया और मियाद खतम होनेपर फिनिक्स आ पहुँचे। अपनी मिलनसारीसे उन्होंने सबका मन हर लिया और हमारे कुटुम्बों वनकर वहाँ बस गये। सादगी तो उनके रंगरेशमें भरी हुई थी, इसलिए उन्हें फिनिक्सका जीवन जरा भी अटपटा या कठिन न मालूम हुआ, बल्कि स्वाभाविक और रुचिकर जान पड़ा।

पर खुद मैं ही उन्हें वहाँ अधिक समयतक न रख सका। मि० रिचने विलायतमें रहकर कानूनके अध्ययनको पूरा करनेका निश्चय किया। दफ्तरके कामका बोझ मुझ अकेलेके बसका न था। इसलिए मैंने पोलकसे दफ्तरमें रहने और बकालत करनेके लिए कहा। इसमें मैंने यह सोचा था कि उनके बकील हो जानेके बाद अतको हम दोनों फिनिक्समें आ पहुँचेंगे।

हमारी ये सब कल्पनाएँ अतको झूठी साबित हुईं परन्तु पोलकके स्वभावमें एक प्रकारकी ऐसी मरलता थी कि जिसपर उनका विश्वास बैठ जाता उसके साथ वह हुज्जत न करते और उसकी सम्मतिके अनुकूल चलनेका प्रयत्न करते। पोलकने मुझे लिखा—“मुझे तो यही जीवन पसंद है और मैं यही सुखी हूँ। मुझे आशा है कि हम इस समस्याका खूब विकास कर सकेंगे। परन्तु यदि आपका यह खयाल हो कि मेरे वहाँ आनेसे हमारे आदर्श जल्दी सफल होंगे तो मैं आनेको भी तयार हूँ।”

मैंने इस पत्रका स्वागत किया और पोलक फिनिक्स छोड़कर

जोहासवर्ग आये और मेरे दफ्तरमे मेरे सहायकका काम करने लगे ।
(आ० क० १६२७)

..

पोलकको मैंने अपने साथ रहनेका निमन्त्रण दिया और हम सगे भाईकी तरह रहने लगे । पोलकका विवाह जिस देवीके साथ हुआ उसमे उनकी मैत्री बहुत समयसे थी । उचित समयपर विवाह कर लेनेका निश्चय दोनोंने कर रखा था, परन्तु मुझे याद पड़ता है कि पोलक कुछ रुपया जुटा लेनेकी फिराकमे थे । रस्किनके ग्रंथोका अध्ययन और विचारोका मनन उन्होंने मुझसे बहुत अधिक कर रखा था, परन्तु पश्चिमके वातावरणमे रस्किनके विचारोके अनुसार जीवन चितानेकी कल्पना मुश्किलसे ही हो सकती थी । एक रोज मैंने उनसे कहा, "जिसके साथ प्रेम-गाठ बंध गई है उसका वियोग केवल धनाभावसे सहना उचित नहीं है । इस तरह अगर विचार किया जाय तब तो कोई गरीब बेचारा विवाह कर ही नहीं सकता । फिर आप तो मेरे साथ रहते हैं । इसलिए घर-खर्चका खयाल ही नहीं है । सो मुझे तो यही उचित मालूम पड़ता है कि आप शादी कर ले ।"

पोलकसे मुझे कभी कोई बात दुवारा कहनेका मौका नहीं आया । उन्हें तुरत मेरी दलील पट गई । भावी श्रीमती पोलक विलायतमे थी, उनके साथ चिट्ठी-पत्री हुई । वह सहमत हुई और थोड़े ही महीनोमे वह विवाहके लिए जोहासवर्ग आ गई ।

विवाहमें खर्च कुछ भी नहीं करना पड़ा । विवाहके लिए खास कपड़े-तक नहीं बनाए गये और धर्म-विधिकी भी कोई आवश्यकता नहीं समझी । श्रीमती पोलक जन्मत ईसाई और पोलक यहूदी थे । दोनों नीति-धर्म-के माननेवाले थे ।

परन्तु इस विवाहके समय एक मनोरञ्जक घटना हो गई थी । ट्रांस-वालमे जो कर्मचारी गोरोके विवाहकी रजिस्ट्री करता वह कालेके विवाहकी नहीं करता था । इस विवाहमे दोनोंका पुरोहित या साक्षी मैं ही था ।

हम चाहते तो किसी गोरे-मित्रकी भी तजवीज कर सकते थे, परंतु पोलक इस बातको बरदाश्त नहीं कर सकते थे। इसलिए हम तीनों उस कर्मचारीके पास गये। जिस विवाहका मध्यस्थ एक काला आदमी हो उसमें बर-वधू दोनों गोरे ही होंगे, इस बातका विश्वास सहसा उस कर्मचारीको कैसे हो सकता था ? उसने कहा कि मैं जाच करनेके बाद विवाह रजिस्टर करूंगा। दूसरे दिन बड़े दिनका त्यौहार था। विवाहकी सारी नैयारी किए हुये बर-वधूके विवाहकी रजिस्ट्रीकी तारीखका इस तरह बदला जाना सबको बड़ा नागवार गुजरा। बड़े मजिस्ट्रेटसे मेरा परिचय था। वह इस विभागका अफसर था। मैं इस दफतीको लेकर उनके पास गया। किस्सा सुनकर वह हँसा और चिट्ठी लिख दी। तब जाकर यह विवाह रजिस्टर हुआ।

आजतक तो थोड़े-बहुत परिचित गोरे पुरुष ही हम लोगोके साथ रहे थे, पर अब एक अपरिचित अंग्रेज महिला हमारे परिवारमें दाखिल हुई। (आ० क० १६२७)

..

.

पोलकसे बढ़कर ईमानदार अंग्रेज और तुम्हें कहा मिलेगा ? तुम उसके समागममें खूब आये हो। यह आदमी तो साफ मानता है कि अंग्रेजोंने इस देशका भला ही किया है। फिर दूसरे ऐसा माने तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? यह तो ईसाई मिशनकी वृत्ति है। (म० डा० भाग २ ६६१३)

..

.

“वह (पोलक) बहुत जल्दी चिढ़ जाता था। वह और श्रीमती पोलक पहले मित्र थे। इथिकल सोसाइटी (Ethical Society) के सदस्य बने, वहासे मित्रता शुरू हुई, आखिर मैंने उनकी शादी कराई। वे सोचते थे कि कुछ पैसे हो जाय तब शादी करे। मगर मैंने कहा, ‘यह निकम्मी बात है, और पैसेकी जरूरत हो तो मैं भी तो तुम्हारे पास पड़ा हूँ न।’ पोलकका

यह प्रेम-सवध था । मगर वह कई बार अपना सतलन खो बैठता था । वैसे तो श्रीमती पोलक दो की चार सुनानेवाली थी, मगर जब पोलक गुस्सेमें होता था तो उससे बड़े प्रेमसे पेश आती थी । कहती, “तुम्हें हुआ क्या है ?” और हँस देती थी । मैं कहा करता था कि यह क्या बात है कि पहले तो तुम इतने मित्र थे, और अब गादी हो गई है तो क्या लडना ही चाहिए ? जैसे मैंने तुम्हारी गादी कराई है वैसे ही तलाक भी करवाना होगा क्या ? श्रीमती पोलककी कार्य-कुशलताका नतीजा यह है कि वे आज एक दूसरेको पूजते हैं और मुझे छोड़ दिया है । (का० क०, १६ ६ ४२)

: ११७ :

फकीरी

फकीरीकी मीत ता ऐसी हुई जो आश्रमको शोभा देनेवाली नहीं कही जा सकती । आश्रम अभी नया था । फकीरीपर आश्रमके सस्कार न पड़े थे । फिर भी फकीरी बहादुर लडका था । मेरी टीका है कि वह अपने खाऊपनकी वलि हो गया । उसकी मृत्यु मेरी परीक्षा थी । मुझे ऐसा याद है कि आखिरी दिन उसकी बगलमें सारी रात मैं ही बैठा रहा ।

सवेरे मुझे गुरुकुल जानेके लिए ट्रेन पकडनी थी । उमें अरथीपर मुलाकर, पत्थरका कलेजा करके मैंने स्टेशनका गस्ता लिया । फकीरीके वापने फकीरी और उसके तीन भाइयोंको यह समझकर मुझे सौंपा था कि मैं फकीरी और दूसरोंके बीच भेद न करूंगा । फकीरी गया तो उसके तीन भाइयोंको भी मैं खो बैठा । (‘आश्रमवासियोंसे’, ३० ५ ३२)

: ११८ :

रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स

डोकके ही जैसा सबध रखनेवाले और बहुत भारी सहायता करने-वाले एक और पादरी सज्जन थे । उनका नाम था रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स । बहुत वर्ष पहले वे ट्रान्सवालमें कांग्रेसेशनल मिनिस्टर थे । उनकी सुशीला स्त्री भी उनकी बड़ी सहायता करती । (द० अ० स० १९२५)

: ११९ :

जमनालाल बजाज

मनुष्यके जीने हुए उसकी जीवनीका प्रकट होना सामान्यतया अयोग्य है, परंतु इसमें अपवाद भी है । जमनालालजीको मैं मुमुक्षु या आत्मारथी समझता हूँ । ऐसे पुरुषोंकी जीवनीमेंसे दूसरोंको कुछ-न-कुछ नैतिक लाभ मिलता है । इस दृष्टिसे इस जीवनीके प्रकट करनेके औचित्यके लिए मुझसे पूछा गया तब मैंने इसको उचित माना । इसके एक-दो प्रकरण मैंने सुने हैं । इसपरसे मेरा विश्वास है कि इसमें अतिशयता या अयोग्य स्तुति नहीं है । मैं आशा करता हूँ कि जिन्होंने सेवाधर्मको स्वीकार किया है उनको जमनालालजीके जीवनमें से बहुत-सी बातें अनुकरणीय प्रतीत होगी । ('सेठ जमनालाल बजाज' से)

...

..

.

उनको नजरबंद रखना तो समझमें आ जाता है क्योंकि वे उस हुक्म की अद्वली करना चाहते हैं जो उनके अपने जन्म-प्रदेशमें प्रवेश करनेसे

रोकता है। अधिकारियोंको यह मालूम है कि सेठजी एक आदर्श कैदी है, वे जेलके नियंत्रणका पूरी तरह पालन करनेमें विश्वास रखते हैं। उन्हें जिस प्रकार बाहरकी सारी दुनियासे अलग कर दिया गया है, क्या यह अत्याचार और निर्दयता नहीं है ? (ह० से०, ६ ५ ३६)

सेठ जमनालाल बजाजको छीनकर कालने हमारे बीचसे एक शक्तिशाली व्यक्तिको छीन लिया है। जब-जब मैंने धनवानोंके लिए यह लिखा कि वे लोककल्याणकी दृष्टिसे अपने धनके ट्रस्टी बन जाए तब-तब मेरे सामने सदा ही इस वणिक्गिरोमणिका उदाहरण मुख्य रहा। अगर वह अपनी संपत्तिके आदर्श ट्रस्टी नहीं बन पाए तो इसमें दोष उनका नहीं था। मैंने जानबूझकर उनको रोका। मैं नहीं चाहता था कि वे उत्साहमें आकर ऐसा कोई काम कर ले, जिसके लिए बादमें शांत मनसे सोचनेपर उन्हें पछताना पड़े। उनकी सादगी तो उनकी अपनी ही चीज थी। अपने लिए उन्होंने जितने भी घर बनाए, वे उनके घर नहीं रहे, वर्मशाला बन गये। सत्याग्रहीके नाते उनका दान सर्वोत्तम रहा। राजनैतिक प्रश्नोंकी चर्चामें वह अपनी राय दृढ़तापूर्वक व्यक्त करते थे। उनके निर्णय पक्के हुआ करते थे। त्यागकी दृष्टिसे उनका अंतिम कार्य सर्वश्रेष्ठ रहा। वे किसी ऐसे रचनात्मक काममें लग जाना चाहते थे, जिसमें वे अपनी पूरी योग्यताके साथ अपने जीवनका शेष भाग तन्मय होकर बिता सकें। देशके पशुधनकी रक्षाका काम उन्होंने अपने लिए चुना था और गायको उसका प्रतीक माना था। इस काममें वह इतनी एकाग्रता और लगनके साथ जुट गये थे कि जिम्मेकी कोई मिसाल नहीं। उनकी उदारतामें जाति, धर्म या वर्णकी सकुचितताको कोई स्थान न था। वे एक ऐसी साधनामें लगे हुए थे, जो कामकाजी आदमीके लिए विरल है। विचार-सयम उनकी एक बड़ी साधना थी। वे सदा ही अपनेको तत्स्कर विचारोंसे बचानेकी कोशिशमें रहते थे। उनके अवसानसे वसुन्धरा

का एक रत्न कम हो गया है। उनको खोकर देगने अपना एक वीर-से-वीर सेवक खोया है। जिस कार्यके लिए उन्होंने अपना शेष जीवन समर्पित कर दिया था, उसे अब उनकी विधवा जानकीदेवीने स्वयं करनेका निश्चय किया है। उन्होंने अपनी समस्त निजी संपत्तिको, जो करीब ढाई लाखके आस-पास है, कृष्णार्पण कर दिया है। ईश्वर उन्हें अपने इस अगोचर कार्यमें सफल होनेकी शक्ति दे। (ह० से०, १५ २ ४२)

[जमनालालजी अकेले एक व्यक्ति ही नहीं थे। वे सच्चे अर्थमें देशकी एक सस्था थे। उनके आकस्मिक स्वर्गवासके बाद गांधीजीने तय किया कि उनकी तमाम सार्वजनिक प्रवृत्तियोंको पहलेकी तरह अखंड रूपमें चलाए रखना ही उनका सच्चा स्मारक हो सकता है। इस हेतुको सफल बनानेके लिए उन्होंने जमनालालजीके करीब दो सौ ऐसे मित्रोंको, जिन्हें उनके जीवन-कार्यसे सहानुभूति थी, अपनी सहीसे निमंत्रण भेजकर सलाह-मशविरेके लिए वर्धा बुलाया। जमनालालजीके राष्ट्रभाषा प्रचारके सिद्धांतोंको ध्यानमें रखकर निमंत्रण-पत्र हिंदी और उर्दू दोनों लिपियोंमें छापा गया था। वर्धाके नवभारत विद्यालयमें २० और २१ फरवरीको दोपहर इस निमित्तसे आये हुए भाई-बहनोकी दो सभाएं हुईं। इस अवसरपर गांधीजीने जो भाषण किया वह अपनी मिसाल आप ही हैं। उनके मुहसे ऐसे वचन इस प्रकारके अवसरपर शायद पहले कभी सुननेमें नहीं आये। रुपए-पैसे द्वारा ईंट-पत्थरका स्मारक बनानेकी बात को छोड़कर जमनालालजीकी मृत्युको आत्मोन्नतिका और उनके जीवन-कार्यको आगे बढ़ानेका एक साधन बना लेनेकी सलाह देते हुए उन्होंने वहां एकत्र मित्र-मंडलसे कहा.]

आजका-सा अवसर मेरे जीवनमें इससे पहले कभी नहीं आया था और जहां तक मैं सोच पाता हूँ आगे भी कभी नहीं आएगा। आप देखते हैं कि जो कार्रवाही आज हम यहां करने जा रहे हैं उसके लिए कोई सभापति

नहीं चुना गया है। मैं तो सभापति हूँ ही नहीं। क्यों नहीं हूँ, सो आप खुद ही थोड़े समयमें समझ जाइयेगा।

कहा जाता है कि मेरे साथ जमनालालजीका सबब करीब-करीब तभीसे शुरू हुआ जबसे मैंने हिंदुस्तानके सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया। उन्होंने मेरे सभी कामोंको पूरी तरह अपना लिया था, यद्वातवा कि मुझे कुछ करनाही नहीं पड़ता था। ज्योंही मैं किसी नए कामको शुरू करता वे उसका बोझ खुद उठा लेते थे। इस तरह मुझे निश्चित कर देना, मानो उनका जीवन-कार्य ही बन गया था। यो हमारा काम मजेमें चल रहा था, लेकिन अब तो वे खुद ही चले गये हैं और उनके सब कामोंको चलानेका भार मेरे कंधोंपर आ पड़ा है। इसलिए मैंने सोचा कि मैं उनके उन सब मित्रोंको जो उनके अनेकानेक सेवाकार्योंमें सहायक होते रहते थे, यहा बुलाऊँ और उनसे निवेदन करूँ कि वे इस असह्य बोझको उठानेमें अपनी ताकतभर मेरी मदद करके इसे हलका करें। आज मैं आपके सामने एक भिक्षुककी हैसियतसे यहा खड़ा हूँ। फिर इस सभाका सभापति कैसे बन सकता हूँ ?

अपना भिक्षापात्र लेकर मैं आपके सामने खड़ा होता हूँ। लेकिन मैं धन-दौलतकी भीख नहीं मागता। वैसी भीख भी मैंने जीवनमें खूब मागी है। गरीबकी कौड़ी और अमीरोंके करोड़ोंकी मुझे जरूरत नहीं है।

लेकिन आज जो काम मुझे करना है उसमें रुपए-पैसेकी कम ही जरूरत है। अगर मैं चाहता तो आजके दिन जमनालालजीके सब धनिक मित्रोंको यहा इकट्ठा करके उनपर दवाब डाल सकता था, उनकी खुशामद कर सकता था और उनकी भावनाओंको द्रवित करके थैलियोंके मुंह खुलवा सकता था। यह बड़ा भी मैंने अपने जीवनमें जी-भरकर किया है और वह मुझे अच्छी तरह आता भी है। लेकिन वही सब आज मैं यहा करने बैठता तो उस व्यक्तिके नाम को बड़ा बड़ा लगता। मुझे अपना कर्तव्य देकर वह चल बसा है, जो मेरे पास आया तो मेरी परीक्षा लेनेको,

मगर पुत्र बनकर बैठ गया और मेरा सारा बोझ उठाता रहा । मुझे जो भिक्षा आज आपसे मागनी है वह तो यह है कि जमनालालजीके उठ जानेसे जो बोझ बढ गया है उसको उठानेमें कौन-कौन मेरी मदद करेंगे ? अकेले एक आदमीकी मददसे काम नहीं चलेगा । मदद तो सबको मिलकर देनी होगी और काम बाट लेना होगा ।

इस सबधमें आगे कुछ कहनेके पहले मैं आपको यह बता दू कि अभी तक मैंने क्या किया है । ११ फरवरीको जब मैं जमनालालजीके द्वारपर पहुँचा तो उनका देहात हो चुका था । मेरे पास वर्षासे सदृश तो सिर्फ यही आया था कि ग्लूनका दौरा कम करनेकी दवा भेजे । मैं दवा भेजकर अपने दिलकी तसल्ली कर सकता था । लेकिन उस दिन मैंने महसूस किया कि नहीं, मुझे खुद ही जाना चाहिए । जब वहाँ पहुँचा तो मामला कुछ और ही पाया । मैं उस अवसरपर भी निर्दयी बन गया । जानकीदेवी तो पतिके शवके साथ सती होनेकी बात करती थी । मैंने कहा कि सचमुच सती बनना है तो जीती-जागती सती बन जाओ । धनका जितना त्याग कर सको कर दो । यह तो उनके लिए एक मामूली बात थी । आखिर धनसे वह कितना सुख और आराम भोग सकती थी ? लेकिन दूसरी चीज उतनी आमान नहीं थी । संभव है, वह भी उतनी आसान न हो । मैंने कहा कि वह अपने पतिका स्थान ले ले । उन्हें सकोच हुआ, फिर भी मैंने उनसे प्रतिज्ञा करा ही ली । इतना कठोर मैं बन गया ।

इस तरह जानकीदेवीने तो त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली । लेकिन फिर मैंने मोचा कि उनके लडके-लडकियों और दामाद वगैराको भी ऐसा ही त्याग करना चाहिए । मैं उनके साथ भी कठोर हो गया । मैंने उनसे कहा, “वेशक आप जमनालालजीकी तरह व्यापार कीजिए, लेकिन उसमें उनकी विशेषताको निवाहते रहिए, याने व्यापार भी सेवाभाव अथवा धर्मभावसे कीजिए । जितना कमाए, नीति-पूर्वक कमाइए और उसे खर्च

भी पृथ्य कार्यके लिए कीजिए । अपने ऐश-आरामके लिए नहीं, यानी आप अपने कमाए धनके भी सरक्षक बनकर रहिए ।

जमनालालजी करीब ६ लाख रुपया अपने लडकोके पास जोड़ गये थे ताकि वे उसका उपयोग सेवार्थ करें । यानी इससे मेरे जैसे भिखारियोंकी भोलिया भरें । लडके कह सकते थे कि एक बार हमें जी-भरकर ऐश-आराम करने दीजिए, फिर हम त्याग भी करते रहेंगे । लेकिन नहीं, एक-दो दिनके गभीर विचारके बाद उन्होंने वह सारी रकम सेवा-कार्यके लिए दे दी । इसके सिवा जमनालालजीके जीवन-कालमें कांग्रेसजनोके और दूसरे कार्यकर्ताओके आतिथ्य पर हरसाल करीब २० हजार रुपया खर्च होता था । उन्होंने इसको भी पहलेकी तरह जारी रखनेका निश्चय किया और सारे खर्चकी जवाबदारी वच्छराज जमनालाल कंपनीकी तरफसे अपने कंधेपर उठा ली । सेठजीने बजाजवाडीका एक हिस्सा जानकीदेवीके लिए और बच्चोके लिए रखा था । लेकिन उनके परिवार-वालोंने यह तय किया कि उनमेंसे कोई उन बगलोमें नहीं रहेंगे । उनका प्रयोग सिर्फ अनिधि-सत्कारके लिए अथवा सार्वजनिक कामके लिए ही होगा । वे खुद तो अभी गोपुरीमें ही रहना पसंद करते हैं ।

इस तरह शुभ सकल्पोके साथ यह काम शुरू हुआ है । जमनालालजीकी आख बढ होने ही मैंने उनके बोझका बटवारा कर लिया है । आप देखेंगे कि जमनालालजीके कामोकी फेहरिस्त आपको भेजी गई है । उसमें उनके आखिरी कामको पहला स्थान मिला है । यह काम स्वराज-प्राप्तिके कामसे भी कठिन है । स्वराज्य मिलनेसे वह अपने आपही नहीं हो जायगा । यह सिर्फ पैसेसे होनेवाला काम नहीं । मैं इस बातका साक्षी हू कि आजीवन अनौकिक निष्ठासे काम करनेवाले उस व्यक्तिके किस अपूर्व निष्ठामें इस कामको शुरू किया था । इन्हे इस तरह काम करते देख एक दिन सहज ही मेरे मुहमें निकल गया था कि जिस वेगसे वह इस कामको कर रहे हैं उसको उनका शरीर सह सकेगा या नहीं ? कहीं बीचमें

ही वह धोखा तो नहीं दे जायगा । आज मेरा वह कथन भविष्यवाणी सिद्ध हुआ है मानो उस समय भगवान ही मेरे मुहसे बोल रहे थे । साराश यह कि यह काम पैसेसे नहीं, एक निष्ठासे होनेवाला है । जानकीदेवीने जो ढाई लाख रकम दान की है उसमेसे ढाई हजार रुपये खादीके काममें खर्च करनेका वह पहले ही सकल्प कर चुकी थी । इसके सिवा वर्धामे एक प्रभूतिगृह बनानेकी उनकी इच्छा थी । कुछ रुपया उसमे लगेगा । बाकी करीब सवा दो लाख गोमाताके कामके लिए रह जाता है । बीस-पच्चीस हजार रुपया अखिल गोसेवा सघका था, वह भी आज हमारे पास है । जानकीदेवीके दानकी रकमके साथ मिलकर यह रकम हमारी आजकी आवश्यकताके लिए काफी है , लेकिन कार्यकर्ता काफी नहीं है । गोसेवाका काम आजतक जिस तरह चला उससे न जमनालालजीको मतोष था, न मुझे । इस कामको सतोषजनक रूपमे चलानेके लिए मुझे आपकी तन, मन, धन-से मदद मिलनी चाहिए । जब तक यह न हो जायगा मुझे चैन न पड़ेगा । असलमे वारिस तो उन्हें मेरा बनना चाहिए था; पर वह तो चले गये और जी गए । अब परीक्षा मेरी है । मैं एक नए रूपमे उनका वारिस बन गया हूँ । यानी उनके सारे के-सारे कामोको मैंने अपने जिम्मे ले लिया है । लेकिन यह तो एक ऐसी चीज है जिसके वारिस आप सब बन सकते हैं । जब आप नव मिलकर इन कामोको उठा लेंगे तो यह पहलेसे भी ज्यादा व्यवस्थित और सतोष-जनक रीतिसे चलेंगे और तभी मैं इस परीक्षामे उत्तीर्ण हो पाऊंगा ।

जमनालालजी तो बड़भागी थे । उनकी तरह हम भी अपनेको बड़भागी साबित कर सकते हैं, बशर्ते कि जो चीज उनके रहते हमें साफ नहीं दिखाई दी वह उनके बाद हमें साफ दिखाई देने लगे । जो जाग्रति हममे उनके जीवित रहते नहीं आई वह अब सबमें आ जाय । यह सब कठिन है । मगर एक तरहसे आसान भी है । अगर आप यह कठिन काम कर सकते हैं तो करें । परन्तु मैं नहीं चाहता कि आप कुछ शरमा-गरमी करें ।

इससे तो आप जमनालालजीके प्रति अपनी सच्ची श्रद्धाका सबूत नहीं दे सकेंगे। लेकिन बिना किसी सकोचके मोच-ममभ्रकर उनके काममें थोड़ी-सी मदद पहुंचायेंगे तो आप ग्रहामें एक बड़ा काम करके चले जायेंगे।

उनका सबसे बड़ा काम गोमेवाका था। वैसे तो यह काम पहले भी चलता था, लेकिन बीभी चाल में। इसमें उन्हें सतोष न था। उन्होंने इसे तीव्र गतिमें चलाना चाहा, और इतनी तीव्रतामें चलाया कि खुद ही चल बसे। अगर हमें गायको जिंटा रखना है तो हमें भी इसी तरह उसकी सेवामें अपने प्राण होमने होंगे। इसी तीव्रतामें काम करना होगा। अगर हम गायको बचा पायें तो हम भी बच जायेंगे। इसका एक रास्ता तो वह है जो पश्चिम वालोंने अरिस्तयार कर रखा है। यानी उसको बेचे और उसकी मिट्टीसे अपना पेट भरकर मोटे-ताजे बने। परन्तु उनका यह न्याय न मुझे मंजूर है, न आपको और न जमनालालजीको। इसलिए इसकी जो मर्यादा उन्होंने अपने लिए बनाई थी उसके अदर रहकर ही हमें काम करना होगा। जमनालालजी हमें अपना रास्ता बता गये हैं। गायद आपको मालूम हुआ होगा कि उन्होंने गोसेवाकी दो योजनाएँ नैय्यार की थी। एक सारे देशके लिए, दूसरी बर्बाके लिए।

×

×

×

अब दूसरी चीज लीजिए। मिमालके तीरपर खादीके काममें उनकी दिलचस्पी मुझमें कम न थी। खादीके लिए जितना समय मैंने दिया उतना ही उन्होंने भी दिया। उन्होंने इस कामके पीछे मुझमें कम बुद्धि खर्च नहीं की थी। इसलिए कार्यकर्त्ता भी वे ही ढूँढ़-ढूँढ़कर मेरे पास लाया करते थे। योडेमें यह कह लीजिए कि अगर मैंने खादीका मंत्र दिया तो जमनालालजीने उसको मूर्त रूप दिया। खादीका काम कुछ होनेके बाद मैं तो जेलमें जा बैठा, मगर वे जानते थे कि मेरे नजदीक खादी हीमें स्वराज्य है। अगर उन्होंने तुरत ही उसमें रत होकर उसे सगठित

रूप न दिया होता तो मेरी गैरहाजिरीमें सारा काम तीन-तरह हो जाता ।

यही बात ग्रामोद्योगकी थी । उन्होंने इसके लिए तो मगनवाडी दी ही थी । साथ ही उसके सामनेकी कुछ जमीन भी वे मगनवाडीके लिए खरीदनेका सकल्प कर चुके थे । अब चि० कमलनयनने वह जमीन भी मगनवाडीको देदी है । ग्रामोद्योगका काम इतना व्यापक है कि इसमें अटूट रुपया खर्च किया जा सकता है ।

×

×

×

एक बात और जमनालालजी कई बार कहा करते थे कि लोग और सब जगह तो खादी पहनकर चले जाते हैं, लेकिन बैंकमें नहीं जाते । अगर बैंकमें वह अपनी मारवाडी पगड़ी पहनकर न जाय तो उनके ख्यालमें इसमें उनकी प्रतिष्ठाकी हानि होती है । मगर खुद जमनालालजी ने कभी इसकी कोई चर्चा नहीं की । फिर उसका नतीजा कुछ भी क्यों न हुआ हो ! अतः मैं यह चाहता हूँ कि हममें इतनी स्वतंत्रता और इतना आत्म-गौरव पैदा हो जाना चाहिए कि हम अपनी खादीकी पोशाकमें हर जगह बिना भिन्नकके जा सकें ।

आज हमारे मिर एक बहुत बड़ा सकट मंडरा रहा है । सिंगापुर गया, रगून जाता नजर आता है । खुद कलकत्ता खतरेमें है । ऐसी हालतमें अगर कलसे कोई दूसरी ताकत हिंदुस्तानमें आ पहुँचे तो क्या पहलेकी तरह हम फिर अपने व्यापारके लालचसे उसकी खुशामद करने लग जावेंगे और अपनी स्वतंत्रता उनके हाथों बेच देंगे ? अथवा यह कहेंगे कि हम इनकी गुलामीसे निकलकर आपकी सरदारीको स्वीकार करना नहीं चाहते ? जमनालालजीकी आत्मा आज हमसे पूछती है । इस सबधमें उनका अपना क्या जवाब होता, सो तो मैं उतनी ही अच्छी तरह से जानता हूँ, जितना अपनेको जानता हूँ । . .

×

×

×

अवतक इस देशकी आजादीको खोनेमें व्यापारी-समाजकी खास जिम्मेदारी रही है। जमनालालजीको यह चीज बराबर खटका करती थी। इसीलिए आज आपके सामने मुझे यह सारी बातें रखनी पड़ी हैं। ..

जमनालालजीके दूसरे कामोंके बारेमें मैं आपका इस वक्त ज्यादा समय नहीं लेना चाहता। वे सब आपकी आखोंके सामने ही हैं। महिला-आश्रमको ही लीजिए। यह उनकी अपनी एक विशेष कृति है। उन्हींकी कल्पनाके अनुसार यह अवतक काम करता रहा है। जमनालालजीके सामने सवाल यह था कि जो लोग देशके काममें जुटकर भिखारी बन जाते हैं, उनके बाल-बच्चोंकी शिक्षाका क्या प्रबंध हो ? उन्होंने कहा कि कम-से-कम उनकी लड़कियोंको सग्कारी मददसोंके मुकाबलेमें अच्छी ही तालीम मिल सकेगी। वस, इसी खयालसे महिला-आश्रमकी स्थापना हुई। आज इस आश्रमके लिए एक त्यागी और सुशिक्षित महिलाकी आवश्यकता है। आप इस आवश्यकताकी पूर्तिमें सहायक हो सकते हैं। दुनियादी तालीम और हरिजन सेवक संघके कामका भी यही हाल है। आप इनमें गरीब हो सकते हैं। हिंदु-मुस्लिम एकताके लिए उनके दिलमें खास लगन थी। उनके अदर सांप्रदायिक द्वेषकी बू तक न थी। आप उनके जीवनसे इस गुणको ग्रहण कर सकते हैं। ..

जमनालालजीका स्मृति-स्तंभ खड़ा करके हम उनकी यादको चिरस्थायी नहीं बना सकते। स्तंभपर खुदे हुए गिला-लेखको तो लोग पढ़कर थोड़े ही समयमें भूल जायेंगे, परंतु जिस आदमीने दुनियाके लिए इतना कुछ किया है उसके कामको चिरस्थायी रखनेका सकल्प कोई कर ले तो वह उनका सच्चा स्मारक हो रहेगा। किन्तु इसके लिए मैं जबरदस्ती नहीं करना चाहता और न मैं आपसे ही वैसी कोई आशा रखता हूँ। जिसे जो कुछ भी करना हो आत्मोन्नतिके लिए करे। अगर दिखावेके लिए कुछ भी होगा तो उससे मुझे और जमनालालजीकी आत्माको उल्टा कष्ट ही होगा।

[इसपर कई सूचनाएँ गांधीजीके सामने रखी गईं, परंतु वे उन्हें पसंद न आईं । अपनी मनोदशाको और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने पुनः जोरदार शब्दोंमें कहा :]

मैंने आज जानबूझकर अनियमित ढंगसे सारा काम चलाया है, क्योंकि मे इस काममें थोड़ी भी कृत्रिमता नहीं चाहता । मैं इसे अपने जीवनका एक अत्यंत गंभीर अवसर मानता हूँ । जो शुद्ध धर्म-भावना अंतिम समयमें जमनालालजीकी थी उसे मैं कायम रखना चाहता हूँ । इसलिए जिसे जो कुछ करना हो उसी भावनासे करे । एकांतमें बैठे अंतर्मुख बने और ईश्वरको साक्षी रखकर जो सकल्प करना हो करे । (सेवाग्राम, २८ २ ४२)

मैं क्या सदेश भेजू ? जमनालालजीकी स्तुति करू ? कैसे करू ? मेरे हाथ कट गये हैं । जिसका द्वारपाल गया है वह उसके लिए क्या लिख सकता है ? ('समाज-सेवकसे')

गांधीजीने आते ही जमनालालजीके सिरपर हाथ रखा । जमनालालजीकी धर्मपत्नी, श्री जानकीदेवी, तो कुछ हक्की बक्की सी रह गई थीं । गांधीजीको देखते ही वह आशाकी तरंगोंमें उछलने लगीं—

“बापूजी, ओ बापूजी ! आप पासमें होते तो यह न मरते । मैंने आपको इनकी तबीयत बिगडते ही जल्दी खबर क्यों न भेज दी । इन्हें जिंदा कर दीजिए । क्या आप इन्हें जिला नहीं सकते ?” गांधीजीने कहा .

जानकी, अब तुम्हें रोना नहीं है । तुम्हें तो हँसना है और बच्चोंको हँसाना है । जमनालाल तो जिंदा ही है । जिसका यश अमर है, तो फिर उसकी मृत्यु कैसी ! उसकी मृत्यु तो तभी हो सकती है जब तुम उसका मार्ग अनुसरण करनेसे मुह मोड़ो । जमनालालने परमार्थकी

जिंदगी बिताई। तुम्हारी जैसी साध्वी स्त्री^१ उमे मिली, तो फिर रोना कैसा ! जो काम उसने अपने कंधों पर लिया था उसे अब तुम सम्हालो। उमी ध्येयके लिए तुम अपने आपको सपूर्णतया अर्पण कर दो। और जमनालाल जिंदा ही है, ऐसा मानो। तुम जानती हो कि मृत सत्यवानको सावित्रीने अपने तपसे पुनर्जीवित कर लिया था। वह पुनर्जीवन शरीरका क्या हो सकता था ? शरीर तो नाशवान ही है। सावित्रीने अपने तपसे सत्यवानके तपको सदाके लिए अमरत्व दे दिया। यही सावित्री-सत्यवान की कथाका सच्चा अर्थ है। तुम भी अपने तपसे अपने पतिके यगको जागृत रखोगी, तो फिर जमनालाल जिंदा ही है, ऐसा हम मान सकते हैं।

“बापूजी, मैं तो अपने आपको अर्पण करनेको तैयार हूँ। पर मेरी शक्ति ही क्या ? मेरा तप ही क्या ? मैं उनके कामको कैसे चलाऊंगी ? कैसे उनके तपको जागृत रखूंगी ? आप इन्हें मरने मत दीजिए। आप क्या इन्हें जिला नहीं तकते। तो क्या यह मर ही गये। क्या अब बोलेंगे नहीं।”

मैं तुम्हें झूठा वीरज नहीं देने आया हूँ। जमनालालका शरीर मर गया, पर असल जमनालाल तो जिंदा ही है और आगेके लिए उमे जिंदा रखना हमारा काम है।”

(‘जमनालालजी’, पृष्ठ १०)

शामको घूमते समय अंग्रेजी न जाननेवालोंकी बातें चलीं। चर्चा मीराबहनने चलाई थी। मैंने कहा, “जमनालालजी भी तो अंग्रेजी नहीं जानते थे, मगर वह अपना काम खासा चला लेते थे।” बापू कहने लगे

मगर जमनालाल अंग्रेजीकी बातें सब समझ लेता था। अंग्रेजीमें प्रस्ताव वगैरा आते थे, उनमें वह एक भी चीज छोटता नहीं था। व्याकरण नहीं जानता था, मगर शब्दोंका उपयोग ठीक जानता था। इसलिए अपने भाषणों वगैराका तर्जुमा दुरुस्त किया करता था। उसके जैसा वारीकी-

से हरेक चीजको पकड़नेवाला आदमी भाग्यसे ही कही मिलता है। जमनालाल किसी चीजको वर्किंग कमेटीमें छोड़ता नहीं था। वह बुद्धिशाली था और व्यवहार-कुशल भी। वह अपनी जगह पर अद्वितीय था।” (का० का०, २६ ६ ४२)

मैंने कहा, “मगर आज हमारे पास ट्रस्टीशिपका कोई नमूना है तो जमनालालजीका है। जमनालालजीकी बहुत चीजें सेवाके काममें इस्तेमाल होती थी। कितनी ही जायदाद उन्होंने दे भी डाली। तो भी उनके मनमें यह तो था ही कि वे देते हैं—दान करते हैं।” बापू कहने लगे

जमनालालजीने महा प्रयत्न किया, मगर वह पूरी तरहसे ट्रस्टी बन नहीं सके। वह उनकी अपूर्णताका नतीजा था। (का० क०, ३ १२ ४२)

: १२० :

बहादुरजी

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन, राष्ट्रीय ऋणके सबधमें जांच करनेके लिए कांग्रेस महासमितिने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्तमान अवसरपर एक अत्यंत महत्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा कांग्रेसका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे बिना न रहेगा। श्रीबहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल शाह और श्रीकुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनंदनके अधिकारी हैं। ‘यंग इंडिया’के विदेशी पाठक जानते हैं कि श्रीबहादुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनों ही एक बार एडवोकेट-

जनरल थे । उन्होंने एडवोकेट-जनरलके पदका उपयोग किया है, यह बात योही छोड़ दी जाय, तो दोनो बूमवामसे चलनेवाले धक्के व्यवसायी और अनुभवी कानून विशेषज्ञ हैं । एडवोकेट-जनरलके पदने इनकी प्रतिष्ठा-में कुछ वृद्धि की है, ऐसी कुछ बात नहीं है । यह तो उनकी प्रतिष्ठाकी और उनके व्यवसायमें उनका जो पद है, उसकी स्वीकृतिमात्र है । खुगाल-शाह भारत-प्रख्यात अर्थशास्त्री हैं, कितनी ही बहुमूल्य पुस्तकोंके लेखक हैं और बहुत वर्षों तक, आज अभी तक, बवई यूनिवर्सिटीमें अर्थशास्त्रके अध्यापक थे । यह तीनो सज्जन सदैव काममें घिरे रहने हैं, इसलिए राष्ट्रीय महासभाके सौंपे हुए इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नहीं था । रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैंने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोंका लिखा हुआ लेख नहीं, वरन् जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले हैं, और जो धावलीबाज उपदेशक नहीं, वरन् स्वयं जिस विषयके ज्ञाता हैं, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोंको तौल-तीलकर व्यवहारमें लाने वालोंकी यह कृति है । (हि० न०, ६ द ३१)

: १२१ :

ब्रजलाल

ब्रजलाल बड़ी उम्रमें, शुद्ध सेवा-भावसे आश्रममें आए थे और सेवा करते हुए ही मृत्युका आलिंगन करके अमर हो गये और आश्रमके लिए शोभा रूप हुए । एक लडकेका घड़ा कुएँसे निकालते हुए ढोरमें फसकर फिसल गए और प्राण तजे । ('यरवदा मदिरसे' ३०.५ ३२)

: १२२ :

अब्दुलबारी

जैसी हिंदुओंके बारेमें चेतावनिया मुझे दी गई है, वैसी ही मुसलमानोंके विषयमें भी मिली है। यहाँ मैं सिर्फ़ तीन ही नाम पेश करूँगा। मौलाना अब्दुलबारी साहब एक धर्मोन्मत्त हिंदू ट्रेण्टाके रूपमें मेरे सामने पेश किए गये हैं। मुझे उनके कितने ही लेख दिखाए गये हैं जिन्हें मैं समझ नहीं सकता। मैंने तो इस विषयमें उनसे पृच्छाछ भी नहीं की, क्योंकि वे तो खुदाके एक भोले-भाले बच्चे हैं। मैंने उनके अदर किसी तरहका छल-कपट नहीं देखा। बहुत बार वे बिना विचारे कह डालते हैं, जिससे उनके अभिन्न मित्रोंको भी परेशानी उठानी पड़ती है। पर वे कड़वी बातें कह बैठनेमें जितनी जल्दी करते हैं उतनी जल्दी अपनी भूलके लिए क्षमा मागनेको भी तैयार रहते हैं। जिस वक्त जो बात बोलते हैं उस वक्त वे सच्चे दिलसे बोलते हैं। उनका क्रोध और उनकी क्षमा दोनों सच्चे दिलसे होती हैं। एक बार वे मौ० मुहम्मदअलीपर बिना उचित कारणके बिगड़ बैठे। मैं उस वक्त उनका अतिथि था। उनके मनमें लगा तो उन्होंने मुझे भी कुछ सख्त-सुस्त कह डाला। उसी समय मौ० मुहम्मदअली और मैं कानपुर जानेके लिए स्टेशन जानेकी तैयारीमें थे। हमारे विदा हो जानेके बाद उन्हें लगा कि उन्होंने हमारे साथ अनुचित बरताव किया है। मौ० मुहम्मदअलीके साथ सचमुच अनुचित बरताव किया गया था। मेरे साथ नहीं। पर उन्होंने तो हम दोनोंके पास कानपुरमें अपनी तरफसे कुछ लोगोंको भेजकर हम दोनोंमें माफी मागी। इस बातसे वे मेरी नज़रोंमें ऊँचे उठ गये। ऐसा होते हुए भी मैं स्वीकार करता हूँ कि मौलाना साहब किसी वक्त एक खतरनाक दोस्तका काम दे सकते हैं। पर मेरा मतलब यह है कि ऐसा होते हुए भी वे दोस्त ही रहेंगे।

उनके पास 'खानेके और, दिखानेके और' यह बात नहीं है। उनके दिलमें कोई दाव-पेच नहीं है। ऐसे मित्रमें सहलो दोषोके होने हुए भी मैं उनकी गोदीमें अपना सिर रखकर चैन से सोऊंगा, क्योंकि मैं जानता हूँ ये छिपकर वार कभी न करेंगे। (हि० न०, १ ६ २४)

: १२३ :

वाल्डविन

सबसे ज्यादा साफ बात करनेवाला वाल्डविन है। उसे मैंने कहा कि मेरी यह दलील है कि अग्रेजी राजसे हमारा कुछ भी भला नहीं हुआ। तब वह कहने लगा, मुझे कहना चाहिए कि हमारे लोगोंने हिंदुस्तानमें जो कुछ किया है उसके लिए मुझे गर्व है। और इसमें आश्चर्य ही क्या ? रामकृष्ण भांडारकर अक्षरशः मानते थे कि एक मामूली टामी (अग्रेज सिपाही) भी हमसे बढकर है। (म० डा०, ४.७ ३०)

वाल्डविन तो मुझसे मिलना ही नहीं चाहता था। सर सेमुएल होरने उससे मिलनेका प्रवध कर दिया। वह भी लार्ड लिनलिथगोकी तरह बाह्य शिष्टाचार खूब बरतता था। वाल्डविनके पास तो मैं पंद्रह मिनट भी नहीं बैठा। मैंने अपना केस रखनेकी कोशिश की। बताया कि हम तो ऐसा मानते हैं कि अग्रेजी राज्यमें हिंदका हमेशा अहित ही रहा है। आप लोगोसे हमने कुछ सीखा है, मगर वह आप लोगोके सम्पर्कमें आनेके कारण। आप राजा न होते और हम आपके सम्पर्कमें आते तब भी सीखते—तब शायद ज्यादा सीखते। आपके पास सुन्दर भाषा है। उसमें इतना काम किया गया है, इतना साहित्य लिखा

गया है। उसकी हमें कदर है। हम हिंदुस्तानमें सीमित होकर नहीं रहना चाहते। सारे जगतके साथ सबध रखना चाहते हैं, मगर आजाद होकर। हमें स्वतंत्रता चाहिए। अंग्रेजी भाषामें 'इंडिपेन्डेंस' शब्दका जो अर्थ है, वह स्वतंत्रता हमें चाहिए, किसी खास तरहकी नहीं, क्योंकि हम मानते हैं कि हिंदुस्तानमें अंग्रेजी राज बुरी चीज है। वह कहने लगा, इसमें हमारा मतभेद है, मुझे तो अपनी कौमका और भारतमें अपने शासनका गर्व है। मैंने कहा, "ऐसा है तो मुझे आपमें और कुछ नहीं कहना।" (का० क०, ३ १२ ४२)

: १२४ :

बालासुंदरम्

'नेटाल इंडियन कांग्रेस' में यद्यपि उपनिवर्गोंमें जन्मे भारतीयोंने प्रवेश किया था, कार्कुन लोग शरीक हुए थे, फिर भी उसमें अभी मजूर गिरमिटिया लोग सम्मिलित न हुए थे। कांग्रेस अभी उनकी न हुई थी। वे चढ़ा देकर, उसके सदस्य होकर, उसे अपना न सके थे। कांग्रेसके प्रति उनका प्रेम पैदा तभी हो सकता था, जब कांग्रेस उनकी सेवा करे। ऐसा अवसर अपने आप आ गया और सो भी ऐसे समय, जबकि खुद मैं अथवा कांग्रेस उसके लिए मुश्किलसे तैयार थी, क्योंकि अभी मुझे वकालत शुरू किए दो-चार महीने भी मुश्किलसे हुए होंगे। कांग्रेस भी बाल्यावस्थामें ही थी। इन्हीं दिनों एक दिन एक मंदरासी हाथमें फेटा रखकर रोता हुआ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। कपड़े उसके फटे-पुराने थे। उसका शरीर काप रहा था। सामनेके दो दात टूटे हुए थे और मुहसे खून बह रहा था। उसके मालिकने उसे वेददींसे पीटा था। मैंने अपने मुशीसे, जो

तामिल जानता था, उसकी हालत पृथ्वार्ड । बालासुदरम् एक प्रतिष्ठित गोरेके यहा मजूरी करता था । मालिक किसी बातपर उसपर विगड पडा और आग-बवूला होकर उसने उसे बुरी तरह पीट डाला, जिसमे बालासुदरम्के दो दात टूट गये ।

मैने उसे डाक्टरके यहा भेजा । उस समय गोरे डाक्टर भी बडा थे । मुझे चोट सबधी प्रमाण-पत्रकी जरूरत थी । उसे लेकर मै बालासुदरम्को अदालतमे ले गया । बालासुदरम्ने अपना हलफिया बयान लिखवाया । पढकर मजिस्ट्रेटको मालिकपर बडा गुस्सा आया । उसने मालिकको तलब करनेका हुक्म दिया ।

मेरी इच्छा यह न थी कि मालिकको सजा हो जाय । मुझे तो सिर्फ बालासुदरम्को उसके यहासे छुडवाना था । मैने गिरमिट-सबधी कानूनको अच्छी तरह देख लिया । मामूली नौकर यदि नोकरी छोड दे तो मालिक उसपर दीवानी दावा कर सकता है, फौजदारीमे नहीं ले जा सकता । गिरमिट और मामूली नौकरोमे यो बडा फर्क था, पर उसमे मुख्य बात यह थी कि गिरमिटया यदि मालिकको छोड दे तो वह फौजदारी जुर्म समझा जाता था और इसलिए उसे कैद भोगनी पडती । इसी कारण सर विलियम विलसन हटने इस हालतको 'गुलामी'-जैसा बताया है । गुलामको तरह गिरमिटिया मालिककी संपत्ति समझा जाता । बालासुदरम्को मालिकके चगुलसे छुडानेके दो ही उपाय थे या तो गिरमिटियोका अफसर, जो कानूनके अनुसार उनका रक्षक समझा जाता था, गिरमिट रद कर दे, या दूसरेके नामपर चटा दे अथवा मालिक खुद उसे छोडनेके लिए तैयार हो जाय । मै मालिकसे मिला और उससे कहा—“मै आपको सजा कराना नहीं चाहता । आप जानते हैं कि उसे सख्त चोट पहुची है । यदि आप उसकी गिरमिट दूसरेके नाम चढानेको तैयार होते हो तो मुझे सतोप हो जायगा ।” मालिक भी यही चाहता था । फिर मै उस रक्षक अफसरसे मिला । उसने भी रजामदी तो

जाहिर की, पर इस बर्तपर कि मैं वालासुदरम्के लिए नया मालिक ढूँढ दूँ ।

अब मुझे नया अग्रेज मालिक खोजना था । भारतीय लोग गिरमिटियोको रख नहीं सकते थे । अभी थोड़े ही अग्रेजोंसे मेरी जान-पहचान हो पाई थी । फिर भी एकसे जाकर मिला । उसने मुझपर मेहरबानी करके वालासुदरम्को रखना मजूर कर लिया । मैंने कृतज्ञता प्रदर्शित की । मजिस्ट्रेटने मालिकको अपराधी करार दिया और यह बात नोट कर ली कि अपराधीने वालासुदरम्की गिरमिट दूसरोके नामपर चढ़ा देना स्वीकार किया है ।

वालासुदरम्के मामलेकी बात गिरमिटियोमें चारों ओर फैल गई और मैं उनके बंधुके नामसे प्रसिद्ध हो गया । मुझे यह सबब प्रिय हुआ । फलतः मेरे दफ्तरमें गिरमिटियोकी बाढ़ आने लगी और मुझे उनके सुख-दुख जाननेकी बड़ी सुविधा मिल गई ।

वालासुदरम्के मामलेकी ध्वनि ठेठ मदरास तक जा पहुँची । उस इलाकेके जिन-जिन जगहोंमें लोग नेटालकी गिरमिटमें गये उन्हें गिरमिटियोने इस बातका परिचय कराया । मामला कोई इतना महत्वपूर्ण न था, फिर भी लोगोको यह बात नई मालूम हुई कि उनके लिए कोई सार्वजनिक कार्यकर्ता तैयार हो गया है । इस बातसे उन्हें तसल्ली और उत्साह मिला ।

मैंने लिखा है कि वालासुदरम् अपना फेटा उतारकर उम्मे अपने हाथमें रखकर मेरे सामने आया था । इस दृश्यमें बड़ा ही करुण रस भरा हुआ है । यह हमें नीचा दिखानेवाली बात है । मेरी पगड़ी उतारनेकी घटना पाठकोको मालूम ही है । कोई भी गिरमिटिया तथा दूसरा नवागत हिंदुस्तानी किसी गोरेके यहा जाता तो उसके सम्मानके लिए पगड़ी उतार लेता—फिर टोपी हो या पगड़ी, अथवा फेटा हो । दोनों हाथोंसे सलाम करना काफी न था । वालासुदरम्ने सोचा कि मेरे सामने भी इसी तरह

जाया जाता होगा। वालामुदरम्का यह दृश्य मेरे लिए पहला अनुभव था। मैं शर्मिन्दा हुआ। मैंने वालामुदरमसे कहा, "पहले फेटा सिरपर बांध लो।" बड़े सकोचसे उसने फेटा बांधा, पर मैंने देखा कि इससे उसे बड़ी खुशी हुई। मैं अबतक यह गुत्थी न सुलझा सका कि दूसरोको नीचे झुकाकर लोग उसमें अपना सम्मान किस तरह मान सकते होंगे। (आ० क०, १६२७)

: १२५ :

घनश्यामदास बिड़ला

बल्लभभाई—“मगर पुरुषोत्तमदास और बिड़लाका क्या हाल है?” बापूने कहा ये लोग होरको कोई वचन दे चुके हों ऐसी बात नहीं है। मगर कमजोरी आ गई होगी। बिड़ला होरके हाथ विक जाय तो उसे आत्म-हत्या करनी चाहिए। और अभी तो मालवीयजी बाहर बैठे हैं। बिड़ला मालवीयजी से पूछे बिना एक कदम भी रखे ऐसा आदमी नहीं है। नहीं, मुझे भरोसा है कि व्यापारियोमें ये लोग नहीं हैं। (म० डा०, १५ ७ ३२)

..

.

...

इस सस्थाका जन्म सेठ गिवनारायणजीके दो पौत्र रामेश्वरदास और घनश्यामदासकी पढ़नेकी इच्छामेसे हुआ। सेठजीको यह अच्छा नहीं लगा कि केवल उनके पौत्र ही पढ़ें और गावके दूसरे लड़कोको इसका लाभ न मिले। पाच रुपये मासिकका उन्होंने एक शिक्षक रखा और बिड़ला-पाठशाला खोल दी। इसी बीजमेसे निकलकर यह महावृक्ष इतना बड़ा हुआ है। स्वार्थके साथ परोपकारका मेल

साधना विडला-बधुओंके स्वभावमें उतरा है। शिक्षण, आरोग्य आदिमें अधिक-से-अधिक दिलचस्पी सेठ घनश्यामदासने ली और पिलानी की विशाल शिक्षण-संस्थामें घनश्यामदासजीने जो रस लिया, अपनी बुद्धि लगाई और ध्यान दिया, उसके लिए संस्था उनकी आभारी है। सर मॉरिस ग्वायर वगैरह यह संस्था देख आये हैं और उन्होंने इसकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की है। इस कॉलेजको सब तरहसे आदर्श कॉलेज बनानेका घनश्यामदासजीका बरसोंसे प्रयास चल रहा है। पर चूँकि पिलानी एक देशी रियासतके अंतर्गत है, इसलिए सब धीमे-धीमे ही होता है। आशा है कि ऐसी अच्छी शिक्षण-प्रवृत्तिको जयपुर राज्य पूरा प्रोत्साहन देगा और कॉलेजको पूर्ण बनानेकी इजाजत भी तुरंत दे देगा। मेरा मत है कि इतनी व्यवस्था और ध्यानसे चलनेवाली संस्थाएँ हिंदुस्तानमें थोड़ी ही हैं।

आधुनिक कॉलेजोंकी अगर आवश्यकता स्वीकार की जाए तो विडला-कॉलेजमें जितनी चीजोंका मेल किया गया है, दूसरी जगह वह शायद ही देखनेमें आयेगा। (ह० से०, २७.७ ४०)

: १२६ :

बृजकिशोर

बृजकिशोरबाबू दरभंगासे और राजेन्द्रबाबू पुरीसे यहाँ आए। यहाँ जो मैंने देखा तो यह लखनऊवाले बृजकिशोरप्रसाद नहीं थे। उनके अदर बिहारीकी नम्रता, नादगी, भलमनसी और साधारण श्रद्धा देखकर मेरा हृदय हर्षसे फूल उठा। बिहारी वकील-मंडलका उनके प्रति आदर-भाव देखकर मुझे आनंद और आश्चर्य दोनों हुए।

तबसे इस वकील-मंडल और मेरे बीच जन्म-भरके लिए स्नेह-गाँठ

वध गई। वृजकिशोरवावूने मुझे सब बातोंमें वाकिफ करा दिया। वह गरीब किसानोंकी तरफ से मुकदमे लड़ते थे। ऐसे दो मुकदमे उस समय चल रहे थे। ऐसे मुकदमोंके द्वारा वह कुछ व्यक्तियोंको राहत दिलाते थे, पर कभी-कभी इसमें भी असफल हो जाते थे। इन भोले-भाले किसानोंसे वह फीस लिया करते थे। त्यागी होते हुए भी वृजकिशोरवावू या राजेद्रवावू फीस लेनेमें सकोच न करते थे। “पेगोंके काममें अगर फीस न लें तो हमारा घर-वर्च नहीं चल सकता और हम लोगोंकी मदद भी नहीं कर सकते।”—यह उनकी दलील थी। उनकी तथा बगाल-बिहारके बैरिस्टरोंकी फीसके कल्पनातीत अक मुनकर मैं तो चकित रह गया। “को हमने ‘ओपीनियन’ के लिए दस हजार रुपये दिए।’ हजारोंके सिवाय तो मैंने बात ही नहीं सुनी।

इस मित्र-मडलने इस विषयमें मेरा मीठा उलाहना प्रेमके साथ सुना। उन्होंने उनका उलटा अर्थ नहीं लगाया।

मैंने कहा—“इन मुकदमोंकी मिसले देखनेके बाद मेरी तो यह होती है कि हम यह मुकदमेवाजी अब छोड़ दें। ऐसे मुकदमोंसे बहुत कम लाभ होना है। जहां प्रजा इतनी कुचली जाती है, जहां सब लोग इनने भयभीत रहते हैं, वहां अदालतोंके द्वारा बहुत कम राहत मिल सकती है। इसका सच्चा इलाज तो है लोगोंके दिलमें डरको निकाल देना। इसलिए अब जबतक यह ‘तीन कठिया’ प्रयास मिट नहीं जाते तबतक हम आरामसे नहीं बैठ सकते। मैं तो अभी दो दिनमें जितना देख सकू, देखनेके लिए आया हू, परंतु मैं देखता हू कि इस काममें दो वर्ष भी लग सकते हैं, परंतु इतने समयकी भी जरूरत हो तो मैं देनेके लिए तैयार हू। यह तो मुझे मूक रहा है कि मुझे क्या करना चाहिए, परंतु आपकी मददकी जरूरत है।”

मैंने देखा कि वृजकिशोरवावू निश्चित विचारके आदमी हैं। उन्होंने शांतिके साथ उत्तर दिया—“हमसे जो-कुछ बन सकेगी वह मदद हम

जरूर करेंगे, परंतु हमें आप बतलाइए कि आप किस तरहकी मदद चाहते हैं ।”

हम लोग रात-भर बैठकर इस विषयपर विचार करते रहे । मैंने कहा—“मुझे आपकी वकालतकी सहायताकी जरूरत कम होगी । आप जैसीसे मैं लेखक और दुभाषिएके रूपमें सहायता चाहता हूँ । संभव है, इस काममें जेल जानेकी भी नौबत आजाय । यदि आप इस जोखिममें पड़ सकें तो मैं इसे पसंद करूंगा, परंतु यदि आप न पड़ना चाहें तो भी कोई बात नहीं । वकालतकी अनिश्चित समयके लिए वद करके लेखकके रूपमें काम करना भी मेरी कुछ कम मांग नहीं है । यहाकी बोली समझने-में मुझे बहुत दिक्कत पड़ती है । कागज-पत्र सब उर्दू या कैंथीमें लिखे होते हैं, जिन्हें मैं पढ़ नहीं सकता । उनके अनुवादकी मैं आपसे आशा रखता हूँ । रुपये देकर यह काम कराना चाहें तो वह अपने सामर्थ्यके बाहर हैं । यह सब सेवा-भावसे बिना पैसेके होना चाहिए ।”

बृजकिशोरबाबू मेरी बातको समझ तो गये, परंतु उन्होंने मुझसे तथा अपने साथियोंसे जिरह शुरू की । मेरी बातोंका फलितार्थ उन्हें बताया । मुझसे पूछा—“आपके अदाजमें कबतक वकीलोंको यह त्याग करना चाहिए, कितना करना चाहिए, थोड़े-थोड़े लोग थोड़ी-थोड़ी अवधि-के लिए आते रहे तो काम चलेगा या नहीं ?” इत्यादि । वकीलोंसे उन्होंने पूछा कि आप लोग कितना-कितना त्याग कर सकेंगे ?

अंतमें उन्होंने अपना यह निश्चय प्रकट किया—“हम इतने लोग तो आप जो काम सौंपेंगे करनेके लिए तैयार रहेंगे । इनमेंसे जितनोंको आप जिस समय चाहेंगे आपके पास हाजिर रहेंगे । जेल जानेकी बात अलबत्ता हमारे लिए नहीं है, पर उसकी भी हिम्मत करनेकी हम कोशिश करेंगे ।” (आ० क०, १६२७)

बृजकिशोरबाबू और राजेंद्रबाबूकी जोड़ी अद्वितीय थी । उन्होंने

प्रेममें मुझे ऐसा अपग बना दिया था कि उनके बिना मैं एक कदम भी आगे न रख सकता था । (आ० क०, १६२७)

: १२७ :

ए० डब्ल्यू० वेकर

मि० वेकर वकील और साथ ही कट्टर पादरी भी थे । अभी वह मौजूद है । अब तो सिर्फ पादरीका ही काम करते हैं । वकालत छोड़ दी है । खा-पीकर सुखी है । अबतक मुझमें चिट्ठी-पत्री करते रहते हैं । चिट्ठी-पत्रीका विषय एक ही होता है । ईसाई-धर्मकी उत्तमताकी चर्चा वह भिन्न-भिन्न रूपमें अपने पत्रोंमें किया करते हैं और यह प्रतिपादन करते हैं कि ईसामसीहको ईश्वरका एकमात्र पुत्र तथा तारनहार माने बिना परमशान्ति कभी नहीं मिल सकती ।

हमारी पहली ही मुलाकातमें मि० वेकरने धर्म-सबन्धी मेरी मनोदशा जान ली । मैंने उनसे कहा—“जन्मत मैं हिंदू हूँ, पर मुझे उस धर्मका विशेष ज्ञान नहीं । दूसरे धर्मोंका ज्ञान भी कम है । मैं कहा हूँ, मुझे क्या मानना चाहिए, यह सब नहीं जानता । अपने धर्मका गहरा अध्ययन करना चाहता हूँ । दूसरे धर्मोंका भी यथाशक्ति अध्ययन करनेका विचार है ।”

यह सब सुनकर मि० वेकर प्रसन्न हुए और मुझसे कहा—“मैं खुद ‘दक्षिण अफ्रीका जनरल मिशन’ का एक डाइरेक्टर हूँ । मैंने अपने खर्चसे एक गिरजा बनाया है । उसमें मैं समय-समयपर धर्म-सबन्धी व्याख्यान दिया करता हूँ । मैं रंग-भेद नहीं मानता । मेरे साथ और लोग भी काम करनेवाले हैं । हमेशा एक वजे हम कुछ समयके लिए मिलते हैं और

आत्माकी शांति तथा प्रकाश (ज्ञानके उदय) के लिए प्रार्थना करते हैं। उसमें आप आया करेंगे तो मुझे खुशी होगी। वहाँ अपने साथियोंका भी परिचय आपसे कराऊंगा। वे सब आपसे मिलकर प्रसन्न होंगे और मुझे विश्वास है कि आपको भी उनका समागम प्रिय होगा। आपको कुछ धर्म पुस्तके भी मैं पढ़नेके लिए दूंगा, परन्तु सच्ची पुस्तक तो बाइबिल ही है। मैं खास तौरपर सिफारिश करता हूँ कि आप इसे पढ़ें।”

मैंने मि० बेकरको धन्यवाद दिया और कहा कि जहाँ तक हो सकेगा आपके मडलमें एक बजे प्रार्थनाके लिए आया करूँगा। (आ० क० १६२७)

मेरे भविष्यके सबधमें मि० बेकरकी चिन्ता दिन-दिन बढ़ती जा रही थी। वह मुझे वेलिंग्टन कन्वेंशनमें ले गये। प्रोटेस्टेंट ईसाइयोमें, कुछ-कुछ वर्षों बाद धर्म-जागृति अर्थात् आत्मशुद्धिके लिए विशेष प्रयत्न किए जाते हैं। इसे धर्मका पुनः प्रतिष्ठा अथवा धर्मका पुनरुद्धार कहा करते हैं। ऐसा एक सम्मेलन वेलिंग्टनमें था। उसके सभापति वहाँके प्रख्यात धर्मनिष्ठ पादरी रेवरड एड्मंड मरे थे। मि० बेकरको ऐसी आशा थी कि इस सम्मेलनमें होनेवाली जागृति, वहाँ आनेवाले लोगोंका धार्मिक उत्साह, उनका शुद्ध भाव, मुझपर ऐसा गहरा असर डालेगा कि मैं ईसाई हुए बिना न रह सकूँगा।

परन्तु मि० बेकरका अंतिम आधार था प्रार्थना-बल। प्रार्थनापर उनकी भारी श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि अतः करण-पूर्वक की गई प्रार्थनाको ईश्वर अवश्य सुनता है। वह कहते, “प्रार्थनाके ही बलपर मुलर (एक विख्यात भावुक ईसाई) जैसे लोगोंका काम चलता है।” प्रार्थनाकी यह महिमा मैंने तटस्थ भावसे सुनी। मैंने उनसे कहा कि मेरा अंतरात्मा पुकार उठे कि मुझे ईसाई हो जाना चाहिए तो दुनियाकी कोई शक्ति मुझे रोक नहीं सकती। अतः आत्माकी पुकारके अनुसार चलनेकी

आदत तो मैं कितने ही वर्षोंसे डाल चुका था। अतरात्माके अधीन होते हुए मुझे आनन्द आता। उसके विपरीत आचरण करना मुझे कठिन और दुःखदाई मालूम होता था।

हम वेलिंग्टन गये। मुझ 'व्यामल साथी' को साथ रखना मि० वेकरके लिए भारी पड़ा। कई बार उन्हें मेरे कारण अशुविधा भोगनी पड़ती। रास्तेमें हमें मुकाम करना पड़ा था, क्योंकि मि० वेकरका सध रविवारको सफर न करता था और बीचमें रविवार पड़ गया था। बीचमें तथा स्टेशनपर मुझे होटलवालेने होटलमें ठहरनेसे तथा चल-चल होनेके बाद ठहरनेपर भी भोजनालयमें भोजन करने देनेसे इन्कार कर दिया, पर मि० वेकर आसानीसे हार माननेवाले न थे। वह होटलमें ठहरनेवालोंके हकपर अड़े रहे, परन्तु मैंने उनकी कठिनाइयोंका अनुभव किया। वेलिंग्टनमें भी मैं उनके पास ही ठहरा था। वहाँ उन्हें छोटी-छोटी-सी बातोंमें अशुविधा होती थी। वह उन्हें ढाकनेका शुभ प्रयत्न करते थे, फिर भी वे मेरे ध्यानमें आ जाया करती थी। (आ० क०, १६२७)

: १२८ :

एनी वेसन्ट

हम ऐसे कई बूढ़ोंको जानते हैं जिनमें जवानी की उद्यम-प्रियता पाई जाती है और कई ऐसे नौजवानोंके देखते हैं, जो जवान होते हुए भी उद्यम की दृष्टिमें बूढ़ोंके समान गिथिल होते हैं। विदुषी एनी वेसन्ट वृद्ध होती हुई भी जवानके बराबर काम करती है। समयकी पावदी और सुरक्षामें उनकी बराबरी करनेवाले बहुत थोड़े आदमी पाए जाते हैं। जोगमें भी वह किसीमें कम नहीं है। (हि० न०, ७ ३ २६)

: १२६ :

सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी

यह देखकर मुझे दुःख होता है कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीकी आवाज आज सुनाई नहीं देती है। उनके और मेरे मतोंके बीच आज उत्तर और दक्षिण ध्रुवोंके जितना अंतर है। परँ मतोंके बीच अंतर होनेसे ही परस्पर शत्रुता का भाव या व्यवहार होना बही उचित नहीं है। मुझे स्मरण है जब मैं बालक था तब सुरेन्द्रनाथ देशकी वह सेवा कर रहे थे, जिसका हमें कृतज्ञ होना चाहिए। (कलकत्ता-भाषण, १२ १२ २०)

‘बंगालके देव’ सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीसे तो मिलना ही था। उनसे जब मैं मिलने गया तब दूसरे मिलनेवाले उन्हें घेरे हुए थे। उन्होंने कहा, “मुझे अदेशा है कि आपकी बातमें यहाके लोग दिलचस्पी न लेंगे। आप देखते ही हैं कि यहा हम लोगोंको कम मुसीबतें नहीं हैं। फिर भी आपको तो भरसक कुछ-न-कुछ करना ही है। इस काममें आपको महाराजाओंकी मदद की जरूरत होगी। ‘ब्रिटिश इंडिया एसोमियेशन’ के प्रतिनिधियोंसे मिलिएगा। राजा सर प्यारीमोहन मुर्कजी और महाराजा टागोरसे भी मिलिएगा। दोनों उदार हृदय हैं और सार्वजनिक कामोंमें अच्छा भाग लेते हैं।” मैं इन सज्जनोंसे मिला, पर वहा मेरी दाल न गली। दोनोंने कहा, “कलकत्तामें सभा करना आसान बात नहीं, पर यदि करना ही हो तो उसका बहुत-कुछ दारोमदार सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीपर है।” (आ० क०, १९२७)

सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीकी मृत्यु क्या हुई मानो भारतके राजनैतिक जीवनसे ऐसा पुरुष उठ गया जो अपने व्यक्तित्वकी गहरी छाप उसपर छोड़

गया हूँ। नये आदर्श और नई आशाएँ ली हुई जनताकी नजरोंमें यदि वे पीछे हट गये तो क्या हुआ ? हमारा वर्तमान हमारे भूतकालका ही तो परिणाम है। सर सुरेन्द्रनाथ—जैसे पथ-दर्शक लोगोंके बहुमूल्य कार्यके बिना वर्तमान समयके आदर्श और उच्च आकाक्षाओंका होना सम्भव ही न था। एक ऐसा समय था जबकि विद्यार्थी लोग उनको अपना आराध्य देव समझते थे, जबकि देशके राष्ट्रीय कामोंमें उनकी सलाह लेना अनिवार्य समझा जाता था और उनके वक्तृत्वसे लोग मंत्र-मुग्धसे हो जाते थे। जब हमें वग-भगके समय की दिल दहला देनेवाली घटनाओंका स्मरण होता है तब उसके साथ ही सर सुरेन्द्रकी उस समय की गई अनुपम सेवाओंकी स्मृति, कृतज्ञता और अभिमान-पूर्वक हुए बिना नहीं रह सकती। ऐसे ही समयमें सर सुरेन्द्रनाथको अपने कृतज्ञ देश-व्युत्पन्नोंसे 'कभी न झुकनेवाला' की पदवी मिली थी। वग-भगके युद्धकी भीषण स्थितिमें भी सर सुरेन्द्र-कभी डावाडोल न हुए, कभी निराश न हुए। वे अपनी पूरी शक्तिके साथ उस आंदोलनमें कूद पड़े थे। उनका उत्साहसे सारे बंगालमें उत्साह फैल गया। सरकारकी 'नान्यथा' को 'अन्यथा' करनेके दृढ़ सकारणमें वे अचल रहे। उन्होंने हमको हिम्मत और दृढ़ताकी शिक्षा दी। उन्होंने हमें मदान्य अधिकारियों से 'नहीं' कहना सिखलाया।

राजनैतिक क्षेत्रके अनुसार ही शिक्षा-विभागमें भी उनका काम बहुत ऊँचे दर्जेका था। रिपन कालेजके द्वारा हजारों विद्यार्थियोंको उनकी सीधी देख-रेख और लगातार असरमें रहनेके कारण बड़ी उदार शिक्षा मिली। अपने नियमित जीवन के कारण वे हमेशा तंदुरुस्त और सशक्त बने रहे और उन्हें दीर्घ जीवन—हिंदुस्तानमें समझा जानेवाला दीर्घ जीवन—मिला। अतः समय तक वे अपनी मानसिक शक्तियोंको कायम रख सके। ७७ वर्षकी उमरमें अपने दैनिक 'बंगाली' पत्रका संपादन-भार लेना कोई मामूली शक्ति का काम न था। अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति कायम रहनेके अवधिमें उनकी ऐसी दृढ़ धारणा थी कि दो मास

पहले जब मुझे वारकपुरमें उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था तब उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं ६१ वर्षकी आयु तक जीवित रहनेकी उम्मीद करता हूँ। इसके बाद मुझे जीनेकी इच्छा नहीं है; क्योंकि उसके बाद मेरी शक्ति कायम न रह सकेगी। पर भाग्य ने तो उसका उलटा कर दिखाया। बिना सूचना दिए ही उसने उन्हें हममें छीन लिया। किसी को इसकी कल्पना तक न थी। गुरुवार ता० ६ के प्रातःकाल तक उनकी मृत्यु का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया। यद्यपि आज उनका शरीर हमारे बीचमें नहीं है तो भी उनकी देश-सेवा तो कभी भुलाई नहीं जा सकती। वर्तमान भारतके निर्माण करनेवालोंमें उनका नाम सदा अमर रहेगा। (हि० न०, २० व २५)

: १३० :

जनरल बोथा

दक्षिण अफ्रीकाका जनरल बोथा कौन था ? वह भी तो वारडोलीके किसानोंके समान एक किसान ही था। वह ४०,००० भेड़ें रखता था। भेड़ोंकी परीक्षा करनेमें उसके जैसा कोई चतुर न था। यद्यपि उसकी कीर्ति तो थोड़ाकी हैसियतसे फैली, पर उसके जीवनमें लड़नेके प्रसंग तो बहुत कम आए। उसके जीवनका अधिकांश भाग रचनात्मक कामोंमें ही व्यतीत हुआ। इतना भारी व्यवसाय करने वाले के लिए कितने रचना-कौशलकी जरूरत पड़ी होगी ? ('विजयी वारडोली', पृष्ठ ३६)

: १३१ :

सुभाषचन्द्र बोस

प्र०—क्या सुभाषबाबूका यह कहना सही नहीं है कि कांग्रेसके सत्ता-धारी नेताओंकी—जिनमें आप भी शामिल हैं—मनोवृत्ति सुधारवादी और नरम है ?

उ०—अवश्य सही है । दादाभाई नौरोजी एक महान् सुधारवादी थे । गोखले नरम दलके एक महान् प्रतिनिधि थे । इसी तरह बर्बई प्रात-के बेताजके बादशाह फीरोजशाह मेहता और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भी नरम थे । अपने समयमें वे ही राष्ट्रके लिए लड़नेवाले थे । हम उन्हींके उत्तराधिकारी हैं । वे न होते तो हम भी न होते । सुभाषबाबू आगे बढ़नेकी अधीरतामें यह भूल जाते हैं कि मेरे जैसे लोग सुधारवादों और नरम मनोवृत्तिके होते हुए भी उनके साथ देशभक्तिमें होड़ लगा सकते हैं । मगर मैंने उनसे कहा है कि आपके सामने जवानी है, आपमें जवानीका जोश होना ही चाहिए । मैंने या और किसीने उनका हाथ नहीं पकड़ रखा है । वे ऐसे आदमी भी नहीं हैं, जिन्हें पकड़कर रखा जा सके । उन्हें उनकी दूरदेशीने ही रोक रखा है और इस तरह वे भी उतने ही सुधारवादी और नरम हैं जितना मैं हूँ । अतः इतना ही है कि उनमें जो गुण हैं उन्हें अनुभवी होनेके कारण मैं जानता हूँ, पर जवानी के जोशमें वे नहीं देख सकते । सुभाषबाबूका और मेरा दृष्टिकोण अलग-अलग होते हुए और उनपर कांग्रेसकी तरफसे प्रतिवध होनेपर भी मेरा निमन्त्रण है कि वे शांत युद्धमें अपना जीहर बताए तो फिर लेखक देखेगा कि मैं उनके पीछे-पीछे चल रहा हूँ । मैं उनसे आगे निकल गया तो वे मेरे पीछे-पीछे चलेंगे, यह मुझे भरोसा है । मगर मुझे तो इसी आशा पर जीना है कि हम अपना समान ध्येय दूसरी लड़ाईके बिना ही प्राप्त कर लेंगे ।

वर्धा लौटते हुए नागपुर-स्टेशनपर एक नवयुवकने यह सवाल पूछा कि कार्य-समितिने सुभाषबाबूकी गिरफ्तारीकी तरफ क्यों कुछ ध्यान नहीं दिया ? चूँकि सोमवारका दिन था, मेरा मौन चल रहा था, मनें कुछ भी जवाब नहीं दिया । मगर नवयुवकका यह प्रश्न मुझे ठीक लगा । मैंने उसे ध्यानमें रख लिया । मेरे दिलमें जरा भी शक नहीं कि हजारों नहीं तो सैकड़ों लोग यही सवाल, जो इस नवयुवकने नागपुर-स्टेशनपर पूछा, अपने दिलमें पूछ रहे होंगे । और यह बात है भी ठीक । सुभाषबाबू दो बार लगातार कांग्रेसके राष्ट्रपति चुने जा चुके हैं । अपनी जिदगीमें उन्होंने भारी आत्मबलिदान किया है । वह एक जन्म-जात नेना है । मगर सिर्फ़ इस वजहसे कि उनमें यह सब गुण हैं, यह साबित नहीं होता कि उनकी गिरफ्तारीके विरुद्ध कार्य-समिति अपनी आवाज ऊँची करे । हा, यदि गुण-दोषका विचार करनेके बाद कार्य-समितिको ऐसा लगे कि अमुक गिरफ्तारी निंदाके योग्य है तो वह जरूर उसकी ओर अपना ध्यान देगी । मगर सुभाषबाबूने कांग्रेसकी आज्ञासे सरकारों कानूनका भंग नहीं किया । उन्होंने तो खुद कार्य-समितिको आज्ञाका भी, साफ़ ऐलानके साथ और छाती ठोककर, उल्लंघन किया है । अगर उन्होंने इस घड़ी कोई दूसरी-तीसरी विना पर लड़ाईके लिए कार्य-समितिके आज्ञा मांगी होती तो मेरा विचार है कि वह उसे देनेसे इन्कार ही करती । सुभाषबाबूने जो सवाल उठाया, वैसे तो उससे भी बड़े महत्त्वके सैकड़ों सवाल शायद देशमें मिलेंगे । मगर देशने इस समय केवल एक प्रश्नपर, यानी स्वतंत्रताके प्रश्नपर अपना सारा ध्यान जमा दिया है । अवसर आनेपर इस सिल-सिलेमें सत्याग्रह शुरू करनेके लिए तैयारियाँ भी की जा रही हैं । इसलिए सुभाषबाबूने जो कदम उठाया है अगर उसके बारेमें कार्य-समिति कोई कार्रवाई करती तो वह सिर्फ़ यही हो सकता था कि वह अपनी नापसंदगी प्रकट करे । मगर उसे यह नहीं करना था । मैं भी चाहता तो इस नव-युवकके सवालको जवाब दिए बिना ही रख छोड़ता । मगर मुझे लगा कि

इस गिरफ्तारीको इसके ठीक रूपमें जनताके आगे रखनेमें कुछ नुकसान नहीं। श्री सुभाषबाबू-जैसे बड़े आदमीकी गिरफ्तारी कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है। मगर सुभाषबाबूने अपनी युद्धकी योजना खूब सोच-विचारके बाद और साहसके साथ गर्दी है। उनके खयालमें उनका रास्ता सर्वोत्तम है। वह ईमानदारीमें यह मानते हैं कि कार्य-समिति गलत रास्तेपर है, और 'टाल-मटोल' की नीतिसे कुछ भला होनेवाला नहीं। उन्होंने साफ शब्दोंमें मुझसे कह दिया था कि जो काम कार्य-समिति न कर सकी वह उसे करके बताएंगे। उनका धीरज चला गया था और विलंब वह सहन नहीं कर सकते थे। मैंने जब उनसे कहा कि अगर उनकी योजनाके परिणाम-स्वरूप मेरी जिंदगीमें स्वराज मिल गया तो सबसे पहले उन्हें मेरी तरफसे धन्यवादका तार मिलेगा। और अगर उनके उठाए हुए युद्धके दरमियान मरा विचार उनके जैसा हो गया तो मैं खुले दिलसे उनका नेतृत्व स्वीकार करनेका ऐलान करूंगा और उनके झंडेके नीचे वतौर एक सिपाहीके आकर खूद भरती हो जाऊंगा। लेकिन इसके साथ-साथ मैंने उन्हें यह चेतावनी भी दी थी कि वह गलत रास्तेपर चढ़े हैं।

मगर मेरी राय कुछ बहुत मानी नहीं रखती। जबतक श्री सुभाष-बाबू किसी एक रास्तेको ठीक समझते हैं तबतक उस रास्तेपर डटे रहनेका उनका अधिकार और धर्म है, चाहे कांग्रेसको वह पसंद हो या न हो। मैंने उनसे कहा कि यह अधिक ठीक होगा कि वह कांग्रेसमेंसे बिलकुल निकल जाए, मगर मेरी राय उन्हें जर्ची नहीं। लेकिन यह सबकुछ होने हुए भी अगर उनका प्रयत्न सफल हो और हिंदुस्तानको स्वतंत्रता मिल जाय तो उनका कांग्रेसके विरुद्ध विद्रोह करना ठीक ही सिद्ध होगा और कांग्रेस न सिर्फ उनके इस विद्रोहको क्षमा ही करेगी, बल्कि देशके तारनहारके तौरपर वह उनका स्वागत भी करेगी।

सत्याग्रहके युद्धमें आग्रह करके जेल जाना प्रशसनीय गिना जाता है। इसलिए देशके सामान्य कानूनका भंग करनेकी वजहसे निर्मीमो कैदकी सजा

मिले तो उसके खिलाफ आवाज नहीं उठाई जा सकती। इसके विपरीत, गिरफ्तार होनेपर सविनय-भंग करनेवालोंको धन्यवाद देने और दूसरे कांग्रेसवादियोंको उनका अनुकरण करनेका निमन्त्रण देनेकी प्रथा रही है। यह स्पष्ट है कि सुभाषबाबूके बारेमें कार्य-समिति ऐसा नहीं कर सकती थी। मैं यहाँ यह भी कहूँ कि देशमें जगह-जगह जो गिरफ्तारियाँ आज हो रही हैं—और उनमें प्रख्यात कांग्रेसके सदस्य भी शामिल हैं—उनके बारेमें भी कार्य-समितिको कोई कार्रवाई नहीं की। इसका मतलब यह नहीं कि कार्य-समितिको इससे आघात नहीं पहुँचा, मगर जीवन-संग्राममें कईएक अन्यायोंका मूक सहन करना कभी-कभी धर्म हो जाता है। अगर वह इरादतन सहन किया जाए तो उसमेंसे एक बड़ी शक्ति पैदा होगी। (ह० से०, १३ ७ ४०)

नेताजीके जीवनसे जो सबसे बड़ी शिक्षा ली जा सकती है वह है उनकी अपने अनुयायियोंमें ऐक्यभावनाकी प्रेरणाविधि, जिससे कि वे सब सांप्रदायिक तथा प्रांतीय बंधनोंसे मुक्त रह सकें और एक समान उद्देश्यके लिए अपना रक्त बहा सकें। उनकी अनुपम सफलता उन्हें निस्संदेह इतिहासके पन्नोंमें अमर रखेगी।

नेताजीके प्रत्येक अनुगामीने जो भारत लौटनेपर मुझमें मिले, निर्विवाद रूपसे यह कहा कि नेताजीका प्रभाव उनपर जादू-सा करता था और वे उनके ग्रंथोंमें एकमात्र भारतकी आजादी प्राप्त करनेके उद्देश्यसे काम करते थे। उनके दिलोंमें सांप्रदायिक और प्रांतीय या और कोई भी भेदभाव कभी भी अंकुरित नहीं हुआ था।

नेताजी एक महान् गुणवान् पुरुष थे। वे व्युत्पन्नमात्र और प्रतिभासंपन्न थे। उन्होंने आई० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की, किंतु नौकरी उन्होंने नहीं की। भारत लौटनेपर वे देगबुदामसे प्रभावित हुए और कलकत्ता कार्पोरेशनके मुख्य एक्जीक्यूटिव आफिसर नियुक्त हुए। बादमें

वे राष्ट्रीय महासभाके भी दो बार राष्ट्रपति बने, परंतु उनकी उल्लेखनीय सफलताओंमें, भारतसे बाहरके, उस समयके कार्य हैं, जब वे देशसे भागे और काबुल, इटली, जर्मनी और अन्य देशोंमें होकर अंतमें जापान पहुंचे। विदेशी चाहे कुछ भी कहे, पर मैं विश्वासके साथ यह अवश्य कहूंगा कि आज भारतमें एक भी ऐसा आदमी नहीं है जो उनके इस प्रकार भागनेको अपराध मानता है। 'समर्थको नहि दोष गुसाई'—सत तुलसीदासके इस कथनके अनुसार नेताजी पर भागनेका दोष नहीं लगाया जा सकता। जब सर्वप्रथम उन्होंने सेना तैयार की तो उसकी तुच्छ सख्या की उन्होंने कोई चिंता नहीं की। उनका निश्चय था कि सख्या चाहे कितनी ही कम क्यों न हो, पर भारतको आजाद करानेके लिए उन्हें सामर्थ्यभर यत्न करना ही चाहिए।

नेताजीका स्वयं महान् और स्थिर रहनेवाला कार्य था सब प्रकारके जातीय और वर्गभेदका उन्मूलन। वह केवल बंगाली ही नहीं थे। उन्होंने अपने आपको कभी स्वर्ण हिंदू नहीं समझा। वह आम्लचूल भारतीय थे। इससे अधिक क्या कि उन्होंने अपने अनुगामियोंमें भी यही आग प्रज्वलित की, जिसमें प्रेरित होकर वे उनकी उपस्थितिमें सभी भेदभाव भूल गये थे और एकम्ब्र होकर काम करते थे। ('नेताजी . हिज लाइफ एण्ड वर्क')

एक बात और। वह यह कि जो आजाद हिंद फौज सुभाषवावून बनाई थी और उसके लिए हम सब सुभाषवावूकी होगियारी, बहादुरीकी तारीफ करने हैं और तारीफ करनेकी बात है, क्योंकि जब वह हिंदुस्तानसे बाहर था तब उसने सोचा कि चलो, थोड़ा फौजी काम भी कर लू। वह कोई लडकेया तो था नहीं। एक मामूली हिंदुस्तानी था। जैसे दूसरे वकील, दैरिस्टर रहते हैं वैसे सुभाषवावू भी थे। फौजकी कोई तालीम ता पाई नहीं थी। हा, मिविल सर्विसमें जैसा आमतौरपर होता है, थोड़ी

घुडसवारी सीख ली होगी । लेकिन पीछे उन्होंने फौजी-शास्त्र थोड़ा पढ़ लिया होगा । इस प्रकार उनके मातहत जो सेना बनी थी, मैं सुनता हूँ कि उसके दो बड़े अफसर, जिनसे मैं जेलमें तथा उसके बाहर भी मिला था, काश्मीरपर हमला करनेवालोंमें मिले हुए हैं । यह मुझको बहुत चुभता है । ये सुभाषबाबू के मातहत खास काम करनेवाले थे और हमेशा उनके साथ रहा करते थे । सुभाषबाबू लश्करसे कोई बात छिपाकर रख तो सकते नहीं थे, क्योंकि उन्हें उनके मारफत काम लेना पड़ता था । वे आज लूटेरोके सरदार होकर जाते हैं तो मुझको चुभता है । अगर उनको अखबार मिलते हैं या जो मैं कहता हूँ उसको वे सुनले तो मैं अपनी यह नाकिस आवाज उनको पहुंचाता हूँ कि आप इसमें क्यों पड़ते हैं और सुभाषबाबू के नामको क्यों डुबाते हैं ? आप ऐसा क्यों करते हैं कि हिंदू का पक्ष ले या मुसलमान का पक्ष ले ? आपको तो जातिभेद करना नहीं चाहिए । सुभाषबाबू तो ऐसे थे नहीं । उनके साथ हिंदू-मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, हरिजन आदि सब रहते थे । वहां न हरिजन का भेद था, न इतरजन का । वहां तो हिंदुस्तानियोंमें जातिपात का कोई भेदभाव या ही नहीं । यो तो सब अपने धर्मपर कायम थे, कोई धर्म तो छोड़ बैठे थे नहीं । लेकिन सुभाषबाबू ने कब्जा कर लिया था, उनके चित्त का हरण कर लिया था, शरीर का हरण नहीं किया था । ऐसा तो चलता नहीं था कि अगर आजाद हिंद फौज में शामिल नहीं होता है तो काटो । लोगोंको इस तरह काटकर वे हिंदुस्तानको रिहाई दिलानेवाले नहीं थे । इस तरहसे बड़े हुए और बड़प्पन पाया । तब आप इतने छोटे क्यों बनते हैं और इस छोटे काममें क्यों पड़ते हैं ? अगर कुछ करना ही है तो सारे हिंदुस्तानके लिए करो । वहां जो मुसलमान हैं, अफगानी हैं, उनकी कहे कि यह जाहिलपन क्यों करना ? लोगोंको लूटना और देहानोंको जलाना क्या ? चलो, महागजासे मिले, शेख अब्दुल्लामें मिले, उनकी चिट्ठी लिखे कि हम आपसे मिलना चाहते हैं, हम यहां कोई लूट करने तो आए नहीं

हैं। आप इस्लामको दवाते हैं, इसलिए आपको बताने आए हैं। यह तो मैं समझ सकता हूँ। तब तो आप सुभाषवावूका नाम उज्ज्वल करेंगे और उन अफरीदी लोगोंके सच्चे शिक्षक बनेंगे। अफरीदी लोग कैसे रहते हैं, उनमें भी लुटेरे हैं या नहीं हैं, यह मैं नहीं जानता हूँ। लेकिन मेरी निगाहमें वे भी इन्सान हैं। उनके दिलमें भी वही ईश्वर या खुदा है, इसलिए वे सब मेरे भाई हैं। अगर मैं उनमें रहूँ तो उनसे कहूँगा कि लूट क्या करना, एक-दूसरेपर गुस्सा क्या करना। मैं यह तो कहता नहीं कि तुम्हारे पास जो बंदूक या तलवार है, उन्हें छोड़ दो। उनको रखो, लेकिन जो दूसरे लोग डरे हुए हैं, मुफलिम हैं, औरते हैं, बच्चे हैं, उनको बचानेके लिए। उसमें क्या है, चाहे वे हिंदू हो या मुसलमान। तो मैं कहूँगा कि ये जो दो अफसर हैं, जिनका नाम मैंने मुन लिया है, वे सुभाषवावूका नाम याद करे। वे तो मर गये, लेकिन उनका नाम नहीं मरा, काम तो नहीं मग। (प्रा० प्र०, २ ११ ४७)

...

आज सुभाषवावूकी जन्म-तिथि है। मैंने कह दिया है कि मैं तो किसीकी जन्म-तिथि या मृत्यु-तिथि याद नहीं रखता। वह आदत मेरी नहीं है। सुभाषवावूकी तिथिकी मुझे याद दिलाई गई। उससे मैं राजी हुआ। उसका भी एक खास कारण है। वे हिंसाके पुजारी थे। मैं अहिंसाका पुजारा हूँ। पर इसमें क्या? मेरे पास गुणकी ही कीमत है। तुलसीदासजीने कहा है न

“जड़-चेतन गुन-दोषमय विश्व कीन्ह करतार।

सत-हस गुन गर्हहि पय परिहरि वारि विकार ॥”

हस जैसे पानीको छोड़कर दूध ले लेता है, वैसे ही हमें भी करना चाहिए। मनुष्यमात्रमें गुण और दोष दोनों भरे पड़े हैं। हमें गुणोंको ग्रहण करना चाहिए। दोषोंको भूल जाना चाहिए। सुभाषवावू बड़े देश-प्रेमी थे। उन्होंने देशके लिए अपनी जानकी बाजी लगा दी थी और वह करके भी

बता दिया। वह सेनापति बने। उनकी फौजमें हिंदू, मुसलमान, पारसी, सिख सब थे। सब बगाली ही थे, ऐसा भी नहीं था। उनमें न प्रातीयता थी, न रंगभेद, न जातिभेद। वे सेनापति थे, इसलिए उन्हें ज्यादा सहूलियत लेनी या देनी चाहिए, ऐसा भी नहीं था (प्रा०, प्र०, २३१४८)

: १३२ :

भगवान्दास

जब काशी विद्यापीठके अध्यापक कृपलानी और उनके विद्यार्थी पकड़े गये, मैंने अपने मित्रोंसे कहा था, “क्या ही अच्छा हो, यदि बाबू भगवान्दास गिरफ्तार हो जाय। आखिर अध्यापक कृपलानी बनारसके रहनेवाले हैं। लेकिन बाबू भगवान्दास नहीं पकड़े जायगे।” उस समय मुझे यह पता नहीं था कि बाबू भगवान्दास ही उस पुस्तिकाके रचयिता थे, जिसे अध्यापक कृपलानी बेच रहे थे। पुस्तक लिखनेमें लेखकने बड़ी सावधानीसे काम लिया था। दूसरे ही दिन उनके पुत्रका शुभ सवाद मुझे मिला कि बाबूजी पकड़े गये। गिरफ्तारी पर वे सतुष्ट थे। बाबू भगवान्दास असहयोगी हैं—ऐसे असहयोगी जो मनसा, वाचा, कर्मणा हमेशा हिंसासे दूर रहते हैं। आप संस्कृत साहित्यके अच्छे पंडित हैं। बड़े ही धर्मनिष्ठ हैं। जमीदार हैं। श्रीमती बेसेट यदि सेट्रल हिंदू कालेजकी जन्मदात्री हैं तो बाबू भगवान्दास उसके निर्माता हैं। अतएव उनकी गिरफ्तारी एक ऐसा बलिदान है जो ईश्वरको रुचिकर हुए बिना नहीं रह सकता। और वह पतित-पावनी विश्वनाथपुरी इससे अच्छा बलिदान और क्या करती? अख-

वारोके पढनेवाले लोग जानते ही होंगे कि वावू भगवान्दाम महासभाके द्वारा स्वराज्यकी योजना तैयार करानेका प्रयत्न कर रहे थे । उसके लिए आप स्वयं भी दीर्घ परिश्रम कर रहे थे । आपने मुझे कितने ही सूचक प्रश्नोंकी एक लंबी सूची भेजी है, जिसपर मैं इन वर्तमान घटनाओंके कारण अभी तक कोई कार्रवाई नहीं कर सका । दगा-फसाद न होने देनेकी वे बड़ी चिंता रखते थे । यदि उनकी गिरफ्तारीसे भी सरकारकी हिंसा-काटको न्यौता देनेकी उत्सुकताका पता न चलता हो तो मैं नहीं कह सकता कि किस बातसे चलेगा । (हि० न०, २५ १२ २१)

: १३३ :

गोकुलभाई भट्ट

सिरोही राजपूतानेकी एक रियासत है, जिसकी आबादी १,८६, ६३६ और आमदनी ६, ७०, ०००) रु० है । अखवारोमे इसकी चर्चा उस लाठी-चार्जके लिए हुई है, जो एक सभामे और कहते हैं कि बिना किसी उत्तेजनाके किया गया । श्री गोकुलभाई भट्टसे, जो सिरोहीके ही रहने-वाले हैं और एक मयोन्य अध्यापक तथा वफादार कांग्रेस-कार्यकर्त्ताके रूपमें जिन्होंने प्रसिद्धि पाई है, मुझे इस घटनाकी प्रामाणिक जानकारी मिली है । वह अहिंसाकी भावनामें ओतप्रोत है । हाल हीमें वह सिरोही गये हैं और प्रजाके लिए प्राथमिक अधिकार प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं । (ह० से०, २३ ६ ३६)

: १३४ :

भंसाली

सुबह घूमते समय भंसालीभाईकी ही बातें होती रहीं। मेरे मनमें उनकी साधुताके प्रति बहुत मान रहा है। बापूके बाद मेरी नजरमें भंसालीभाई ही साधु हैं। बापू कहने लगे—

मैं उसे अपनेसे ऊँचा समझता हूँ। तीनो काल निर्भय रहता है। यह साधुका लक्षण है। वह जो कर सकता है, मैं नहीं कर सकता।

मैंने पूछा, “भंसालीभाईको क्या लगता होगा ?” बोले,

कुछ नहीं, वह तो महाभारतको भी घोटकर पी गया है। महा-राष्ट्रियोमे धर्म-ग्रन्थोमेसे अद्भुत नतीजे निकालनेकी विलक्षण क्षमता है। (का० क०, २४ ११.४२)

भंसालीकी मृत्युकी खबर आवेगी तो मेरा हृदय काप भले ही उठे, मगर खुशीसे नाचेगा भो। ऐसी सपूर्ण अहिंसक मृत्यु आजतक हुई ही नहीं है। भंसालीको मैं जानता हूँ। उसके हृदयमे बैरभावका लेश भी नहीं है। हमारे लोगोमे इतना मैल भरा है कि उसे निकालनेके लिए कइयोको तो जल मरना होगा। (का० क०, २४ १२ ४२)

: १३५ :

बड़े भाई

बड़े भाईने तो मुझपर बहुतेरी आगाए बाध रखी थी। उन्हें धनका, कीर्तिका और ऊँचे पदका लोभ बहुत था। उनका हृदय वादशाहके जैसा था। उदारता उडाऊनतक उन्हें ले जाती। इसमें तथा उनके भोले-पनके कारण मित्र बनाते उन्हें देर न लगती। उन मित्रोंके द्वारा उन्होंने मेरे लिए मुकदमे लानेकी नजर्वाज कर रखी थी। उन्होंने यह भी मान लिया था कि मैं खूब रुपया कमाने लगूंगा और इस भरोसेपर उन्होंने घरका खर्च भी खूब बढ़ा लिया था। मेरे लिए वकालतका क्षेत्र तैयार करनेमें भी उन्होंने कमर न उठा रखी थी।

इधर जातिका भगडा अभी खडा ही था। उसमें दो दल हो गये थे। एक दलने मुझे तुरत जातिमे ले लिया। दूसरा न लेनेके पक्षमे अटल रहा। जातिमे लेलेनेवाले दलको सतुष्ट करनेके लिए, राजकोट पहुचनेके पहले, भाईसाहब मुझे नासिक ले गये। वहा गंगा-स्नान कराया और राजकोट-मे पहुचते ही जाति-भोज दिया गया।

यह बात मुझे रुचिकर न हुई। बड़े भाईका मेरे प्रति अगाध प्रेम था। मेरा खयाल है कि मेरी भक्ति भी वैसी ही थी। इसलिए उनकी इच्छाको आज्ञा मानकर मैं यत्रकी तरह विना समझे, उसके अनुकूल होता चला गया। (भा० क०, १६२७)

‘ट्रस्टी’ यो करोड़ोंकी सम्पत्ति रखते हैं, फिर भी उसकी एक पाई-पर भी उनका अधिकार नहीं होता। इसी तरह मुमुक्षुको अपना आचरण रखना चाहिए—यह पाठ मैंने गोताजीसे सीखा। अपरिग्रही होनेके लिए, सम-भाव रखनेके लिए, हेतुका और हृदयका परिवर्तन आवश्यक

है, यह बात मुझे दीपकी तरह स्पष्ट दिखाई देने लगी। वस, तुरत रेवाशकर भाईको लिखा कि बीमेकी पालिसी बढ कर दीजिए। कुछ रुपया वापस मिल जाय तो ठीक, नही तो खैर। बाल-बच्चो और गृहिणी की रक्षा वह ईश्वर करेगा जिसने उनको और हमको पैदा किया है। यह आशय मेरे उस पत्रका था। पिताके समान अपने बडे भाईको लिखा—“आजतक मैं जो कुछ बचाता रहा आपके अर्पण करता रहा। अब मेरी आशा छोड दीजिए। अब जो-कुछ बच रहेगा वह यहीके सार्वजनिक कामोने लगेगा।”

इस बातका औचित्य मैं भाईसाहबको जल्दी न समझा सका। शुरूमे तो उन्होने बडे कडे शब्दोमे अपने प्रति मेरे धर्मका उपदेश दिया—“पिताजीसे बढकर अक्ल दिखानेकी तुम्हे जरूरत नही। क्या पिताजी अपने कुटुंबका पालन-पोषण नही करते थे ? तुम्हे भी उसी तरह घरवार सम्हालना चाहिए।” आदि। मैंने विनय-पूर्वक उत्तर दिया—“मैं तो वही काम कर रहा हूँ, जो पिताजी करते थे। यदि कुटुंबकी व्याख्या हम जरा व्यापक कर दे तो मेरे इस कार्यका औचित्य तुरत आपके खयालमें आ जायगा।”

अब भाईसाहबने मेरी आगा छोड दी। करीब-करीब अ-बोला ही रखा। मुझे इससे दुःख हुआ, परंतु जिस बातको मैंने अपना धर्म मान लिया, उसे यदि छोडता हूँ तो उससे भी अधिक दुःख होता था। अतएव मैंने उस थोडे दुःखको सहन कर लिया। फिर भी भाईसाहबके प्रति मेरी भक्ति उसी तरह निर्मल और प्रचंड रही। मैं जानता था कि भाईसाहबके इस दुःखका मूल है उनका प्रेम-भाव। उन्हें रुपए-पैसेके सद्व्यवहारकी अधिक चाह थी।

पर अपने अंतिम दिनोमे भाईसाहब मुझपर पसीज गये थे। जब वह मृत्यु-शय्यापर थे तब उन्होने मुझे सूचित कराया कि मेरा कार्य ही उचित और धर्म्य था। उनका पत्र बडा ही करुणाजनक था। यदि पिता पुत्रसे

माफी माग सकता हो तो उन्होंने उसमें मुझसे माफी मागी थी। लिखा कि मेरे लड़कोका तुम अपने ढंगसे लालन-पालन और शिक्षण करना। वह मुझमें मिलनेके लिए बड़े अवीर हो गये थे। मुझे तार दिया। मैंने तार द्वारा उत्तर दिया—“जरूर आजाइए।” पर हमारा मिलाप ईश्वरको मजूर न था।

अपने पुत्रोंके लिए जो इच्छा उन्होंने प्रदर्शित की थी वह भी पूरी न हुई। भाईसाहबने देशमें ही अपना शरीर छोड़ा था। लड़कोपर उनके पूर्व-जीवनका असर पड़ चुका था। उनके सत्कारोमें परिवर्तन न हो पाया। मैं उन्हें अपने पास न खींच सका। (आ० क० १६२७)

: १३६ :

रामकृष्ण भांडारकर

रामकृष्ण भांडारकर मुझसे उसी तरह पेश आए, जिस तरह पिता पुत्रसे पेश आता है। मैं दोपहरके समय उनके यहाँ गया था। ऐसे समय भी मैं अपना काम कर रहा था, यह बात इस परिश्रमी शास्त्रज्ञको प्रिय हुई और तटस्थ अध्यक्ष बनानेके मेरे आग्रहपर (‘दैट्स इट’, ‘दैट्स इट’) ‘यही ठीक है’, ‘यही ठीक है’ उद्गार सहज ही उनके मुँहसे निकल पड़े।

बातचीतके अंतमें उन्होंने कहा—

“तुम किसीसे भी पछोगे तो वह कह देगा कि आजकल मैं किसी भी राजनैतिक काममें नहीं पड़ता हूँ, परंतु तुमको मैं विमुख नहीं कर सकता। तुम्हारा मामला इतना मजबूत है और तुम्हारा उद्यम इतना स्तुत्य है कि मैं तुम्हारी सभामें आनेसे इन्कार नहीं कर सकता। श्रियुत तिलक और श्रियुत गोखलेसे तुम मिल ही लिये हो, यह अच्छा

हुआ। उनसे कहना कि दोनों पक्ष जिस सभामें मुझे बुलावेंगे, आ मैं जाऊंगा और अध्यक्ष का स्थान ग्रहण कर लूंगा। समयके बारेमें मुझसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं। जो समय दोनों पक्षोंको अनुकूल होगा उसकी पाबंदी मैं कर लूंगा।”

यह कहकर मुझे धन्यवाद और आशीर्वाद देकर उन्होंने विदा किया।
(आ० क०, १९२७)

: १३७ :

° गोपीचन्द भार्गव

डॉ० गोपीचन्द मेरे साथी कार्यकर्ता हैं। मैं उन्हें बहुत मानता हूँ। मैं बरसोंसे उन्हें एक योग्य सयोजकके नाते जानता हूँ, जिनका पञ्जावियोंपर बड़ा प्रभाव है। उन्होंने हरिजन-सेवक-संघ, अखिल भारत चरखा-संघ और अखिल भारत ग्रामउद्योग-संघके लिए काफी काम किया है। मुझे यह नहीं सोचना चाहिए कि पूर्वी पञ्जाबका काम उनकी ताकतके बाहर है। लेकिन अगर पानीपत उनकी कार्य-कुशलताका नमूना न हो तो यह उनकी सरकारके लिए बड़ी बदनामीकी बात है। पहलेसे बिना सूचना दिए इतने निराश्रित पानीपतमें क्यों उतारे गए? उन्हें ठहरानेके लिए वहाँ नाकाफी बदोबस्त क्यों है? अफसरोको पहलेसे ही यह सूचना क्यों नहीं दी जानी चाहिए, कि कौन और कितने निराश्रित पानीपत भेजे जा रहे हैं? उसके साथ ही कल मुझे यह भी सूचना मिली है कि गुडगाव जिलेमें तीन लाख ऐसे मुसलमान हैं, जिन्होंने डरकर अपना घर-बार छोड़ दिया है। ग्राम सड़कके दोनों तरफ खुलेमें इस आशासे पड़े हैं कि उन्हें अपने

औरत, वच्चे और मवेशियोंके साथ पजावकी कडी सर्दीमें ३०० मीलका रास्ता तय करना है। मैं इस बातपर विश्वास नहीं करता। मेरा खयाल है कि मुझे दोस्तोंने जो बात सुनाई है उसमें कुछ गलती है। अभी भी मैं आशा करता हूँ कि यह बात गलत है या बड़ा-बड़ा कर कही गई है। लेकिन पानीपतमें मैंने जो कुछ देखा, उससे मेरा यह अविश्वास ढिग गया है। फिर भी मुझे आशा है कि डा० गार्प, चंद और उनकी कैबिनेट समय रहते चेत जाएंगे और तबतक चैन नहीं लेंगे, जबतक सारे निराश्रितोंकी अच्छी देखभालका पूरा इतजाम नहीं हो जाता। यह बंदोबस्त दूरदेशी और हद दरजेकी सावधानी से ही किया जा सकता है। (प्रा० प्र०, १०, ११ ४७)

: १३८ :

दो सच्चरित्र भारतवासी

मक्किलोकी तो मेरे आस-पास भीड़ ही लगी रहती थी। इनमेंसे लगभग सब या तो बिहार इत्यादि उत्तर तरफके या तामिल-तेलंगू इत्यादि दक्षिण प्रदेशके लोग थे। वे पहली गिरमिटमें आये थे और अब मुक्त होकर स्वतंत्र पेशा कर रहे हैं।

इन लोगोंने अपने दु खोंको मिटानेके लिए भारतीय व्यापारी वर्गमें अलग अपना एक मंडल बनाया था। उसमें कितने ही बड़े सच्चे दिलके उदारभाव रखनेवाले और सच्चरित्र भारतवासी थे। उनके अध्यक्षका नाम था श्री जेरामसिंह और अध्यक्ष न रहते हुए भी अध्यक्षके जैसे ही दूसरे सज्जन थे श्री बदरी। अब दोनों स्वर्गवासी हो चुके हैं। दोनोंकी तरफमें मुझे अतिशय सहायता मिली थी। श्री बदरीके परिचयमें मैं

बहुत ज्यादा आया था और उन्होंने सत्याग्रहमें आगे बढ़कर हिस्सा लिया था। इन तथा ऐसे भाइयोंके द्वारा मैं उत्तर-दक्षिणके बहु-संख्यक भारत-वासियोंके गाढ़ संपर्कमें आया और मैं केवल उनका वकील ही नहीं, बल्कि भाई बनकर रहा और उनके तीनों प्रकारके दुःखोंमें उनका साथी हुआ। सेठ अब्दुल्ला ने मुझे 'गम्बी' नामसे संबोधित करनेसे इन्कार कर दिया। और 'साहब' तो मुझे कहता और मानता ही कौन? इसलिए उन्होंने एक बड़ा ही प्रिय शब्द ढूढ़ निकाला। मुझे वे लोग 'भाई' कहकर पुकारने लगे। यह नाम अतः तक दक्षिण अफ्रीकामें चला। पर जब ये गिरमिट-मुक्त भारतीय मुझे 'भाई' कहकर बुलाते तब मुझे उसमें एक खास मिठास मालूम होती थी। (आ० क०)

: १३६ :

मजह्रलहक

मौलाना मजह्रलहक और मैं एक साथ लंदनमें पढ़ते थे। उसके बाद हम बंबईमें १९१५ की कांग्रेसमें मिले थे। उस माल वह मुसलिम लीगके सभापति थे। उन्होंने पुरानी पहचान निकालकर जब कभी मैं पटना आऊ तो अपने यहा ठहरनेका निमंत्रण दिया था। इस निमंत्रणके आचार-पर मैंने उन्हें चिट्ठी लिखी और अपने कामका परिचय भी दिया। वह तुरत अपनी मोटर लेकर आए और मुझसे अपने यहा चलनेका आग्रह करने लगे। इसके लिए मैंने उनको बन्धुवाद दिया और कहा—“मुझे अपने जानेके स्थानपर पहली ट्रेनसे रवाना कर दीजिए। रेलवे गाइडसे मुकामका मुझे कुछ पता नहीं लग सकता।” उन्होंने राजकुमार शुक्लके साथ बात की और कहा कि पहले मुजफ्फरपुर जाना चाहिए। उसी दिन

गामको मुजफ्फरपुरकी गाडा जाती थी । उसमें उन्होंने मुझे खाना कर दिया । (आ० क०, १६२७)

मौलाना मजहबलहकने मेरे सहायकके रूपमें अपना हक लिखवा रखा था और महीनेमें एक-दो बार आकर मुझने मिल जाया करते । उस समयके उनके ठाट-वाट और शानमें तथा आजकी सादगीमें जमीन-आसमानका अंतर है । वह हम लोगोमें आकर अपने हृदयको तो मिला जाते परंतु अपने साहवी ठाट-वाटके कारण बाहरके लोगोको वह हमसे भिन्न मालूम होते थे । (आ० क०)

: १४० :

किशोरलाल मशरूवाला

वे एक पुराने कार्यकर्त्ता हैं और अभी-अभी तक गुजरात विद्यापीठके महामात्र (रजिस्ट्रार) थे । किंतु बीमारीके कारण उन्हें उस पदका त्याग करना पडा है । भारतमें चुप-चाप काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओंमें से वे एक अत्यंत विचारशील पुरुष हैं । हरएक शब्दको वे तौल-तौलकर लिखते और बोलते भी हैं । (हि० न०, २६ ५ २७)

किशोरलाल मशरूवाला हमारे विरले कार्यकर्त्ताओंमेंसे एक हैं । काम करते हुए वह कभी थकते नहीं । वह अत्यंत जागरूक रहते हैं । उनकी जाग्रत दृष्टिसे व्यारेकी कोई भी बात नहीं छूट पाती । वह एक तत्त्ववेत्ता हैं और गुजरातीके एक लोकप्रिय लेखक । गुजरातीके वह जैसे विद्वान हैं वैसे ही मराठीके भी हैं । वह जानीय, सांप्रदायिक या

प्रातीय अहंकार या दुराग्रहसे विलकुल मुक्त है। वह एक स्वतंत्र चिंतक है। वह राजनीतिज्ञ नहीं, एक पैदाइशी समाज-सुधारक है। समस्त धर्मोंके विद्यार्थी हैं। उनमें धार्मिक कट्टरताका कोई चिह्न नहीं। वह जिम्मेदारी ओढ़ने और विजापनवाजीमें भागते हैं। इतनेपर भी कोई ऐसा आदमी न मिलेगा जो जिम्मेदारी ले लेनेपर उसे उनकी अपेक्षा अधिक पूर्णताके साथ पूरा कर सके। बड़ी मुश्किलोंसे मैं उन्हें गांधी-सेवा-संघका अध्यक्ष बननेको राजी कर सका था। उनकी परिश्रमशीलता और सरल श्रद्धाके कारण ही संघको इतनी महत्ता और उपयोगिता प्राप्त हुई। उन्होंने अपने स्वास्थ्यके प्रति पूरी लापरवाही (मैं सार्वजनिक कार्यकर्तोंमें इसे कोई गुण नहीं, बल्कि अवगुण मानता हूँ) रखकर सदा अपना द्वार सत्यशोधकोंके लिए खुला रखा। कोई आश्चर्य नहीं कि इस सबसे वह संघके एक अभिन्न अंग बन गये। असीम सावधानीके साथ उन्होंने संघके लिए एक ऐसा विधान बनाया जा ऐसी किसी भी संस्थाके लिए नमूनेका काम दे सकता है। (ह० से०, २३४०)

श्री किशोरलालने एक स्वतंत्र ग्रंथ लिखा है। अगर उनका गरीब काम दे तो वे उस तरहकी और चीज लिख सकते हैं। उनके ग्रंथको शास्त्र कहना शायद ठीक न हो, तो भी वह शास्त्रके नजदीककी चीज है, ऐसा तो माना जा सकता है। लेकिन इस वक्त जैसी उनकी तदुरुस्ती है, उसे देखते हुए मैं मानता हूँ कि वे इस बोझको उठा नहीं सकेंगे। मैं तो उठानेको कहूँगा ही नहीं। वे भी अपने समयको व्यर्थ नहीं जाने देते। अनेक मित्रोंके जीवनकी समस्याओंको सुलझानेमें उनका बहुत-सा समय बीत जाता है और दिनडूबे वे लस्त होकर पड़ जाते हैं। (ह० से०, ३३४६)

: १४१ :

जमशेद महता

जमशेद महताको पवित्र व्यक्ति मानता हूँ। (म० ७०, १० १० ३०)

: १४२ :

ब्रजलाल महता

ब्रह्मदेशमें बनोपार्जनके लिए जाकर रहनेवाले अनेक हिन्दुस्तानी हैं। उनमेंसे कुछने धर्मके साथ सेवाको भी स्थान दिया है। उनमें से एक ब्रजलाल महता थे। कुछ ही दिन पहले उनका स्वर्गवास हो गया। वह महासभाका काम करते थे, पर हमें उसका पता नहीं। उनके पास दो पैसे थे। वह हरएक फडमें कुछ-न-कुछ देते और दूसरोंसे दिलवाते। लेकिन इसके लिए वह सम्मानकी इच्छा नहीं रखते थे। दरिद्रनारायणके वह भक्त थे। खादीपर उनकी पूरी श्रद्धा थी और चर्खासंघके वह प्रतिनिधि थे। जिसे सम्मानकी, पुरस्कारकी, इच्छा नहीं, जो सेवाके लिए ही सेवा करता है, वह वदनीय है। भाई ब्रजलाल महता, ऐसीमे ही थे। उनके कुटुम्बको धन्यवाद। (हि० न०, ६ न ३१)

: १४३ :

दाऊद महमद

पहले सेठ दाऊद महमदका परिचय सुना दू। वह नेटाल इंडियन कांग्रेसके अध्यक्ष और दक्षिण अफ्रीकामे आए हुए व्यापारियोंमे सबसे पुराने थे। वह मूरती मुन्नत जमातके बोहरा थे। बड़े ही चतुर पुरुष। इस बातमे उनकी बरावरी करनेवाले बहुत ही थोड़े भारतीय मैने दक्षिण अफ्रीकामे देखे। उनकी ग्राहकशक्ति बड़ी तेज थी। अक्षर-ज्ञान तो मामूली-सा था; पर अनुभवसे वह अंग्रेजी और डच भी अच्छी तरह बोल सकते थे। अंग्रेजी व्यापारियोंके साथ अपना काम चलानेमे उन्हे जरा भी कठिनाई नहीं पड़ती थी। उनकी दानशीलता प्रसिद्ध थी। नित्य पचास महमान-से कम तो कभी उनके यहां होते ही नहीं थे। कौमी चढोमे उनका नाम अग्रसरोमे ही रहता। उनके एक लडका था। लडका क्या था, एक अमूल्य रत्न था। चारित्र्यमे उनसे भी श्रेष्ठ और हृदय स्फटिकके समान। उसके चारित्र्य वेगको दाऊद सेठने कभी नहीं रोका। दाऊद सेठ अपने लडकेकी पूजा करते थे, यह अत्युक्ति नहीं, यथार्थ सत्य है। वह चाहते थे कि उनका एक भी ऐव हसनको नहीं लगने पावे। इंगलैंड भेजकर उन्होंने उसे बढ़िया शिक्षा दी। पर दुर्भाग्यसे दाऊद सेठ उस लडकेसे भरजवानीमे हाथ धो बैठे। हसनको क्षयने घेरा और उसका पाण हरण कर लिया। वह घाव कभी नहीं भरा। हसनके साथ-साथ भारतीय जनताकी बड़ी-बड़ी आशाएँ मिट्टीमे मिल गईं। हसनके लिए तो हिंदू और मुसलमान दोनों अपनी दाहिनी-बाईं आखोके समान थे। उसका सत्य तेजस्वी था। आज दाऊद सेठ भी नहीं रहे। (द० अ० स०, पृष्ठ ४२)

: १४४ :

बाई फातमा महेताव

न्यूकासलमें द्राविड वहनोको जेल जाने देखकर बाई फातमा महेताव-से न रहा गया। वह भी अपनी मा और सात वर्षके बच्चेको लेकर जेल जानेके लिए निकल पड़ी। मा-बेटी तो गिरफ्तार हो गई, पर सरकारने बच्चेको अदर लेनेसे साफ इन्कार कर दिया। पुलिसने बाई फातमाकी उगलियोंकी छाप लेनेकी खूब कोशिश की, पर वे निडर रही और आखीरतक उन्होंने पुलिसको अपनी उगलियोंकी छाप नहीं दी। (द० अ० स०, पृष्ठ १५३)

: १४५ :

लुई माउटबेटन

माउटबेटन यदि गवर्नर-जनरल बनते हैं तो वे हिंदुस्तानके खिदमत-गार या नीकर होकर ही बनते हैं। आप कह सकते हैं कि यह तो बच्चेको फुसलानेकी-सी बात हुई। जो माउटबेटन इंगलैंडके गाही घरानेसे संबंध रखते हैं वह क्या तुम्हारी नीकरी करनेवाले हैं, आप तो धोखा देते हैं। मुझे आपको धोखा देकर माउटबेटनसे कोई इनाम नहीं चाहिए। मैं तो आजतक उनसे लड़ता आया हूँ तो आज उनकी खुशामद करनेकी मुझे क्या जरूरत पड़ी है? आप शायद यह कहेंगे कि कांग्रेसी नेता उनके फुमलावेमें आ गए हैं। इसका मतलब यह हुआ कि जवाहरलालजी, सरदार और राजाजी ऐसे पागल हैं कि

अपना सब नूर गवाकर बैठे हैं, वे खुशामदी बन गये हैं। मैं वहातक नहीं जा सकता। यह तो सही है कि मैं जो चाहता था वह नहीं बना और बहुत दफा मैं यह कह भी चुका हूँ। मगर मैं हर चीजका सीधा मतलब निकालता हूँ। हम लोग माउटबेटनको गवर्नर-जनरल बनाते हैं इसीलिए तो वह बनते हैं। यदि हम न चाहते तो वह नहीं बन सकते। परन्तु जिन्ना साहबने यह सोचा होगा कि सारी दुनिया कैसे मानेगी कि मैंने पाकिस्तान ले लिया, इसलिए मैं क्यों न गवर्नर-जनरल बनूँ। हमें इसपर ईर्ष्या क्या करना और गुस्सा भी क्या करना। उनको गवर्नर-जनरल बनकर यह सारी दुनियाको बताना है कि इस्लाम क्या चीज है। यह देखना है कि वह वहाके खादिम बनने है या बादशाह।

अखबारोंसे मुझे मालूम हुआ कि पहले हिंदुस्तान और पाकिस्तान—दोनोंके लिए एक ही गवर्नर-जनरल रखना तय हुआ था। मगर बादमें जिन्ना साहब मुकर गये। तब कौन उन्हें पाकिस्तानका गवर्नर-जनरल बननेसे रोकनेवाला था? मेरी निगाहमें उन्होंने ठीक नहीं किया। एक दफा जब उन्होंने कहा था तो माउटबेटनको बनने देते और पीछे यदि कोई गोलमाल होता तो उनको हटा देते। परन्तु अब इस्लामकी परीक्षा जिन्ना साहबके मार्फत होनेवाली है। सारी दुनियाके सामने वे पाकिस्तान स्टेटके गवर्नर-जनरल बन रहे हैं। अतः पाकिस्तानकी खूबिया ही देखने-में आनी चाहिए। कांग्रेस तो हमेशा अंग्रेजोंसे लड़ती आई है। जवाहर-लालजी तो सीधे आदमी हैं, मगर सरदार तो हमेशा लड़नेवाले हैं। वे तो मेरे साथ लड़ते थे कि तू इनका एतबार करता है। जब वही इनके दावमें आ गए तो आपकी तथा हमारी बात ही क्या है। जब वे यह कबूल करते हैं कि वाइसराय गवर्नर-जनरल बनकर रहे तो हमें कबूल करनेमें क्या सकोच है? हम देखते हैं कि वे हिंदुस्तानके खादिम बनकर गवर्नर-जनरल हो रहे हैं या दगा देनेके लिए। एक नया अनुभव हमको मिलेगा। अतः इसमें दूरदृष्टी है और फिर हम कुछ खोते तो हैं ही नहीं। आखिर

डोमीनियन स्टेट्स भी हमने उनके कहने पर स्वीकार किया है। वे एक बहुत बड़े एडमिरल हैं, बड़ी लडाई लड़नेवाले हैं। उनको हम रखे तो सही। यदि कोई बुराई निकली तो हम उनसे लड़ लेंगे।

×

×

×

जब मैं वाइसरायसे मिलने गया था तब उन्होंने मुझसे कहा कि जिस लड़के से एलिजाबेथकी सगाई हुई वह मेरे लड़के-जैसा ही है। आशा है, कल आप आशीर्वादके तौरपर कुछ गन्ध लिखेंगे। सो परसों जब वाइसरायकी लड़की यहाँ आई तब मैंने उसके हाथ मुबारकवादीका एक खत लिखकर भेज दिया। कितनी सादी लड़की है वह। प्रार्थनाके समय मैंने उसे कुर्सीपर बैठनेके लिए कहा, मगर कुर्सीपर न बैठकर वह हमारे साथ ही दरीपर बैठ गई। और फिर राजकुमारी अम्पतकीरने तो आज मुझे यह भी बताया कि जिस लड़कीकी सगाई हुई है वही इंगलैंडकी रानी बनेगी, क्योंकि वादशाहके कोई लड़का नहीं है। वाइसरायके भी कोई लड़का नहीं है। खैर, वाइसराय अगर बुरा होता तो मैं आशीर्वाद लिखकर क्यों भेजता? मैं उसे बुरा नहीं मानता। उनकी जगह अगर जवाहरलालजी या सरदार पटेल गवर्नर-जनरल बनकर बैठ जाते तो उन्होंने बहुत खतरनाक काम किया होता। इसके अलावा गवर्नर-जनरलके हाथमें किसी प्रकारकी मना नहीं होगी। जवाहरलालजी या उनकी केबिनेट जो कहेंगी वही उसको करना होगा। उसको तो केवल अपने दस्तखत देने होंगे।

मगर लॉर्ड माउटवेटन एक बड़ा आदमी है और अंग्रेज अंतानियत ही कर सकते हैं, ऐसा हम लोगोका खयाल बन गया है। तो माउटवेटनको भी अपनी गराफत और इसाफ-पसदीका सबूत देना होगा, और मुझे विश्वास है कि वह इन्साफ करनेके लिए ही यहाँ आया है। (प्रा० प्र०, १२ ७ ४७)

: १४६ :

लेडी माउंटबेटन

लेडी माउंटबेटन मुझसे मिलने आई थी। वह दयाकी देवी बन गई हैं। वह हमेशा दोनों उपनिवेशोंका दौरा किया करती हैं, अलग-अलग छावनियोंमें निराश्रितोंसे मिलती हैं, बीमारों और दुःखियोंको देखती हैं और इस तरह जितना भी ढाढस उन्हें बधा सकती हैं, बधानेकी कोशिश करती हैं। (प्रा० प्र०, नं० ११४७)

: १४७ :

माता-पिता

मेरे पिताजी कुटुंब-प्रेमी, सत्यप्रिय, शूर और उदार परतु साथ ही क्रोधी थे। मेरा खयाल है, कुछ विषयासक्त भी रहे होंगे। उनका अंतिम विवाह चालीस वर्षकी अवस्थाके बाद हुआ था। वह रिश्ततसे सदा दूर रहते थे और इसी कारण अच्छा न्याय करते थे, ऐसी प्रसिद्धि उनकी हमारे कुटुंबमें तथा बाहर भी थी। वह राज्यके बड़े वफादार थे। एक बार असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंटने राजकोटके ठाकुरसाहबसे अपमान-जनक शब्द कहे तो उन्होंने उसका सामना किया। साहब खिगड़े और कबा गांधीजीसे कहा, माफी मागो। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। इससे कुछ घटेके लिए उन्हें हवालातमें भी रहना पड़ा। पर वह टस-से-मस न हुए। तब साहबको उन्हें छोड़ देनेका हुक्म देना पड़ा।

पिताजीको घन जोड़नेका लोभ न था। इससे हम भाइयोंके लिए वह बहुत थोड़ी संपत्ति छोड़ गए थे।

पिताजीने शिक्षा केवल अनुभव द्वारा प्राप्त की थी। आजकी अपर प्राइमरीके बराबर उनकी पढाई हुई थी। इतिहास, भूगोल विलकुल नहीं पढ़े थे। फिर भी व्यावहारिक ज्ञान इतने ऊँचे दर्जेका था कि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रश्नोंको हल करनेमें अबदा हजार आदमियोंसे काम लेनेमें उन्हें कठिनाई न होती थी। धार्मिक शिक्षा नहींके बराबर हुई थी। परंतु मंदिरोंमें जानेसे, कथा-पुराण सुनने से, जो धर्मज्ञान असंख्य हिंदुओंको सहज ही मिलता रहता है, वह उन्हें था। अपने अंतिम दिनोंमें एक विद्वान् ब्राह्मणकी सलाहसे, जोकि हमारे कुटुंबके मित्र थे, उन्होंने गीता पाठ शुरू किया था, और नित्य कुछ श्लोक पूजाके समय ऊँचे स्वरसे पाठ किया करते थे।

माताजी साध्वी स्त्री थी, ऐसी छाप मेरे दिलपर पड़ी है। वह बहुत भावुक थी। पूजा-पाठ किए बिना कभी भोजन न करती, हमेशा हवेली—वैष्णव मंदिर—जाया करती। जबमें मैंने होश सभाला, मुझे याद नहीं पड़ता कि उन्होंने कभी चातुर्मास छोड़ा हो। कठिन-से-कठिन व्रत वह लिया करती और उन्हें निर्विघ्न पूरा करती। बीमार पड़ जानेपर भी वह व्रत न छोड़ती। ऐसा एक समय मुझे याद है, जब उन्होंने चाद्रायणव्रत किया था। बीचमें बीमार पड़ गई, पर व्रत न छोड़ा। चातुर्मासमें एक बार भोजन करना तो उनके लिए मामूली बात थी। इतनेसे मतोष न मानकर एक बार चातुर्मासमें उन्होंने हर तीसरे दिन उपवास किया। एक साथ दो-तीन उपवास तो उनके लिए एक मामूली बात थी। एक चातुर्मासमें उन्होंने ऐसा व्रत लिया कि सूर्यनारायणके दर्शन होनेपर ही भोजन किया जाय। इस चौमासेमें हम लड़के लोग आसमानकी तरफ देखा करते कि कब सूरज दिखाई पड़े और कब मा खाना खाय। सब लोग जानते हैं कि चौमासेमें बहुत बार सूर्य-दर्शन

मुश्किलसे होते हैं। मुझे ऐसे दिन याद हैं, जबकि हमने सूर्यको निकला हुआ देखकर पुकारा है—“मा-मा, वह मूरज निकला।” और जबतक मा जल्दी-जल्दी दौड़कर आती है, सूरज छिप जाता था। मा यह कहती हुई वापस जाती कि “खैर, कोई बात नहीं, ईश्वर नहीं चाहता कि आज खाना मिले,” और अपने कामोमें मग्न हो जाती।

माताजी व्यवहार-कुशल थी। राजदरबारकी सब बातें जानती थी। रत्नवासमें उनकी बुद्धिमत्ता ठीक-ठीक आती जाती थी। जब मैं बच्चा था, मुझे दरबारगढ़में कभी-कभी वह साथ ले जाती और ‘बा-मा साहेब’ (ठाकुर साहबकी विधवा माता) के साथ उनके कितने ही सवाद मुझे प्रब भी याद हैं। (आ० क०, १९२७)

मिगरेटके टुकड़े चुराने तथा उसके लिए नौकरके पैसे चुरानेसे बढ कर चोरीका एक दोष मुझसे हुआ है और उसे मैं इससे ज्यादा गभीर समझता हूँ। बीड़ीका चस्का तब लगा जब मेरी उम्र १२-१३ सालकी होगी। शायद इससे भी कम हो। दूसरी चोरीके समय १५ वर्षकी रही होगी। यह चोरी थी मेरे मासाहारी भाईके सोनेके कड़ेके टुकड़ेकी। उन्होंने २५ के लगभग कर्जा कर रखा था। हम दोनों भाई इस सोचमें पड़े कि यह चुकावे किस तरह। मेरे भाईके हाथमें सोनेका एक ठोस कड़ा था। उसमेंसे एक तोला काटना कठिन न था।

कड़ा कटा। कर्ज चुका, पर मेरे लिए यह घटना असह्य हो गई। आगे-में कदापि चोरी न करनेका मैंने निश्चय किया। मनमें आया कि पिताजीके सामने जाकर चोरी कबूल कर लूँ। पर उनके सामने मुह खुलना मुश्किल था। यह डर तो न था कि पिताजी खुद मुझे पीटने लगेंगे क्योंकि मुझे नहीं याद पड़ता कि उन्होंने हम भाइयोंमेंसे कभी किसीको पीटा हो। पर यह खटका जरूर था कि वह खुद बड़ा सताप करेंगे, शायद अपना सिर भी पीट ले। तथापि मैंने मनमें कहा—“यह जोखिम उठाकर भी अपनी

चुगाई कबूल कर लेनी चाहिए, इसके बिना शुद्धि नहीं हो सकती ।'

अतमें यह निश्चय किया कि चिट्ठी लिखकर अपना दोष स्वीकार कर लू । मैंने चिट्ठी लिखकर खुद ही उन्हें दी । चिट्ठीमें सारा दोष कबूल किया था और उसके लिए सजा चाही थी । आजिजीके साथ यह प्रार्थना की थी कि आप किसी तरह अपनेको दुःखी न बनावें और प्रतिज्ञा की थी कि आगे मैं कभी ऐसा न करूंगा ।

पिताजीको चिट्ठी देते हुए मेरे हाथ कांप रहे थे । उस समय वह भगदरवी बीमारीमें पीड़ित थे । अतः खटियाके बजाय लकड़ीके तरतों-पर उनका बिछौना रहता था । उनके सामने जाकर बैठ गया ।

उन्होंने चिट्ठी पढ़ी । आखोंमें मोतीके बूंद टपकने लगे । चिट्ठी भांग गई । थोड़ी देरके लिए उन्होंने आखें मूंद ली । चिट्ठी फाड़ डाली । चिट्ठी पढ़नेको जो वह उठ बैठे थे सो फिर लेट गए ।

मैं भी रोया । पिताजीके दुःखको अनुभव किया । यदि मैं चितेरा हाता तो आज भी उस चित्रको हवहू खींच सकता । मेरी आखोंके सामने आज भी वह दृश्य ज्यों-का-त्यों दिखाई दे रहा है ।

इस मोती-बिंदुके प्रेमवाणने मुझे वीध डाला । मैं शुद्ध हो गया । इस प्रेमको तो वही जान सकता है, जिसे उसका अनुभव हुआ है—

रामवाण वाग्यारे होय ते जाणे'

मेरे लिए यह अहिंसाका पदार्थ-पाठ था । उस समय तो मुझे इसमें पितृ-वात्सल्यमें अधिक कुछ न दिखाई दिया, पर आज मैं इसे शुद्ध अहिंसा-के नामसे पहचान सका हूँ । ऐसी अहिंसा जब व्यापक रूप ग्रहण करती है तब उसके स्पर्शमें कौन अलिप्त रह सकता है ? ऐसी व्यापक अहिंसाके बलको नापना असंभव है ।

ऐसी शांतिमय क्षमा पिताजीके स्वभावके प्रतिकूल थी । मैंने तो यह

'प्रेम-वाणसे जो बिधा हो, वही उसके प्रभावको जानता है—अनु०

अदाज किया था कि वह गुस्सा होगा, सख्त-सुस्त कहेंगे, शायद अपना सिर भी पीट ले। पर उन्होंने तो असीम शांतिका परिचय दिया। मैं मानता हूँ कि यह अपने दोषको शुद्ध हृदयसे मजूर कर लेनेका परिणाम था।

जो मनुष्य अधिकारी व्यक्तिके सामने स्वेच्छापूर्वक अपने दोष शुद्ध हृदयसे कह देता है और फिर कभी न, करनेकी प्रतिज्ञा करता है, वह मानों शुद्धतम प्रायश्चित्त करता है। मैं जानता हूँ कि मेरी इस दोष-स्वीकृतिसे पिताजी मेरे सबधमे निश्चक हो गये और उनका महाप्रेम मेरे प्रति और भी बढ़ गया। (आ० क०, १९२७)

मुझे तो अपनी माताकी गोदमे ही अपना धर्म सिखाया गया था। मेरी माता तो बिना पढ़ी-लिखी थी। अपने दस्तखत भी नहीं कर सकती थी। छोटा-सा नाम था और वह भी लिखना नहीं सीखा था। हमको तो वह पढ़नेके लिए स्कूल भेज देती थी और खुद पढ़ी नहीं थी। उन दिनों शिक्षक रखकर कोई पढ़ता नहीं था और यह भी काठियावाड़-जैसे जंगली प्रदेशमें। यह मैं ७० साल पहलेकी बात करता हूँ। पिताजी एक दीवान तो थे मगर उस जमानेमें दीवान कोई बहुत अग्रेजी पढ़ा-लिखा योडे ही होता था। वे तो एक अगरखा पहनते थे और पावोमें सादी जूतिया होती थी। पतलूनका तो नाम भी नहीं जानते थे। परंतु इस हालतमें भी मेरी मा मुझे यह सिखाती थी कि बेटा, तुझे रामनाम लेना चाहिए। वह मेरा धर्म जानती थी। (प्रा० प्र०, २८ ६४७)

जब हम बच्चे थे तब मेरी मा कहती थी कि नवरात्रिको खाना नहीं खाना चाहिए। अगर खाना ही है तो फल खाओ, ज्यादा-से-ज्यादा दूध पियो, लेकिन अनाज न खाओ। अगर सचमुच पूरा-का-पूरा उपवास करो तो सबमें अच्छा है। मेरी मा नो बड़ी उपवास करनेवाली थी, जिसका मैं तो कोई मुकाबला नहीं कर सकता था। मेरे बड़े भाई तो मुकाबला

कर ही नहीं सकते थे—मैं थोड़ा-सा मुकाबला करता था। लेकिन उसमें उपवास करनेकी जो शक्ति थी उसके सामने मैं एक खिलीना हूँ बच्चा हूँ। (प्रा० प्र०, २० १०.४७)

: १४८ :

दो मातायें

उस समय हड़ताल पूरे जोरमें थी। पुरुषोंकी तरह उसमें स्त्रियाँ भी शामिल होती जा रही थी। उनमें दो माताएँ अपने बच्चोंको साथमें लिए हुए थी। एक बच्चेको कूचमें जाड़ा हो गया और वह मृत्युकी गोदमें जा सोया। दूसरीका बालक एक नाला पार करते हुए गोदमेंसे पानीमें गिरकर डूब गया। पर माता निराश नहीं हुई। दोनोंने अपनी कूचको उसी प्रकार शुरू रक्खा। एक ने कहा

“हम मरेहुओंका शोक करके क्या करेंगी ? इससे वे कहीं लौटकर थोड़े ही आ सकते हैं ! हमारा धर्म तो है जीवितोंकी सेवा करना।”

उस बात वीरताके, ऐसी असीम आस्तिकताके और अगाध ज्ञानके कई उदाहरण मैंने उन गरीबोंमें देखे। (द० अ० स०, पृष्ठ १५३-४)

: १४६ :

वी० पी० माधवराव

उस दिन बगलोरमे ८५ वर्षकी अवस्थामे श्री वी० पी० माधवराव-का स्वर्गवास हो गया । मैं दिवगत आत्माके गोकुल परिवारके साथ सादर समवेदना प्रकट करता हूँ । श्री माधवराव त्रावणकोर, बडौदा और मैसूर राज्यके दीवान रह चुके थे । अवकाश ग्रहण करनेके बाद वह अपना समय समाज-सेवामे लगाया करते थे । यद्यपि वह इतने वृद्ध हो गये थे तो भी स्थानीय हरिजन-सेवक-मण्डलका अध्यक्षपद उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया था । ईश्वर उनकी स्वर्गीय आत्माको शाश्वत शांति प्रदान करे । (ह० से०, २१ १० ३४)

: १५० :

गोविन्द मालवीय

पंडित मदनमोहन मालवीयजीके सबसे छोटे पुत्र गोविंद तथा उनके भतीजे कृष्णकांत मालवीय एक बार पकड़े गए, सजा पाई और छोड़ दिये गए । व्याख्यान देनेके कारण अब दुबारा गिरफ्तार किये गए हैं और उन्हें डेढ़ वर्षकी कठोर कैदकी सजा दी गई है । इसे मैं भारतवर्षका सद्भाग्य मानता हूँ । श्रीमालवीयजीके पुत्रका असहयोगके कारण जेल जाना तो हमें अपने प्राचीन धर्मकी याद दिलाता है । श्रीगोविंदजीने मालवीयजीमे आज्ञा प्राप्त करनेमे किसी बातकी कसर नहीं रखी । जहा-तक उनसे कहा गया तहातक उन्होंने अपने पूज्य पिताजीकी इच्छाका

आदर किया। पिताने भी पुत्रको पूरी स्वतंत्रता दे रखी थी। जब प० जवाहरलाल नेहरू आदिके पकड़े जानेपर श्रीगोविंदमे न रहा गया तब उन्होंने अपने पिताको एक बड़ा ही विनयपूर्ण पत्र लिखा और आप रणा-गणमें कूद पड़े। मैं जानता हूँ कि गोविंदका पितृभक्तिमें जरा भी कमी नहीं हुई। मुझे दृढ़ विश्वास है कि पंडितजीके दिलमें भी गोविंदका इम कृतिके विषयमें जग भी रोष नहीं है। इन पिता-पुत्रका संबंध ऐसा ही मीठा रहा है और रहेगा। इस प्रकार इस स्वराज्य-यज्ञमें सब लोग अपनी अपनी अंतरात्माकी पुकारके अनुसार काम कर रहे हैं और हम पिता-पुत्रको जुदा-जुदा मैदानमें देख रहे हैं। ये सब धर्मजागतिके, स्वराज्यके ही चिन्ह हैं। (हि० न०, ८ १२०)

: १५१ :

मदनमोहन मालवीय

प० मदनमोहन मालवीयका नाम तो जनतापर जादू कर देता है। देशमेंवामे जितना आत्मत्याग तथा परिश्रम पंडितजीने किया है वह सब जानने हैं। (१९२० की विशेष कांग्रेसके एक भाषणका अंश—१५ ६ २०)

इसी समय मुझे बनारसकी घटनाओं भी स्मरण आ गया है। पंडित मदनमोहन मालवीय पर जो कटाक्ष किया जा रहा है उससे जनताकी अवस्थाका पता चलता है। यदि इस देशमें किसीका स्वप्नमें भी अनादर नहीं होना चाहिए तो वे पंडितजी हैं। पंजाबकी जो सेवाएँ उन्होंने की हैं वह अभी ताजी हैं। यह केवल उन्हींके परिश्रमका फल है कि काशी विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई है। उनकी देशभक्ति भी किसीमें कम नहीं

हैं। वे इतने सज्जन हैं कि उनसे भूल हो ही नहीं सकती। यदि उनकी समझमें हम लोगोकी बातें नहीं आ रही हैं और वे अपने आदर्शको छोड़कर हम लोगोके दलमें नहीं शामिल हो रहे हैं तो इसे हम देशका दुर्भाग्य कहेंगे, इसमें उनका कोई दोष नहीं है। उनका जिस तरहसे अपमान किया गया है उसे पढ़कर हार्दिक दुःख होता है। यदि संस्कृतके विद्यार्थी अथवा सन्यासी छात्रोंने धरना देकर मार्गमें बाधा डालना उचित समझा था तो पंडितजीका भी यह कर्तव्य था कि वे उस मामलेमें हस्तक्षेप करते और सहयोगी विद्यार्थियोंके लिए मार्ग दिलवाते। यदि पुलिसने प्रधान कार्य-कार्ताओंको गिरफ्तार कर लिया तो उसने कोई बुराई नहीं की। उसकी कार्यवाही सर्वथा उचित थी। (ग० इ०, १६ ३ २१)

यह असहयोग-संग्राम अपने ढंगका निराला ही है। कितने ही परिवारोंमें इसके बदौलत मतभेद और कृति-भेद उत्पन्न हो गया है। यह इसका सबसे अद्भुत प्रभाव है। और तिसमें भी मालवीय-परिवारमें इसने जो द्विविधा-भाव उत्पन्न कर दिया है वह तो विशेष रूपसे उल्लेखयोग्य है। मेरी रायमें तो यह भारतवासियोंके लिए सहिष्णुता और सविनय कानून-भंगका खासा वस्तु-पाठ ही है। श्री मालवीयजीकी सहिष्णुता तो वास्तवमें अनुपम है। मैं इस बातको जानता हूँ कि वे जेलको निमंत्रण देनेके खिलाफ हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि यदि वे उसके कायल होते तो वे ऐसे आदमी नहीं हैं जो उससे दुम दवाते। और जब उनके दुःखकी मात्रा हृदयदर्ज तक पहुँच जायगी और जबकि मेरी तरह उनका भी विश्वास ब्रिटिश न्यायसे पूरा-पूरा उठ जायगा तब यदि वे जेलको निमंत्रण देनेमें सबसे आगे बढ़ जाय तो मुझे तनिक भी आश्चर्य न होगा। परंतु यद्यपि वे आज स्वयं सविनय कानून भंगके विरुद्ध हैं तथापि उन्होंने कभी उन लोगोके भी सकल्पोंमें हस्तक्षेप नहीं किया जो उनके आत्मीय हैं और जिन पर अपने प्रेम अथवा बड़े-बूढ़े होने के कारण उनकी अदम्य सत्ता

है। वल्कि इसके विपरीत उन्होंने अपने पुत्रोंको अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार वरतनेकी पूरी आजादी दे दी है। गोविंदके सविनय कानून भगका उदाहरण मेरी दृष्टिमें एक सग्रहणीय रत्नके सदृश है। पंडितजीने अपने मृदुल मधुर ढंगमें अपने उस वीर पुत्रको इस मार्गसे हटानेका बहुत-कुछ प्रयत्न किया। गोविंदने भी अततक अपने पूज्य पिताकी इच्छाके अनुसार चलनेका भरसक प्रयत्न किया। उसने ईश्वरसे प्रार्थना की कि मुझे मार्ग बता। वह परस्पर विरुद्ध कर्तव्योंकी कैचीमें फस गया। नेहरू-परिवारकी गिर-फ्तारीका गोविंदपर बड़ा असर हुआ और अपने विगल हृदय पिताजी की आशीष प्राप्त करके उसने इस रणक्षेत्रमें कूद पड़नेका निश्चय किया। जेलोंमें भी गोविंदसे बढकर हर्ष-पूर्ण हृदय गायद किमीका न देखा होगा। यह साहसके साथ कहा जा सकता है कि अपनी इस सविनय कानून भगकी कृतिके द्वारा गोविंदने अपने देशकी तरह अपने पूज्य पिताजीके प्रति भी अपनी कर्तव्य-परायणता मिद्ध की है। बालकोंके कर्तव्य-परायण सविनय कानून-भगमें गोविंदकी यह कृति हमारे समयके लिए एक नमूना है। मुझे यकीन है कि इससे पिता-पुत्रके बीच किसी तरहकी अनबन नहीं है। वल्कि गायद मालवीयजी, गोविन्दके जेलको स्वीकार करनेके पहलेकी अपक्षा, अब उसके विषयमें अधिक अभिमान रखते होंगे। ऐसे ही सत्ययुक्त कार्योंके द्वारा मुझे इस युद्धकी धार्मिक प्रकृतिका प्रमाण मिलता है। (हि० न०, १५ १ २२)

..

मुझे पंडित मालवीयके बारेमें चेतावनी दी गई है। उनपर यह इल्जाम है कि उनकी बातें बड़ी गहरी छपी हुई होती हैं। कहा जाता है कि वे मुसलमानोंके शुभचिंतक नहीं हैं यहातक कि वे मेरे पदसे ईर्ष्या करनेवाले बताए जाते हैं, जबसे १९१५ में हिंदुस्तान आया तबसे मेरा उनके साथ बहुत समागम है और मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हू। मेरा उनके साथ गहरा परिचय रहता है। उन्हें मैं हिंदू-संसारके श्रेष्ठ

व्यक्तियोंमें मानता हूँ। कट्टर और पुराने खयालातके होते हुए भी बड़े उदार विचार रखते हैं। वे मुसलमानोंके दुश्मन नहीं हैं। उनका किमी-से ईर्ष्या रखना असंभव है। उनकी उदारता ऐसी है कि उसमें उनके दुश्मनोंके लिए भी जगह है। उन्हें कभी शासनकी चाह न रही और जो शासन आज उनके पास है वह उनकी मातृभूमिकी आजतककी लवी और अखंड सेवाका फल है। ऐसी सेवाका दावा हममेंसे बहुत कम लोग कर सकते हैं। उनकी और मेरी विशेषता अलग-अलग है, लेकिन हम दोनों एक दूसरेको सगे भाई-सा प्यार करते हैं। मेरे और उनके बीच कभी जरा विगाड न हुआ। हमारे रास्ते जुड़े-जुड़े हैं। इसलिए हमारे बीच स्पर्धा और डाहका सवाल पैदा ही नहीं हो सकता (हि० न०, १६२४)

एक पाठक पूछते हैं

“अपने कराचीमें विषय-समितिको दक्षिण भारतके सदस्योंको कार्य-समितिमें न रखनेका कारण तो समझाया, पर यह नहीं बताया कि मालवीयजीको क्यों अलग रखा।”

वात इतनी स्पष्ट थी कि किसीने कुछ पूछा ही नहीं। मालवीयजीका अपमान करनेका तो इसमें कोई सवाल हो नहीं सकता। वह अपमानसे परे है। कोई भी सस्या उन्हें अपना सदस्य बनाकर उनकी स्थिति या उनके महत्त्वको बढा नहीं सकती। हा, उनकी सदस्यतासे सस्याकी प्रतिष्ठा बढ सकती है। कार्यसमितिने जानबूझकर उन्हें अलग रखा, जिसमें समय पड़नेपर उनकी स्वतंत्रता और काम करनेकी आजादी कायम या सुरक्षित रहे। सदस्य न होते हुए भी, जबसे नेता लोग छूटे हैं, वह बराबर कार्य-समितिकी बैठकोंमें उपस्थित रहे हैं। चूँकि कार्य-समितिमें उनका काम मूल्यवान रहा है, सदस्योंने यह सोचा कि उन्हें समितिके अनुशासनमें ले लेना कहीं उनके लिए कष्टप्रद न सिद्ध हो। डॉक्टर अंसारी

तो मालवीयजीको समितिमें रखनेके लिए इतने उत्सुक थे कि उनके लिए मंत्र हट जाना उन्हें पसन्द था। पर जिस विचारका मैं ऊपर जिक्र कर आया हूँ, जमनालालजीने उसे ऐसे प्रभावशाली ढंगसे समितिके सामने रखता था कि डॉक्टर अमारीकी भी इस बातके लिए राजी होना पड़ा कि मालवीयजी अलग रखे जाय। इस व्यवस्थामें समिति अपनी बैठकमें मालवीयजीकी मलाहमें लाभ भी उठा सकती है और साथ ही उनकी कार्य-स्वतंत्रतामें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ती। गोलमेज पण्डितमें उन्हें अलगमें निमंत्रित करके तो सरकारने भी समाजमें उनकी अद्वितीय स्थितिको स्वीकार किया है। (हि० न०, १६ ८३१)

विरलाको पत्र लिखते हुए हिंदीमें लिखा—

आशावाद और भोलेपनमें मैं भेद करता हूँ। पंडितजीमें दोनों हैं। दृष्टिमर्यादापर निराशाके चिह्न होने हुए भी और जानते हुए भी जो आशा रखता है वह आशावादी है। यह गुण पंडितजीमें काफी माना में है। आशाकी बातें कोई कह देवे और उसपर विश्वास लाना वह भोलापन है। यह भी पंडितजीमें है। उसे मैं त्याज्य समझता हूँ। पांडितजी महान व्यक्ति हैं, इसलिए उनकी ऐसे भोलेपनमें हानि नहीं हुई है। हमें ऐसे भोलेपनका अनुकरण कभी नहीं करना चाहिए। आशावाद अतर्नादपर निर्भर है, भोलापन बाह्य बातोंपर। (म० डा०, २७ ५ ३२)

देशके सार्वजनिक जीवनको उनकी बहुत बड़ी देन है। उनका सबसे बड़ा कार्य हिंदू विश्वविद्यालय बनारस है, इस विद्यालयके प्रेममें हमें हार्दिक प्रेम है। महामना मालवीयजीने उसके लिए जब कभी मेरी सेवाएँ चाही हैं, मैंने दी हैं।

मालवीयजी एक सफल व महान् भित्तिारियोंमेंसे एक हैं, विश्वविद्या-

लयके लिए कितना चढ़ा कर सकते हैं, इसका अनुमान उस अपीलसे किया जा सकता है, जो उन्होंने केवल पांच करोड़ रुपये के लिए निकाली थी। ('विद्यार्थियोसे', पृष्ठ २६२)

आप जानते हैं कि मालवीयजी महाराजक साथ मेरा कितना गाढ़ संबंध है। अगर उनका कोई काम मुझसे हो सकता है तो मुझे उसका अभिमान रहता है और अगर मैं उसे कर सकू तो अपने को कृतार्थ समझता हूँ। इसलिए जब सर राधाकृष्णन्का पत्र मुझे मिला तो मैंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। यहाँ आना मेरे लिए तो एक तीर्थमे आनेके समान है।

यह विश्वविद्यालय मालवीयजी महाराजका सबसे बड़ा और प्राण-प्रिय कार्य है। उन्होंने हिंदुस्तानकी बहुत-बहुत सेवाएँ की हैं, इससे आज कोई इन्कार नहीं कर सकता। लेकिन मेरा अपना खयाल यह है कि उनके महान् कार्योंमें इस कार्यका महत्त्व सबसे ज्यादा रहेगा। २५ साल पहले, जब इस विश्वविद्यालयकी नींव डाली गई थी, तब भी मालवीयजी महाराजके आग्रह और खिचावसे मैं यहाँ आ पहुँचा था। उस समय तो मैं यह सोच भी न सकता था कि जहाँ बड़े-बड़े राजा-महाराजा और खुद वाइसराय आनेवाले हैं, वहाँ मुझ-जैसे फकीरकी क्या जरूरत हो सकती है। तब तो मैं 'महात्मा' भी नहीं बना था।

उस समय भी मालवीयजी महाराजकी कृपादृष्टि मुझपर थी। कहीं भी कोई सेवक हो, वे उसे ढूँढ़ निकालते हैं और किसी-न-किसी तरह अपने पास खींच ही लाते हैं। यह उनका सदाका धंधा है।

लोग मालवीयजी महाराजकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। आज भी आपने उनकी कुछ प्रशंसा सुनी है। वे सब तरह उसके लायक हैं। मैं जानता हूँ कि हिंदू विश्वविद्यालयका कितना बड़ा विस्तार है। ससारमें मालवीयजीसे बढ़कर कोई भिक्षुक नहीं। जो काम उनके सामने आ जाता है, उसके लिए—अपने लिए नहीं—उनकी भिक्षाकी झोलीका

मुह हमेना खुला रहता है। वे हमेशा मागा ही करते हैं, और परमात्माकी भी उनपर बड़ी दया है कि जहा जाते हैं, उन्हें पैसे मिल ही जाते हैं, तिमपर भी उनकी भूख कभी नहीं बुझती। उनका भिक्षा-पात्र सदा खाली रहता है। उन्होंने विन्वविद्यालयके लिए एक करोड़ इकट्ठा करनेकी प्रतिज्ञा की थी। एक करोड़की जगह डेढ़ करोड़ दस लाख रुपया इकट्ठा हो गया, मगर उनका पेट नहीं भरा। अभी-अभी उन्होंने मुझसे कानमे कहा है कि आजके हमारे सभापति महाराजा साहब दरभंगाने उनको एक खामी बड़ी रकम दानमे और दी है।

मैं जानता हू कि मालवीयजी महाराज स्वयं किस तरह रहते हैं। यह मेरा सीमाग्य है कि उनके जीवनका कोई पहलू मुझसे छिपा नहीं। उनकी सादगी, उनकी सरलता, उनकी पवित्रता और उनके प्रेममे मैं भली-भांति परिचित हू। उनके इन गुणोमेसे आप जितना कुछ ले सकें, जरूर ले। विद्यार्थियोंके लिए तो उनके जीवनकी बहुतेरी बातें सीखने लायक हैं। मगर मुझे डर है कि उन्होंने जितना सीखना चाहिए, सीखा नहीं है। यह आपका और हमारा दुर्भाग्य है। इसमे उनका कोई कमूर नहीं। धूपमे रहकर भी कोई मूरजका तेज न पा सके तो उसमे मूरज बेचारेका क्या दोष? वह तो अपनी तरफ से सबको गर्मी पहुंचाता रहता है, पर अगर कोई उसे लेना ही न चाहे और ठंडमे रहकर ठिठुरता फिरे तो सूरज भी उसके लिए क्या करे? मालवीयजी महाराजके इतने निकट रहकर भी अगर आप उनके जीवनसे सादगी, त्याग, देशभक्ति, उदारता और विश्वव्यापी प्रेम आदि सद्गुणोंका अपने जीवनमे अनुकरण न कर सकें तो कहिए, आपमे बढ़कर अभाग और कौन होगा? (ह० मे०, २११४२)

अंग्रेजीमे एक कहावत है—“राजा गया, राजा हमेशा जिन्ने।” ठीक यही भारत-भूषण मालवीयजी महाराजके लिए कहा जा सकता है—

“मालवीयजी गये, मालवीयजी अमर हो।” मालवीयजी हिंदुस्तानके लिए पैदा हुए और हिंदुस्तानके लिए किये गए अपने कामोमे जीते हैं। उनके काम बहुत हैं। बहुत बड़े हैं। उनमें सबसे बड़ा हिंदू-विश्व-विद्यालय है। गलतीसे उसे हम बनारस हिंदू युनिवर्सिटीके नामसे पहचानते हैं। उस नामके लिए दोष मालवीयजी महाराजका नहीं, उनके पैरोकारोका रहा है। मालवीयजी महाराज दासानुदास थे। दास लोग जैसा करते थे, वैसा वे करने देते थे। मुझे पता है कि यह अनुकूलता उनके स्वभावमें भरी थी। यहां तक कि बाज दफा वह दोषका रूप ले लेती थी, लेकिन ‘समर्थको नहीं दोष गुसाई’ वाली बात मालवीय महाराजके बारेमें भी कही जा सकती है। उनका प्रिय नाम तो हिंदू-विश्व-विद्यालय ही था। और यह सुधार तो अब भी करने योग्य है। इस विश्वविद्यालयका हरेक पत्थर शुद्ध हिंदू-धर्मका प्रतिबिम्ब होना चाहिए। एक भी मकान पश्चिमके जडवादकी निशानी न हो, बल्कि अव्यात्मकी निशानी हो। और जैसे मकान हो, वैसे ही शिक्षक और विद्यार्थी भी हो। आज है ? प्रत्येक विद्यार्थी शुद्ध धर्मकी जीवित प्रतिमा है ? नहीं है, तो क्यों नहीं है ? इस विश्वविद्यालयकी परीक्षा विद्यार्थियोंकी सरयासे नहीं, बल्कि उनके हिंदू धर्मकी प्रतिमा होनेसे ही हो सकती है, फिर भले वे थोड़े ही क्यों न हों।

मैं जानता हू कि यह काम कठिन है। लेकिन यही इस विद्यालयकी जड़ है। अगर यह ऐसा नहीं है, तो कुछ नहीं है। इसलिए स्वर्गीय मालवीयजीके पुत्रोका ओर उनके अनुयायियोंका धर्म स्पष्ट है। जगतमें हिंदू धर्मका क्या स्थान है ? उसमें आज क्या दोष है ? वे कैसे दूर किए जा सकते हैं ? मालवीयजी महाराजके भक्तोका कर्तव्य है कि वे इन प्रश्नोको हल करें। मालवीयजी अपनी स्मृति छोड़ गये हैं। उसको स्थायीरूप देना और उसका विकास करना उसका श्रेष्ठ स्मृति-स्तम्भ होगा।

विश्व-विद्यालयके लिए स्व० मालवीयजीने काफी द्रव्य इकट्ठा किया था, लेकिन वाकी भी काफी रहा है। इस काममें तो हरएक आदमी हाथ बटा सकता है।

यह तो हुई उनकी बाह्य प्रवृत्ति। उनका आंतरिक जीवन विगुद्ध था। वे दयाके भंडार थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान बड़ा था। भागवत उनकी प्रिय पुस्तक थी। वे सजग कथाकार थे। उनकी स्मरण-शक्ति तेजस्विनी थी। जीवन गुद था, सादा था।

उनकी राजनीतिकी और दूसरी अनेक प्रवृत्तियोंको छोड़ देता हूँ। जिन्होंने अपना सारा जीवन सेवाको अर्पित किया था और जो अनेक विभूतियाँ रखते थे, उनकी प्रवृत्तिकी मर्यादा हो नहीं सकती। मैंने तो उनमेंसे चिरस्थायी चीजे ही देनेका सकल्प किया था। जो लोग विश्वविद्यालयको शुद्ध बनानेमें मदद देना चाहते हैं, वे मालवीयजी महाराजके अंतरजीवनका मनन और अनुसरण करनेकी कोशिश करें। (ह० से०, ८ १२ ४६)

मालवीयजी महाराजने भी हिंदीके लिए बहुत काम किया था। मगर उर्दू जवानको काट डालो, ऐसा कहते मैंने उनको कभी नहीं सुना। (प्रा० प्र०, १५ १०.४७)

: १५२ :

हसन मिरजा

ऐसा आदर्श मि० हसन मिरजाने पेश किया था। मिस्टर हसन मिरजाको फेफडेका बहुत बुरा रोग है। वे हैं भी नाजुकमिजाज आदमी।

तथापि जव-जव जो काम उन्हें मिला, उन्होंने खुशीसे उसे किया। इतना ही नहीं, बल्कि अपनी बीमारी की परवाह भी न की। एक बार एक काफिर दारोगाने उन्हें बड़े दारोगाका पाखाना साफ करनेपर रख दिया। उन्होंने तुरत ही उस कामको मजूर कर लिया। यह काम उन्होंने कभी न किया था। इससे उन्हें कै हो गई। उन्होंने उमकी भी परवाह न की। जिस समय वे दूसरा पाखाना साफ कर रहे थे मैं वहा जा पहुँचा। देखते ही मैं आश्चर्यसे सन्न हो गया। मेरे मनमे उनके विषयमे प्रेम उमड़ उठा। ('मेरे जेलके अनुभव', पृष्ठ ४२)

: १५३ :

मीराबहन

मीराबहनका जीवन तो सब बहनोके लिए विचार करने योग्य बन गया है। उसके हिंदी पत्र वहा आते होंगे। मेरे नाम जो पत्र आते हैं, उनसे मैं देखता हू कि उसने अपनी सरलता और प्रेमपूर्ण स्वभावमे गुरुकुलकी वालाओंके मन हर लिए है। वह लड़कियोमे खूब घुलमिल गई है और उन्हें पीजना-कातना अच्छी तरह सिखा रही है। अपना एक पल भी व्यर्थ नहीं जाने देती। इस निष्ठा, इस त्याग और इस पवित्रताकी आगा मैं तुम बहनोसे रखता हू। ('बापूके पत्र' पृष्ठ ५)

मीरा बहनके तमाम पत्र मैं चि० मगनलालको भेजा करता हू। मैं चाहता हू कि उन्हें तुम सब बहन ध्यानसे सुनो, समझो और विचारो। मेरी नजरमे इस समय हमारे पास वह एक आदर्श कुमारी है। ('बापूके पत्र')

“बापू, आपकी उत्तम सेवा किस तरह कर सकती हूँ, यह विचार मेरे मनसे कभी निकलता ही नहीं है। मैं विचार करती हूँ, अपने मनको समझाती हूँ और भगवानसे प्रार्थना करती हूँ, मगर अतमें मेरे अंतरकी गुफा मेंसे एक ही आवाज उठती है। जब आपको हमारे बीचसे उठा लिया जाता है, जैसे कि जेलमें तब मैं आपके बाहरी कामोंमें पूरे जोशके साथ पड़ सकती हूँ। कुछ भी शका या कुछ भी मुश्किल पैदा नहीं होती। मगर जब आप हमारे पास होते हैं, तब एक असाधारण प्रबल वृत्ति चुपचाप आपकी निजी सेवा में ही डूबे रहनेकी प्रेरणा मुझे करती रहती है। और कोई काम करनेका प्रयत्न करना मुझे मिथ्या लगता है, रास्ता भूलने जैसा लगता है। ऐसा लगता है कि आपकी निजी सेवा करनेमें सफलता मिले, तो ही उन बाहरी कामोंको करनेकी शक्ति आए। ऐसा लगता है कि एक चीज दूसरीकी पूरक है। कोई मुझे हमेशा भीतर-ही-भीतर कहा करता है कि मैं जो खिंचकर आपके पास चली आई हूँ, सो आपकी सेवा करनेके लिए ही आई हूँ। यह वृत्ति इतनी ज्यादा प्रबल है कि मैं उससे छूट नहीं सकती। यह बात माननेके लिए आपसे कहना भी कठिन है, क्योंकि इस बातकी सचाईका पूरा सबूत तो आपके अवसानके बाद ही मिल सकता है। इस लिए मुझे इतना कहकर ही रुक जाना पड़ता है कि यह एक वृत्ति है। इतनी बात मैं निश्चित जनती हूँ कि इस बारकी लड़ाईमें मेरा बल, मेरी शक्ति मेरी भीतरी शांति और सुख पिछली बारसे कहीं ज्यादा रहे हैं। इसका एक यही कारण है कि इस बार मैं अपनी वृत्तिके अनुसार काम कर सकी हूँ। सिर्फ आपके पहले छूटनेके बाद एक बार थोड़े समयके लिए मैं दुःखी हो गई थी। इस बार यहाँ (जेलमें) आनेसे पहले मेरा स्वास्थ्य नष्ट होनेको ही था, मगर इस बातका इस प्रश्नके साथ कोई वास्ता नहीं है। जिसका कारण तो सिर्फ ताकतसे ज्यादा काम करना ही था। मैंने देखा कि मैं थोड़े दिनमें पकड़ी जानेवाली हूँ, इसलिए मैंने अपनी शक्ति ऊँच-नीच देखे बिना ही खर्च करना शुरू कर दिया। मैं जानती थी कि

मुझे जबर्दस्ती आराम मिलनेही वाला है । और मेरे पास कामका इतना ढेर पडा था कि ज्यादा सोच-विचार करनेकी गुजायश नहीं थी ।

“कौन जाने, यह सब भ्रम ही तो न हो ? मगर स्त्री तो अपनी मनोवृत्तिसे ही चलती है न ? उसका बल बुद्धिके बजाय वृत्तिके आधारपर चलनेमें ही है । वह अपने स्वभावको प्रकट कर सके तभी उसकी सच्ची शक्ति काबूमें की जा सकती है और सेवामें लगाई जा सकती है । एक आप, आप ही मेरे काम और आप ही मेरे आदर्श हैं, इसके सिवा सारी दुनियामें मेरा और कोई विचार और कोई 'चिंता या और कोई' चाह नहीं है । इस जीवनमें यह काम पूरा करनेके लिए और अगले जीवनमें इस आदर्शतक पहुंचनेके लिए क्या भगवान मेरी प्रार्थना नहीं सुनेंगे ? किसलिए वे मेरी वृत्तियोंको गलत रास्तेपर जाने देंगे ? क्या वे ही मुझे गहरे अंधेरेसे आपके प्रकाशमय मार्गपर खींच नहीं लाए ? यह सब मैं आपके सामने तर्क करनेके लिए नहीं लिख रही हूं । लेकिन जेलमें आनेके बाद असली चीज समझनेके लिए मैं जो निरंतर प्रयत्न कर रही हूँ, उससे जो कुछ मुझे सूझा है वह आपके सामने रख देनेके लिए ही लिख रही हूँ ।”

उसे बापूने जवाब दिया :

तूने अपने लिए जो कुछ लिखा है वह मैं समझ सकता हूँ और उसकी कदर करता हूँ । एक मामलेमें मैं तुझे निश्चिन्त कर ही दूँ । मेरे जेलसे निकलनेके बाद जरूर तू मेरे साथ ही रहेगी और मेरी सेवाका अपना असल काम फिर शुरू कर देगी । मैं साफ देख सकता हूँ कि तेरी आत्माके आविर्भावके लिए यही एक मार्ग है । पहले मैंने ऐसा किया है, मगर अब अपनी सेवाके काममें तुझे वचित रखनेका अपराध मैं नहीं करूँगा । भूतकालमें जो कुछ हुआ है उसका विचार करता हूँ तब मुझे एक बड़ा सतोष यह रहता है कि मैंने तेरे प्रति जो कुछ किया है वह तेरे लिए गहरे प्रेम और तेरे भलेकी भावनासे प्रेरित होकर किया है । मगर मैं देख सकता हूँ कि 'स्वराज' का काम 'सुराज्य' नहीं दे सकता । एक गुजराती कहावत

है कि 'घणीने मूँके डाकणीमा ने पडोमीने न मूँके आरमीमा' । ये दोनो कहावते मव जगह लागू नहीं की जा सकती । हा, तेरे मामलेमें तो दोनो ही अच्छी तरह लागू होती हैं । इसीलिए आइदा मेरी तरफ़में कोई दखल नहीं दिया जायगा, यह पूरा भरोसा रखना । और मेरी सेवा तुममें ज्यादा प्रेमक साथ कौन कर सकती है ?" (म० डा०, ८४३२)

वह विगुद्ध आत्मा है । उसमें आत्मन्यागकी अपार शक्ति है ।
(म० डा०, २३६३२)

तु लिखती है कि तेरा मन ठिकाने नहीं, इसीलिए पत्र नहीं लिखेगी । यह भी विकारकी निशानी है । विकारका अर्थ अच्छी तरह समझनेकी जरूरत है । क्रोध करना भी एक विकार ही है । मनमें अनेक प्रकारकी इच्छाएँ होती रहना भी विकार है । इसलिए यह पहनू, यह ओढ़ू, यह खाऊ यह न खाऊ, यह विकार है, और विवाहकी इच्छा हो या विवाहकी इच्छा हुए बिना बराबरके लडकोका मग अच्छा लगे, उनके साथ गुप्त बातें अच्छी लगे, उन्हें छूना अच्छा लगे, उनके साथ दिल्लगी करना अच्छा लगे, तो यह भी विकार है । यह आखिरी विकार एक भयंकर विकार माना जाता है । लेकिन इनमेंसे कोई भी विकार जबतक होता है तबतक स्त्रीको मामिक धर्म होगा और पुरुषको मामिक धर्म नहीं तो दूसरा कुछ होता ही है । इस अर्थमें मीरावहन भी विकार-रहित नहीं कही जा सकती । इसीसे उसे अभी तक मासिक धर्म होता है । इसमें वह कोई पाप नहीं करती । वह तो बहुत ऊँची पहुँच गई है । वह अपने तमाम विकारोंको दूर करनेके लिए लट रही है । पुरुष-मग-रूपी इच्छाका विकार तो उसमेंसे साफ़ चला गया है । मगर उनमें क्रोध है, राग है, अनेक इच्छाएँ हैं । इन सबको भी रोकनेकी वह कोशिश करती है । (म० डा०, ११६३२)

मीराबहन तो आश्रमवासी रहीं। घर-बार, माता-पिताका त्याग करके आई। उसको तो जो चीज प्यारे-लालको लागू होती है उससे भी ज्यादा लागू होती है। वह यद्यपि अपनेको मेरी लडकी कहती है, मगर उसका भी तो अपना स्वतंत्र स्थान बन गया है। अपने आप उसको लगता है कि उसे नहीं लिखना चाहिए तो अलग बात थी। (का० क०, २४ ६.४२)

. . .

सुबह घूमते समय मैंने बापूसे मीराबहनकी बकरीवाली बात कही। कहने लगे :

मीरा बहनमें एक बड़ा गुण है। उसके निकट मनुष्य, पशु, वृक्ष और फूलोंमें कोई फर्क नहीं है। उसे बकरियोंसे बातें करते तो तूने सुना होगा। फूल-पत्तोंसे भी वह बातें करती है। और कल रात उसने बिना किसीके कहे वह सब तेरे लिए किया।

मैंने कहा, “उनमें गुण तो भरे ही हैं, नहीं तो अपने राजा-समान पिताके घरको छोड़कर वह यहाँ भागकर क्यों आती।” बापू बोले : हा, यह बात तो है। (का० क०, ३० ६.४२)

. . .

मीराबहन आज यह विचार कर रही हैं कि सारी दुनियामें कैसे क्रांति हो सकती है। उनकी मान्यता है कि पहले कुछ नेता रुस जावे, फिर हर गांवसे कुछ किसान वहाँ भेजे जावें, वे आकर बाकी लोगोंमें प्रचार करें। मीराबहनका दिमाग आज रुस और मार्क्ससे ही भरा हुआ है। बापू कह रहे थे :

यह एक छोटी-सी मिसाल है कि कैसे उनका मन एक बालककी भाँति कल्पनाके घोंडेपर सवार होकर कहा-से-कहा पहुँच जाता है, नहीं तो आज इस जेलमें बैठे हुए रुस जानेका प्रश्न ही कैसे उठ सकता है ?

और फिर क्या हम इतने कगाल हैं कि रूस जानेके सिवा और कुछ कर ही नहीं सकते ? (का० क०, २६ ११ ४२)

इसके भोलेपन और इसकी कल्पना-शक्तिका कोई पार नहीं है ।
(का० क०, १३ ३ ४४)

एक बात यह भी है कि हमारे यहा पूरी खूराक तो पैदा नहीं होती है । तब लोगोको कहो कि वे जमीनको बो ले, उसमेसे पैदा हो जायगी । बात तो सच्ची है, लेकिन उसके लिए बाहरसे जो बनी-बनाई खाद आती है, जिसको कि रसायन खाद बोलते हैं, उसमे हम चंद करोड रुपए मुफ्तके दे देते हैं या ऐसा कहो कि जमीनको विगाडनेके लिए वह पैसे देते हैं । यह मेरा कहना नहीं है, मैं तो वह जानता ही नहीं, लेकिन जो इसका ज्ञान रखते हैं वे ऐसा कहने हैं । मीराबहनने ही यह सब किया है और उमने ही इस चीजक जानकारी लोगोको डकट्ठा किया । उसको गौक है और वह सचमुच किसान बन गई है । (प्रा० प्र०, १० १२ ४७)

: १५४ :

रामास्वामी मुदालियर

वहाके (मैमूरके) दीवान श्री रामास्वामी मुदालियर तो बहुत बडे आदमी हैं । उन्होने सारी दुनियामे भ्रमण किया है । उन्होने समझा कि आखिर कबतक लोगोका दमन करते रहेंगे ? ऐसा कबतक चल सकता है ? नतीजा यह हुआ कि जो लोग कैदमे चले गये थे वे छूट गये और मैमूर राज्य और उसके लोगोके बीच एक सुलहनामा हो गया । लोगोकी जो

वाकानून नहीं थी वे राज्यकी तरफमे स्वीकृत हो गई । मैसूरमे यह जो कुछ हुआ उसके लिए वहाके राजा, दीवान साहब और लोगोको धन्यवाद देना चाहिए । राज्यने वहा लोगोको राजी रखकर ही काम चलाना कबूल कर लिया है । (प्रा० प्र०, १६ १० ४७)

: १५५ :

नरोत्तम मुरारजी

मेठ नरोत्तम मुरारजीकी दुःखद मृत्युके कारण हमसे एक प्रसिद्ध व्यापारी उठ गया है । मेठ नरोत्तम मुरारजीमे देशभक्ति और व्यापारिक महत्वाकांक्षा, दोनो बातें एक साथ पाई जाती थी । पूजोपति होते हुए भी वह मजदूरोके साथ दयाका—मनुष्यताका—व्यवहार करते थे । सिधिया स्टीम नेविगेशन कंपनी खड़ी करनेमे उन्होने जिस साहमका परिचय दिया था, उससे महत्वाकांक्षाके साथ उनकी देशभक्तिका भी परिचय मिलता है । उनका दान विंगाल, विवेकपूर्ण और आधुनिक आवश्यकताओंके अनुकूल होता था । देशकी वर्तमान अवस्थामे इस संपूतके चल बसनेसे भारत-माताकी बड़ी क्षति हुई है । अब उनके कार्यका सारा बोझा उनके नौजवान और उदीयमान पुत्रके सिर आ पड़ा है । लेकिन मैं जानता हूँ कि श्रीगणेशकुमार भी अपने सुप्रसिद्ध पिताके सम्मान ही देशभक्त है और संभवतः अपने पिताके बहुमूल्य कारखानोमे काम करनेवाले मजदूरोसे अधिकतर प्रेम करते हैं । मैं उनके, उनकी बूढ़ी दादी माँके और दूसरे सब कुटुम्बियोके प्रति हृदयमे समवेदना प्रकट करता हूँ, जिनके निकट परिचयमे आनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है । (हि० न०, २१ ११ २६)

: १५६ :

शांतिकुमार मुरारजी

आज हम सोलापुरमे है । यह बड़ा शहर है । यहा पाच मिले है । उनमे सबसे बड़ी मुरारजी गोकुलदासकी है । उनके पोते शांतिकुमार उम्रमें तो अभी नवयुवक है, परतु उनकी आत्मा महान है । वे खुद खादी-प्रेमी है और खादी ही पहनते है । यह कोई उनका सबसे बड़ा गुण है, यह नहीं कहना चाहता । उनमे दया है, उदारता है, नम्रता है, ईश्वर-परायणता है, सत्य है । जैमा नाम है वैसे ही गुण रखने है । शांतिकी मूर्ति है । करोड़पतिके यहा ऐसा रत्न है, यह देखकर मुझे बहुत आनंद होना है । ('बापूके पत्र' पृष्ठ १६)

: १५७ :

वेगम मुहम्मदअली

मीलाना मुहम्मदअलीकी वेगमसाहवाके धीरजको देखकर मैं तो दग रह जाता हू । वान्टेरमे जब उनके पति, मीलानासाहब, गिरफ्तार हुए तब वे उनसे मिलने गई थी और जब मिलकर लौटी तब मैंने उनसे पूछा कि आपके दिलको घबराहट तो नहीं होनी ? उन्होंने कहा—

“नहीं, मुझे जरा भी घबराहट नहीं । पकड़े जानेवाले तो थे ही । यह तो उनका धर्म था ।”

मैंने उनकी आवाजमे भी घबराहट नहीं पाई । उसके बाद से वे हमारे ही साथ धूमकर अपनी हिम्मतका परिचय दे रही हैं । औरतो-

के जलसोमे और मदोंके भी जलमेमे वे बुर्का ओढ़कर आती हैं और थोड़ेमे परतु ऐसा भाषण करती हैं कि वह ठेठ दिलकी तह तक पैठ जाता है। वे सबको शांति कायम रखने, चरखा कानने, और खादी पहननेके लिए सिफारिश करती हैं और स्मर्तोंके लिए मुसलमानोंसे चदा भी मागती हैं। कुछ ही महीने पहले तक उनके बनाव-सिगारकी हद नहीं थी। महीन कपड़ेके बिना काम नहीं चलता था। पर आज वे मोटी खादीका हरा रंग हुआ भंगा पहनती हैं। हिंदू स्त्रियोंकी वनि-स्वत मुसलमान स्त्रियोंको अविक कपड़े पहनने पटते हैं। उसमे भी बेगम-साहवाका बदन हल्का नहीं है। तो भी वे अपने धर्मके लिए इस तरह तपस्या कर रही हैं। इसका फल यह हो रहा है कि उनका दर्शन करनेके लिए अब जगह-जगहपर, मुसलमान व्हने भी आया करती हैं। (हि० न०, ३० ६ २१)

बेगम मुहम्मदअलीने अगोरा फडके लिए जहा-जहासे रुपया प्राप्त किया है वहासे शायद मौलानासाहब भी न ले पाते। यह बात मैं पहले ही कह चुका हू कि उनका भाषण तो मौलानासाहबसे भी बढ़िया होता है। (हि० न०, २५ १२-२१)

: १५८ :

मेरीमैन

मेरा तो खयाल है कि ससारमे ऐसा एक भी स्थान और जाति नहीं कि जिससे यथा समय और सस्कृति मिलनेपर बढ़िया-से-बढ़िया मनुष्य-पुष्प न पैदा होते हो। दक्षिण अफ्रीका मे सभी स्थानोपर मैं इसके उदाहरण

सीभाग्यवश देख चुका हूँ । पर केपकालोनीमें मुझे इसके उदाहरण अधिक सरयामे मिले । उनमें सबसे अधिक विद्वान् और विख्यात हैं श्री मेरीमैन । इन्हे लोग दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहते । केपकालोनीमें आप अध्यक्ष भी रह चुके हैं । यदि श्री मेरीमैन के जैसे श्रेष्ठ नहीं तो उनसे दूसरे नवरमें वहाँके आईनर और मोल्डोनीके परिवार हैं ।

श्री मेरीमैन और ये दोनों परिवार हमेशा ह्वशियोंका पक्ष लेते और जब-जब उनके हकोंपर हमला होता तबतब उसके लिए वे भगड़ते । और यद्यपि वे सब भारतीयों और ह्वशी लोगोको भिन्न-भिन्न दृष्टिसे देखते तथापि उनकी प्रेम-धारा भारतीयोंकी ओर भी अवश्य बहती । उनका दलील यह थी कि ह्वशी लोग गोरोंके पहलेसे यहाँ रह रहे हैं और उनकी यह मातृभूमि है । इसलिए उनका स्वाभाविक अधिकार गोरोंमें नहीं छीना जा सकता । किंतु प्रतिस्पर्धाके भयसे बचनेके लिए यदि भारतीयोंके खिलाफ कुछ कानून बनाए जाय तो वह विलकुल अन्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता । पर इतनेपर भी उनका हृदय तो हमेशा भारतीयोंकी ओर ही झुकता । स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे थे तब उनके सम्मानमें केपटाउन हालमें जो सभा बुलाई गई थी उसके अध्यक्ष श्री आईनर ही थे । श्री मेरीमैनने भी उनसे बड़े प्रेम और विनयपूर्वक बातचीत की और भारतीयोंके प्रति अपना प्रेम-भाव दर्शाया ।
(द० अ० स०, पृष्ठ ५६)

: १५६ :

फिरोजशाह मेहता

मैं सर फिरोजशाहसे मिला । मैं उनसे चर्चाओं के होनेके लिए तैयार ही था । उनके नामके साथ लगे बड़े-बड़े विशेषण मैंने सुन रखे थे । 'बवईके शेर', 'बवईके ब्रेताजके बादशाह' से मिलना था । परन्तु बादशाहने मुझे भयभीत नहीं किया । जिस प्रकार पिता अपने जवान पुत्रसे प्रेमके साथ मिलता है, उसी प्रकार वह मुझसे मिले । उनके चेन्नरमे उनसे मिलना था । अनुयायियोंसे तो वह सदा घिरे हुए रहते ही थे । वाच्छा थे, कामा थे । उनसे मेरा परिचय कराया । वाच्छाका नाम मैंने सुना था, वह फिरोजशाहके दाहिने हाथ माने जाते थे । अक-शास्त्रीके नामसे वीरचंद गांधीने मुझे उनका परिचय कराया था । उन्होंने कहा—
“गांधी, हम फिर भी मिलेंगे ।”

कुल दो ही मिनटमे यह सब हो गया । सर फिरोजशाहने मेरी बात सुन ली । न्यायमूर्ति रानडे और तैयबजीने मिलनेकी भी बात मैंने कही । उन्होंने कहा—“गांधी, तुम्हारे कामके लिए मुझे एक सभा करनी होगी । तुम्हारे काममे जरूर मदद देना चाहिए ।” मुगीकी ओर देखकर सभाका दिन निश्चय करनेके लिए कहा । दिन तय हुआ और मुझे छुट्टी मिली । कहा—‘सभाके एक दिन पहले मुझसे मिल लेना ।’ मैं निश्चित होकर मनमे फूलता हुआ अपने घर गया । (आ० क०, १९२७)

...

...

..

वह नोर्डके देहातके दूसरे ही दिन मुझे सभाके लिए बवई जाना था । मुझे इतना समय न मिला था कि अपने भाषणकी तैयारी कर रखता । जागरण करते-करते थक रहा था । आवाज भी भारी हो रही थी । यह विचार करता हुआ कि ईश्वर किसी तरह निवाह लेगा,

मैं ववई गया। भाषण लिखकर ले जानेका तो मुझे स्वप्नमें भी खयाल न हुआ था।

सभाकी तिथिके एक दिन पहले शामको पांच बजे आज्ञानुसार मैं सर फिरोजशाहके दरबारमें हाजिर हुआ।

“गाधी, तुम्हारा भाषण तैयार है न ?” उन्होंने पूछा।

‘नहीं तो, मैंने जवानी ही भाषण देनेका इरादा कर रखा है।’ मैंने डरते-डरते उत्तर दिया।

“ववईमें ऐसा न चलेगा। यहाका रिपोर्टिंग खराब है और यदि तुम चाहते हो कि इस सभासे लाभ हो तो तुम्हारा भाषण लिखित ही होना चाहिए और रातों-रात छपा लेना चाहिए। रात ही को भाषण लिख सकोगे न ?”

मैं पसोपेशमें पड़ा, परन्तु मैंने लिखनेकी कोशिश करना स्वीकार किया।

“तो मुंशी तुमसे भाषण लेने कब आवें ?” ववईके सिंह बोले।

“ग्यारह बजे।” मैंने उत्तर दिया।

सर फिरोजशाहने मुंशीको हुक्म दिया कि उतने बजे जाकर मुझमें भाषण ले आवें और रातों-रात उसे छपा ले। इसके बाद मुझे विदा किया।

दूसरे दिन मैं सभामें गया। मैंने देखा कि उनकी लिखित भाषण पढ़नेकी सलाह कितनी बुद्धिमत्तापूर्ण थी। फ़ारमजी कावमजी डम्स्टी-टचूटके हालमें सभा थी। मैंने सुन रखा था कि सर फिरोजशाहके भाषणमें सभा भवनमें खड़े रहनेको जगह न मिलनी थी। इसमें विश्वार्थीलोग खूब दिलचस्पी लेते थे।

ऐसी सभाका मुझे यह पहला अनुभव था। मुझे विश्वास हो गया कि मेरी आवाज लोगों तक नहीं पहुंच सकती। कापते-कापते मैंने अपना भाषण शुरू किया। सर फिरोजशाह मुझे उत्साहित करते जाते—“हा,

जरा और ऊची आवाजमे ।” ज्यो-ज्यो वह ऐमा कहते त्यो-न्यो मेरी आवाज गिरती जाती थी ।

मेरे पुराने मित्र केशवराव देशपांडे मेरी मददके लिए दौड़े । मैंने उनके हाथमे भाषण सौंकर छुट्टी पाई । उनकी आवाज थी तो बुलद, पर प्रेक्षक क्यों सुनने लगे ? ‘वाच्छा’, ‘वाच्छा’, की पुकारमे हाल गूज उठा । अब वाच्छा उठे । उन्होंने देशपांडेके हाथसे कागज लिया और मेरा काम बन गया । सभामे तुरंत सन्नाटा छा गया और लोगोने अथसे इतितक भाषण सुना । मामूलके मुताबिक प्रसगानुसार ‘शर्म’-‘शर्म’ की अथवा करतल-ध्वनि हुई । सभाके इस फलमे मैं खुश हुआ ।

सर फिरोजशाहको भाषण पमद आया । मुझे गंगा नहानेके बराबर सतोष हुआ । (आ० क०, १९२७)

: १६० :

डा० मेहता

डॉ० मेहताके पैरका घाव जहरीला हो गया और उनका पांव कटवा देना पडा । तार आया है कि इससे उनकी स्थिति गभीर हो गई है । सुबह आपरेशन अच्छा हो गया । यह तार आया था कि हालत संतोषजनक है । इस पर बापूने वापस तार दिया था—“बडी खुशी हुई । रोज तार देते रहिए ।” यह बात हो ही रही थी कि डॉक्टरमें बर्दाश्त करनेकी ताकत है कि इतनेमें दूसरा तार आया—डॉक्टरको खूब बुखार है । फिर तार आया—डॉक्टरको निमोनिया है और हालत नाजुक है । इसके बाद भी बापूने कहा—“रतिलाल और मगनकी तकदीरसे अब भी जी जाय तो

कह नहीं सकते ।” इस तरह वापूके मुहसे भी मानवोचित उद्गार निकल जाते थे (३८३२)

आज डॉक्टर मेहताके देहावसानका तार आया । कल रातको ६-४५ पर शरीर छोड़ा । वापूको कितनी चोट लगी, इसका अंदाज इस तारसे हो सकता है—

ईश्वरकी इच्छा । तुम्हे और माताजीको आश्वसन । पिताजीकी उदात्त परंपराओकी यानी व्यापारमे मानदारी, मन्मानदारीमे उदारता और दानशील स्वभाव, इन सबकी रक्षा करना । सरदार और महादेव शोकमे मेरे साथ गरीब हैं । मेरी तो क्यूँ ही क्या ? उम्भरके वफादार दोस्तकी जुदाई दिलमे चुभ रही है । मुझे सब हाल बताते रहना । ईश्वर तुम सबका भला करे ।

वेचारे ने दो महीने पहले तो सत्याग्रहमें शामिल होनेकी इजाजत मागी थी और उसे नववरमें वापूसे मिलनेकी आशा थी । मणिलाल रेवाशकर जगजीवनको पत्रमें लिखा

मुंदर भवनके अब वर्धा होनेका खतरा पैदा हो गया है । तुम सबको डॉक्टरका वियोग खटकेंगा ही । मगर मेरी हालत अजीब है । डॉक्टरसे ज्यादा मित्र इस ससारमे मेरा कोई नहीं था । मेरे लिए वे जिंदा ही हैं । मगर यहाँ बैठा हुआ मैं उनके भवनको अविच्छिन्न रखनेमे लग-भग कुछ भी भाग नहीं ले सकता, यह मुझे खटकता है । तुम जो कुछ कर सकते हो कर लेना । डॉक्टरका नाम अमर रखनेके काममे तुम कहा तक भाग ले सकते हो, यह लिखना ।

नानालाल मेहताको

डॉक्टरके चले जानेसे मेरी हालत तुम सबमे ज्यादा खराब हो गई है । मुझे यह खटकता है कि जिने मैं अपना सबसे पुराना साथी था मित्र कहता हूँ, वह जाता रहे और मैं निजटेमें वद होनेसे उसके पीछे कुछ भी न कर सकूँ । मगर इसमें भी ईश्वरका भेद है, कृपा भी हो । मैं नहीं

जानता कि डॉक्टरका भवन आवाद रखनेकी तुम्हारी कहा तक शक्ति है। जितनी हो उसे काममें लेना। डॉक्टरका नाम निष्कलक रहे और उनके गुण उनके लड़के कायम रखे, यह देखनेकी वान है।

बड़े लड़के छगनलालको .

डॉक्टरके स्वर्गवासका सच्चा खयाल अबसे तुम्हारे वरनावमें जाहिर होना चाहिए। डॉक्टरके कई सद्गुण ही उनका असली वसायतनाम है। वह तुम्हारा उत्तराधिकार है। तुममें छोटे भाइयोंको जग भी कनेग न होना चाहिए। मेरा उम्रभरका साथी जा रहा है तब मैं अपना जैसी हालतमें (जेलमें) हू, यह मुझे खटकता है नहीं तो मैं इस वक्त तुम्हारे पास खड़ा होता। जायद डॉक्टरकी आखिरी सास मेरी गोदमें निकली होती। मगर ईश्वर हमारा सोचा हुआ सब होने नहीं देता। इसलिए मैं उतना ही करूंगा, जितना डाकके जगिए हो सकत है।

पोलकको .

डॉ० मेहता चल वसे। मैंने अपना उम्रभरका वफादार मित्र खो दिया। वंमें मेरे लिए वे जीने-जीमें भी मरनेके बाद ज्यादा जीवित है, क्योंकि अब मैं उनके तमाम अच्छे गुणोंको ज्यादा याद करूंगा। यह स्मरण एक पवित्र श्राप्ती है। मगनलालके नामका पत्र इसके साथ भेजता हू। मैं चाहता हू कि तुम उसे पिताके योग्य बननेमें पूरी मदद दो। मैंने उसे सलाह तो दी ही है कि चिंता न करे और पढाईमें लगा रहे। कितने ही समयसे डॉ० मेहता गरीरसे जर्जर हो गये थे, फिर भी उनकी शुरूकी व्यवहारदक्षता ज्यो-की-थो वाक्की थी। इसलिए उन्होंने मगनलालकी पढाईके लिए रुपएका इतनाम किया ही होगा। मगनलाल जानता होगा। मुझे दुःख है कि इस समय मैं उन लोगोंके बीच नहीं हू। मगर मेरा सोचा हुआ नहीं, सदा उसीका सोचा हुआ होंगे।

रातको सोते समय बापू कहने लगे .

जान भी इतना ज्यादा पक्का होनेकी जरूरत है कि बुद्धिसे मनको

मनानेका थोड़ा ही असर हो। जानते हैं कि डॉक्टरको जीना नहीं था, वह गरीर नाग होने लायक था और उसका नाग हो गया। फिर भी इतनी वेचनी किम लिए ?

मैंने कहा—“अपने प्रिय जनोकी या जिनके साथ वर्षों निकट सवधमें बीते हो उनकी मौतका समाचार सुनकर यदि उनका स्मरण बार-बार होने लगे तो इसमें अस्वाभाविक क्या है ?” बापू बोले :

स्मरण तो हो, परन्तु दुःख किसलिए हो ? मौत और शादीमें किम लिए फर्क होना चाहिए ? विवाहका प्रसंग याद करके आनन्द-ही-आनन्द होता है, वैसे ही मृत्युमें होनेवाले स्मरणमें आनन्द क्यों नहीं होना चाहिए ? मेरी वेचनी मगनलालकी मौतमें भी कुछ ज्यादा है। कारण इतना ही है कि मैं बाहर होता तो इस परिवारको अच्छी तरह मभाल लेता। मगर यह भी गलत ही है। यह प्रपग हानत ठीक क्यों न हो ?

डाक्टरके उदात्त गुणोको याद करके उनका तर्पण किया। (म० डा०, ४८३२)

: १६१ :

मेहरबाबा

वह जवरदस्त आदमी है। वह किमीको दूढ़ने नहीं जाते, मगर लोग उनके पास चले आते हैं, रुपया चला आता है, विलायतमें किमी स्टारने बुलाया तो चले गये। अमरीकामें धनवानोंने बुलाया तो चले गये। और उनका असर क्यों न पड़े ? सात वर्षसे मौन और फिर भी कोई पागल नहीं। इनकी-सी बात भी लोगोंको आकर्षित करनेके लिए काफी है।

मैंने कहा—“उन्होंने अपनी पुस्तक पढ़नेको दी थी, वह आपको कैसी लगी ?” बापू :

उममे साधारण तो कोई बात थी नहीं । और अंग्रेजीमे लिखी थी ; उनके गिप्यने उनके लिचार दर्ज किए थे, इसलिए गडबड़ घोटाला-सा हो गया था । मैंने उन्हें सुभाया कि आपको लिखना हो तो गुजरातीमे लिखिए या अपनी मादरी जवान फारसीमे लिखिए । हम पराई भाषामे क्यों लिखे ? उन्हें यह सूचना पसद आई ।

मैंने कहा—“उनकी मुखमुद्रापर एक तरहकी प्रसन्नता है ।” बापू बोले :

हां, जरूर है । और उनका दावा भी है कि उन्हें सदा आनंद-ही-आनंद है । वे मानते हैं कि उन्हें साक्षात्कार हुआ है । वे बाल-ब्रह्मचारी हैं और उनका कहना है कि उन्हें विकार नहीं होते । और मुझे वे सच्चे आदमी मालूम होते हैं । उनमे आडंबर तो है ही नहीं ।
(म० डा०)

: १६२ :

रेम्जे मैकडोनल्ड

वल्लभभाई—“कुछ भी हो, मैकडोनल्ड सब निगल जायगा । और पंच फैसला भी हमारे खिलाफ ही होनेवाला है ।”

बापू—“अभी मुझे मैकडोनल्डसे आगा है कि वह विरोध करेगा ।”

वल्लभभाई—“नहीं जी, वह क्या विरोध करेगा ! ये सब बिलकुल नंगे लोग हैं ।”

बापू—“तो भी इस आदमीके अपने उसूल हैं ”

वल्लभभाई—“उसूल हो तो इस तरह अनुदारोके हाथों में विक जाय ? उसे देश परसे हुकूमत छोडनी ही नहीं है ।”

बापू—“छोडनी तो नहीं है, मगर इसमें उसका स्वार्थ नहीं है । सिर्फ लास्की, होरेविन और ब्रॉकवे जैसे योडेमे आदमियोंके सिवा छोटना तो कोई नहीं चाहता । वेन, लीज ग्रीर स्मिथ वगैरह सब मैक्डोनल्ड-जैसे ही हैं । मैं तो इतना ही कहता हू कि यह आदमी देशका हित देखकर अनुदारोमे मिला है । अब यह आदमी पच्च फौमला देनेकी बात रोक्के हुए है । वह सारी जिंदगीके उमूलोको ताकमे नहीं रख सकता ।”

मै—“तो क्या मुसलमानोको अलग मताधिकार नहीं देने देगा ?”

बापू—“यह तो देने देगा, लेकिन अस्पृश्योंके लिए अलग मताधिकार वह सहन नहीं कर सकेगा ।”

मै—“क्या वह सचमुच यह बात समझा भी है ।”

बापू—“जरूर, वह सब समझता है । जिसे साइमन कमीशनने समझ लिया, उसे क्या वह नहीं समझेगा ? वह कहेगा कि मैंने तुम्हें आर्डिनेन्स निकालने दिया, बयान देने दिया, लेकिन अब मैं तुम्हारे साथ ग़ोर नहीं चल सकता । इसीलिए उसने अभी तक निर्णय रोक रखा है । होर तो कुछ भी करे मुझे आश्चर्य नहीं होगा । उसे तो किसी भी तरह देशको कुचलना है । इसके लिए मुसलमानोको जो भी देना जरूरी होगा वह देनेकी तैयार रहेगा ।” (म० डा०, ६ ७ ३२)

: १६३ :

मोतीलाल

बढवाण स्टेशनपर दर्जी मोतीलाल, जो वहाके एक प्रसिद्ध पञा-मेवक माने जाते थे, मुझसे मिलन आए । उन्होंने मुझसे वीरमगामकी जकातकी जाचका तथा उसके मवत्रमे होनेवाली तकलीफोका जिक्र किया । मुझ वुखार चढ रहा था । इसलिए बात करनेकी इच्छा कम ही थी । मैंने थोडेमे ही उत्तर दिया .

‘आप जेल जानेके लिए तैयार है ?’

इस समय मैंने मोतीलालको वैसा ही एक युवक समझा, जो बिना विचारे उत्साहमे ‘हा’ कर लेते हैं, परन्तु उन्होंने पडी दृढता के साथ उत्तर दिया—

“हा, जरूर जेल जायगे; पर आपको हमारा अगुआ बनना पड़ेगा । काठियावाडीकी हैसियतसे आपपर हमारा पहला हक है । अभी तो हम आपको नहीं रोक सकते, परन्तु वापस लौटते समय आपको बढवाण जरूर उतरना पड़ेगा । यहाके युवकोका काम और उत्साह देखकर आप खुश होंगे । आप जब चाहें तब अपनी सेनामें हमें भर्ती कर सकेंगे ।”

उम दिनसे मोतीलालपर मेरा नजर ठहर गई । उनके साथियोने उनकी स्तुति करते हुए कहा

“यह तो दर्जीभाई है । पर अपने हुनरमें बडे तेज है । रोज एक घटा काम करके प्रतिमास कोई पद्रह रुपए अपने खर्चके लायक पैदा कर लेते हैं । शेष सारा समय सार्वजनिक सेवामें लगाते हैं और हम सब पढे-लिखे लोगोको राह दिखाते हैं और शर्मिदा करते हैं ।”

वादको भाई मोतीलालसे मेरा बहुत मावका पडा था और मैंने देखा कि उनकी इस स्तुतिमे अत्युक्ति न थी । सत्याग्रह-आश्रमकी स्थापनाके

चाद वह हर महीने कुछ दिन आकर वहा रह जाते । वन्चोंको सीना मिखाते और आश्रममे सीनेका काम भी कर जाते । वीरमगामकी कुछ-न-कुछ बातें वह रोज सुनाते । मुसाफिरोको उसमे जो कष्ट होते थे वह इन्हे नागवार हो रहे थे । इन मोतीलालको बीमारी भर जवानीमे ही खा गई और बढवाण उनके बिना मृना हो गया । (ग्रा० क० १९२७)

: १६४ :

भील-नेता मोतीलाल

श्रीयुक्त मणिलाल कुठारी लिखते हैं

“आपको याद होगा कि सन् १९२२ में राजपूतानाके भीलोंकी हालत पर लिखते हुए आपने ‘यंग इंडिया’में भीलनेता मोतीलालको माफ करनेकी सिफारिश की थी । सन् १९२४ में राजपूतानाके ए० जी० जी०, सर आर० ई० हालैंडने सारे मामलेपर सहानुभूति-पूर्वक विचार करके और उस समयके राजपूतानेके शांतिमय वातावरणका खयाल करके संबंधित राज्योंको सलाह दी थी कि वे मोतीलालको क्षमा कर दें, जिससे कुछ समय बाद उनके प्रभावका उपयोग पिछड़ी हुई और अज्ञान भील-जातिके सामाजिक सुधारमें हो सके । मुझे पता चला है कि राजपूतानेकी तमाम देशी रियासतोंने, जिसमें मेवाडभी शामिल हैं, इस प्रस्तावको मजूर किया था और सर आर० ई० हालैंड एव उनके उत्तराधिकारी लेफ्टीनेन्ट कर्नल पैटरसनने भी मुझसे स्पष्ट ही कहा था कि मैं बबई सरकारको अधिकार-पूर्वक कह सकता हूँ कि अगर बबई प्रांत की ईडर, दाता वगैरह रियासतें मोतीलालको क्षमा कर दें तो राजपूतानेको कोई आपत्ति न होगी । लेकिन

आज मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि मेवाड-जैसी रियासत बिना मुकदमा चलाए मोतीलालजी को गिरफ्तार किए हैं ।

“अधिकारी कहते हैं कि आपने मोतीलालसे बेताल्लुकी जाहिर कर दी थी । मुझे विश्वास है कि यह बात सच नहीं है । मैं मानता हू कि आप उनके प्रत्यक्ष परिचयमें आए हैं और उनके कामके बारेमें भी कुछ जानते हैं । अतएव मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप कृपाकर इस गलत-फहमीको दूर करेंगे और मेवाड दरबारको इस मामलेमें सहानुभूति-पूर्वक विचार करने और मोतीलालको छोड़ देनेकी सलाह देंगे ।”

पाठक शायद ही मोतीलालको जानते हों । वह एक भोले-भाले, अपढ समाज-मुधारक और राजपूतानाके भोलोके सेवक हैं । उनकी बड़ी इच्छा है कि भील लोग मास और मदिराका त्याग कर दें । एक समय उनका भीलोपर बहुत ज्यादा प्रभाव था । और आज भी, यद्यपि प्रभाव उतना ज्यादा नहीं है, उस जातिके लोग बड़े आदरसे उनका नाम लेते हैं, क्योंकि मोतीलालके कारण ही उनमें काफी समाजिक मुधार हो सका था । यरवडा जेलसे छूटनेके बाद मुझे मोतीलालसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था । वह न पढ़े-लिखे हैं और न ज्यादा किसीमें बात ही करते हैं । वह एकमात्र काम करना जानते हैं और अपनेमें तथा अपनेलोगोंमें विश्वास करना जानते हैं । जो लोग कहते हैं कि १९२२ में मैंने उनपर अविश्वास-सा प्रकट किया था, मुझे डर है कि वे सत्यको छिपाना चाहते हैं । १९२२ में जब मैंने सुना कि वह मेरे नामका उपयोग करते हैं, मैंने कहा था कि उन्हें ऐसा करनेका कोई अधिकार नहीं है । लेकिन उसके बाद और विशेषकर जब मुझे उनके कार्यका कुछ परिचय प्राप्त हुआ तब तो मैंने बड़े जोरसे इस बातकी सिफारिश की थी कि उन्हें क्षमा कर दिया जाय । मैंने तो अपने मतपोषके लिए यह भी मान लिया था कि सर आर० ई० हालैंडकी सिफारिशमें ‘यंग इंडिया’ की पक्तियोंका भी कुछ हाथ होगा । चाहे कुछ ही क्यों न हो, मुझे आशा थी कि मोतीलालको क्षमा मिल गई होगी और

१९२२ की घटनाको सत्रित राज्य अवतक भूल चुके होंगे । इनी कारण मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है कि मेवाड राज्यने उन्हें किसी दूसरे नए अभियोगके लिए नहीं, बल्कि १९२२ वाले पुराने आरोपोंके कारण ही फिरसे गिरफ्तार करके कैदमे रख छोड़ा है । मुझे विश्वास है कि मेवाड राज्य यह नहीं भूलेगा कि अगर उसने भीलोंके प्यारे नेताको ज्यादा समय तक कैदमे रख छोड़ा तो भीलेभाले भील राज्यपर अविश्वासका आरोप करेंगे, क्योंकि वे तो मानते थे कि उनके नेताको क्षमा कर दिया गया है । जहां तक मैं जानता हूँ, मोतीलालने ऐसा कोई काम नहीं किया है, जिसके कारण वह कैदमे रखे जाय । अतएव मैं विश्वास करता हूँ कि यह भीला-भाला और सच्चा मुधारक शीघ्र ही कैदसे छोड़ दिया जायगा और अपने लोगोंमे समाज-मुधारका काम करनेके लिए उसे प्रोत्साहित किया जायगा । (हि० न०, ५ नं० २६)

: १६५ :

हसरत मोहानी

मौलाना हसरत मोहानी हम लोगोंमे बड़े जीवटके आदमी हैं । वे जितने वीर हैं उतने ही दृढ़ भी हैं और स्पष्टवादी भी वे उसी तरह हैं । ब्रिटिश सरकारके प्रति तथा अंग्रेजोंके प्रति उनके हृदयमे घृणाके जो भाव भरे हैं उसके सामने उन्हें मोपलोक आचरणमे कोई दोष नहीं दिखाई देता । मौलाना साहबका कहना है कि युद्धके समय जो कुछ किया जाय सब ठीक और उचित है । उनका पक्का विश्वास है कि मोपलोंने धर्मके लिए ही यह सग्राम किया है और इसलिए मोपलोंके ऊपर किसी तरहका दोषारोपण नहीं किया जा सकता । धर्म और सदाचार-

का यह परिच्छिन्न रूप है। पर मौलाना हसरत मोहानीकी दृष्टिमें धर्मके नामपर अधर्मचिह्न भी धार्मिक है। जहां तक मैं जानता हूँ, इस्लाम धर्म इस तरहकी बातोंका प्रतिपादक नहीं है। इस सबधमें मैंने अनेक मुसलमानोंसे भी बातचीत की है। वे भी मौलाना साहबके मतमें सहमत नहीं हैं। मैं अपने मलाबारके साथियोंमें यही कहूँगा कि वे मौलानाकी बात न सुनें। यद्यपि धर्मके बारेमें उनका इस तरहका विचित्र मत है तथापि मैं जानता हूँ कि हिंदू-मुस्लिम-एकता और राष्ट्रीयताका उनसे बढ़कर कट्टर समर्थक दूसरा नहीं है। उनका हृदय उनकी बुद्धिसे कहीं उत्तम है। पर इस समय वह गलत मार्गपर जा रहा है। (य० ३०, भाग ३, पृष्ठ ७३३)

: १६६ :

एन० जी० रंगा

प्रोफेसर रंगा एक ऐसे साथी और कार्यकर्ता हैं, जिन्हें एक लंबे अरसेसे जाननेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है। वह बहादुर और अच्छे स्वभाववाले हैं। (ह० मे०, १३४४०)

: १६७ :

रविशंकर

श्री रविशंकर व्यास खेडा जिलेके एक माहसी सुवारण है, जिन्होंने वहाँके बहादुर पर अनपढ़ राजपूतोंको कई दुशमनोमे मुक्त किया है। (हि० न०, १०४३०)

भाई रविशंकरकी सेवाको लेखक नाममात्रकी सम्मत्ते है। यह त्यागकी मूर्ति यदि नामकीही सेवा करती है तो कामकी सेवा कौन करना है, मैं नहीं जानता। (हि० न०, १४५३१)

: १६८ :

अब्दुर रहीम

राष्ट्रका काम न तो सर अब्दुर रहीम और न हकीम साहब अज-मलखाके बिना चल सकता है। सर अब्दुर रहीम, जिन्होंने कि गोखले-के साथ-साथ, जब कि वे इसलिगटन-कमीशनके सदस्य थे, गुरुतारूप नोट लिखा था, अपने देशके दुश्मन नहीं है। यदि उनका सवाल है कि हिंदुओंके साथ मुसलमानोंका बराबरी दर्जेपर स्पर्धा करनेके बिना मुक्त तरकीबी नहीं कर सकता तो उनको दोषी कौन ठहरा सकता है। मुमकिन है कि वे गलत तरीके अस्तिथार किए हुए हो, लेकिन वे आजादीके इच्छुक जरूर है। (हि० न०, ११२६)

: १६६ :

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अभी बिल गजटमे प्रकाशित नही हुआ था। मेरा शरीर था तो निर्वल, किंतु मैंने लंबे सफरका खतरा मोल लिया। अभी ऊंची आवाजमे बोलनेकी शक्ति नही आई थी। खडे होकर बोलनेकी शक्ति जो तबसे गर्व सो अवतक नही आई है। खडे होकर बोलते ही थोड़ी देरमे मारा शरीर कापने लगता और छाती और पेटमे धवराहट मालूम होने लगती है, किंतु मुझे ऐसा लगा कि मद्राससे आए हुए निमन्त्रणको अवश्य स्वीकार करना चाहिए। दक्षिणके प्रांत उस समय मुझे घरके समान ही लगते थे। दक्षिण अफ्रीकाके संबंधके कारण मैं मानता आया हू कि तामिल-तैलंगू आदि दक्षिण प्रांतके लोगोपर मेरा कुछ हक है और अवतक ऐसा नही लगा है कि मैंने यह विचार करने मे जरा भी भूल की है। आमन्त्रण स्वर्गीय श्री कस्तूरीरंगा ऐयंगरकी ओरसे आया था। मद्रास जाने ही मुझे जान पडा कि इस आमन्त्रणके पीछे श्री राजगोपालाचार्य थे। श्री राजगोपालाचार्यके साथ मेरा यह पहला परिचय माना जा सकता है। पहली ही बार हम दोनों ने एक-दूसरेको यहा देखा।

सार्वजनिक काममे ज्यादा भाग लेनेके इरादेसे और श्रीकस्तूरीरंगा ऐयंगर आदि मित्रोकी मागसे वह सेलम छोडकर मद्रास वकालत करने-वाले थे। मुझे उन्हीके यहा ठहरानेकी व्यवस्था की गई थी। मुझे दो-एक दिन बाद मालूम हुआ कि मैं उन्हीके घर ठहराया गया हू। वह बगला श्री कस्तूरीरंगा ऐयंगरका होनेके कारण मैंने वही मान लिया था कि मैं उन्हीका अतिथि हू। महादेव देसाईने मेरी यह भूल सुधारी। राजगोपालाचार्य दूर-ही-दूर रहते थे। किंतु महादेवने उनमे भली-भांति परिचय कर लिया

था। महादेवने मुझे चेनाया, “आपको श्रीराजगोपालाचार्यसे परिचय कर देना चाहिए।”

मैंने परिचय किया। उनके साथ रोज ही लडाईके मगठनकी सलाह किया करता था। सभाओंके अलावा मुझे और बुद्ध सूचना ही नहीं था। रीलेट विल अगर कानून न बन जाय तो उमठा सविनय भग कैसे हो? सविनय-भगका अवसर तो तभी मिल सकता था, जब सरकार देती। दूसरे किन कानूनोंका सविनय-भग हो सकता है? उसकी मर्यादा क्या निश्चित हो? ऐसी ही चर्चाएँ होती थीं।

यो मलाह-मगविरा हो रहा था कि इसी बीच खबर आई कि विल कानून बनकर गज़टमें प्रकाशित हो गया है। जिस दिन यह खबर मिली, उस रातको मैं विचार करता हुआ सो गया। भोरमें बड़े सवेरे उठ खड़ा हुआ। अभी अर्द्ध-निद्रा होगी कि मुझे स्वप्नमें एक विचार सूझा। सवेरे ही मैंने श्रीराजगोपालाचार्यको बुलाया और बात की।

“मुझे रातको स्वप्नमें विचार आया कि इस कानूनके जवाबमें हमें सारे देशसे हटताल करनेके लिए कहना चाहिए। सत्याग्रह आत्मशुद्धि की लडाई है। यह धार्मिक लडाई है। धर्म-कार्यको शुद्धिमें गुरु करना ठीक लगता है। एक दिन सभी लोग उपवास करें और काम-धन्दा बंद रखें। मुसलमान भाई रोजाके अलावा और उपवास नहीं रखते। इसलिए चौबीस घंटेका उपवास रखनेकी मलाह देनी चाहिए। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इसमें सभी प्रातः शामिल होंगे या नहीं। बर्मा, मद्रास, बिहार और सिंधकी आजा तो मुझे अवश्य है, पर इतनी जगहोंमें भी अगर ठीक हटताल हो जाय तो हमें मतोष मान लेना चाहिए।”

यह तजवीज श्री राजगोपालाचार्यको बहुत पसंद आई। फिर तुरत ही दूसरे मित्रोंके सामने भी रखी। सबने इसका स्वागत किया। मैंने एक छोटा-सा नोटिस तैयार कर लिया। पहले सन १९१६ के मार्चकी ३० तारीख रखी गई थी, किंतु बादमें ६ अप्रैल कर दी गई। लोगोंको

खबर बहुत थोड़े दिन पहले दी गई थी। कार्य तुरत करनेकी आवश्यकता ममभी गई थी। अन तैयारीके लिए लगे मियाद देनेकी गुजायश ही नहीं थी। पर कौन जाने कैसे सारा सगठन हो गया। सारे हिंदुस्तानमे अहमोमे और गावोमे हड़ताल हुई। यह दृश्य भव्य था। (भा ० क० १९२७)

आज सुबह (२१-८-३२) फिर निर्णय (साप्रदायिक निर्णय) पर बातें हुई। जयकर, सप्रू और चिंतामणिकी रायोपर चर्चा हुई। बापू कहने लगे—यह आशा रख सकते हैं कि जयकर सप्रूमे यहा अलग हो जायगे।

बल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नहीं है।

बापू—आशा इसलिए रख सकते हैं कि विलायतमे भी इस मामलेमे इनके विचार अलग ही रहे थे। जैसे तो क्या पता ?

बल्लभभाई—चिंतामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढाई।

बापू—क्योकि चिंतामणि हिंदुस्तानी हैं, जबकि सप्रूका मानस यूरोपियन है। चिंतामणि समझते हैं कि इस निर्णयमे ही बहुत कुछ विधान आ जाता है। सप्रू यह मानते हैं कि विधान मिल गया तो फिर इन बातोकी चिंता ही नहीं। किसी भी हिंदुस्तानीको समझानेकी जरूरत नहीं होगी कि किनता ही अच्छा विधान गुडोके हाथमे दिया जाय तो उसकी दुर्गति नही होगी। ओर इस निर्णयसे विधान गुडोके ही हाथमे दिया जा रहा है। अभी तो केन्द्रीय सरकारका बाकी है। ये केन्द्रीय सरकारको एक धक्का हुआ कुछ घना डालेगे और कहेंगे कि अब इसमे पडो और जल मरो।

मालवीयजी और राजगोपालाचार्यको आज अगर इस चोजका पता चले तो वे क्या कर सकते हैं ? थोड़े ही दिनकी तो बात है न ? मेरे खयालसे मालवीयजी और राजाजी को भी इस बातसे थोडा धक्का लगानेकी जरूरत है। राजाजी तो इतनी तेज बुद्धिके हैं कि उन्हें फौरन मालूम हो जायगा कि इस आदमीने यह कदम कैसे उठाया।

यह बात ऐसे आगतने ही समझमें आ जायगी, (म० डा०)

राजाजी तो सोना है। उनकी बात दुनियाके किसी भी हिस्सेमें मानी जायगी। (म० डा०, १५ १० ३२)

प्रस्ताव' बनानेवाले राजाजी ये। जितना यकीन मुझको था कि मैं सही रास्त पर हूँ उतना ही यकीन उनको था कि उनका रास्ता सही रास्ता है। उनकी दृढ़ता, हिम्मत और नम्रनाने कई लोगोंको उनकी तरफ खींच लिया। इनमें सरदार पटेल एक बहुत भारी शिकार थे। अगर मैं राजाजीको रोकता तो वह अपना प्रस्ताव लम्पेटीके मामले लानेका विचार तक न करते। मगर मैं अपने साधियोंको भा उनकी दृढ़ता, ईमानदारी और आत्मविश्वासके लिए वही साप देता हूँ, जो मैं अपने लिए चाहता हूँ। मैं बहुत दिनोंसे देख रहा था कि हमारे सामने देशकी राजनैतिक समस्याओंके बारेमें हमारा मत एक दूसरेसे दूर हट रहा था। वह मुझे यह कहनेको इजाजत नहीं देने कि वह अहिंसामें दूर हटे हैं। उनका यह दावा है कि उनकी अहिंसा ही उन्हें इस प्रस्तावतक ले गई है। उनको लगता है कि दिनरात अहिंसाके ही विचारमें डूबे रहनेसे मुझपर एक प्रकारका भत मवार हो गया है। उनको प्रायः ऐसा लगता है कि मेरा दृष्टिकोण धुंधला हो गया है। मेरे प्रत्युत्तरमें यह कहनेसे कि उनकी ही दृष्टि शुद्ध हो गई है, कोई फायदा नहीं था, अगरचे 'हूँमी-हूँमी'में मैंने उनमें ऐसा यह भी दिया। मेरे पास सिवाय मेरी श्रद्धाके दूसरा कोई मद्दत नहीं है कि मैं उनकी मुझमें उलटी श्रद्धाका दावेमें विरोध कर सकूँ। ऐसा करना साफ बाह्यात बात होगी। मैं वर्तमान ही कार्यनियमित

'दिल्ली प्रस्ताव जिसमें सहयोग तथा एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित करनेकी माग की गई थी।

अपने साथ नहीं रख सका था और इसलिए मैं उनसे अलग हो गया।

मुझे यह दीपककी तरह स्पष्ट दीख गया था कि अगर वह लोग मेरी बात स्वीकार नहीं कर सकते थे तो उनके पास राजाजीकी बात माननेके सिवाय दूसरा चारा ही नहीं था। सो यद्यपि मैं मानता था कि राजाजी सरासर गनगी पर हैं, मैंने उनको उनका प्रयत्न जारी रखनेको उत्तेजन दिया। आदर्श, धैर्य, चतुराई और विरोधियोंकी भावनाओंके प्रति मान वताकर आखिर उन्होंने बहुमत पाया। पञ्च सदस्य तटस्थ रहे, उन्होंने वोट नहीं दिया। (ह० मे०, १३७४०)

राजाजीके साथ दीर्घकालसे मेरा निकटका परिचय है। मैं जानता हूँ कि वे एक ऐसे वीर पुरुष हैं कि उनको किसीके सहारेकी जरूरत नहीं। वे ऐसे अनासक्त हैं कि बहुत घटे तो छोड़ो, बहुत भिन्न नुक भी मानिहानिकी ग्लानि दिलमें नहीं रख सकते। मैं यह भी जानता हूँ कि उनमें सुंदर विनोद-वृत्ति है, इसलिए अगर उनकी कोई हँसी भी करे तो वे बुरा नहीं मानेंगे। इसलिए मेरा यह इकरार निजी मतोषके लिए ही माना जाय।

मैं खुले तौरपर कह चुका हूँ कि अगर मैंने राजाजीको उत्तेजन न दिया होता तो नई दिल्लीमें जो प्रस्ताव उन्होंने पेश किया वह न करते। उनकी तीव्र बुद्धि और प्रमाणिकताके लिए मुझे बड़ा आदर है। इसलिए जब उन्होंने एक चौकानेवाले आत्मविश्वासके साथ कहा कि 'इस विषयमें अहिंसाके अर्थ व प्रयोगके बारेमें मेरा अभिप्राय ही मच्चा है, आपका विल-कुल गलत,' तो मैं अपने अर्थके बारेमें खुद सदिग्ध बन गया और मैंने लगाम ढीली छोड़कर राजाजीको उनके विचारके अनुसार चलनेको प्रोत्साहित किया। निर्गल आदमी अकस्मात्से ही न्याय करता है। इसके विपरीत मजबूत और अहिंसक आदमी अन्याय अकस्मात्से करता है। मैंने राजाजीको ऐसी स्थितिमें डाल दिया कि उनकी हँसी हुई और निर्दय टीकाका शिकार उन्हें बनना पड़ा। मेरे दिलमें शक नहीं कि नई दिल्लीका

प्रस्ताव रद्द होनेमें कांग्रेस बड़े खतरेमें बच गई है। लेकिन राजाजी ऐसा नहीं मानते। वे तो अब भी मानते हैं कि उन्होंने जो किया वही ठीक था। एक नेताके लिए और खास तौरपर जब वह राजाजीकी कानिसे हों, अच्छा नहीं कि उनके किए-कराएपर इस तरह पानी फिर जाय। अगर उनकी चलती तो जो प्रस्ताव आज देनके सामने पेग हुआ है वह भिन्न प्रकारका ही होता और मैं आज कांग्रेसके अंदर नहीं, बाहर ही होता, क्योंकि वर्धा-प्रस्तावके बुदबुदाते परिणामरूप दिल्लीका प्रस्ताव पास होनेमें पहले ही मैं तो कांग्रेसमें निकल चुका था।

मेरी आशा है कि मैंने जनताको यह साबित करनेके लिए काफी मसाला दे दिया है कि राजाजीने जो कुछ किया उसमें बोरता था और वह करनेका उन्हें अधिकार था। उसमेंसे जो गतनी पैदा हुई उसके लिए जिम्मेदार मैं हूँ।

जो अभिप्राय मैंने राजाजीके नई दिल्लीवाले प्रस्तावके बारेमें दिया है, वही मैं उनकी 'स्पॉन्सिंग ऑफिसर' के बारेमें भी रखता हूँ। अगर पूनाका प्रस्ताव ठीक मान लिया जाय तो फिर 'स्पॉन्सिंग ऑफिसर' के बारेमें शक नहीं हो सकती। यह बात याद रखनी चाहिए कि मुस्लिम लीग एक बड़ी मस्जिद है और हिंदुस्तानकी मुस्लिम प्रजाके ऊपर उसका काफी प्रभाव है। कांग्रेसने इसमें पहले उसमें काफी व्यवहार किया है, और मुझे जरा भी शक नहीं है कि वह फिर भी करेगा। हमारे हिमायतमें काइदे आजम चाहे कितनी ही गलतीपर क्यों न हो, हमें चाहिए कि जैसे हम खुद अपनी प्रामाणिकताके बारेमें दावा करने हैं, वैसे ही उनकी प्रामाणिकताको भी ठुल कर दें। जब लंडनके दायल बिखर जाएंगे और हिंदुस्तान अपना आजादीका जन्मसिद्ध अधिकार पा लेगा, तब मुझे शक नहीं कि कांग्रेसी लोग किसी मुसलमान, सिख, ईसाई या पारसीको अपने प्रधान मंत्रिके तौरपर बैठा ही सहर्ष स्वीकार करेंगे जैसे कि एक हिन्दूको। इतना ही नहीं, वह कांग्रेसी न भी हो तो भी वैसे ही और किसी प्रकारके धर्म-वर्णके भेद बिना उसे आदर देंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि राजाजीकी तज्जुजका यही अर्थ था।

आजकलकी भडकी हुई रागद्वेषादिकी ज्वाला जब ठडी पड जायगी तब राजाजीके टीकाकार मेरे अभिप्रायको स्वीकार करेगे । एक देशसेवकके बारेमे गलत राय बना लेना उचित नहीं है और खास तौरपर जब कि वह राजाजीके दर्जेका देशसेवक हो । राजाजीके बारेमे जो उल्टा मत बाधा गया है उससे उन्हें भले ही कुछ भी नुकसान न हुआ हो मगर कौम अपने सच्चे सेवकोके बारेमे इस तरह उलटा और गलत अभिप्राय बाधकर अपने आपको उनकी सेवासे जख्मर वचित करती है और अपने पावपर कुल्हाडी मारती है । (३० से०, २८ ६४०)

इसमे कोई शक नहीं कि राजाजीने आज एक ऐसे कामको हाथमें लिया है, जिसकी वजहसे वे अपने साथियोंसे जुदा पड गये हैं । मगर उनके सख्त-मे-सख्त दुश्मन भी उनकी इस प्रवृत्तिमे स्वार्थके उद्देश्यका आरोप उनपर नहीं लगाएंगे । कार्य करनेकी उनकी शक्ति अद्भुत है । वे जिस चीजको हाथमे लेते हैं, उसीमे अपनेको डुबा देनेकी उनकी तबीयत है । आज जिस तरह वे अपने विचारोंका प्रचार करनेमे जुट गये हैं, वह भी उनके इसी स्वभावका सचक है । उनकी अनन्यता और उत्साह सराहने योग्य है । इससे उनके प्रति हमारा आदर-भाव और भी बढ़ना चाहिए और वे जो कुछ कहे, उसे अदबके साथ हमें सुनना चाहिए । उनका उद्देश्य ऊँचे-मे-ऊँचा है । हिंदु-मुस्लिम एकताका प्रयत्न एक उच्च वस्तु है और जापानियोंके हमलेसे देशको बचा लेनेका प्रयत्न भी उतनी ही ऊँची चीज है । उनकी रायमे ये दोनों चीजे एक-दूसरेके साथ गुथी हुई हैं ।

गुडापन राजाजीकी दलीलोका कोई जवाब नहीं । उनकी सभाओंमे हुल्लडबाजी करना घोर अमहिष्णुताका एक चिह्न है । अगर हम दूसरे पक्षके मुननेके लिए तैयार न हुए तो लोकतन्त्रवादका विकास होना असंभव है । इसलिए उन नमाम लोगोमे जो राजाजीकी सभाओंमे हुल्लड-

वाजी करने हैं, मेरा नम्र नवेदन है कि वे आइदा ऐना न करें, वरिक्त उनकी जानोशो वे उम ध्यान और धीरजसे मुने जिमके कि वे योग्य हैं।

पाठक मेरी इस मान्यताको जानने हैं कि राजाजी गलतीपर हैं। वे एक मिथ्या चीजका वातावरण पैदा कर रहे हैं। वे खुद पाकिस्तानको नहीं मानते और न वे राष्ट्रवादी मुसलमान या दूसरे लोग ही मानते हैं, जो अलग होनेके अधिकारको स्वीकार करना चाहते हैं। परन्तु इन सब लोगोका कहना है कि मुस्लिम लीगसे उनकी अलग होनेकी माग छुड़वानेका यही एक रास्ता है। मुझे आश्चर्य होता है कि बहुतसे मुसलमान एक ऐसी स्वीकृतिमें पुग हो रहे हैं, जिसकी कुछ भी कोमन होनेके बारेमें शका है।

अगरबे तमाम लोग, जो मानने हैं कि आज और हमेगाके लिए हिंदुस्तान ही उनका वतन है, उसे उपस्थित सकटसे और आगे मिरपर मटराने हुए खतरेसे बचानेमें अपना पूरा हिम्सा अदा करे, तो इन दोनों भयोके पूरी तरह मिट जानेके बाद वह समय आयेगा, जब हम पाकिस्तानकी या दूसरे 'स्तानो' की भी बातें करेंगे और या तो मुलह और शातिके साथ या लडकर इसका फैसला कर लेंगे। कोई तीसरा पक्ष हमारी किस्मतका फैसला नहीं कर सकता और न उसे इसका अधिकार ही है। इसका फैसला या तो दलीलमें होगा, या नलवारसे। राजाजीका सराहनीय और देश-भक्तिपूर्ण आग्रह अगर दूसरा कोई ऐसा रास्ता खोल दे जिसका खुद उन्हें या और किसीको भी ज्ञान नहीं, तो वान दूसरी है। नहीं तो उनका तरीका हमें एक ऐसी अधीनलीमें ले जाकर छोडेगा कि जिसमें न आगे जानेका रास्ता है और न पीछे हटनेकी गुजाइश। मगर हमारे बीच इन बातोंमें मतभेदका कुछ भी नतीजा क्या न हो, मेरी विनती तो आपसी सहिष्णुता और आदरभावके लिए है। (ह० मे०, ३१ ५ ४२)

राजाजीकी माटुगा(बबई) वाली सभामें जो हुल्लडवाजी हुई, उसका विवरण पढनेसे दिलको चोट पहुंचती है। क्या राजाजी अब

किसी तरहके सम्मानके अधिकारी ही नहीं रहे, और सो भी इसलिए कि उन्होंने एक ऐसे विचारको अपनाया है, जो लोकमतके विरुद्ध जान पड़ता है ? वे निमंत्रण पाकर ही माटुगा गये थे । जनताको उनकी बात शांतिपूर्वक सुननी चाहिए थी । जो उनके विचारोंमें सहमत नहीं थे, वे उस सभामें अनुपस्थित रह सकते थे, लेकिन सभामें शामिल होनेके बाद तो उनका यह कर्तव्य था कि वे उनकी बात चुपचाप सुने । हा, सभा समाप्त होनेपर वे उनसे प्रश्न पूछ सकते थे और जिरह कर सकते थे । उनपर कोलतार छिड़कने और सभा में गड़बड़ी मचानेवालोंने अपने हाथों अपना अपमान किया है और अपने कार्यको हानि पहुंचाई है । उनका तरीका न तो स्वराज्य-प्राप्तिका तरीका है, न 'अखंड हिंदुस्तान' की स्थापनाका तरीका है । आशा है, माटुगाकी यह बर्बरता, दुल्लडवाजी अपने ढंगकी आखिरी चीज होगी । इस अवसरपर जो राजाजी की कसौटीका अवसर था, उन्होंने जिस दृढ़ता, खामोशी, खुशमिजाजी और हाजिर-जावाबीका परिचय दिया, वह उनके अनुरूप ही था । अपने इन गुणोंके कारण राजाजीको नये अनुयायी चाहे न मिले, उनके प्रशंसकोंकी संख्या तो बढ़ी ही होगी, क्योंकि जनता आमतौरपर किसी चर्चास्पद समस्याकी तहमें नहीं पैठा करती । वह तो स्वभावसे वीरपूजक होती है और राजाजीमें वीरोचित गुणोंकी कमी कभी रही नहीं । (ह० से०, ५७४२)

पलनीसे लौटते हुए श्री राजाजी और श्री गोपालस्वामीके खिलाफ एक खत मुझे दिया गया । उसमें यह भी लिखा था कि ये दोनों मेरे पास लोगोंको नहीं आने देते, जिन्हें इनसे शिकायत है । मैं जानता हू कि यह सच नहीं । तो भी जो मुझसे महत्वकी बात करना या मुझे लिखना चाहे, उसे कोई भी रोक नहीं सकता । इस खतका मेरे पास पहुंचना ही यह प्रमाणित करता है । श्री कामराज नादर मेरे साथ स्पेशल रेलमें थे । पलनीके मंदिरमें भी वे मेरे साथ रहे । लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि

यात्रामें राजाजी और गोपालस्वामी मेरे बहुत ही समीप थे । यात्राका प्रवच उन्होंने किया था । राजाजी मेरे सबसे पुराने मित्रोंमेंसे हैं और कहा जाता था कि अपने जीवनमें मेरे आदर्शोंका पालन वे ही सबसे बढ़कर करते थे । मैं जानता हू कि १९४२ में उनका मुझमें मतभेद हुआ । मेरे दिलमें उनके लिए इस बातका आदर है कि उन्होंने खुली सभामें मेरा विरोध किया । वे बड़े समाज-सुधारक हैं और जो मानते हैं, उमें निडर होकर करते हैं । उनकी दयानतदारी और राजनैतिक बुद्धिमानी-से कोई इन्कार नहीं कर सकता । इसलिए दु खकी बात है कि उनके विरुद्ध आज एक गुट बन गया है और मद्रासके कांग्रेसी हल्कोंमें इस गुटका असर है । लेकिन आम जनताका प्रेम राजाजीके साथ है । मैं इतना मूर्ख या इतना घमडी नहीं हू कि यह न समझ पाऊ कि यात्राके रास्तेमें दर्शनके लिए जो जनता लाखोंकी सख्यामें जमा हुई थी उसका कारण बहुत हद तक राजाजीका प्रभाव ही था । दक्षिण देशके कांग्रेसी वही करें, जो उनकी रायमें ठीक हो, लेकिन मैं अपना कर्तव्य समझना हू कि उन्हें चेतावनी दू कि वे राजाजीकी सेवाको इस वक्त हाथमें जाने न दें, क्योंकि दूसरा कोई उनकी तरह उसे कर नहीं सकेगा । (ह० से०, १० २ ४६)

: १७० :

राजेन्द्रप्रसाद

वृक्षकिशोरबाबू और राजेन्द्रबाबूकी जोड़ी अद्वितीय थी । उन्होंने प्रेमसे मुझे ऐसा अपग बना दिया था कि उनके बिना मैं एक कदम भी आगे न रख सकता था । (आ० क०)

मेरे साथ काम करनेवालोमे राजेन्द्रप्रसाद सबसे अच्छोमे एक है । वे जब कभी चाहे मुझे सेवाके लिए बुला सकते हैं । हरिजन-कार्य उनका उतना ही है जितना मेरा और उसी तरह बिहारका काम मेरा उतना ही है -जितना उनका, परंतु परमात्माने उन्हें बिहारकी सहायता के लिए बुलाया है, जिस तरह मुझे उसने हरिजन कार्यके लिए बुलाया है । ('देशपूज्य श्री राजेन्द्रप्रसाद')

यह पुस्तक पूरी तो मैं नहीं पढ़ सका हूँ । लेकिन इतना जान सका हूँ कि यह राजेन्द्रबाबूके जीवनका सरल वर्णन है । जांच करनेपर मुझे प्रतीति हुई है कि इस पुस्तकमे जो हकीकत दी गई है वह सब सच है, कोई अतिशयोक्ति नहीं है । राजेन्द्रबाबूके पवित्र चरित्रको पढ़कर कौन कृतार्थ नहीं होगा । ('देशपूज्य श्री राजेन्द्रप्रसाद')

राजेन्द्रबाबू हमारे उत्कृष्ट सहकारियोमेसे हैं । ('राष्ट्रवाणी,')
(३१२४५)

राजेन्द्रबाबूका त्याग हमारे देशके लिए गौरवकी वस्तु है । नेतृत्वके लिए इन्हीके समान आचरण चाहिए । राजेन्द्रबाबू जैसा विनम्रतापूर्वक व्यवहार है और प्रभाव है वैसा कहीं भी किसी भी नेताका नहीं है । ('राष्ट्रवाणी')

: १७१ :

महादेव गोविन्द रानडे

जैसा कि स्व० गोखले कहा करने थे, रानडेकी तीक्ष्ण दृष्टिसे एक भी चीज नहीं बची थी और जिम चीजमें उनके देशवासियोंको यत्किचित् भी लाभ पहुच सकता था, उसे उन्होंने कभी अपने मनमें नगण्य नहीं समझा। (ह० से०, २७ ६ ३५)

: १७२ :

रमावाई रानडे

रमावाई रानडेका नाम जितना दक्षिणमें प्रसिद्ध है उतना हिंदुस्तानमें नहीं। इस देवीने स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानडेके नामको सुशोभित कर दिया है। उनकी मृत्युसे हिंदू ससारकी बड़ी हानि हुई है।

रमावाईने अपने वैधव्यको जिस प्रकार सुशोभित किया है उस प्रकार बहुत कम वहनोने किया होगा। पूनाके सेवासदनमें एक हजार लड़किया और स्त्रिया अनेक प्रकारकी शिक्षा प्राप्त करती हैं। यह सेवा सदन आज जिम गौरवको प्राप्त हुआ है वह रमावाईकी अनन्य भक्तिके बिना उसे कभी न प्राप्त हो पाता। रमावाईने एक ही कार्यके लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया था।

वैधव्यका अर्थ ही है अनन्य भक्ति। पातिव्रतके मानी हैं शुद्ध वफादारी। मामूली वफादारीका सबध देहके साथ है। अतएव देहके साथ ही उसका अन्त हो जाता है। वैधव्यमें जो वफादारी है वह आत्माके प्रति है।

वैधव्यको धर्म स्थान देकर हिंदूधर्मने यह सिद्ध कर दिया है कि विवाह वास्तवमे शरीरका नहीं, बल्कि आत्माका होता है। रमाबाईने रानडेकी आत्माके साथ विवाह किया था। अतएव उन्होंने उस आत्म सबवको अखंडित रखा। और इसीलिए रमाबाईने उन कामोमे जो रानडेको प्रिय थे, अपनेसे होने लायक एक कामको उठा लिया है और उसमे अपना सर्वस्व लगाकर वैधव्यका पूरा अर्थ समाजको समझाया। ऐसा करके रमाबाईने स्त्री जातिकी भारी सेवा की है। जब मैं सासून अस्पतालमे था तब कर्नल मैडकने मुझसे कहा था कि अच्छी हिंदुस्तानी दाई केवल इसी अस्पतालमे शिक्षा पाती है। ये तमाम दाइया सेवासदनके द्वारा तैयार होती हैं और उनकी माग सारे हिंदुस्तानसे आती हैं। विधवाए यदि कार्यक्षेत्रमे उतरे तो अच्छे काम करनेके अनेक स्थान उनके लिए हैं। केवल चरखेका ही काम इतना है कि वह सैकड़ो विधवाओका सारा समय ले सकता है। और यह अनुभव किस विधवाको नहीं हुआ कि चरखा गरीबोका रखवाला है। यह तो मैंने एक ऐसा काम सुझाया जो सर्व-व्यापक और परम कल्याणकारी है। ऐसे अनेक काम हैं, जिनमे धनिक विधवाए गरीब विधवाओ तथा अन्य बहनोंको तैयार करनेमे अपना समय लगा सकती हैं। (हि० न०, ४५२४)

: १७३ :

श्रीमद् राजचन्द्रभाई

मेरे जीवनपर श्रीमद् राजचन्द्रभाईका ऐसा स्थायी प्रभाव पडा है कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। उनके विषयमे मेरे गहरे विचार हैं। मैं कितने ही वर्षोंसे भारतमे धार्मिक पुरुषोंकी शोधमे हूँ, परंतु मैंने ऐसा

धार्मिक पुरुष भाग्यमें अवतक नही देखा, जो श्रीमद्राजचन्द्रभाईके साथ प्रतिस्पर्धा कर सके । उनमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति थी, डोंग, पक्षपात या राग-द्वेष न थे । उनमें एक ऐसी महान् शक्ति थी जिसके द्वारा वे प्राप्त हुए प्रमगका पूर्ण लाभ उठा सकने थे । उनके लेख अग्रेज तत्व-ज्ञानियोंकी अपेक्षा भी विचक्षण, भावनामय और आत्मदर्शी हैं । यूरोपके तत्व-ज्ञानियोंमें मैं टाल्स्टायको पहली श्रेणीका और रस्किनको दूसरी श्रेणीका विद्वान् समझता हूँ, परन्तु श्रीमद्राजचन्द्रभाईका अनुभव इन दोनोंसे भी बढा-चढा था । इन महापुरुषोंके जीवनके लेखोंको अवकाशके समय पढ़ेंगे तो आप पर उनका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा । वे प्रायः कहा करते थे कि मैं किसी वाडेका नही हूँ और न किसी वाडेमें रहना ही चाहता हूँ । यह सब तो उपधर्म—मर्यादित—है और धर्म तो असीम है कि जिसकी व्याख्या हो ही नहीं सकती । ये अपने जवाहरातके धवेसे विरक्त होते कि तुरत पुस्तक हाथमें लेते । यदि उनकी इच्छा होती तो उनमें ऐसी शक्ति थी कि वे एक अच्छे प्रतिभागाली वैरिस्टर, जज या वाइसराय हो सकते थे । यह अतिशयोक्ति नहीं, किन्तु मेरे मनपर उनकी छाप है । इनकी विचक्षणता दूसरेपर अपनी छाप लगा देती थी । (राजचन्द्र-जयती, अहमदाबादमें सभापति-पदमें दिया गया भाषण)

मेरे जीवनपर मुख्यतासे श्रीमद्राजचन्द्रकी छाप पड़ी है । महात्मा टाल्स्टाय और रस्किनकी अपेक्षा भी श्रीमद्राजचन्द्रने मुझपर गहरा प्रभाव डाला है । (राजचन्द्र-जयती, बढवाणके भाषणसे)

...

जिनका पुण्य-स्मरण करनेके लिए हम लोग आए हुए हैं, उनके हम लोग पुजारी हैं । मैं भी उनका पुजारी हूँ ।

वे दयाधर्मकी मूर्ति थे । उन्होंने दयाधर्म समझा था और उसे अपने जीवनमें उतारा था ।

मैंने यह बहुत बार कहा और लिखा है कि मैंने अपने जीवनमें बहुतोंसे बहुत कुछ ग्रहण किया है। पर सबसे अधिक यदि मैंने किसीके जीवनमेंसे ग्रहण किया हो तो वह कविश्री (श्रीमद् राजचन्द्र) के जीवनमेंसे ग्रहण किया है। दया-धर्म भी मैंने उन्हींके जीवनमेंसे सीखा है।

बहुत-से प्रसंगोंमें तो हमें जड़ होकर बैसी ही प्रवृत्ति करनी चाहिए। शुद्ध जड़ और चैतन्यमें भेद नहींके बराबर है। सारा जगत् जड़रूप ही देख पड़ता है। आत्मा तो कभी क्वचित् ही प्रकाशित होता है। ऐसा व्यवहार अलौकिक पुरुषोंका होता है और यह मैंने देखा है कि ऐसा व्यवहार श्रीमद् राजचन्द्रभाईका था।

वे बहुत बार कहा करते थे कि मेरे शरीरमें चारों ओरसे कोई वरछी भोक दे तो मैं उसे सह सकता हूँ, पर जगत्में जो झूठ, पाखंड, अत्याचार चल रहा है, धर्मके नामसे जो अधर्म हो रहा है उसकी वरछी मुझसे सही नहीं जाती। अत्याचारोंसे उन्हें अकुलाते मैंने बहुत बार देखा है। वे सारे जगत्को अपने कुटुम्बके जैसा समझते थे। अपने भाई या बहनकी मौतसे जितना दुःख हमें होता है उतना ही दुःख उन्हें समारमें दुःख और मृत्यु देखकर होता था।

राजचन्द्रभाईका शरीर जो इतनी छोटी उम्रमें छूट गया इसका कारण भी मुझे यही जान पड़ता है। यह ठीक है कि उनके शरीरमें दर्द घर किए हुए था, पर जगत्के तापका जो दर्द उन्हें था वह उनके लिए असह्य था। उनके देहमें केवल शारीरिक ही दर्द होता तो उसे उन्होंने अवश्य जीत लिया होता, पर उन्हें तो जान पड़ा कि ऐसे विषम कालमें आत्म-दर्शन कैसे हो सकता है, यह दया-धर्मकी निगानी है।

वे कहा करते थे कि जैनधर्म श्रावकोंके हाथोंमें न गया होता तो इसके तत्वोंको देखकर जगत् चकित हो जाता। ये वनिये लोग तो जैन-धर्मको गदला कर रहे हैं। ये लोग कीड़ीनगरा पूरते हैं। मुहमें कभी मच्छर चला जाय तो इन्हें दुःख होता है। ऐसी छोटी-छोटी धर्म-क्रियाओंको

ये लोग पालने हैं। यह धर्म-क्रियाका पालन इनके लिए अच्छा है। पर जो लोग यह समझते हैं कि ऐसी क्रियाओंका पालन ही धर्मकी परिमीमा है वे धर्मकी नीची-मे-नीची श्रेणीमें ही हैं। यह धर्म पतितोका है, पुण्यवानोका नहीं है। इसी परमे बहुतसे श्रावक कहते हैं कि राजचन्द्रजी धर्मका मान नहीं था। वे दभो थे, अहंकारी थे। पर मैं खुद तो जानता हू कि दभ या अहंकारका उनमें नाम भी न था। (राजचन्द्र-जयती, अहमदावादमें दिया गया भाषण १५ ११ २१)

ब्रवर्ड-वदरपर समुद्र क्षुब्ध था। जून-जुलाईमें हिंद-महासागरमें यह कोई नई बात नहीं होती। अदनमें ही समुद्रका यह हाल था। सब लोग बीमार पड़ गये थे—अकेला मैं मीजमें रहा था। तूफान देखनेके लिए डेकपर रहता और भीग भी जाता।

माताजीके दर्शन करनेके लिए मैं अवीर हो रहा था। जब हम डॉक-पर पहुँचे तो मेरे बड़े भाई वहा मीजूद थे। उन्होंने डाक्टर मेहता तथा उनके बड़े भाईसे जान-पहचानकर ली थी। डाक्टर चाहते थे कि मैं उन्हींके घर ठहरूँ, सो वह मुझे वही लिवा ले गये। इस तरह विलायतमें जो सबब बचा था वह देशमें भी कायम रहा। यही नहीं, बल्कि अधिक दृढ़ होकर दोनों परिवारोंमें फैला।

डाक्टर मेहताने अपने घरके जिन लोगोंसे परिचय कराया, उनमेंसे एकका जिन यद्वा किए बिना नहीं रह सकता। उनके भाई रेवाशकर जगजीवनके साथ तो जीवनभरके लिए स्नेह-गाँठ बंध गई, परंतु जिनकी बात मैं कहना चाहता हूँ वह तो है कवि रायचंद्र श्यावा राजचंद्र। वह डाक्टर साहबके बड़े भाईके दामाद थे और रेवाशकर जगजीवनकी दूकानके भागीदार तथा कार्यकर्ता थे। उनकी अवस्था उस समय २७ वर्षसे अधिक नहीं। फिर भी पहली ही मुलाकातमें मैंने यह देख लिया कि वह चरित्रवान् और जानी थे। वह जनाबवानी माने जाते थे। डाक्टर

मेहताने कहा कि इनके शतावधानका नमूना देखना । मैंने अपने भाषा-ज्ञानका भंडार खाली कर दिया और कविजीने मेरे कहे नमाम शब्दोंको उसी नियमसे कह सुनाया, जिस नियमसे मैंने कहा था । इस सामर्थ्यपर मुझे ईर्ष्या तो हुई, किंतु उसपर मैं मुग्ध न हो पाया । जिस चीजपर मैं मुग्ध हुआ उसका परिचय तो मुझे पीछे जाकर हुआ । वह था उनका विशाल शास्त्रज्ञान, उनका निर्मल चरित्र और आत्म-दर्शन करनेकी उनकी भारी उत्कठा । मैंने आगे चलकर तो यह भी जाना कि केवल आत्मदर्शन करनेके लिए वह अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे ।

हसता रमता प्रगट हरि देखू रे
 मारु जीव्यु सफल तव लेखू रे,
 मुक्तानंद नो नाथ विहारी रे
 ओधा जीवनदोरी अमारी रे ।'

मुक्तानंदका यह वचन उनके जवानपर तो रहता ही था, पर उनके हृदयमें भी अंकित हो रहा था ।

खुद हजारोंका व्यापार करने, हीरे-मोतीकी परख करते, व्यापारकी गुलिया सुलभाते, पर वे बातें उनका विषय न थी । उनका विषय, उनका पुरुषार्थ तो आत्म-साक्षात्कार—हरिदर्शन—था । दुकानपर और कोई चीज हो या न हो, एक-न-एक धर्म-पुस्तक और डायरी जरूर रहा करती । व्यापारकी बात जहां खतम हुई कि धर्म-पुस्तक खुलती अथवा रोजनामचेपर कलम चलने लगती । उनके लेखोंका संग्रह गुजरातीमें प्रकाशित हुआ है । उसका अधिकांश इस रोजनामचेके ही आधारपर लिखा गया है । जो मनुष्य लाखोंके मौदेकी बात करके तुरत

'भावार्थ यह कि मैं अपना जीवन तभी सफल समझूंगा, जब मैं हंसते-खेलते ईश्वरको अपने सामने देखूंगा । निश्चय-पूर्वक वही मुक्तानंदकी जीवन-डोरी है । —अनु०

आत्मज्ञानकी गूढ़ वाने लिखने बैठ जाता है वह व्यापारीकी श्रेणीका नहीं, बल्कि शुद्ध ज्ञानीकी कोटिका है। उनके सबधमे यह अनुभव मुझे एक बार नहीं, अनेक बार हुआ है। मैंने उन्हें कभी गाफिल नहीं पाया। मेरे साथ उनका कुछ स्वार्थ न था। मैं उनके बहुत निम्न समागममें आया हूँ। मैं उस वक्त एक ठलुवा वैरिस्टर था। पर जब मैं उनकी दूतानपर पहुँच जाता तो वह धर्म-वार्ताके सिवा दूसरी कोई बात न करते। इस समय तब मैं अपने जीवनकी दिशा न दे पाया था। यह भी नहीं कह सकते कि धर्म-वार्ताश्रोमे मेरा मन लगता था। फिर भी मैं कह सकता हूँ कि रायचन्द्रभाईकी धर्म-वार्ता मैं चावसे सुनता था। उनके वाद मैं कितने ही धर्मचार्योके मपर्कमे आया हूँ, प्रत्येक धर्मके आचार्योमे मिलनेका मैंने प्रयत्न भी किया है, पर जो छाप मेरे दिल-पर रायचन्द्रभाईकी पड़ी, वह किसी की न पड सकी। उनकी कितनी ही बातें मेरे ठेठ अतस्तलतक पहुँच जाती। उनकी बुद्धिको मैं आदरकी दृष्टि-से देखता था। उनकी प्रामाणिकतापर भी मेरा उतना ही आदर-भाव था और इसमे मैं जानता था कि वह जान-बूझकर उल्टे रास्ते नहीं ले जायगे एव मुझे वही बात कहेंगे, जिमे वह अपने जीमे ठीक समझने होंगे। इस कारण मैं अपनी आध्यात्मिक कठिनाइयोमे उनकी सहायता लेता।

रायचन्द्रभाईके प्रति इतना आदर-भाव रखते हुए भी मैं उन्हें धर्मगुरुका स्थान अपने हृदयमे न दे सका। धर्म-गुरुकी तो खोज मेरी अवतक चल रही है।

हिंदू-धर्ममे गुरुपदको जो महत्व दिया गया है उसे मैं मानता हूँ। 'गुरु विन होत न ज्ञान' यह वचन बहुतागमे सच है, अक्षर-ज्ञान देनेवाला शिक्षक यदि अवकचरा हो तो एक बार काम चल सकता है। परन्तु आत्मदर्शन करनेवाले अधूरे शिक्षकमे हरगिज काम नहीं चलाया जा सकता।

इसीलिए रायचन्द्रभाईको मैं यद्यपि अपने हृदयका स्वामी न बना सका,

तथापि हम आगे चलकर देखेंगे कि उनका सहारा मुझे समय-समयपर कैसा मिलता रहता है। यहाँ तो इतना ही कहना बस होगा कि मेरे जीवनपर गहरा असर डालनेवाले तीन आधुनिक मनुष्य हैं—रायचंदभाईने अपने सजीव ससर्गसे, टॉल्स्टायने 'स्वर्ग तुम्हारे हृदयमें है' नामक पुस्तक द्वारा तथा रस्किनने 'अनटु दिस लास्ट'—'सर्वोदय' नामक पुस्तकमें मुझे चकित कर दिया है। (आ० क०, १९२७)

ईसाको मैं त्यागी, महात्मा, दैवी शिक्षक मान सकता था, परंतु एक अद्वितीय पुरुष नहीं। ईसाकी मृत्युसे ससारको एक भारी उदाहरण मिला, परंतु उसकी मृत्युमें कोई गुह्य चमत्कार-प्रभाव था, इस बातको मेरा हृदय न मान सकता था। ईसाईयोके पवित्र जीवनमेंसे मुझे कोई ऐसी बात न मिली जो दूसरे धर्मवालोके जीवनमें न मिलती थी। उनकी तरह दूसरे धर्मवालोके जीवनमें भी परिवर्तन होता हुआ मैंने देखा था। सिद्धांतकी दृष्टिसे ईसाई-सिद्धांतोंमें मुझे अलौकिकता न दिखाई दी। त्यागकी दृष्टिसे हिंदू-धर्मवालोका त्याग मुझे बढकर मालूम हुआ। अतः ईसाई-धर्मको मैं संपूर्ण अथवा सर्वोपरि धर्म न मान सका।

अपना यह हृदय-मथन मैंने, समय पाकर ईसाई मित्रोंके सामने रखा। उसका जवाब वे सतोषजनक न दे सके।

परंतु एक ओर जहाँ मैं ईसाई-धर्मको ग्रहण न कर सका वहाँ दूसरी ओर हिंदू-धर्मकी संपूर्णता अथवा सर्वोपरिताका भी निश्चय मैं इस समय तक न कर सका। हिंदू-धर्मकी वृत्तियाँ मेरी आँखोंके सामने घूमा करती। अस्पृश्यता यदि हिंदू-धर्मका अंग हो तो वह मुझे सडा हुआ अथवा बडा हुआ मालूम हुआ। अनेक संप्रदायों और जात-पातका अस्तित्व मेरी समझमें न आया। वेद ही ईश्वर-प्रणीत हैं, इसका क्या अर्थ? वेद यदि ईश्वर-प्रणीत हैं तो फिर कुरान और बाइबिल क्यों नहीं?

जिस प्रकार ईसाई मित्र मुझपर असर डालनेका उद्योग कर रहे थे,

उसी प्रकार मुसलमान मित्र भी कोशिश कर रहे थे । अब्दुल्ला सेठ मुझे इस्लामका अध्ययन करनेके लिए ललचा रहे थे । उसकी खूबियोंकी चर्चा तो वह हमेशा करते रहते ।

मैंने अपनी दिक्कतें रायचदभाईको लिखी । हिंदुस्तानमें दूसरे धर्म-शास्त्रियोंमें भी पत्र-व्यवहार किया । उनके उत्तर भी आये, परंतु रायचदभाईके पत्रने मुझे कुछ शांति दी । उन्होंने लिखा कि धीरज रखो और हिंदू-धर्मका गहरा अध्ययन करो । उनके एक वाक्यका भावार्थ यह था—“हिंदू-धर्ममें जो मृक्षम और गूढ़ विचार हैं, जो आत्माका निरीक्षण है, दया है, वह दूसरे धर्ममें नहीं है—निष्पक्ष होकर विचार करते हुए मैं इस परिणामपर पहुंचा हूँ ।”

.मेरा अध्ययन मुझे ऐसी दिगामें ले गया जिमें ईसाई मित्र न चाहते थे । एडवर्ड मेटलैंडके साथ मेरा पत्र-व्यवहार काफी समयतक रहा । कवि (रायचद) के साथ तो अततक रहा । उन्होंने कितनी ही पुस्तकें भेजी । उन्हें भी पढ़ गया । उनमें ‘पचीकरण’, ‘मणिरत्नमाला’, ‘योगवाशिष्ठ’ का मुमुक्षु-प्रकरण, हरिभद्र सूरिका ‘पङ्दर्शनसमुच्चय’ इत्यादि थे । (आ० क० १६२७)

मैं जिनके पवित्र सम्मरण लिखना आरंभ करता हूँ, उन स्वर्गीय राजचद्रकी आज जन्मतिथि है । कार्तिक पूर्णिमा मवत् १६७६ को उनका जन्म हुआ था । मैं कुछ यहां श्रीमद्राजचद्रका जीवनचरित नहीं लिख रहा हूँ । यह कार्य मेरी शक्तिके बाहर है । मेरे पास सामग्री भी नहीं । उनका यदि मुझे जीवनचरित लिखना हो तो मुझे चाहिए कि मैं उनकी जन्मभूमि बवाणीआ बंदरमें कुछ समय बिताऊँ, उनके रहनेका मकान देखूँ, उनके खेलने-कूदनेके स्थान देखूँ, उनके बालमित्रोंमें मिलूँ, उनकी पाठशालामें जाऊँ, उनके मित्रों, अनुयायियों और सगे-सवधियोंसे मिलूँ और उनसे जानने योग्य बातें जानकर ही फिर कहीं

लिखना आरम्भ करू। परन्तु इनमेंसे मुझे किसी भी बातका परिचय नहीं।

इतना ही नहीं, मुझे सस्मरण लिखनेकी अपनी शक्ति और योग्यताके विषयमें भी शका है। मुझे याद है, मैंने कई बार ये विचार प्रकट किए हैं कि अवकाश मिलनेपर उनके सस्मरण लिखूंगा। एक शिष्यने जिनके लिए मुझे बहुत मान है, ये विचार सुने और मुख्यरूपसे यहाँ उन्हींके सतोषके लिए यह लिखा है। श्रीमद्राजचन्द्रको मैं 'रायचन्द्रभाई' अथवा 'कवि' कहकर प्रेम और मानपूर्वक संबोधन करता था। उनके सस्मरण लिखकर उनका रहस्य मुमुक्षुओंके समक्ष रखना मुझे अच्छा लगता है। इस समय तो मेरा प्रयास केवल मित्रोंके सतोषके लिए है। उनके सस्मरणोंके साथ न्याय करनेके लिए मुझे जैन-मार्गका अच्छा परिचय होना चाहिए। मैं स्वीकार करता हूँ कि वह मुझे नहीं है। इसलिए मैं अपना दृष्टि-विदु अत्यन्त सकुचित रखूंगा। उनके जिन सस्मरणोंकी मेरे जीवन पर छाप पड़ी है, उनके नोट्स और उनसे जो मुझे शिक्षा मिली है, इस समय उसे ही लिखकर मैं सतोष मानूंगा। मुझे आशा है कि उनसे जो लाभ मुझे मिला है वह या वैसा ही लाभ उन सस्मरणोंके पाठक मुमुक्षुओंको भी मिलेगा।

मुमुक्षु शब्दका मैंने यहाँ जान बूझकर प्रयोग किया है। सब प्रकारके पाठकोंके लिए यह प्रयास नहीं।

मेरे ऊपर तीन पुरुषोंने गहरी छाप डाली है - टॉल्टाय, रस्किन और रायचन्द्रभाई। टॉल्टायने अपनी पुस्तक 'द्वारा और उनके साथ थोड़े पत्र-व्यवहारसे, रस्किनने अपनी एक ही पुस्तक 'अनटु दिस लास्ट' से जिसका गुजराती नाम मैंने 'सर्वोदय' रक्खा है और रायचन्द्रभाईने अपने साथ गाढ़ परिचयसे। जब मुझे हिंदूधर्ममें शका पैदा हुई उस समय उसके निवारण करनेमें मदद करनेवाले रायचन्द्रभाई थे। सन १८९३ में दक्षिण अफ्रीकामें मैं क्रिश्चियन सज्जनोंके विशेष सम्पर्कमें आया।

उनका जीवन स्वच्छ था। वे चुस्त धर्मात्मा थे। अन्य धर्मियोंको क्रिश्चियन होनेके लिये समझाना उनका मुख्य व्यवसाय था। यद्यपि मेरा और उनका सबब व्यावहारिक कार्यको लेकर ही हुआ था तो भी उन्होंने मेरी आत्माके कल्याणके लिए चिन्ता करना शुरू कर दिया। उस समय मैं अपना एक ही कर्तव्य समझ सका कि जबतक मैं हिंदूधर्मके रहस्यको पूरी तीरसे न जान लू और उससे मेरी आत्माको असंतोष न हो जाय तबतक मुझे अपना कुलधर्म कभी न छोड़ना चाहिए। इसलिए मैंने हिंदूधर्म और अन्य धर्मोंकी पुस्तकें पढ़ना शुरू कर दी। क्रिश्चियन और मुसलमानी पुस्तकें पढ़ी। विलायतके अंग्रेज मित्रोंके साथ पत्र-व्यवहार किया। उनके समक्ष अपनी गंकाए रखी तथा हिंदुस्तान-में जिनके ऊपर मुझे कुछ भी श्रद्धा थी उनसे पत्र-व्यवहार किया। उन में रायचंदभाई मुख्य थे। उनके साथ तो मेरा अच्छा सबब हो चुका था। उनके प्रति मान भी था। इसलिए जो मिल सके उनसे लेनेका मैंने विचार किया। उसका फल यह हुआ कि मुझे शांति मिली। हिंदूधर्ममें मुझे जो चाहिए वह मिल सकता है, ऐसा मनको विश्वास हुआ। मेरी इस स्थितिके जवाबदार रायचंदभाई हुए। इसमें मेरा उनके प्रति कितना अधिक मान होना चाहिए, इसका पाठक लोग कुछ अनुमान कर सकते हैं।

इतना होनेपर भी मैंने उन्हें धर्मगुरु नहीं माना। धर्मगुरुकी तो मैं खोज किया ही करता हूँ। और अबतक मुझे सबके विषयमें यही जवाब मिला है कि ये नहीं। ऐसा संपूर्ण गुरु प्राप्त करनेके लिए तो अधिकार चाहिए। वह मैं कहासे लाऊँ ?

×

×

×

रायचंदभाईके साथ मेरी भेंट जुलाई सन् १८९१ में उम दिन हुई जब मैं विलायतसे वापस आया। इन दिनों ममूद्रमें तूफान आया करता है, इस कारण जहाज रातको देरीमें पहुँचा। मैं डाक्टर—वैरिस्टर—और अब रंगूनके प्रत्यात भवेरी प्राणजीवनदास मेहताके घर उतरा था।

रायचदभाई उनके बड़े भाईके जमाई होते थे । डाक्टर साहबने ही परिचय कराया । उनके दूसरे बड़े भाई भवेरी रेवाशकर जगजीवनदासकी पहचान भी उमी दिन हुई । डाक्टर साहबने रायचदभाईका 'कवि' कहकर परिचय कराया और कहा, "कवि होते हुए भी आप हमारे साथ व्यापारमे है । आप ज्ञानी और शतावधानी है ।" किसीने सूचना की कि मैं उन्हें कुछ शब्द सुनाऊ और वे शब्द चाहे किसी भी भाषा के हो, जिस क्रमसे मैं बोलूंगा उसी क्रमसे वे दुहरा जावेंगे । मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ । मैं तो उस समय जवान और विलायतसे लौटा था । मुझे भाषा-ज्ञानका भी अभिमान था । मुझे विलायतकी हवा भी कुछ कम न लगी थी । उन दिनों विलायतसे आया मानो आकाशसे उतरा । मैंने अपना समस्त ज्ञान उलट दिया । और अलग-अलग भाषाओंके शब्द पहले तो मैंने लिख लिए; क्योंकि मुझे वह क्रम कहा याद रहनेवाला था और बादमे उन शब्दोंको मैं बाच गया । उसी क्रमसे रायचदभाईने धीरेसे एककेवाद एक सब शब्द कह सुनाए । मैं राजी हुआ, चकित हुआ और कविकी स्मरण-शक्तिके विषयमे मेरा उच्च विचार हुआ । विलायतकी हवा कम पडनेके लिए कहा जा सकता है कि यह सुंदर अनुभव हुआ ।

कविको अंग्रेजी ज्ञान बिलकुल न था । उस समय उनकी उमर पच्चीससे अधिक न थी । गुजराती पाठशालामे भी उन्होंने थोडा ही अभ्यास किया था । फिर भी इतनी शक्ति, इतना ज्ञान और आसपाससे इतना उनका मान ! इससे मैं मोहित हुआ । स्मरणशक्ति पाठशालामे नहीं विकती और ज्ञान भी पाठशालाके बाहर, यदि इच्छा हो—जिज्ञासा हो—तो मिलता तथा मान पानेके लिए विलायत अथवा कहीं भी नहीं जाना पडता परंतु गुणको मान चाहिए तो मिलता है—यह पदार्थपाठ मुझे बबई उतरते ही मिला ।

कविके साथ यह परिचय बहुत आगे बढा । स्मरणशक्ति बहुत लोगोकी तीव्र होती है, इसमे आश्चर्यकी कुछ बात नहीं । शास्त्रज्ञान भी

चहुतोमें पाया जाता है, परतु यदि वे लोग मस्कारी न हों तो उनके पास फूटी कीड़ी भी नहीं मिलती। जहा मस्कार अच्छे होते हैं वही स्मरण-शक्ति और आत्मज्ञान सबव शोभित होता है और जगतको शोभित करता है। कवि मस्कारी जानी थे।

×

×

×

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे, क्यारे थईशु बाह्यातर निर्ग्रंथ जो,
सर्व सबधनु वधन तीक्ष्ण छेदीने, विचरशु कव महत्पूरुषने पथ जो ?
सर्व भाव थी श्रोदासीन्य वृत्ति करी, मात्र देश ते सयमहेतु होय जो,
अन्य कारणे अन्य कशु कल्पे नहि, देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो .

अपूर्व०

रायचदभाईकी १८वर्षकी उमरके निकले हुए अपूर्व उदगारोकी ये पहली दो कडिया हैं।

जो वैराग्य इन कडियोने छलर रहा है, वह मैंने उनके दो वर्षके गाढ़ परिचयमे प्रत्येक क्षणमें देखा है। उनके लेखोकी एक अमावारणता यह है कि उन्होंने स्वयं जो अनुभव किया वही लिखा है। उसमे कही भी कृत्रिमता नहीं। दूसरेके ऊपर छाप डालनेके लिए उन्होंने एक लाइन भी लिखी हो, यह मैंने नहीं देखा। उनके पास हमेशा कोई-न-कोई धर्मपुस्तक और एक कोरी कापी पड़ी ही रहती थी। इस कापीमे वे अपने मनमे जो विचार आते उन्हें लिख लेते थे। ये विचार कभी गद्यमे और कभी पद्यमे होते थे। इसी तरह 'अपूर्व अवसर' आदि पद भी लिखा हुआ होना चाहिए।

खाते, बैठते, सोते और प्रत्येक क्रिया करते हुए उनमे वैराग्य तो होता ही था। किसी समय उन्हे इस जगत्के किसी भी वैभवपर मोह हुआ हो, यह मैंने नहीं देखा।

उनका रहन-सहन मैं आदरपूर्वक परतु नूक्षमतामे देवता था। भोजनमें जो मिले वे उमीमे सतुष्ट रहते थे। उनकी पोशाक सादी थी। कुर्ता, अंगरखा, खेस, मिल्कवा दुपट्टा और धोती यही उनकी पोशाक थी

तथा ये भी कुछ बहुत साफ या इस्तरी किए हुए रहते हो, यह मुझे याद नहीं। जमीनपर बैठना और कुर्सीपर बैठना उन्हें दोनों ही समान थे। सामान्य रीतिसे दुकानमें वे गद्दीपर बैठते थे।

उनकी चाल धीमी थी और देखनेवाला समझ सकता था कि चलते हुए भी वे अपने विचारमें मग्न हैं। आखिरी उनके चमत्कार था। वे अत्यंत तेजस्वी थे। विह्वलता जरा भी न थी। आखिरी एकाग्रता चित्रित थी। चेहरा गोलाकार, होठ पतले, नाक न नोकदार न चपटी, शरीर दुर्बल, कद मध्यम, वर्ण श्याम और देखनेमें वे शांतिमूर्ति थे। उनके कठमें इतना अधिक माधुर्य था कि उन्हें सुननेवाले थकते न थे। उनका चेहरा हँसमुख और प्रफुल्लित था। उसके ऊपर अतरानदकी छाया थी। भाषा उनकी इतनी परिपूर्ण थी कि उन्हें अपने विचार प्रकट करते समय कभी कोई शब्द ढूँढ़ना पड़ा हो, यह मुझे याद नहीं। पत्र लिखने बैठते तो शायद ही शब्द बदलते हुए मैंने उन्हें देखा होगा। फिर भी पढ़नेवाले को यह न मालूम होता था कि कहीं विचार अपूर्ण हैं अथवा वाक्य-रचना त्रुटि-पूर्ण है, अथवा शब्दोंके चुनावमें कमी है।

यह वर्णन सयमीके विषयमें सभव है। बाह्याङ्गमें मनुष्य वीतरागी नहीं हो सकता। वीतरागी आत्माकी प्रसादी है। यह अनेक जन्मोंके प्रयत्नसे मिल सकती है, ऐसा हर मनुष्य अनुभव कर सकता है। रागोंको निकालनेका प्रयत्न करनेवाला जानता है कि राग-रहित होना कितना कठिन है। यह राग-रहित दशा कविकी स्वाभाविक थी ऐसी मेरे ऊपर छाप पड़ी थी।

मोक्षकी प्रथम सीढ़ी वीतरागी है। जबतक जगतकी एक भी वस्तुमें मन रमा है तबतक मोक्षकी बात कैसे अच्छी लग सकती है। अथवा अच्छी लगती भी हो तो केवल कानोंकी ही ठीक वैसे ही जैसे कि हमें अर्थके समझे बिना किसी सगीतका केवल स्वर ही अच्छा लगता है। ऐसी केवल कर्णप्रिय क्रीडामें मोक्षका अनुसरण करनेवाले

आचरणके आनमें बहुत समय बीत जाता है। आतर वैराग्यके बिना मोक्षकी लगन नहीं होती। ऐसे वैराग्यकी लगन कविमें थी।

✕ ✕ ✕
 વણિક તેહનુ નામ જેહ જૂઠૂ નવ વોલે,
 વણિક તેહનુ નામ, તોલ ઓછુ નવ તોલે,
 વણિક તેહનુ નામ વાપે વોલ્યુ તેપાલે,
 વણિક તેહનુ નામ વ્યાજસહિત ઘન વાલે,
 વિવેક તોલ એ વણિકનુ, મુલતાન તોલ એ શાવ છે,
 વેપાર ચૂકે જો વાણીઓ, દુલ દાવાનલ થાય છે ।

ऊपर छाप डाली थी। वे जब सौदा करते तो मैं कभी अनायास ही उपस्थित रहता। उनकी बात स्पष्ट और एक ही होती थी। चालाकी सरीखी कोई वस्तु उनमें न देखता था। दूसरेकी चालाकी वे तुरत ताड़ जाते थे। वह उन्हें असह्य मालूम होती थी। ऐसे समय उनकी भ्रुकुटि भी चढ़ जाती और आखोमें लाली आ जाती, यह मैं देखता था।

धर्मकुशल लोग व्यवहारकुशल नहीं होते, इस वहमको रायचद-भाईने मिथ्या सिद्ध करके बताया था। अपने व्यापारमें वे पूरी सावधानी और होगियारी बताते थे। हीरे-जवाहरातकी परीक्षा वे बहुत बारीकीसे कर सकते थे। यद्यपि अंग्रेजीका ज्ञान उन्हें न था, फिर भी पेरिस बगैरहके अपने आइतियोकी चिट्ठियों और तारोके मर्मको वे फौरन समझ जाते थे और उनकी कला समझनेमें उन्हें देर न लगती। उनके जो तर्क होते थे, वे अधिकांश सच्चे ही निकलते थे।

इतनी सावधानी और होशियारी होनेपर भी वे व्यापारकी उद्विग्नता अथवा चिंता न रखते थे। दुकानमें बैठे हुए भी जब अपना काम समाप्त हो जाता तो उनके पास पड़ी हुई धार्मिक पुस्तक अथवा कापी, जिसमें वे अपने उद्गार लिखते थे, खुल जाती थी। मेरे जैसे जिज्ञासु तो उनके पास रोज आते ही रहते थे और उनके साथ धर्मचर्चा करनेमें हिचकते न थे। 'व्यापारके समयमें व्यापार और धर्मके समयमें धर्म' अर्थात् एक समयमें एक ही काम होना चाहिए, इस सामान्य लोगोके सुंदर नियमका कवि पालन न करते थे। वे शतावधानी होकर इसका पालन न करे तो यह हो सकता है, परंतु यदि और लोग उसका उल्लंघन करने लगे तो जैसे दो घोड़ोंपर सवारी करनेवाला गिरता है, वैसे ही वे भी अवश्य गिरते। संपूर्ण धार्मिक और वीतरागी पुरुष भी जिस क्रियाको जिस समय करता हो, उसमें ही लीन हो जाय, यह योग्य है। इतना ही नहीं, बल्कि उसे यही शोभा देता है। यह उसके योगकी निशानी है। इसमें धर्म है। व्यापार अथवा इसी तरहकी जो कोई अन्य क्रिया करना हो तो उसमें भी पूर्ण एका-

गता होनी ही चाहिए। अंतरंगमें आत्मचिंतन तो मृमुक्षुमें उनके श्वाभकी तरह सतत चलना ही चाहिए। उमसे वह एक क्षण भी वचन नहीं रहता। परंतु इस तरह आत्मचिंतन करते हुए भी जो कुछ वह बाह्यकार्य करता हो वह उसमें ही तन्मय रहता है।

मैं यह नहीं कहना चाहता कि कवि ऐसा न करते थे। ऊपर मैं कह चुका हू कि अपने व्यापारमें वे पूरी सावधानी रखते थे। ऐसा होनेपर भी मेरे ऊपर ऐसी छाप जरूर पड़ी है कि कविने अपने शरीरमें अव्यक्ततामें अधिक काम लिया है। यह योगकी अपूर्णता तो नहीं हो सकती। यद्यपि कर्तव्य करते हुए शरीरतक भी समर्पण कर देना यह नीति है, परंतु शक्तिसे अधिक बोझ उठाकर उसे कर्तव्य समझना यह राग है। ऐसा अत्यंत सूक्ष्म राग कविमें था, यह मुझे अनुभव हुआ है।

बहुत बार परमार्थदृष्टिमें मनुष्य शक्तिसे अधिक काम लेता है और बादमें उसे पूरा करनेमें उसे कष्ट महाना पड़ता है। इसे हम गुण समझते हैं और इसकी प्रशंसा करते हैं। परंतु परमार्थ अर्थात् धर्मदृष्टिमें देखनेमें इस तरह किए हुए काममें सूक्ष्म मूर्च्छाका होना बहुत संभव है।

यदि हम इस जगतमें केवल निमित्तमात्र ही हैं, यदि यह शरीर हमें भाड़े मिला है, और उस मार्गसे हमें तुरंत मोक्ष साधन करना चाहिए, यही परम कर्तव्य है, तो इस मार्गमें जो विघ्न आते हो उनका त्याग अवश्य ही करना चाहिए। यही पारमार्थिक दृष्टि है, दूसरी नहीं।

जो दलीले मैंने ऊपर दी हैं, उन्हें ही किसी दूसरे प्रकारमें रायचन्द्रभाई अपनी चमत्कारिक भाषामें मुझे सुना गये थे। ऐसा होनेपर भी उन्होंने ऐसी कैसी उपाधिया उठाई कि जिसके फलस्वरूप उन्हें महान बीमारी भोगनी पड़ी।

रायचन्द्रभाईको परोपकारके कारण मोहने क्षणभरके लिए घेर लिया था यदि मेरी यह मान्यता ठीक हो तो 'प्रकृति याति भूतानि निग्रहं किं करिष्यति' यह श्लोकार्थ यहां ठीक बैठता है और इनका अर्थ भी इतना ही

है। कोई इच्छापूर्वक वर्ताव करनेके लिए उपर्युक्त कृष्ण-वचनका उपयोग करते हैं, परन्तु वह तो सर्वथा दुरुपयोग है। रायचन्दभाईकी प्रकृति उन्हें बलात्कार गहरे पानीमें ले गई। ऐसे कार्यको दोषरूपसे भी लगभग संपूर्ण आत्माओंमें ही माना जा सकता है। हम सामान्य मनुष्य तो परोपकारी कार्यके पीछे अवश्य पागल बन जाते हैं, तभी उसे कदाचित् पूरा कर पाते हैं।

यह भी मान्यता देखी जाती है कि धार्मिक मनुष्य इतने भोले होते हैं कि उन्हें सब कोई ठग सकता है। उन्हें दुनियाकी बातोंकी कुछ भी खबर नहीं पड़ती। यदि यह बात ठीक है तो कृष्णचंद और रामचन्द्र दोनों अवतारोंको केवल समारी मनुष्योंमें ही गिनना चाहिए। कवि कहते थे कि जिसे शुद्ध ज्ञान है उसका ठगा जाना असंभव होना चाहिए। मनुष्य धार्मिक अर्थात् नीतिमान् होनेपर भी कदाचित् जानी न हो, परन्तु मोक्षके लिए नीति और अनुभवज्ञानका सुसंगम होना चाहिए। जिसे अनुभवज्ञान हो गया है, उसके पास पाखंड निभ ही नहीं सकता। सत्यके पास असत्य नहीं निभ सकता। अहिंसाके सान्निध्यमें हिंसा बढ़ हो जाती है। जहां सरलता प्रकाशित होती है वहां छलरूपी अधिकार नष्ट हो जाता है। ज्ञानवान और धर्मवान यदि कपटीको देखें तो उसे फौरन पहचान लेता है और उसका हृदय दयामें आर्द्र हो जाता है। जिसने आत्माको प्रत्यक्ष देख लिया है वह दूसरेको पहचाने बिना कैसे रह सकता है। कोई-कोई धर्मके नामपर उन्हें ठग भी लेते थे। ऐसे उदाहरण नियमकी अपूर्णता सिद्ध नहीं करते, परन्तु ये शुद्ध ज्ञानकी ही दुर्लभता सिद्ध करते हैं।

इस तरहके अपवाद होते हुए भी व्यवहार-कुशलता और धर्मपरायणताका सुंदर मेल जितना मैंने कविमें देखा है उतना किसी दूसरेमें देखनेमें नहीं आया।

रायचन्द्रभाईके धर्मका विचार करनेने पहले यह जानना आवश्यक है कि धर्मका उन्होंने क्या स्वरूप समझाया था ।

धर्मका अर्थ मतमतांतर नहीं । धर्मका अर्थ नाम्त्रोके नामने कही जानेवाली पुस्तकोको पढ़ जाना, कठम्य कर लेना अथवा उनमें जो कुछ कहा है, उसे मानना भी नहीं है ।

धर्म आत्माका गुण है और वह मनुष्य जातिमें दृश्य अथवा अदृश्य रूपसे मौजूद है । धर्ममें हम मनुष्य-जीवनका कर्तव्य समझ सकते हैं । धर्मद्वारा हम दूसरे जीवोके साथ अपना सच्चा संबंध पहचान सकते हैं । यह स्पष्ट है कि जबतक हम अपनेको न पहचान ले तबतक यह सब कभी भी नहीं हो सकता । इसलिए धर्म वह साधन है, जिसके द्वारा हम अपने आपको स्वयं पहचान सकते हैं ।

यह साधन हमें जहाँ कहीं मिले, वहीसे प्राप्त करना चाहिए । फिर भले ही वह भारतवर्षमें मिले, चाहे यूरोपसे आये या अरबस्तानमें आये । इन साधनोका सामान्य स्वरूप समस्त धर्मशास्त्रोमें एक ही-सा है । इस बात को वह कह सकता है जिसने भिन्न-भिन्न शास्त्रोका अभ्यास किया है । ऐसा कोई भी शास्त्र नहीं कहता कि असत्य बोलना चाहिए, अथवा असत्य आचरण करना चाहिए । हिंसा करना किसी भी शास्त्रमें नहीं बताया । समस्त शास्त्रोका दोहन करते हुए शंकराचार्य ने कहा है, “ब्रह्म नत्त जगन्मिथ्या ।” उभी बात को कुरानशरीफमें दूसरी तरह कहा है कि ईश्वर एक ही है और बही है, उसके बिना और दूसरा कुछ नहीं । बाइबिलमें कहा है कि मैं और मेरा पिता एक ही हैं । ये सब एक ही वस्तुके रूपान्तर हैं । परन्तु इस एक ही सत्यके स्पष्ट करनेमें अपूर्ण मनुष्योंने अपने भिन्न-भिन्न दृष्टि-विदुओको काममें लाकर हमारे लिए मोहजाल रच दिया है । उममेंसे हमें बाहर निकलना है । हम अपूर्ण हैं और अपनेमें कम अपूर्णकी मदद लेकर आगे बढ़ते हैं और अंतमें न जाने अमुक हृदयक जाकर ऐसा मान लेते हैं कि आगे रास्ता ही नहीं है, परन्तु

वास्तवमे ऐसी बात नहीं है । अमुक हृदके वाद शास्त्र मदद नहीं करते, परतु अनुभव मदद करता है । इसलिए रायचदभाईने कहा है ।

“ए पद श्रीसर्वज्ञे दीठु ध्यानमा, कहीं शक्या नहीं ते पद श्रीभगवत जो एह परमपद प्राप्तनुं कयुं ध्यानमें, गजावयर पण हाल मनोरथ रूप जो ”

इसलिए अतमे तो आत्माको मोक्ष देनेवाली आत्मा ही है ।

इस शुद्ध सत्यका निरूपण रायचदभाईने अनेक प्रकारसे अपने लेखोमे किया है । रायचदभाईने बहुत-सी धर्म-पुस्तकोका अच्छा अभ्यास किया था । उन्हे सस्कृत और मागधी भाषाको समझनेमे जरा भी मुश्किल न पडती थी । उन्होने वेदातका अभ्यास किया था । इसी प्रकार भागवत और गीताजीका भी उन्होने अभ्यास किया था । जैन पुस्तके तो जितनी भी उनके हाथमे आती, वे वाच जाते थे । उनके वाचने और ग्रहण करनेकी शक्ति अगाध थी । पुस्तकका एक बारका वाचन उन पुस्तकोके रहस्य जाननेके लिए उन्हे काफी था । कुरान, जदेअवस्ता आदि पुस्तके भी वे अनुवादके जरिए पढ गये थे ।

वे मुझसे कहते थे कि उनका पक्षपात जैनधर्मकी ओर था । उनकी मान्यता थी कि जिनागममे आत्मज्ञानकी पराकाष्ठा है, मुझे उनका यह विचार बता देना आवश्यक है । इस विषयमे अपना मत देनेके लिए मैं अपनेको बिलकुल अनधिकारी समझता हू ।

परतु रायचदभाईका दूसरे धर्मोंके प्रति अनादर न था, बल्कि वेदातके प्रति पक्षपात भी था । वेदातीको तो कवि वेदाती ही मालूम पडते थे । मेरे साथ चर्चा करते समय मुझे उन्होने कभी भी यह नहीं कहा कि मुझे मोक्ष प्राप्तिके लिए किसी खास धर्मका अवलंबन लेना चाहिए । मुझे अपना ही आचार-विचार पालनेके लिए उन्होने कहा । मुझे कौनसी पुस्तके वाचनी चाहिए, यह प्रश्न उठनेपर उन्होने मेरी वृत्ति और मेरे बचपनके सस्कार देखकर मुझे गीताजी वाचनेके लिए उत्तेजित किया और

दूसरी पुस्तक में पञ्चीकरण, मणिगन्तमाला, योगवामिष्ठका वैराग्यप्रकरण, काव्य दोहन पहला भाग, और अपनी मोक्षमाला वाचनेके लिए कहा।

रायचन्दभाई बहुत बार कहा करते थे कि भिन्न-भिन्न धर्म तो एक तरहके वाडे हैं और उनमें मनुष्य घिर जाता है। जिसने मोक्षप्राप्ति ही पुरुषार्थ मान लिया है, उसे अपने माथेपर किसी भी धर्मका तिलक लगानेकी आवश्यकता नहीं।

सूरत आवे त्यम तु रहे, ज्यम त्यम करिने हरीने लहे'

जैसे अन्धका यह सूत्र था वैसे ही रायचन्दभाईका भी था। धार्मिक भगडोमें वे हमेशा ऊबे रहते थे। उनमें वे शायद ही कभी पड़ते थे। वे ममस्त धर्मोंकी खूबिया पूरी तरहसे देखते और उन्हें उन प्रमाविलवियोंके सामने रखते थे। दक्षिण अफ्रीकाके पत्रव्यवहारमें भी मैंने यही वस्तु उनमें प्राप्त की।

मैं स्वयं तो यह माननेवाला हूँ कि धर्म उस धर्मके भक्तोंकी दृष्टिमें संपूर्ण है, और दूसरोंकी दृष्टिमें अपूर्ण है। स्वतन्त्र रूपमें विचार करनेसे सब धर्म पूर्णपूर्ण हैं। अमुक हृदके बाद सब शास्त्र बधन रूप मालूम पड़ते हैं। परन्तु यह तो गुणातीतकी अवस्था हुई। रायचन्दभाई की दृष्टिसे विचार करते हैं तो किसीको अपना धर्म छोड़नेकी आवश्यकता नहीं। सब अपने-अपने धर्ममें रहकर अपनी स्वतन्त्रता-भोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि मोक्ष प्राप्त करनेका अर्थ सर्वांगमें राग-द्वेष-रहित होना ही है। ('श्रीमद्राजचन्द्र')

जैसे सूत निकलता है वैसे ही तू रह। जैसे बने तैसे हरिको प्राप्त कर।

: १७४ :

आचार्य रामदेव

पहाड-जैसे दीखनेवाले महात्मा मुशीरामके दर्शन करने और उनके गुरुकुलको देखने जब मैं गया तब मुझे बहुत शानि मिली। हरद्वारके कोलाहल और गुरुकुलकी शान्तिका भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्माजीने मुझपर भरपूर प्रेमकी वृष्टि की। ब्रह्मचारी लोग मेरे पाससे हटते ही नहीं थे। रामदेवजीसे भी उसी समय मुलाकात हुई और उनकी कार्य-शक्तिको मैं तुरत पहचान सका था। यद्यपि हमारी मत-भिन्नता हमें उसी समय दिखाई पड़ गई थी, फिर भी हमारी आपसमें स्नेह-गाठ बंध गई। गुरुकुलमें औद्योगिक शिक्षणका प्रवेग करनेकी आवश्यकताके सबधमें रामदेवजी तथा दूसरे शिक्षकोके साथमें मेरा ठीक-ठीक वार्तालाप भी हुआ। इससे जल्दी ही गुरुकुलको छोड़ते हुए मुझे दुःख हुआ। (आ० क०, १९२७)

आचार्य रामदेव चल बसे। आप आर्यसमाजके एक प्रसिद्ध नेता और कार्यकर्ता थे। स्वामी श्रद्धानन्दजीके बाद वे ही काँगड़ी-गुरुकुलके निर्माता थे। जहातक मैं जानता हूँ, वे स्वामीजीके दाहिने हाथ थे। शिक्षण-शास्त्रीके तौरपर वे बड़े लोकप्रिय थे। पिछले कुछ समयसे वे अपने स्वाभाविक जोशके साथ देहरादूनके कन्या-गुरुकुलके सचालक-कार्यमें पड़ गये थे और कुमायी विद्यावतीके पथ-प्रदर्शन और सहारा बन गये थे। जबतक जिये, वे ही इनके लिए रुपया इकट्ठा करके लाते थे। इनको सस्थाके आर्थिक पहलूकी कुछ भी चिंता नहीं करनी पड़ती थी। मैं जानता हूँ कि उनकी मृत्युसे इन्हे और इनकी सस्थाको कितनी असह्य हानि पहुँची है। जो लोग स्वर्गीय आचार्यजीको जानते हैं, जो स्त्री-शिक्षाका

महत्त्व समझने है और जिन्हें कुमारी विद्यावती और उनकी मन्थानी कद्र मालूम है उन्हें अब चाहिए कि गुरुकुलको सदाकेलिए आर्थिक कष्टसे मुक्त कर दें। परलोकवामी आचार्यजीके लिए इस तरहका धन-संग्रह अत्यन्त उपयुक्त स्मारक होगा। (ह० मे०, ३० १२ ३६)

: १७५ :

रामसुन्दर

बहुत कुछ धन करनेपर भी जब एशियाटिक आफिस को ५०० से अधिक नाम नहीं मिल सके तब अधिकारीगण इस निश्चयपर पहुँचे कि अब किसीको पकड़ना चाहिए। पाठक जर्मिस्टन नामसे परिचित हैं। वहापर बहुतसे भारतीय रहते थे। उनमें रामसुन्दर नामक एक मनुष्य भी था। यह बड़ा वाचाल और बहादुर दीखता था। कुछ-कुछ श्लोक भी जानता था। उत्तरी भारतका रहनेवाला अर्थात् थोड़े-बहुत दोहे-चौपाई तो अवश्य ही उसे याद होने ही चाहिए। और तिसपर पण्डित कहा जाता था। इसलिए वहाके लोगोमें उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उसने कई जगह भाषण भी दिए थे। भाषण काफी जोशीले होते थे। वहाके कितने ही विघ्नमतोषी भारतीयोंने एशियाटिक आफिसमें यह खबर पहुँचाई कि अगर रामसुन्दर पण्डितको गिरफ्तार कर लिया गया तो जर्मिस्टनके बहुतसे भारतीय परवाना ले लेंगे। अधिकारीगण इस लालचको कदापि रोक नहीं सकते थे। रामसुन्दर पण्डित गिरफ्तार हुए। अपने ढगका यह पहला ही मामला था। इसलिए सरकार और भारतीयोंमें भी बड़ी हलचल मच गई। जिस रामसुन्दर पण्डितको केवल जर्मिस्टनके लोग ही जानते थे, उसे अब क्षणभरमें सारे दक्षिण अफ्रीकाके लोग जानने लग गये। एक

महान् पुरुषका मामला चलते समय जिस प्रकार सबकी नजर वही दौड़ती है ठीक उसी तरह रामसुंदर पण्डितकी ओर सबका ध्यान आकृष्ट हुआ। शांति-रक्षाके लिए किसी प्रकारकी तैयारी करनेकी आवश्यकता नहीं थी। तथापि सरकारने अपनी ओरसे वह इतजाम भी कर लिया था। अदालतमें भी रामसुन्दरका वैसा ही आदर-सत्कार किया गया जैसा कि कौमके प्रतिनिधि और एक असामान्य अपराधीका होना चाहिए था। अदालत उत्सुक भारतीयोंसे खचाखच भर गई थी। रामसुंदरको एक महीनेकी सादी कैदकी सजा हुई। उसे जोहान्सवर्गकी जेलमें रखा गया। उसको यूरोपियन वार्डमें अलग एक कमरा दिया गया था। उससे मिलने-जुलनेमें जरा भी कठिनाई नहीं होती थी। उसका खाना बाहरसे भेजा जाता था और भारतीय उसके लिए नित्य नए अच्छे-अच्छे पकवान पकाकर भेजते थे। वह जिस बातकी इच्छा करता, वह फौरन ही पूरी कर दी जाती। कौमने उसका जेल-दिन बड़ी धूम-धाममें मनाया। कोई हताश नहीं हुआ। उत्साह और भी बढ़ गया। सैकड़ों जेल जानेके लिए तैयार थे। एशियाटिक आफिसकी आगा सफल न हुई। जर्मिस्टनके भारतीय भी परवाना लेनेके लिए नहीं गये। इस सजाका फायदा कौमको ही हुआ। महीना खतम हुआ। रामसुंदर छूटे और उन्हें बड़ी धूम-धामसे गाजे-वाजेके साथ जुलूस बनाकर सभास्थानपर ले गये। कई उत्साहप्रद भाषण हुए। रामसुंदरको फूलोंसे ढक दिया। स्वयंसेवकोंने उनके सत्कारमें उनकी दावत की। सैकड़ों भारतीय अपने मनमें कहने लगे, “अरे, हम भी गिरफ्तार हो जाते तो कितना आनंद आता।” और रामसुंदर पण्डितसे मधुर ईर्ष्या करने लगे।

पर रामसुंदर कड़वी बादाम सावित हुए। उनका जोग झूठी सतीका-सा था। एक महीनेके पहले तो जेलसे निकल ही नहीं सकते थे, क्योंकि वे अनायास पकड़े गये थे। जेलमें उन्होंने इतना ऐश्वर्यआराम किया कि बाहरसे भी अधिक। फिर भी स्वच्छदी और व्यसनी आदमी जेलके

एकातवामको और अनेक प्रकारके खान-पानके होते हुए भी वहाँके समयको कदापि वर्दाश्त नहीं कर सकता। यही हाल रामसुन्दर पण्डितका हुआ। कौम और अविकारियोंमें मनमानी सेवा लेनेपर भी उन्हें जैन कडवी मालूम हुई और उन्होंने ट्रान्सवाल और युद्ध दोनोंको अतिम नमस्कार करके अपना रास्ता लिया। हरएक कौममें खिलाड़ी तो रहते ही हैं। वही हाल युद्धोका भी होता है। लोग रामसुन्दरको अच्छी तरह जानते थे। तथापि ऐसे भी आदमी कभी-कभी काम देते हैं, यह समझकर उन्होंने रामसुन्दरका छिपा हुआ इतिहास उसकी पोल खुलनेपर भी कई दिनों तक नहीं सुनाया था। पीछेमें मुझे मालूम हुआ कि रामसुन्दर ने अपना गिरमिट पूरा किए बिना ही भागा हुआ गिरमिटिया था। उसके गिरमिटिया होनेकी बातको मैं धृणामे नहीं लिया रहा हूँ। गिरमिटिया होना कोई ऐव नहीं है। युद्धकी सच्ची शोभा बढ़ानेवाले तो गिरमिटिया ही थे। युद्धकी जीतमें भी उनकी सबसे बड़ा हिस्सा था। पर गिरमिटमें भाग निकलना अवश्य ही एक दोष है।

रामसुन्दरका यह इतिहास मैंने उसका ऐव बतानेके हेतुसे नहीं, बल्कि उसमें जो रहस्य है वह दिग्गानेके हेतुसे लिखा है। हरएक पवित्र आन्दोलन या युद्धके संचालकोंको चाहिए कि वे शुद्ध मनुष्योंको ही उसमें शामिल करे। तथापि आदमी कितना ही सावधान क्यों न हो, अशुद्ध मनुष्योंको बिलकुल रोक देना असंभव है। फिर भी यदि संचालक निष्ठ और सच्चे हो तो अज्ञानत अशुद्ध आदमियोंके घुस आनेपर भी युद्धको अतमें नुकसान नहीं पहुँच सकता। रामसुन्दर पण्डितकी पोल खुलते ही उसकी कोई कीमत नहीं रही। वह तो बेचारा अब रामसुन्दर पण्डित नहीं, कोरा रामसुन्दर ही रह गया। कौम उसे भूल गई। पर युद्धको तो उसमें शक्ति ही मिली। युद्धके लिए मिली हुई जेल बट्टे-घाते नहीं गई। उसके जेल जानेसे कौममें जो नवीन शक्ति आई वह तो कायम ही रही, बल्कि उसने उदाहरणका भी यही असर हुआ कि अन्य कितने ही कमजोर आदमी

अपने आप युद्धसे अलग हो गये । और भी कितने ही ऐसे उदाहरण हुए । कौमकी मजबूती या कमजोरी पाठकोसे छिपी नहीं रह सकती । इसलिए यहापर मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि रामसुदर जैसे केवल वे ही नहीं थे । पर मैंने तो यह देखा कि सभी रामसुदरोंने आदोलनकी सेवा ही की ।

पाठक रामसुदरको दोष न दे । इस ससारमे मनुष्यमात्र अपूर्ण है । जब हम किसी मनुष्यमे अधिक अपूर्णता देखते हैं तब हम उसकी ओर अगुली दिखाते हैं । पर सच पूछा जाय तो यह भूल है । रामसुदर जान-बूझकर दुर्बल नहीं बना था । मनुष्य अपने स्वभावकी स्थितिको बदल सकता है, उसको अपने वशमे कुछ हद तक कर सकता है, पर उमे जडसे कौन बदल सकता है ? जगत्कर्ताने मनुष्यको यह स्वतंत्रता नहीं दे रखी है । शेर अगर अपने चमडेकी विचित्रताको बदल सकता हो तो मनुष्य भी अपने स्वभावकी विचित्रताको बदल सकता है । हमें यह कैसे मालूम हो सकता है कि भाग निकलनेके बाद रामसुदरको कितना पश्चाताप हुआ ? अथवा क्या उसका भाग निकलना ही पश्चातापका एक दृढ प्रमाण नहीं माना जा सकता ? अगर वह बेशर्म होता तो उसे भागनेकी क्या पड़ी थी ? परवाना लेकर खुनी कानूनके अनुसार वह हमेशा जेल-मुक्त रह सकता था । यही नहीं, बल्कि वह चाहता तो एशियाटिक आफिस-का दलाल बनकर दूसरोको धोखा दे सकता था और सरकारका प्रिय बन सकता था । यह सब न करते हुए अपनी कमजोरी कौमको बतानेमे वह गरमाया और उसने अपना मुँह छिपा लिया । अपने इस कार्यके द्वारा भी उसने कौमकी सेवा ही की, ऐसा उदार अर्थ हम क्यों न लगावे ?

(द० अ० स०, १९२४)

: १७६ :

कालीनाथ राय

आज मुस्लिम परिषदपर एक सुंदर लेख 'द्विव्यून्' में आया। वह पढ़ कर सुनाया गया तो वापू कहने लगे

Long live Kalinath Roy (चिरजीवी हो कालीनाथ राय) !
कौमी सवाल और अछूनोंके लिए नयुक्त मताधिकार जैसे सवालपर आजकल इस आदमीके लेख बहुत अनुभव और जानपूर्ण आते हैं।
(म० डा०, भाग १, पृष्ठ ४७)

: १७७ :

दिलीपवुमार राय

'भन-मदिरमे प्रीति वसा ले'—श्रीदिलीपकुमार रायके, जिन्होंने इस भजनको आजकी प्रार्थना-सभामें गाया है, कठमे जो माधुर्य है और उनके गानेमें जो कला है, वह मुझको मीठे लगे। वैसे तो यह मामूली चीज है, लेकिन उसे जिस ढंगसे सुंदर बनाया गया, उसीका नाम उन्ना है। (प्रा० प्र०, २८ १० ४७)

आपने आजका बहुत मीठा भजन सुना। जिन्होंने हमको यह मीठा भजन सुनाया उन्हें आप लोग सब जानते तो होंगे नहीं। उनका नाम दिलीपकुमार राय है। उन्होंने हर जगहका भ्रमण किया है। उनके कठका माधुर्य जैसा है वैसे हिंदुस्तानमें तो कम लोगोंके पास है। मैं तो कहता हूँ

कि शायद सारी दुनियामे भी बहुत कम लोगोके पास है। मेरे पास ये दोपहरको आ गये थे। तब कोई अधिक समय तो मेरे पास था नहीं, सिर्फ १० मिनट थे। उस वक्त उन्होंने 'वन्देमातरम्' सुनाया, जिसको उन्होंने अपने मधुर स्वरमे बिठाया। क्योंकि वे बगाली हैं इसलिए तो उन्हें जानना ही चाहिए। चूकि वे मुझको सुनाना चाहते थे, इसलिए सुन लिया। लेकिन मैं कोई सगीत-शास्त्री तो हूँ नहीं। उनको मुझसे मुहब्बत है, जो एक-दूसरेके साथ बन जाती है। पीछे उन्होंने इकबालका 'सारे जहासे अच्छा' भजन सुनाया। उसको भी उन्होंने एक नए स्वरमे बिठाया है। मुझको यह बड़ा अच्छा लगा। वे ऋषि अरविन्दके आश्रममे, जो पाण्डुचेरीमे है, कई वर्षोंसे रहते हैं। वहा कोई तालीम तो उन्होंने ली नहीं। जब वहा गये तब भी वे सगीत-शास्त्री थे। पीछेमे अपनी कलाको बढ़ाते रहते हैं। (प्रा० प्र०, २६ १० ४७)

: १७८ :

प्रफुल्लचन्द्र राय

बगाली लोग दीवाने हैं। जिस तरह दास दीवाने हैं उसी तरह प्रफुल्लचन्द्र राय भी दीवाने हैं। जब वे मंचपर व्याख्यान देते हैं तब मानो नाचते हैं। कोई नहीं मान सकता कि वे ज्ञानी हैं। हाथ पछाड़ते हैं। पैर पछाड़ते हैं। जैसा जी चाहता है अपनी बगलामे अग्रेजीभी घुसेडते हैं। जब बोलते हैं तो अपनेको भूल जाते हैं। अपने विचारके आवेशमे ही मग्न होते हैं। इस बातकी शायद ही परवा हो कि लोग हँसेगे, या क्या कहेगे। जबतक उनकी बातें न सुने, उनकी आखसे अपनी आख न मिलावे तबतक उनकी महत्ताका

कुछ भी पता हमे नही लग सकता । मुझे याद है कि जब मैं कलकत्तेमे गोखलेके साथ रहता था और आचार्य राय उनके पडोसी थे तब एक समय हम तीनों स्टेजन पर गये थे । मेरे पास तो अपने तीसरे दर्जेका टिकट था । ये दोनों मुझे पहचाने आये थे । तीसरे दर्जेके मुसाफिरोको पहचानेवाले तो भिखारी ही हो सकते हैं, पर गोखलेका भरा हुआ चेहरा, रेशमी पगडी, रेशमी किनारेकी धोती, उनके लिए टिकटवावूकी दृष्टिमे काफी थे । परंतु यह दुबला ब्रह्मचारी, मैला-सा कुरता पहना हुआ, भिखारी जैसा दिखाई देनेवाला, इमे विना टिकट कौन अदर जाने देने लगा । मेरी यादके अनुसार वे विना टु खके बाहर खडे रहे और मेरे खचाखच भरे डब्बेमे किसी तरह घुसनेपर भी हठबर्मीकी टीका करने हुए गोखले अपने साथीसे जा मिले । आचार्य राय क्यों बहुमह्यक विद्यार्थियोंके हृदयमें साम्राज्य करते हैं ? वे भी त्यागी हैं और अब तो हो गये हैं खादी-दीवाने । शिक्षा-विभागकी एक बगालिन अविष्टानीसे यह कहते हुए उन्हे जरा सकोच न हुआ—“आप खादी न पहने तो किम कामकी ?” ऐसा न कहे तों उनके खुलनाके भिखारियोंकी बनाई खादीको कौन खरीदेगा ? (हि० न०)

: १७६ :

रिच

इंग्लैंडमे कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटी तो हमारी अवश्य ही बहुत सहायता कर रही थी, तथापि वहाके रीति-रिवाजके मुआफिक उनमे तो खास-तास मत और पक्षके मनुष्य ही आ सकते थे । इसके अतिरिक्त ऐसे कितने ही लोग थे जो उसमे नही आए थे, पर फिर भी हमे पूरी सहायता करते थे ।

हमे यह मालूम हुआ कि यदि इन सबको एकत्र करके इस काममें उन्हें लगा दिया जाय तो बहुत काम हो सकता है। इसलिए इस उपदेशसे हमने एक स्थायी समितिकी स्थापना करनेका निश्चय किया। यह बात तमाम पक्षके लोगोको बहुत पसंद आई।

हरएक सस्थाका उत्कर्ष या अपकर्ष प्रायः उसके मंत्रीके ऊपर ही निर्भर रहता है। मंत्री ऐसा होना चाहिए जिसका उस सस्थाके हेतु पर न केवल पूरा-पूरा विश्वास हो, बल्कि उसमें इतनी शक्ति भी होनी चाहिए कि वह उसकी सफलताके लिए अपना बहुत-सा समय दे सके और उसका काम करनेकी उसमें पूरी योग्यता हो। मि० रिच जो दक्षिण अफ्रीकामें थे और जो मेरे आफिसमें गुमाश्तेका काम कर चुके थे तथा जो लंदनमें उस समय वैरिस्टरीका अभ्यास कर रहे थे, ऐसे ही योग्य पुरुष थे। उनमें ये सब गुण थे। वह वही इंग्लैंडमें थे और यह काम भी करवा चाहते थे। इसलिए एक कमेटी बनानेकी हम लोग हिम्मत भी कर सके।
(द० अ० स०)

: १८० :

आचार्य सुशील रुद्र

आचार्य सुशील रुद्रका देहात ३० जूनको हो गया। वे मेरे एक आदरणीय मित्र और खामोश समाज-सेवी थे। उनकी मृत्युसे मुझे खो दुःख हुआ है उसमें पाठक मेरा साथ दे। भारतकी मुख्य बीमारी है राजनैतिक गुलामी। इसलिए वह उन्हीको मानता है जो उसे दूर करनेके लिए खुले आम सरकारसे लड़ाई लड़ते हैं, जिसने कि अपनी जल और थल सेना तथा धन-बल और कूट-नीतिके द्वारा अपनी मजबूत मोर्चाबंदी कर ली

है । इससे स्वभावतः उसे उन कार्यकर्ताओं का पता नहीं रहता जो निस्वार्थ होते हैं और जो जीवन के दूसरे विभागों में, जो कि राजनीति में कम उपयोगी नहीं होते हैं, अपने को खपा देते हैं । सेंट स्टीफन्स कालेज, देहली के प्रिंसिपल मुशीलकुमार रूद्र ऐसे ही विनीत कार्यकर्ता थे । वे पहले दरजे के शिक्षाशास्त्री थे । प्रिंसिपल के नाने वे चारों ओर लोकप्रिय हो गये थे । उनके और उनके विद्यार्थियों के बीच एक प्रकार का आध्यात्मिक सन्धध था । यद्यपि वे ईसाई थे, तथापि वे अपने हृदय में हिंदू धर्म और इस्लाम के लिए भी जगह रखते थे । इन्हें वे बड़े आदर की दृष्टि में देखते थे । उनका ईसाई धर्म ग्रीरोसे फट कर, अलग रहने वाला न था । जो अकेले इमाम-सीह को दुनिया का तारनहार न मानता हो उसके सर्वनाश की दुहाई देने वाला न था । अपने धर्म पर दृढ़ रहने हुए भी वे ग्रीरो को सहन करने थे । वे राजनीतिक बड़े तेज और चिंताशील स्वाध्यायी थे । अग्रगामी रहे जानेवाले लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति की कवायद जहां वे न दिखाते थे तहां वे छिपाते न थे । जबसे, १९१५, में मैं अफ्रीका से लौटा मैं जब कभी देहली जाता उन्हीं का अतिथि होता । रीलट कानून के मिलसिले में जब तक मैंने सत्याग्रह नहीं छोड़ा तब तक यह कार्य निर्विघ्न जारी रहा । ऊँचे हल्कों में उनके कितने ही अंग्रेज मित्र थे । एक पूरे अंग्रेजी मिशन से उनका सन्धध था । अपने कालेज के वे पहले ही हिंदुस्तानी प्रिंसिपल थे । इसलिए मेरे दिल ने कहा कि मेरा उनके साथ समागम रहने और उनके घर में ठहरने से शायद लोगों को यह गलत ख्याल हो कि मेरा उनका मतैक्य है और उनके साथियों को अनावश्यक झकट का सामना करना पड़े । इसलिए मैंने दूसरी जगह ठहरना चाहा । उनका जवाब अपने ढंग का था—मेरा धर्म लोगों के अनुमान में अधिक गहरा है । मेरे कुछ मत तो मेरे जीवन के घनिष्ठ अंग हैं । वे गहरे और दीर्घकाल के मनन और प्रार्थना के बाद निश्चित हुए हैं । मेरे अंग्रेज मित्र उन्हें जानते हैं । यदि अपने सम्माननीय मित्र और अतिथि के रूप में मैं आपको अपने घर में रखूँ तो

वे इसका गलत अर्थ नहीं कर सकते । और यदि कभी मुझे इन दो बातोंमें से कि अग्रजोंके अदर जो कुछ मेरा प्रभाव है वह चला जाय या आप किसी एकको चुनना पड़े तो मैं जानता हू कि मैं किस चीजको पसंद करूंगा । आप मेरे घरको नहीं छोड़ सकते । तब मैंने कहा—“लेकिन मुझसे तो हर किस्मके लोग मिलनेके लिए आते हैं । आप अपने मकानको सराय तो बना नहीं सकते ।” उन्होंने उत्तर दिया—‘सच पूछो तो मुझे यह सब अच्छा मालूम होता है । आपके मित्रोंका आना-जाना मुझे पसंद है । यह देखकर मुझे आनन्द होता है कि आपको अपने मकानमें ठहराकर मेरे हाथों कुछ देशसेवा हो रही है ।’ पाठकोंको शायद मालूम न हो कि खिलाफतके दावेको प्रत्यक्ष रूप देनेके लिए जो पत्र मैंने वायसरायको लिखा था उसका विचार और मसविदा प्रिंसिपल रुद्रके मकानमें तैयार हुआ था । वे तथा चार्ली एड्रूज उसमें सुधार सुझानेवाले थे । उन्हींके घरकी छाहमें बैठकर असहयोगकी कल्पना उत्पन्न और प्रवर्तित हुई । मौलानाओं, दूसरे मुसलमानों तथा अन्य मित्रों और मेरे बीच जो निजी मन्त्रणा हुई उसकी कार्रवाहीको वे बड़ी दिलचस्पीके साथ चुपचाप देखते थे । उनके तमाम कार्य धर्म-भावसे प्रेरित होते थे । ऐसी हालतमें दुनियावी सत्ता छिन जानेका कोई डर न था—तथापि वही धर्म-भाव उन्हें सासारिक सत्ताके अस्तित्व और उपयोग तथा मित्रताके मूल्यको समझनेमें सहायक होता था । जिस धार्मिक भावसे मनुष्यको विचार और आचारके सुंदर मेलका यथार्थ ज्ञान होता है, उसकी सत्यताको उन्होंने अपने जीवनमें चरितार्थ कर दिखाया था । आचार्य रुद्रने अपनी ओर इतने उच्च चरित्र लोगोंको आकर्षित किया था जिनके सहवासकी इच्छा किसीकी हो सकती है । बहुत लोग नहीं जानते हैं कि श्री सी० एफ० एड्रूज हमें प्रिंसिपल रुद्रके ही कारण प्राप्त हुए हैं । वे जुड़े भाई जैसे थे । उनका स्नेह आदर्श मित्रताके अध्ययनका विषय था । प्रिंसिपल रुद्र अपने पीछे दो लड़के और एक लड़कीको छोड़ गये हैं । सब वयस्क हैं और अपने काममें लगे हुए हैं । वे जानते

है कि उनके शोकमे उनके उच्च हृदय पिताके कितने ही मित्र शरीक है ।
(हि० न०, ६.७ २५)

: १८१ :

पारसी रुस्तमजी

पारसी रुस्तमजीके नाममे पाठक भलीभांति परिचित है । पारसी रुस्तमजी मेरे मवक्किल और सार्वजनिक कार्यमे साथी, एक ही साथ बने, बल्कि यह कहना चाहिए कि पहले साथी बने और बादको मवक्किल । उनका विश्वास तो मैंने इस हदतक प्राप्त कर लिया था कि वह अपनी घर और खानगी बातोंमें भी मेरी सलाह मांगते और उनका पालन करते । उन्हें यदि कोई बीमारी भी हो तो वह मेरी सलाहकी जरूरत समझते और उनके और मेरे रहन-सहनमे बहुत कुछ भेद रहनेपर भी वह खुद मेरा उपचार करते ।

मेरे इस साथीपर एक बार बड़ी भारी विपत्ति आ गई थी । हालांकि वह अपनी व्यापार-सबधी भी बहुत-सी बातें मुझमे किया करते थे फिर भी एक बात मुझमे छिपा रखी थी । वह चुगी चुरा लिया करते थे । बर्बई-कलकत्तेमे जो माल मगाते उसकी चुगीमे चोरी कर लिया करते थे । तमाम अधिकारियोंमे उनका गह-रगूम अच्छा था । इसलिए किसीको उनपर शक नहीं होता था । जो बीजक वह पेश करते उसीपरमे चुगीकी रकम जोड़ ली जाती । शायद कुछ कर्मचारी ऐसे भी होंगे जो उनकी चोरीकी ओरमे आखे मूढ़ लेते हों ।

परंतु आखा भगतकी यह वाणी कही झूठी हो सकती है ?

“काचो पारो खावो अन्न, तेवु छे चारी नु धन ।”

(यानी कच्चा पारा खाना और चोरीका धन खाना बराबर हैं।)

एक बार पारसी रस्तमजीकी चोरी पकड़ी गई। तब वह मेरे पास दौड़े आए। उनकी आखोमें आम् निकल रहे थे। मुझसे कहा

“भाई, मैंने तुमको धोखा दिया है। मेरा पाप आज प्रकट हो गया है। मैं चुंगीकी चोरी करता रहा हूँ। अब तो मुझे जेल भोगनेके सिवाय दूसरी गति नहीं है। बस, अब मैं बरबाद हो गया। इस आफतमेंसे तो आप ही मुझे बचा सकते हैं। मैंने वैसे आपसे कोई बात छिपा नहीं रखी है; परंतु यह समझकर कि यह व्यापारकी चोरी है, इसका जिक्र आपसे क्या करूँ यह बात मैंने आपसे छिपाई थी। अब इसके लिए पछताता हूँ।”

मैंने उन्हें धीरज और दिलासा देकर कहा—“मेरा तरीका तो आप जानते ही हैं। छुड़ाना-न-छुड़ाना तो खुदाके हाथ हैं। मैं तो आपको उसी हालतमें छुड़ा सकता हूँ जब आप अपना गुनाह कबूल कर लें।”

यह सुनकर उस भले पारसीका चेहरा उतर गया।

“परंतु मैंने आपके सामने कबूल कर लिया, इतना ही क्या काफी नहीं है?” रस्तमजी सेठने पूछा।

“आपने कसूर तो सरकारका किया है, तो मेरे सामने कबूल करनेसे क्या होगा?” मैंने धीरेसे उत्तर दिया।

“अंतको तो मैं वही करूँगा, जो आप बतावेंगे; परंतु मेरे पुराने वकीलकी भी तो सलाह ले लें, वह मेरे मित्र भी हैं।” पारसी रस्तमजीने कहा।

अधिक पूछ-ताछ करनेसे मालूम हुआ कि यह चोरी बहुत दिनोंसे होती आ रही थी। जो चोरी पकड़ी गई थी वह तो थोड़ी ही थी। पुराने वकीलके पास हम लोग गये। उन्होंने सारी बात सुनकर कहा,

“यह मामला जूरीके पास जायगा। यहांके जूरी हिंदुस्तानीको क्यों छोड़ने लगे? पर मैं निराश होना नहीं चाहता।”

इन वकीलके साथ मेरा गाढ़ा परिचय न था। इसलिए पारसी रस्तमजीने ही जवाब दिया :

“इसके लिए आपको धन्यवाद है। परन्तु इस मुकदमेमें मुझे मि० गावीकी सलाहके अनुसार काम करना है। वह मेरी बातोंको अधिक जानते हैं। आप जो कुछ सलाह देना मुनासिब समझें हमें देते रहिएगा।”

इस तरह थोड़ेमें समेटकर हम रस्तेमजी नेठकी दूकानपर गये। मैंने उन्हें समझाया—“मुझे वह मामला अदालतमें जाने लायक नहीं दिख्वाई देता। मुकदमा चलाना-न-चलाना चुगी अफसरके हाथमें है। उसे भी सरकारके प्रधान वकीलकी सलाहमें काम करना होगा। मैं इन दोनोंके लिए तैयार हूँ, परन्तु मुझे तो उनके नामने यह चोरीकी बात कबूत करनी पड़ेगी जो कि वे अभी तक नहीं जानते हैं। मैं तो यह सोचता हूँ कि जो ज़रमाना वे तजवीज कर दें उसे मजूर कर लेना चाहिए। बहुत मुमकिन है कि वे मान जायेंगे। परन्तु यदि न मानें तो फिर आपको जेल जानेके लिए तैयार रहना होगा। मेरी राय तो यह है कि लज्जा जेल जानेमें नहीं बल्कि चोरी करनेमें है। अब लज्जाका काम तो हो चुका। यदि जेल जाना पड़े तो उसे प्रायश्चित्त ही समझना चाहिए। अच्छा प्रायश्चित्त तो यह है कि अब आगेमें ऐसी चोरी न करनेकी पतिज्ञा कर लेनी चाहिए।” मैं यह नहीं कह सकता कि रस्तेमजी सेठ इन सब बातोंको ठीक-ठीक समझ गये हों। वह वहादुर आदमी थे। पर इस समय हिम्मत हार गये थे। उनकी इज्जत बिगड़ जानेका मौका आ गया था और उन्हें यह भी डर था कि खुद मेहनत करके जो यह इमारत खड़ी की थी वह कहीं सारी की-सारी ढ़ग्न न जाय।

उन्होंने कहा

“मैं तो आपसे कह चुका हूँ कि मेरी गर्दन आपके हाथमें है। जैसा आप मुनासिब समझें वैसा करें।”

मैंने इस मामलेमें अपनी सारी कला और मौज्जय खर्च कर डाला। चुगीके अफसरमें मिला, चोरीकी सारी बात मैंने निश्चय होकर उनसे

कह दी। यह भी कह दिया कि “आप चाहे तो सब कागजपत्र देख लीजिए। पारसी रुस्तमजीको इस घटना पर बड़ा पञ्चान्ताप हो रहा है।”

अफसरने कहा.

“मैं इस पुराने पारसीको चाहता हूँ। उसने की तो यह बेवकूफी है; पर इस मामलेमें मेरा फर्ज क्या है, सो आप जानते हैं। मुझे तो प्रधान वकीलकी आज्ञाके अनुसार करना होगा। इसलिए आप अपनी समझानेकी सारी कलाका जितना उपयोग कर सकें वहा करें।”

“यदि पारसी रुस्तमजीको अदालतमें घसीट ले जानेपर जोर न दिया जाय तो मेरे लिए बस है।”

इस अफसरसे अभय दान प्राप्त करके मैंने सरकारी वकीलके साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया और उनसे मिला भी। मुझे कहना चाहिए कि मेरी सत्यप्रियताको उन्होंने देख लिया और उनके सामने मैं यह सिद्ध कर सका कि मैं कोई बात उनसे छिपाता नहीं था। इस अथवा किसी दूसरे मामलेमें उनसे सावका पडा तो उन्होंने मुझे यह प्रमाण-पत्र दिया था—“देखता हूँ कि आप जवाबमें ‘ना’ तो लेना ही नहीं जानते।”

रुस्तमजीपर मुकदमा नहीं चलाया गया। हुक्म हुआ कि जितनी चोरी पारसी रुस्तमजीने कबूल की है उसके दूने रुपये उनसे ले लिए जाए और उनपर मुकदमा न चलाया जाय।

रुस्तमजीने अपनी इस चुगी-चोरीका किस्सा लिखकर काचमें जडाकर अपने दफ्तरमें टाग दिया और अपने वारिसों तथा साथी व्यापारियोंको ऐसा न करनेके लिए खबरदार कर दिया। रुस्तमजी सेठके व्यापारी मित्रोंने मुझे सावधान किया कि यह सच्चा वैराग्य नहीं, श्मशानवैराग्य है।

पर मैं नहीं कह सकता कि इस बातमें कितनी सत्यता होगी। जब मैंने यह बात रुस्तमजी सेठसे कही तो उन्होंने जवाब दिया कि आपको धोखा देकर मैं कहा जाऊंगा। (आ० क०, १६२७)

बी-ग्रम्माकी मृत्यु होनेपर मौ० गोकतअलीने कहा था—हिंदुस्तानका एक सच्चा सिपाही कम हो गया। पारसी रुस्तमजीकी मृत्युमें भी एक सच्चा सिपाही कम होगया है। यही नहीं, मेरा तो एक परम मित्र ही कम हो गया है। पारसी रुस्तमजी जैसे आदमी मैंने बहुत थोड़े देखे हैं। शिक्षा उन्होंने नाममात्रके ही लिए प्राप्त की थी। अंग्रेजी भी थोड़ी ही जानते थे। गुजरातीका ज्ञान भी मामूली था। पढ़नेका बहुत शौक न था। जवानीमें ही व्यापारमें पड़ गये थे। केवल अपने परिश्रमके बल पर एक मामूली गुमास्तेकी हालतसे एक बड़े व्यापारीकी सीटीपर जा पहुँचे थे। फिर भी उनकी व्यवहार-वृद्धि तीव्र थी, उनकी उदारता हाथिमरि जैसी थी, उनकी सहिष्णुता तो इतनी बढ़ी हुई थी कि खुद कट्टर पाग़मी होते हुए भी हिंदू, मुसलमान, ईसाई, आदिके प्रति एक-सा प्रेम रखते थे। किसी भी बड़ा चाहनेवाले या हाथ फैलानेवालेको उनके घरमें खाली हाथ जाते हुए मैंने नहीं देखा। अपने मित्रोंके प्रति उनकी वफादारी इतनी सूक्ष्म थी कि कितने ही लोग उन्हींको अपना मुरतारनामा दे जाने थे। मैंने देखा है कि बड़े-बड़े मुसलमान व्यापारी अपने नाने-रिश्तेदारोंको छाड़ कर पारसी रुस्तमजीको अपना एलची बनाते थे। कोई भी गरीब पारसी रुस्तमजीकी दुकानसे खाली नहीं लौटता था। पाग़मी रुस्तमजी अपने लोगोंके प्रति जितने उदार थे खुद अपने प्रति उतने ही कजूम थे। ग्रामाद-प्रमोदका तो नाम भी न जानते थे। अपने या स्वजनोके लिए विचारपूर्वक खर्च करते थे। घरमें अत तक बहुत सादगी कायम रखी थी। गोखले, एड्ज्यूज, मरोजिनी देवी आदि पारसी रुस्तमजीके ही यहाँ ठहरते थे। छोटी-से-छोटी बात पारसी रुस्तमजीके ध्यानसे दूर न रहती। गोखलेके असह्य अभिनन्दन-पत्र इत्यादिके बड़े-बड़े पैतालीस अददको पैक बगाना, उन्हें जहाज पर चढ़ाना, आदि नारा भार पाग़मी रुस्तमजी पर न हो तो किसपर हो।

अपनी प्रिय धर्मपत्नीकी मृत्यु पर उनके नामका जेरबार्ड ट्रस्ट करके

अपनी संपत्तिका बड़ा भाग उन्होंने धर्म-कार्यके निमित्त रख छोड़ा था। अपनी सतानको उन्होंने कभी भी चटक-मटककी हवा न लगने दी। उन्हें सादी रहन-सहन सिखाई और उनके लिए इतनी ही विरासत रख छोड़ी है, जिससे वे भूखो न मर सके। अपने वसीयतनामामे उन्होंने अपने तमाम रिश्तेदारोंको याद किया है।

पूर्वोक्त प्रकारकी ही सावधानी और दृढ़ताके साथ उन्होंने सार्वजनिक हलचलोमे योग दिया था। सत्याग्रहके समयमे अपना सर्वस्व स्वाहा कर देनेके लिए तैयार व्यापारियोमे पारसी रुस्तमजी सबसे आगे थे।

अगीकृत कार्यको हर तरहका सकट उपस्थित होनेपर भी उसे न छोड़नेकी टेव उन्हें थी। अपेक्षाकृत अधिक दिनोतक जेलमे रहना पड़ा, तो भी वे हिम्मत न हारे। लड़ाई आठ साल तक चली, कितने ही मजबूत लड़वैया गिर गये, पर पारसी रुस्तमजी अटल बने रहे। अपने पुत्र सोरावजीको भी उन्होंने लड़ाईमे स्वाहा कर दिया।

इन हिंदुस्तानी सज्जनकी मुलाकात मुझसे १८९३ मे हुई। पर ज्यो-ज्यो मैं सार्वजनिक कामोमे पड़ता गया त्यो-त्यो पारसी रुस्तमजीमे रहे जवाहरातकी कदर करना मैं सीखता गया। वे मेरे भवविकल थे। सार्वजनिक कामोमे मेरे साथी थे और अंतको मेरे मित्र हो गये। वे अपने दोषोका वर्णन भी मेरे सामने बालककी तरह आकर कर देते। वे मेरे प्रति अपने विश्वासके द्वारा मुझे चकित कर देते थे। १८९७ मे जब गोरोंने मुझपर हमला किया तब मेरे और मेरे बाल-बच्चोका आश्रय-स्थान रुस्तमजीका मकान था। गोरोंने उनके मकान, असबाब आदिमे आग लगा देनेकी धमकी दी। पर उससे पारसी रुस्तमजीका रुवा तक खड़ा न हुआ। दक्षिण अफ्रीकामे जो नाता उन्होंने जोड़ा सो ठेठ मृत्यु-दिन तक कायम रखा। यहा भी वे सार्वजनिक कामोके लिए रुपया-पैसा भेजते रहते थे। दिसबरमे महासभाके समय उनके यहा आनेकी मभावना थी। पर ईश्वरको कुछ और ही करना था। रुस्तमजी सेठकी मृत्युसे

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी बड़ी हानि हुई है। सोरावजी अडाज-
णिया गये, फिर अहमद महमद काटलिया गये, अभी-अभी पी० के० नायडू
गये और अब पारसी रुस्तमजी भी चले गये। अब दक्षिण अफ्रीकानें
इन मेवकोंकी कोटिके भारतवासी गायद ही रहे हों। ईश्वर निरावारो-
या रखवाला है। वह दक्षिण अफ्रीकाके भारतवानियोंकी रक्षा करेगा।
परन्तु पारसी रुस्तमजीकी जगह तो हमेशा खाली ही रहेगी। (हि०
न०, ३० ११ २४)

: १८२ :

सोरावजी रुस्तमजी

एक प्रसंग उल्लेखनीय है। वेरुलममे कई मजदूर निकल पड़े थे।
वे किसी प्रकार लौटकर जाना नहीं चाहते थे। जनरल ल्यूकिन अपने
सिपाहियोंको लेकर वहां खड़ा था। लोगोंपर गोली चलानेका हुक्म वह
देनेको ही था कि स्वर्गीय पारसी रुस्तमजीका छोटा लडका वहादुर सोराव-
जी, जिसकी उम्र उस समय गायद ही अठारह वर्षकी होगी-उरखनसे
यहां आ पहुंचा। जनरलके धोडेकी लगाम थामकर उसने कहा, "आप
गोलिया चलानेका हुक्म न दें, मैं अपने लोगोंको आतिपूर्वक अपने-अपने
कामपर लौटा देनेकी जम्मेदारी लेता हूँ।" जनरल ल्यूकिन इस नौजवान-
की वहादुरीपर मुग्ध हो गया और उसने सोरावजीको अपना प्रेम-बल
आजमा लेनेकी मुहलत दे दी। सोरावजीने लोगोंको समझाया। वे
समझ गये और अपने-अपने काम पर चले गये। इस तरह एक
नौजवान के प्रसंगवचन, निर्भयता और प्रेमके कारण खूनकी नदी बहते-
बहते रुक गई। (द० अ० स०)

: १८३ :

जोसेफ रॉयपेन बैरिस्टर

जोसेफ रॉयपेन बैरिस्टर, केम्ब्रिजके ग्रैजुएट थे । नेटालके गिर-मिटिया माता-पितासे जन्म ग्रहण करनेपर भी 'साहब लोग' बन गये थे । वह तो घरमे भी बिना बूटके नही चल सकते थे । इमाम साहबको तो वजू करते वक्त पाव धोने पडते और खुले पंरसे नमाज पढनी पडती । वेचारे रॉयपेनको तो इतना भी नही करना पडता था, पर उन्होने बैरिस्टरीको छोड दिया, बगलमे साग-तरकारीकी टोकरी लटकाए और फेरी करते हुए गिरफ्तार हुए । उन्होने भी जेल भुगती । एक दिन रॉयपेनने मुझसे पूछा

“क्या मै सफर भी तीसरे दर्जेमे ही करूँ ?”

मैने उत्तर दिया, “यदि आप पहले और दूसरे दर्जेमे सफर करेगे तो तीसरे दर्जेमे मुझे किससे सफर कराना चाहिए ? जेलमे आपको बैरिस्टर कौन कहेगा ?”

जोसेफ रॉयपेनके लिए यह उत्तर काफी था । वह भी जेलमे सिधारे ।
(द० अ० स०)

वह बैरिस्टर थे, पर उन्हे इस बातका अहकार नही था । वह अति-शय कठिन परिश्रम नही कर सकते थे । ट्रेनसे अपना असबाब उतार कर उसे बाहर गाडीपर रख देना भी उनके लिए कठिन था । परतु यहा तो वह भी मेहनत पर चढ गये । उन्होने वह सब यथाशक्ति कर लिया । टॉल्मंटॉय फार्मपर कमजोर आदमी सशक्त हो गये और सभी परिश्रमके आदी हो गये (द० अ० स०)

: १८४ :

लाला लाजपतराय

लाला लाजपतरायको गिरफ्तार किया, सरकारने हमारे एक बड़े-से-बड़े मुखियाको पकड़ लिया है। उनका नाम भारतके बच्चे-बच्चोंकी जवानपर है। अपने स्वार्थ-त्यागके कारण वे अपने देश-भाइयोंके हृदयमें उच्च स्थान प्राप्त कर चुके हैं। अहिंसाके प्रचारके लिए और उनके साथ ही लोकमतको संगठित और प्रकट करनेके लिए उन्होंने जितना परिश्रम किया है उतना बहुत ही थोड़े लोगोंने किया है। उनकी गिरफ्तारीसे सरकारकी नीति या वृत्तिका जितना सच्चा पता चलता है उतना दूसरी किसी बातसे नहीं।

पजावने नुरत ही उनकी जगहपर अपना दूसरा नेता चुन लिया। उन्होंने आगा सफदरको अपना अगुवा बनाया है। पजाबी भाइयोंको उनमें अच्छा नेता नहीं मिल सकता था। वे एक मच्चे मुमलमान और एक वीर हिंदुस्तानी हैं। उन्होंने जितनी सेवाएँ की हैं वे सब अज्ञातरूपमें की हैं। मुझे इस बातमें जरा भी सदेह नहीं है कि लोग लालाजीकी तरह ही सच्चे हृदयमें उनका साथ देंगे। पजाबी भाई लालाजीको बड़े-से-बड़ा गौरव जो दे सकते हैं वह यह है कि वे यही समझकर कि लालाजी हमारे साथ ही हैं, उनका काम बराबर आगे बढ़ाते रहें। (हि० न०, ११ १२ २१)

आग्विरकार लाजपतराय, पंडित सतानम, मलिक लालसाज और डाक्टर गोपीचंदके मुकदमेंका फैसला हो गया। लालाजी तथा पंडित सतानमको अठारह-अठारह महीनेकी कैदकी सजा दी गई। अभियुक्तोंके बहुतेरा विरोध करनेपर भी सरकारने जबरदस्ती उनके बचावके लिए

एक वकील नियुक्त किया था । इस तमाशेके होते हुए भी उनको सजा दी जाना तो निश्चित ही था । सजाका हुक्म सुनाए जानेके जरा पहले ही लालाजीने मुझे एक पत्र लिखा । उसमें उनके चित्तकी प्रसन्नता टपकी पड़ती है । वह इस प्रकार है

“आपने जो स्नेहपूर्ण टिप्पणी लिखी है तथा रामप्रसादजी और पुरुषोत्तमलालके द्वारा जो सदेश भेजा उनके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद । मैं बहुत मजेमें हूँ । मैंने अन्न-त्याग नहीं किया था । मैं अपने आरामके लिए शोरोगुल मचानेके खिलाफ हूँ । हम यहाँ इसलिए नहीं आए हैं कि किसी तरहकी सुविधाएं या रिआयतें चाहें । सच्चा हाल अखबारोंमें जाहिर हुआ है और आशा है कि वह अब आप तक पहुंच गया होगा । हम सब लोगोका चित्त बहुत प्रसन्न है और मैं राष्ट्रीय पाठशालाओं तथा धार्मिक ग्रंथोंके अध्ययनमें अपने समयका खूब सदुपयोग कर रहा हूँ । अहमदाबादमें जो कुछ हुआ है उसके तथा सर्वपक्षीय परिषद् (राउंड टेबल कान्फ्रेंस)के हालात मुझे मालूम हो गये हैं । हमारी तकलीफोंकी वजहसे हमारे सिद्धांतोंके निर्णयमें बाधा न होने दीजिएगा । आप यकीन मानिए, हम अपने मनोरथको पूरा करनेके लिए जबतक चाहिए तबतक और जितनी चाहिए, उतनी तकलीफें बरदाश्त करनेको हर तरहसे तैयार हैं । और अब जब कि उसीके लिए हम यहां आए हुए हैं तो हमें उसे अखीर-तक निबाहना चाहिए ।”

हमें आशा करनी चाहिए कि लालाजी और पंडित सतानमको उनका अध्ययन जारी रखने दिया जायगा । मैं उन्हें तथा उनके साथियोंको यह भी सूचित करनेका साहस करूंगा कि वे मौलाना गौकतअली और श्री राजगोपालाचारी तथा उनके साथियोंका अनुकरण करे, अर्थात् वे साहित्य-सबधी उद्योगोंके साथ-ही-साथ चरखा कातनेपर भी ध्यान देगे । मैं अभिवचन देता हूँ कि बीच-बीचमें चरखा कातते रहनेसे लालाजीके इतिहास-लेखन तथा पंडित सतानमके संस्कृत अध्ययनमें हानि न होगी ।

सर्वपक्षीय परिपदके सबधमे लालाजीने जो उद्गार प्रकट किए है उनकी ओर मैं उन देश-सेवकोका ध्यान दिलाता हूँ, जो मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट स्वाभाविक प्रेरणासे प्रेरित होकर, अपने देशके साथ प्रेम करने तथा अपनी अंतरात्माकी पुकारके अनुसार आचरण करनेके अपराधके कारण जेलोंमें चले जानेवाले कैदियोंको छुड़ानेके उद्देश्यसे कोई निपटारा जल्दी करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। हमारी प्रतिष्ठाके अनुकूल कोई निपटारा होता हो तो उसके रास्तेमें हमें काटे न बखेरना चाहिए, पर यदि हम अपने जेल जानेवाले देश भक्तोंके शरीर-मुखके खयालसे बोर्ड असनोपजनक सचि कर बैठेंगे तो ऐसा करना उनके प्रति अन्याय करना होगा। यदि हम अपनी ही इच्छासे निमंत्रित किए गये कष्ट-सहनको कम करनेके लिए जरा भी अनुचित रीतिसे भुक्त गये तो ऐसा करना देशकी हार्दिक अभिलाषाको ठीक-ठीक न जानना होगा। (हि० न०, २५ १ २२)

दूसरे व्यक्ति जिनपर अविश्वास किया जाता है लालाजी हैं। मैंने तो लालाजीको एक वच्चेके समान खुले दिल वाला पाया है। उनके त्यागकी जोड़ लगभग हुई नहीं। मेरी उनसे हिंदू मुसलमानोंके बारेमें एक बार नहीं अनेक बार बातें हुई हैं। वे मुसलमानोंके साथ तनिक भी दुश्मनी नहीं रखते, लेकिन उन्हें जल्दी एकता हो जानेमें शक है। वे ईश्वरसे प्रकाश पानेके लिए प्रार्थना कर रहे हैं। खुद शक्ति रहते हुए भी वे हिंदू-मुसलमानोंकी एकताके कायल हैं, क्योंकि जैसा कि उन्होंने मुझसे कहा है वे स्वराज्यके कायल हैं। वे मानते हैं कि ऐसी एकताके बिना स्वराज्य स्थापित नहीं हो सकता। तो भी वे यह नहीं जानते कि यह एकता किस तरह और कब होगी। मेरा उपाय उन्हें पसंद है, परंतु इस बातमें शक है कि हिंदू लोग उसका मर्म समझ पावेंगे या नहीं और अगर समझ पावेंगे तो उसकी शराफतकी कदर करेंगे या नहीं। यहाँ मैं इतना कहे देता हूँ कि मैं अपनी तदवीरको उदात्त शरीफाना नहीं कहता। मेरे खयालमें तो यह

विलकुल ठीक और हो सकने लायक तदवीर है । (हि० न०, १६.२४)

मैं खयाल करता हू कि बहुतसे व्याख्यान-दाताओंकी तरह मेरा भी यह दुर्भाग्य है कि सवाददाता-गण मेरे व्याख्यानोकी अक्सर गलत रिपोर्ट भेज देते हैं, यद्यपि वे जानबूझकर ऐसा नहीं करते । मुझे याद है कि १८९६ ई० में स्वर्गीय सर फिरोजशाह मेहताने, जबकि मैं पहले-पहल भारतवर्षमें व्याख्यान देनेके लिए खड़ा हुआ था, मुझमें कहा था कि यदि आप चाहते हो कि लोग आपके व्याख्यानको सुने और उसकी सही रिपोर्ट भेजी जाय तो आपको अपना व्याख्यान लिख लेना चाहिए । उनकी इस अच्छी सलाहके लिए मैंने उन्हें हमेशा धन्यवाद दिया है । मैं यह जानता हू कि यदि उस दिनकी सभाके लिए मैंने उनकी सलाहके अनुसार काम न किया होता तो वहा मेरी बड़ी फजीहत होती, लेकिन जब-जब मेरे व्याख्यानोकी रिपोर्ट गलत भेजी गई है तब-तब बर्बईके उस बिना ताजके राजाकी, सलाहको याद करनेका मुझे अवसर मिला है । कहा जाता है कि किम्मीने यह सवाद भेजा है कि अमृतसरकी खिलाफत-परिषदमें मैंने लाला लाजपतरायको भीरु कहा है । लालाजी जो कुछ भी हो वे भीरु नहीं हैं । मेरे व्याख्यानका पूर्वपर सबध देखनेसे प्रतीत होगा कि मैं उनका इस आक्षेपसे कि वे मुसलमानोके विरोधी हैं बचाव कर रहा था । उस समय मैंने जो कुछ कहा था वह यह है लालाजी सदा शक्तिचित्त रहते हैं और उन्हें मुसलमानोके उद्देश्यके बारेमें बड़ी शका रहती है । लेकिन वे मुसलमानोकी दोस्ती सच्चे दिलसे चाहते हैं । लालाजीके प्रति मेरा बड़ा आदरभाव है । मैं उन्हें बहादुर आत्मत्यागी, उदार सत्यनिष्ठ और ईश्वरसे डरनेवाला मानता हू । उनका स्वदेशप्रेम बड़ा ही शुद्ध है । देशकी जितनी और जैसी सेवा उन्होंने की है उसमें उनकी बराबरी करनेवाले बहुत कम हैं । और यदि ऐसे शख्सोंपर सदेह किया जा सके कि उनके उद्देश्य हीन हैं तो हमें हिंदू-मुस्लिम ऐक्यसे उसी प्रकार निराश

होना पड़ेगा जिस प्रकार हमें अलीभाइयोपर हीन उद्देश्य रखनेका सदेह करनेपर निराश होना पड़े। हम सब अपूर्ण हैं, हमारा मत एक-दूसरेके खिलाफ दूषित होगया है। हम, हिंदू और मुसलमान, जैसे हैं वैसे ही समझे जाने चाहिए। जो हिंदू-मुस्लिम ऐक्यको अपना धर्म मानते हैं उन्हें तो जो साधन हमारे पास है उसीके द्वारा उसे संपादन करनेका प्रयत्न करना चाहिए। अपने औजारोंको बुरा कहने वाला कारीगर आप ही बुरा है। कर्नल मैडकने मुझसे कहा था कि एक मस्तवा एक साधारण चाकूसे ही मैंने एक बड़ा गभीर आपरेशन किया था, क्योंकि उस समय मेरे पास कोई औजार न था और खीलते हुए पानीके सिवा दूसरी कोई जीव-जन्तु-विनाशक औषधि भी न थी। उन्होंने हिम्मतसे काम लिया और उनका रोगी भी बच गया। हम भी एक दूसरेका विश्वास करें और हम सही-सलामत रहेंगे। एक-दूसरेका विश्वास करनेके यह मानी कभी नहीं हो सकते कि जवानी तो हम एक दूसरेके प्रति विश्वास जाहिर करें और हृदयमें विश्वासको ही स्थान दें। यह सचमुच भीरुता ही है, और भीरु भीरुमें या भीरु और बहादुरोंमें मिश्रता हो ही नहीं सकती। (हि० न०, १४ १२ २४)

हिंदू महासभाके एक उत्साही सदस्य ने मुझे 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'में उत्तर देनेके लिए कोई १५ प्रश्न भेजे हैं। एक दूसरे महाशयने इन्हीं प्रश्नोंके तरीकेपर मेरे साथ इसी वारेमें बहस की है। मैं उन सब प्रश्नोंका उत्तर देना नहीं, चाहता हूँ लेकिन उनमें कुछको तो मैं छोड़ देनेकी भी हिम्मत नहीं कर सकता हूँ, क्योंकि उन प्रश्नोंसे तो पण्डित मदनमोहन मालवीयजी और लालाजीपर वर्तमान पत्रोंमें जो आक्रमण हो रहा है उस ओर मेरा ध्यान खींचा गया है। मुझमें यह प्रश्न पूछ गये हैं

“क्या आपको उनके भले उद्देश्यके बारेमें शंका है ? क्या आप उन्हें सीधी तौरपर या और किसी दूसरे तरीकेपर हिंदू-मुस्लिम एक्यके विरोधी मानते हैं ? आप मानते हैं कि क्या वे देशको जानबूझकर किसी भी प्रकार की हानि पहुंचा सकते हैं ?”

मैं अक्सर यह देखता हूँ इन स्वदेश-भक्त वीरोपर इस प्रकार आक्रमण होता है । मैं यह भी जानता हूँ कि मेरे बहुतसे मुसलमान मित्रोंको इन दोनों प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंके प्रति संपूर्ण अविश्वास है । लेकिन मैं, बहुतेरी बातोंमें उनमें कितना भी मतभेद क्यों न रखूँ, उनमेंसे किसी एक पर भी कभी भी अविश्वास नहीं ला सकता हूँ । जिस प्रकार मैंने मुसलमानोंको मालवीयजी और लालाजीपर इस प्रकार आक्षेप करते हुए देखा है, उसी प्रकार हिंदुओंको भी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मुसलमानोंपर ऐसे आक्षेप करते हुए देखा है, लेकिन मैं उनमेंसे किसी भी पक्षके आक्षेपोंपर विश्वास नहीं ला सका हूँ और मैं अपना मतव्य भी किसी भी पक्षको नहीं समझा सका हूँ । मालवीयजी और लालाजी दोनों ही देशके कसे हुए सेवक हैं । दोनों बहुत दिनोंसे, देशकी बराबर प्रशसनीय सेवा कर रहे हैं । उनके साथ दिल खोलकर बातचीत करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, लेकिन मुझे एकभी ऐसा अवसर याद नहीं जब मैंने उन्हें मुसलमानोंका विरोधी पाया हो । लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें मुसलमान नेताओंके प्रति अविश्वास नहीं है और इस बड़े कठिन और नाजुक प्रश्नके उपायके सबधमें हम लोग एक राय हैं । उन्हें ऐक्यकी आवश्यकताके बारेमें कुछ भी सदेह नहीं है और उन्होंने अपने विचारोंके अनुसार उसके लिए प्रयत्न भी किया है । मेरी रायमें तो इन नेताओंके उद्देश्यके सबधमें शका करना ही ऐक्यके होनेके सबधमें शका प्रकट करना है । जब हम लोग सधि करेंगे—किसी-न-किसी दिन हमें यह करना ही होगा—उस समय उनकी बातोंका हिंदू-समाज पर ठीक वैसा ही असर पड़ेगा जैसा कि मुसलमानोंमें मौलाना अबुल कलाम

आजाद और हकीम साहबकी बातोंका असर पड़ता है । (हि० न०, १७ १२ २४)

“आपके तारके लिए आभार मानता हूँ । लोगोंकी ओरसे पुलिसकी हमला करनेके लिए कोई कारण नहीं मिला है । यह मामला इरादापूर्वक किया गया था । दो सख्त चोटें लगी हैं, मगर गंभीर नहीं हैं । एक बाई छातीपर और एक कंधेपर लगी है । दूसरी चोटें सत्यपाल, गोपीचंद, हंसराज, मुहम्मद आलम आदि मित्रोंने सभाल लीं । दूसरोपर भी मार पड़ी है और चोटें लगी हैं; किंतु चिंताका कोई कारण नहीं है ।”

—लाजपतराय

मैंने लाला लाजपतरायको तारसे धन्यवाद दिया था और हालत पूछी थी । उसके जवाबमें तुरत ही लालाजीने ऊपरका तार भेजा । आजके लोगोमें से, जबकि अधिकांश की अभी रेशे भी नहीं भीगी थी, लालाजीने ‘पंजाब केशरी’ का नाम पाया था । अबतक उनका यह इल्काव जैसा-का-तैसा कायम है, क्योंकि चाहे उनके पक्ष और विपक्षमें कुछ भी क्यों न कहा जाय, वे अब भी पंजाबके सच्चे वड़े निर्विवाद नेता हैं और सारे भारतवर्षमें सबसे अधिक लोकप्रिय और प्रतिष्ठित नेताओंमें से हैं । वे महासभाके सभापति हो चुके हैं, यूरोपमें उनका नाम है और वे उन गिने-चुने नेताओंमें से हैं, जो दिलकी बात तुरत ही कह देते हैं, जो कोई भले ही गलतफहमी करे या उससे भी अधिक उन्हें अवसर पहचाननेवाला मूर्ख समझे । मगर लालाजी अपनी आदतमें लाचार हैं, क्योंकि वे अपने दिलमें कोई बात छिपाकर रख ही नहीं सकते । जो बात सोची, वह वे कहेंगे ही ।

‘साइमन कमीशनके लाहौर आनेपर जो जलूस उसके प्रति विरोध प्रकट करनेके लिए निकाला गया था, लालाजीने उसका नेतृत्व किया था । पुलिसने उस जलूसपर लाठिया चलाई थीं ।

इसलिए जब मैंने यह शीर्षक पढ़ा “लालाजीपर मार” और मारके व्यौरे पड़े तभी मेरे मुहसे निकल गया--“शावाश !” अब हमें स्वराज्य पानेमें बहुत देर नहीं लगेगी, क्योंकि चाहे हमारी क्रांति हिंसक हो या अहिंसक, स्वतंत्र होनेके पहले हमें देशके नामपर मरनेकी कला सीखनी होगी। इसके अलावा जबतक महान प्रयत्न न किया जावे, अहिंसक दबावमें भी शासक झुकेंगे नहीं। आदर्श और संपूर्ण अहिंसाके सामने, मैं यह कल्पना कर सकता हूँ कि शासकोकी वृत्ति बिल्कुल ही बदल जानी संभव है। मगर गौंकि आदर्श और संपूर्ण कार्यक्रम बनाना संभव है, तथापि उसका संपूर्ण और आदर्श अमल कभी संभव नहीं है। इसलिए सबसे सस्ती बात यही है कि नेताओंपर मार पड़े या गोली चले। अबतक अनजान आदमियोंपर मार पड़ी है या वे मारे गये हैं। थोड़ेसे आदमियोंको गोली मारनेसे भी देशका ध्यान जितना आकर्षित नहीं होता उससे कहीं अधिक लालाजीपर हमला करनेसे हुआ है। लालाजी तथा दूसरे नेताओंपर हमलेसे हिंदुस्तानके राजनीतिज्ञ विचारमें पड़ गये हैं और सरकारकी शांति तो जरूर ही भग हो गई होगी। (हि० न०, ८ ११ २८)

लाला लाजपतरायका देहात हो गया। लालाजी चिरजीवी होवें। जबतक हिंदुस्तानके आकाशमें सूर्य चमकता है तबतक लालाजी मर नहीं सकते। लालाजी तो एक सन्धा थे। अपनी जवानीके ही समयसे उन्होंने देशभक्तिको अपना धर्म बना लिया था और उनके देशप्रेममें सकीर्णता नहीं थी। वे अपने देशसे इसलिए प्रेम करते थे कि वे ससारसे प्रेम करते थे। उनकी राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयतासे भरपूर थी। इसलिए यूरोपियन लोगोंपर भी उनका इतना अधिक प्रभाव था। यूरोप और अमेरिकामें उनके अनेक मित्र थे। वे मित्र लालाजीको जानते थे और इसलिए उनसे प्रेम करते थे।

उनकी सेवाएँ विविध थीं। वे बड़े ही उत्साही समाज और धर्म सुधारक थे। हममेंसे बहुतसे लोगोंके समान वे भी इसीलिए राजनीतिज्ञ

वने थे कि समाज और वर्म सुधारकी उनकी लगन राजनीतिमें शामिल हुए बिना पूरी होती ही नहीं थी। सार्वजनिक जीवन गुरु करनेके कुछ ही समय बाद उन्होंने देख लिया था कि विदेशी गुलामीमें देशके स्वतंत्र हुए बिना हमारे इच्छित सुधारोंमेंसे बहुतसे नहीं हो सकेंगे। जैसा कि हममेंसे बहुतोंको जान पड़ता है, उन्हें भी जान पड़ा था कि विदेशी पर-तंत्रताका जहर देशकी नस-नसमें घुस गया है।

ऐसे एक भी सार्वजनिक आंदोलनका नाम लेना अभभव है, जिसमें लालाजी शामिल न थे। सेवा करनेकी उनकी भूख सदा अतृप्त ही रहती थी। उन्होंने शिक्षण संस्थाएँ खोली, वे दलितोंके मित्र बने, जहाँ कहीं दुःख-दारिद्र्य हो, वहीं वे दौड़ते थे। नवयुवकोंको वे असाधारण प्रेममें अपने पास जमा करते थे। सहायताके लिए किसी नवजवानकी प्रार्थना उनके पास वेकार न गई। राजनैतिक क्षेत्रमें वे ऐसे थे कि उनके बिना चल ही नहीं सकता था। अपने विचार प्रकट करनेमें वे कभी भयभीत न हुए। उस समय भी जब कि कष्ट सहना रोजमर्राकी बात नहीं हो गई थी, अपने विचार निर्भीकतामें प्रकाशित करनेके लिए उन्होंने कष्ट सहना था। उनके जीवनमें कोई छिपा हुआ रहस्य नहीं था। उनकी अत्यंत अधिक स्पष्टवादितामें मित्रोंको, अगर प्रायः ध्वराहटमें पड़ना होता तो, उनके आलोचक भी चक्करमें पड़ जाते थे। मगर उनकी यह आदत छूटनेवाली नहीं थी।

मुसलमान मित्रोंका लिहाज रखता हुआ भी मैं दावेक साथ यह कहता हूँ कि लालाजी इस्लामके दुश्मन नहीं थे। हिंदू धर्मको सबल बनाने तथा शुद्ध करनेकी उनकी प्रबल इच्छाको भूलसे मुसलमानों या इस्लामके प्रति घृणा नहीं समझनी चाहिए। हिंदू-मुसलमानोंमें एकता स्थापित करनेकी उनकी हार्दिक इच्छा थी। वे हिंदू राजकी चाहना नहीं करने थे, किंतु वे हिंदुस्तानी राजकी इच्छा करते थे। अपने आपको हिंदुस्तानी कहनेवाले सभी लोगोंमें वे संपूर्ण समानता स्थापित करना चाहते थे।

लालाजीकी मृत्युमें भी हम परस्पर एक दूसरेपर विश्वास करना सीखें और अगर हम निर्भय बन जाय तो यह तुरत ही संभव है ।

उनके लिए एक राष्ट्रीय स्मारककी मांग अवश्य ही होनी चाहिए और वह होगी भी । मेरी विनम्र सम्मतिमें कोई स्मारक तबतक संपूर्ण नहीं हो सकता जबतक कि स्वतंत्रता जरूर प्राप्त करनी है, यह दृढ़ विश्वास न हो, और स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए वे जीते थे, इसीके लिए उनकी ऐसी गौरवमयी मृत्यु भी हुई । जरा हम याद करे कि उनकी अंतिम इच्छा क्या थी । उन्होंने नई पीढीको हिंदुस्तानकी स्वतंत्रता प्राप्त करने तथा उसके गौरवकी रक्षा करनेका भार सोपा है । नई पीढीमें उन्होंने जो विश्वास दिखलाया वह क्या उसके योग्य आपको साबित करेगी ? और हम बूढ़ोंसे, जो भारतवर्षको स्वतंत्र देखनेके लालाजी तथा दूसरे अनेक स्वर्गीय देशभक्तोंके स्वप्नको सही बनानेके लिए अभी तक वचे हुए हैं, एक बार सभी मिलकर महान् प्रयत्न कर अपनेको लालाजीके जैसे देशवदु पानेका अधिकारी सिद्ध करेंगे ।

इसके अलावा हम जन-सेवक-मधको भी नहीं भूल सकते । इस सधको उन्होंने अपने विविध कामोंकी उन्नतिके लिए स्थापित किया था और वे सब काम देशोन्नतिके लिए थे । मधके सबधमें उनकी उच्चाभिलाषाएं बहुत बड़ी थी । उनकी इच्छा यह थी कि सारे भारतवर्षमें से कुछ नव-युवक मिलकर, एक कार्यमें लगकर, एक दिलसे काम करे । यह सध अभी वच्चा ही है । इसे स्थापित हुए बहुत साल नहीं हुए हैं । अपने इस महान कामको मजबूत पाएँपर रखनेका समय उन्हें नहीं मिला था । यह भार राष्ट्रके ऊपर है और राष्ट्रको इसकी फिक्र करनी चाहिए । (हि० न०, २२ ११ २८)

लालाजीका अंतसमयतक मुझपर विश्वास रहा । यह मेरा मौभाग्य था । उनके अनेक गुणोंमें से जो हमारे लिए आज अधिक-से-अधिक

मूल्यवान हो सकता है वह था उनका हरिजन-प्रेम, अस्पृश्यताके विरुद्ध उनका अखंड युद्ध । जिस समय हिंदू भारतके हृदयमें हरिजनोके प्रति अपने कर्तव्य-पालन करनेकी भावना उदय नहीं हुई थी, उस समय उन्होंने यह युद्ध किया था । वे अपनी जेम्दार भाषामें बराबर कहते थे कि अछूतपन हिंदूधर्मका कलक है । यदि लालाजीने इस युद्धके सिवाय और कुछ काम न भी किया होता तो भी हिंदुओंके दिलोंमें लालाजीकी पवित्र स्मृति सदा बनी रहती । परंतु लालाजीके देशव्यापी गुणोंको, उनकी अखिल भारतीय सेवाओंको कौन नहीं जानता ? उन्हें 'पंजाब-केसरी' की उपाधि यू ही तो नहीं मिली थी । (२७ १२ ३३ को एनोरमें लालाजीके चित्रका उद्घाटन करने समय का भाषण)

जब राजनीतिको लोग भूल जायगें, जब जनताका ध्यान बीच लेने-वाली अनेक क्षणभंगुर वस्तुएं भी विस्मृत हो जायगी, तब भी लालाजीके गंभीर और विगल हरिजन-प्रेमको और उनकी तज्जनिक महान सेवाओंको करोड़ों हिंदू ही नहीं, बल्कि कोटिगं सवर्ण हिंदू भी— और हिंदू ही क्यों, समस्त भारतवर्ष बड़ी श्रद्धाभक्तिसे याद किया करेगा । लालाजी एक महान मानव-प्रेमी थे और उनका वह मानव-प्रेम विश्वव्यापी था । उनकी प्रत्येक वर्षीके अवसरपर हमें अपने जीवनमें लालाजीको उनकी प्रत्येक विगत वर्षीकी अपेक्षा, अधिकाधिक सजीव करते जाना चाहिए । लालाजी-जैसे समाज-सुधारकोंका जब निधन होता है तब केवल उनकी देहका ही नाश होता है । उनका कार्य और उनके विचारोंका देहके साथ अंत नहीं होता । उनकी शक्ति तो उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है । हमें इसका अनुभव तब और अधिक होता है जब हम देखते हैं कि ज्यों-ज्यों समय बीतता है त्यों-त्यों इस जीर्ण चोलेके बाहर इसका प्रभाव स्वतः प्रकट होता जाता है । मनुष्यके अंदर जो क्षणजीवी अंग है वह देहके साथ नाशको प्राप्त हो जाता है, किंतु मनुष्यका जो शाश्वत अविनाशी अंग है, वह तो देहके भस्मीभूत

होनेपर भी जीवित रहता है और देहका वधन दूर हो जानेसे वह और भी अधिक प्रकाशमान हो जाता है । इस विचारको सामने रखकर हमे लालाजीकी स्मृतिको चिरजीवी रखना चाहिए । हरिजन हिंदू तथा सवर्ण हिंदू दोनों ही स्व० लालाजीका पुण्यस्मरण करके हिंदू-समाजमें से यह अस्पृश्यताका पाप-कलङ्क धो डालनेका नये सिरेसे सकल्प करें । हरिजन तो उन त्रुटियोंको दूर करे जो अत्याचार वर्दाशित करते-करते लोगो-में पैदा हो जाती हैं और सवर्ण अपने उस पापको पखारकर शुद्ध हो जाय, जो उन्होंने हरिजनको जन्मना अस्पृश्य और अपनेको जन्मना उच्च मानकर किया है । (ह० से०, २३ ११ ३४)

.

...

...

लाला लाजपतगयत्री तो पजाबके शेर माने जाते थे । वह नौ चले गए । मैं तो उनका मित्र था और उनके साथ मजाक भी करता था कि हिंदीमें बोलना कब सीखोगे । वह कहते थे, यह नहीं होनेका । याद रखो, वह समाजी थे और यह भी याद रखो कि ने हवन इत्यादि भी करवाते थे । चूँकि मैं उन्हींके घरमें ठहरता था, इसलिए मैं यह सब देखता था । हवनमें तो संस्कृत ही काममें आती है और अजीब बात थी कि यह सब होते हुए भी वे थोड़ा-थोड़ा पढ़ तो लेते थे देवनागरीमें, लेकिन उनकी मादरी जवान उर्दू ही थी । वे कहते थे कि उर्दूमें तो मुझसे कहो तो घटो बोल लेता हूँ और बोलते थे, और उर्दूके तो मैं आपको क्या बताऊँ, वे बड़े भारी विद्वान् थे और बहुत शीघ्रतासे लिख सकते थे । अंग्रेजीमें भी वे घटो बोल सकते थे, लेकिन संस्कृतमय हिंदी तो उनकी समझमें भी नहीं आती थी । जब मैं चुन-चुनकर अरबी-फारसीके गब्द लाता तब वे मेरी बात समझ सकते थे । (प्रा० प्र०, १८ ११ ४७)

: १८५ :

लाटन

मि० लाटन डर्वनके बहुत पुराने और बड़े रयातनामा वकील थे । मैं भारत गया, उसके पहले ही उनके साथ मेरा बहुत घनिष्ट सवध हो चुका था । अपने महत्वपूर्ण मुकदमोमें मैं उन्हीकी सहायता लेता था और कई बार उनको अपने मामलोमें बड़ा वकील भी बनाता था । वे बड़े बहादुर आदमी थे । शरीरके ऊँचे-पूरे थे । (द० अ० स०)

: १८६ :

लुटावन

उत्तर हिंदुस्तानसे गिरमिटमें आया हुआ लुटावन नामक एक बूढ़ा मवक्किल था । अवस्था ७० वर्षसे भी अधिक होगी । उसे बड़ी पुरानी दमे और खासीकी व्याधि थी । अनेवगे वैद्योके क्वाथ-पुडियो और कई डॉक्टरोंकी बोललोको वह आजमा चुका था । उस समय मुझे अपन इन (प्राकृतिक) उपचारोंमें असीम विश्वास था । मैंने उससे कहा कि यदि तुम मेरी तमाम शर्तोंका पालन करो और फार्म ही पर रहो तो मैं अपने उपचारोंका प्रयोग तुमपर कर सकूँगा । उसका इलाज करनेकी बात तो मैं कैसे कह सकता था ? उसने मेरी शर्तोंको कबूल किया । लुटावनको तमाखूका बहुत भारी व्यसन था । मेरी शर्तमें एक यह भी थी कि वह तमाखू छोड़ दे । लुटावनको एक दिनका उपवास कराया । प्रतिदिन बारह बजे धूपमें 'कूने बाथ' देना शुरू किया । उस समय की ऋतु भी

धूपमे बैठने लायक थी। उसे थोड़ा भात, कुछ जेतूनका तेल, शहद और कभी-कभी शहदके साथ-साथ खीर, मीठी नारंगी, अगूर और भुने हुए गेहूँकी काँफी आदि भोजनके लिए दिया जाता था। नमक और तमाम मसाले वद कर दिए गये थे। जिस मकानमे मैं सोता था उसी मकानमे जरा अदरकी तरफ, लुटावनका भी विस्तर लगा दिया जाता था। सबके विस्तरमे दो कवल रहते थे, एक विछानेका और एक ओढनेका। लकड़ीका तर्किया भी रहता था।

एक सप्ताह बीता, लुटावनके शरीरमे तेज प्रवेश करने लगा, दमा कम हुआ, खासी भी घट गई। पर रातको दमा और खासी दोनों सताने। मुझे तमाखूका शक हुआ। मैंने उससे पूछा। लुटावनने कहा, “मैं नहीं पीता।” फिर एक-दो दिन गये। पर खासीमे कोई फर्क नहीं हुआ। अब छिपकर लुटावनपर नजर रखनेका निश्चय किया। सब जमीनपर ही सोते थे। सर्पादिका भय तो था ही। इसलिए मि० कैलन-बेकने मुझे बिजलीकी एक जेब्री बत्ती दे रखी थी। वह भी एक रखते थे। इस बत्तीको लेकर मैं सोता था। मैंने निश्चय किया कि एक रात विस्तर हीमे पड़े-पड़े जागू। दरवाजेमे बाहर बरामदेमे मेरा विस्तर लगा हुआ था और दरवाजेके अदर नजदीक ही लुटावन लेट रहा था। करीब आधी रातके लुटावनको खासी आई। दियासलाई सुलगाकर उसने बीड़ी पीना शुरू किया। मैं भी धीरेसे चुपचाप उसके विस्तरके पास जा खड़ा हुआ और बत्तीकी कलको दबाया। लुटावन घबड़ाया। वह समझ गया। बीड़ी बुझाकर उठ खड़ा हुआ। और मेरे पैर पकड़कर बोला, “मैंने बड़ा गुनाह किया, अब मैं कभी तमाखू नहीं पीऊंगा। आपको मैंने धोखा दिया। मुझे आप माफ करे।” यह कहकर वह गिड़गिड़ाने लगा। मैंने उसे आश्वासन-पूर्वक कहा कि बीड़ी छोड़नेमे उसीका हित था। मेरे अनुमानके अनुसार खासी जरूर मिट जानी चाहिए थी। वह मिटी नहीं, इसलिए मुझे शक हुआ। लुटावनकी बीड़ी छूटी और उसके साथ-

ही-साथ दो-तीन दिनमें दमा और खासीकी शिकायत भी कम हो गई। इसके बाद एक मासमें लुटावन बिलकुल नीरोग हो गया। उसके चेहरेपर खूब रौनक आगई और वह विदा होनेके लिये तैयार हुआ। (द० अ० स०)

: १८७ :

लाजरस

पहले मैं यह बतला चुका हूँ कि ट्रासवालसे जो वहने आई थी, वे द्राविड प्रात की थी। वे एक द्राविड कुटुंबके यहां ठहरी थी, जो ईसाई था। यह कुटुंब मझोले दर्जेका था। उसके एक छोटासा जमीनका टुकड़ा और दो-तीन कमरेवाला एक छोटा-सा मकान था। इन्हींके यहां ठहरनेका मैंने भी निश्चय किया। मालिक-मकानका नाम लाजरस था। गरीबको किसका डर हो सकता है? ये सब मूलतः गिरमिटिया माता-पिताकी प्रजा थे। इसलिए उनको और उनके सबधियोंको भी तीन पौंडवाला कर देना पड़ता था। गिरमिटियाओंके दुःखोंसे तो वे पूरी तरह परिचित थे। इसलिए उनके साथ उनकी सहानुभूति होना भी स्वाभाविक ही था। इस कुटुंबने मेरा सहर्ष स्वागत किया। मेरा स्वागत करना मित्रोंके लिए आसान काम तो कभी रहा ही नहीं है, परंतु इस बार तो वह और भी मुश्किल था। मेरा स्वागत करना मानो प्रत्यक्ष निर्धनताका स्वागत करना और शायद जेलको भी निमंत्रण देना था। इस स्थितिमें शायद ही कोई धनिक व्यापारी अपनेको इस खतरेमें डालनेके लिए तैयार होता। अपनी तथा उनकी परिस्थितिको इस तरह समझ लेनेपर भी उन्हें ऐसी विकट परिस्थितिमें डालना मेरे लिए सर्वथा अनुचित था। बेचारे लाजरसको थोड़ा-सा वेतन ही खोनेका डर था और

वह उसे वरदाश्त भी कर सकता था । उसे कोई कैद करना चाहे तो भले ही करे, पर अपने से भी गरीब गिरिमिटियाओके दु खोको कैसे चुपचाप सह सकता था ? उसने अपने यहा इन गिरिमिटियाओकी सहायताके लिए आई हुई बहनोको अपनी आखो जेलमे जाते देखा था । उसे मालूम हुआ कि उनके प्रति उसका भी कुछ कर्तव्य है, इसीलिए उसने मुझे भी स्वीकार किया । स्वीकार किया, पर अपना सर्वस्व भी अर्पित कर दिया; क्योंकि उसके यहा मेरे जानेके बाद उसका घर एक धर्मशाला बन गया । सैकड़ो आदमी और हर तरहके आदमी आते-जाते थे । उसके मकान के आस-पास की जमीन आदमियोसे खचाखच भर गई । चौबीसो घंटे उसके मकानपर रसोई होती रहती थी, जिसमे उसकी धर्मपत्नीने जीतोड महनत की । इतनेपर भी जब कभी देखिए, तब वे दोनो हंसमुख ही नजर आते थे । उनकी मुखाकृतिमे मैंने अप्रसन्नता नही देखी । (द० अ० स०)

: १८८ :

टी० एम० वर्धिस और जी० रामचन्द्रन्

अगर श्री टी० एम० वर्धिस और श्री जी० रामचन्द्रन् विश्वासके लायक नही है तो भी मुझे इस बातका यकीन दिलानेके लिए हमारा^१ मिलना जरूरी है । मुझे स्वीकार करना होगा कि मेरे मनमे उनकी हिम्मत, आत्म-बलिदान, कार्यदक्षता और प्रामाणिताके लिए बहुत मान है । श्री जी० रामचन्द्रन् सावरमतीके एक पुराने आश्रमवासी हैं । उन्होने मुझे कभी अविश्वासका कारण नही दिया । (ह० से०, २७ ७ ४०)

^१याधोजी तथा त्रावणकोरके दीवान ।

: १८६ :

ए० एस० वाडिया

पूनाके श्री ए० एस० वाडियाका निम्नलिखित पत्र मुझ मिला है ।
जैसा कि उससे मालूम पड़ेगा, वह उन गरीबोंके मन्चे हमदर्द है, जो गर्मियों-
में महाबलेश्वर जानेवालोंके लिए नीचेके मैदानोंसे लकड़ियोंकी मोलिया
लेजाकर जैमे-तैसे अपना निवाह करते हैं । श्री वाडिया लिखते हैं

“मैं महाबलेश्वर इसलिए गया था कि दक्षिणी रोडेशियापर अपनी नई
किताब लिखनेके लिए जो एकात और शांति मैं चाहता था वह मिल जाए ।
लेकिन वहां मेरा ध्यान और शक्तिया अचानक उन देहातियोंकी तकलीफोंपर
चली गई, जो नीचेकी घाटियोंसे घास और लकड़ियोंके भारी-भारी बोझ
लेकर महाबलेश्वर आते और नाममात्रके दामोंपर हमारे बाजारमें बेचते
थे । जिन पहाड़ी पगडड़ियोंसे वे आम तौरपर आते उन्हींके बीच वे जंगली
स्थान थे, जहां बैठकर मैं अपनी ‘रोडेशियाके चमत्कार’ पुस्तक लिखता
था । जब कभी मैं उनसे बात करता, वे जरूर उन रास्तोंकी भयंकर
हालतकी शिकायत करते जिनसे होकर वे आते थे, क्योंकि नुकीले पत्थरोंसे
उनके पैरों में चोट लगती और फफोले पड़ जाते थे । उन्होंने मुझसे अनु-
रोध किया कि मैं खुद जाकर नीचेके रास्तोंकी हालत देखूं और उन्हें सुधा-
रनेके लिए कुछ करूं । उनकी इच्छा पूरी करनेके लिए मैं खुद नीचे घाटियों-
में गया और उन रास्तोंकी देखा । वे पथरीले, ढालू और बीच-बीचमें
खतरनाक तीरसे तंग थे । पूछताछ करनेपर मुझे पता लगा कि सी साल
पहले जब जनरल लाडनिकने महाबलेश्वरका पता लगाया था तबसे अबतक
कभी किसी आदमीका हाथ इन रास्तोंपर नहीं लगा, बल्कि लोगोंके बराबर
आते-जाते रहनेसे ही ये बन गये हैं ।

मुझे लगा कि गाववालोंकी शिकायतें ठीक हैं और इसपर तत्काल

ध्यान देनेकी जरूरत है। अतः मैंने 'रोडेशियापर' किताब लिखना बढ़ करके मजूरोको कामपर लगाया और रास्तोको साफ व चौड़ा करने, अवरोधक पत्थरोको हटाने तथा लकड़ीकी मोलियां लानेमें दरस्तोकी जो डालिया रुकावट डालती थी उन्हें कटवानेका काम व्यवस्थित रूपसे शुरू कर दिया। ८ सप्ताह तक यह काम जारी रहा, जिस बीच मैंने कुल मिलाकर कोई एक हजार मजूरोको कामपर लगाया होगा। छोटे-बड़े मिलाकर एक दर्जन रास्ते उन्होंने बनाए और ठीक व दुरुस्त किए होंगे। इनमेंसे चार रास्ते कोकणके दूरवर्ती गावोंसे शुरू होकर कोकणके पहाड़ी नाको व दक्षिणकी पहाड़ियोंपर होते हुए महाबलेश्वर तक आते हैं। डबील टोक और बाबली टोक नामक कोकणके पहाड़की दो चाकूकी धार जैसी नुकीली चोटियोंको तो मैंने इतना सकड़ा और खतरनाक पाया कि पहाड़की चोटियोंपर चलनेवाली तेज हवासे सिरपर बोझा उठाते हुए स्त्रियो, बच्चोको नीचे लुढ़कनेका खतरा होनेपर सचमुच मुहके बल लेटकर अपने हाथ-पैरोके सहारे रेंगना ही पड़ता है। इन दोनों पहाड़ी चोटियोंको, जो हरएक आधमीलके करीब थी, मैंने बिल्कुल तुड़वा दिया है, हालांकि उनके कुछ हिस्से बड़े मजबूत पत्थरके थे और पत्थरके छोटे-छोटे टुकड़ोके तीनसे चार फुटतक चौड़े रास्ते सुरक्षित स्थानोंपर बनवा दिए हैं।

“अब मैं उस मुख्य बातपर आता हूँ जिसके लिए कि मैं आपको यह सब लिख रहा हूँ। मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या सरकार इस बातके लिए बाध्य नहीं है कि जैसे वह सवारी गाड़ियोंके आने-जानेके लिए सड़कोको ठीक हालतमें रखती है उसी तरह गाववालोके उपयोगके लिए मैंने जो रास्ते बनाए हैं उन्हें वह अच्छी हालतमें रखे ? जाच करनेपर मुझे पता लगा है कि मौसमके दमिग्रान महाबलेश्वर जानेके लिए कोकणके कोई ५०-६० गाव इन नए बन हुए रास्तोका उपयोग करेंगे। मैंने यह भी पता लगाया है कि ये गाव भूमि-करके रूपमें हर साल ५० से २०० रु० तक देते हैं, बल्कि एक तो ३०० रु० देता है। इन गावोंकी गाड़ी कमाईसे जो कुछ

हजार रुपया सरकार हर साल भूमि-करके रुपमें वसूल करती है उनके बदले-में इनके लिए वह क्या करती है, यह मैं नहीं जानता । आपको यह याद रखना चाहिए कि कोकण और दक्षिणके इन ६० गावोंके लिए महाबलेश्वर ही एक और अकेला ऐसा जरिया है कि जिसके द्वारा वे अपना सरकारी पावना अदा करनेके लिए हर साल कुछ रुपए कमा सकते हैं । इसमेंसे अधिकांशके पास अपने जमीनके थोड़े-से हिस्सेसे जो कुछ मिल जाए, बशर्ते कि बरसात ठीक हो जाए, उसके सिवा और कोई जरिया नहीं है और हरएकके पास जमीनका जो थोड़ा-सा टुकड़ा है उसमें पैदा होनेवाला अनाज खुद उसके तथा उसके कुटुंबके लिए मुश्किलसे ही पूरा होता है । नतीजा यह होता है कि जो-कुछ रुपया उन्हें चाहिए उसके लिए घास और लकड़ीके भारे लेकर उन्हें महाबलेश्वर जाना पड़ता है । और कुटुंबकी परिवरिशके लिए खाली पुरुषोंके जानेसे ही काम नहीं चलता, बल्कि उनकी स्त्रियो और माताओ तथा १०-१२ सालके बच्चोतकको उनके साथ भारे लेकर जाना पड़ता है । आप मुझपर विश्वास नहीं करेंगे, लेकिन मैंने ऐसे दर्जनो पुरुषों, स्त्रियो व बच्चोंसे खुद बातचीत की है, जो मगलवारके सबेरे लगनेवाले साप्ताहिक बाजारके लिए महाबलेश्वर पहुंचनेको रविवारके तीसरे पहर कोकणके अपने गावोंसे रवाना होते हैं और दो दिनकी सारी मेहनत व तकलीफके बाद हरेक कमाता है कुल ४ आने या अधिक-से-अधिक ५ आने ।

“इन गाववालोंसे बातें कर करके मैंने कुछ और हालात भी मालूम किए हैं, जो शायद आपके लिए उपयोगी होंगे

१—इन सबने इस बातकी शिकायत की कि उनके खेतोंकी जमीन साल-ब-साल अनुत्पादक होती जा रही है, जिससे दस साल पहले जितनी उपज हुआ करती थी अब उससे आधीके करीब होने लगी है ।

२—इनका कहना है कि कांग्रेस-सरकारने हरेक मवेशी पीछे ४ आने कर फिर लगा दिया है, जिससे पिछले दो सालोंसे वह मुक्त थे ।

३—गांवोंके आसपास जो जमीनें पड़ती पड़ी हुई हैं उन्हें काश्तके लिए दे दिया जाए और जो छोटे-छोटे जगली इलाके सुरक्षित रखे गये हैं उन्हें उनके मवेशियोंके लिए खोल दिया जाए ।

“महात्माजी, मैं चाहता हूं कि इन आदिजनोकी, जैसा कि महाबलेश्वरके आसपास की घाटियोंके इन गरीब ग्रामीणोंको मैं कहता हूँ और जिनकी भलाई व बहबूदीके लिए मेरी दिलचस्पी है, मददके लिए आप जरूर कुछ करें ।”

मैंने यह पत्र बर्बर्कके मंत्रियोंके पास भेज दिया था और पाठकोंको यह बतलाते हुए मुझे खुशी होती है कि उन्होंने इस बारेमें कार्रवाही करनेका निश्चय कर लिया है । जिन पगडंडियोंको श्री वाडियाने पहलेसे कही ज्यादा साफ-सुथरा और सुरक्षित बना दिया है, बर्बर्क-सरकार उन्हें मरम्मत कराकर अच्छी हालतमें रक्खा करेगी । साथ ही, दूसरी जिन बातोंका श्री वाडियाने जिक्र किया है उनकी भी वह व्यवस्था करेगी । श्री वाडियाने जो कुछ किया उसका विस्तृत विवरण भेजनेके लिए मैंने उन्हें लिखा था । ऐसा मालूम पड़ता है कि पगडंडिया बनानेमें मजदूरोंके साथ खुद उन्होंने भी काम किया और उनके रोड-इजीनियर खुद वही बने । अपनी जेबसे उन्होंने २००६० से ज्यादा रुपया खर्च किए और १२५ ६० उनके दो मित्रोंने दिए । मुझे इस बातका पक्का भरोसा है कि अपनी किताब लिखना स्थगित करके श्री वाडियाने कुछ खोया नहीं है, क्योंकि बहुत संभवतः अब उसमें उनकी विलकुल अमली उदारताका फल भी मिल जायगा । अपने पास बची हुई रकममेंसे दानस्वरूप कुछ देनेका तो फैशन बन गया है, लेकिन रुपएकी तरह अपना परिश्रम लोग नहीं देते । जो ऐसा करते हैं वे अपने दानका यथासंभव सर्वोत्तम उपयोग करते हैं । आशा है कि पहाड़ोंपर जानेवाले दूसरे लोग भी श्री वाडियाके सुंदर उदाहरणका अनुकरण कर उन गरीबोंकी हालतका अध्ययन करके सुधारनेकी कोशिश करेंगे, जो बिना कोई शिकायत किए अक्सर

किसी तरह पेट भरने लायक मजूरी पर ही काम करते हैं । (ह० मे०, २६ ७ ३६)

: १६० :

वालीग्रम्मा आर० मनुस्वामी मुदिलायर

एक दूसरी बहन भयकर बूखार लेकर (जेलसे) बाहर निकली, जिसने थोड़े ही दिन बाद उसे परमात्माके घर पहुँचा दिया । उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ ? वालीग्रम्मा आर० मनुस्वामी मुदिलायर अठारह वर्षकी बालिका थी । मैं उसके पास गया तब वह विस्तरमें उठ भी नहीं सकती थी । कद ऊँचा था । उसका लकड़ीके-जैसा शरीर डरावना मालूम होता था ।

मैंने पूछा—“वालीग्रम्मा, जेल जानेपर पश्चाताप तो नहीं है ?”

“पश्चाताप क्यों हो ! अगर मुझे फिर गिरफ्तार करें तो मैं पुनः इसी क्षण जेल जानेकी तैयार हूँ ।”

“पर इसमें यदि मौत आ जाय तो ?”

“भले ही आवे न ! देशके लिए मरना किसे न अच्छा लगेगा ?”

इस बातचीतके कुछ दिन बाद वालीग्रम्मा की मृत्यु हो गई । देह चला गया, पर वह बाली तो अपना नाम अमर कर गई । इसकी मृत्युपर शोक प्रकट करनेके लिए म्यान-स्थानपर शोक-सभाएँ हुईं और कौमने इस पवित्र देवीका स्मारक बनानेके लिए एक ‘वालीग्रम्मा हॉल’ नामक भवन बनवानेका निश्चय किया । पर कौमने इस हॉलको बनवा कर अपने धर्मका पालन अभी तक नहीं किया । उसमें कई विघ्न उपस्थित हो गये । कौमने फूट हो गई । मुख्य कार्यकर्ता एकके बाद एक वहाँ चले गये ।

पर वह ईंट-पत्थरका स्मारक बने, या न भी बने, वालीग्रम्माकी सेवाका नाश नहीं हो सकता। इस सेवाका हॉल तो उसने स्वयं अपने हाथोंसे बना रक्खा है। आज भी उसकी वह मूर्ति कितने ही हृदयोमें विराज रही है। जहातक भारतवर्षका नाम रहेगा वहातक दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासमें वालीग्रम्माका नाम भी अमर रहेगा। (द० अ० स०)

..

.

...

इन बहनोका बलिदान विशुद्ध था। उनका जेल जाना उनका आर्त-नाद था, शुद्ध यज्ञ था। ऐसी शुद्ध हार्दिक प्रार्थनाको ही प्रभु सुनते हैं। यज्ञकी शुद्धि ही में उसकी सफलता है। भगवान तो भावनाके भूखे हैं। भक्ति-पूर्वक अर्थात् नि स्वार्थ भावसे अर्पित किया हुआ पत्र, पुष्प और जल भी परमात्माको प्रिय है। उसे वे सप्रेम अगीकार करके करोड़ों गुना फल देते हैं। सुदामाके मुट्ठीभर चावलके बदलेमें उसकी वर्षोंकी भूख भाग गई। अनेकके जेल जानेसे चाहे कोई फल न निकले, मगर एक शुद्धात्माका भक्तिपूर्ण समर्पण किसी समय निष्फल नहीं हो सकता। कौन कहता है कि दक्षिण अफ्रीकामें किस-किसका यज्ञ सफल हुआ, पर इतना हम जरूर जानते हैं कि वालीग्रम्माका बलिदान अवश्य ही सफल हुआ। (आ० क० १६२७)

. १६१ :

वासन्ती देवी

वेगम मुहम्मदअलीने अगोरा फडके लिए जहा-जहामें रुपया प्राप्त किया है वहासे शायद मौलाना साहब भी न ले पाते। यह बात मैं पहले ही कह चुका हू कि उनका भाषण तो मौलाना साहबमें भी बढ़िया होता

है। अब मैं पाठकोको एक रहस्य और सुनाता हूँ। बगालमें आज यह आग किसने सुलगाई? श्रीमती वामती देवी और उर्मिलादेवीने। वे खुद गली-गली खादी बेचती फिरी। यह उनकी गिरफ्तारीका प्रभाव है जो बगालका व्यान इस तरफ गया। देशबुदासके प्रचंड आत्मत्यागने भी ऐसा चमत्कार नहीं दिखाया। मेरे पास एक पत्र वहामें आया है। उसमें यही मालूम होता है। यह बात गलत नहीं हो सकती, क्योंकि स्त्री क्या है? वह साक्षात् त्यागमूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काममें जी-जानमें लग जाती है तो वह पहाड़को भी हिला देती है। (हि० न०, २५ १२ २१)

कुछ वर्ष पूर्व मैंने स्वर्गीया रमाबाई रानडेके दर्शनका वर्णन किया था। मैंने आदर्श विधवाके रूपमें उनका परिचय दिया था।

इस समय मेरे भाग्यमें एक महान् वीरकी विधवाके वैधव्यके आरम्भका चित्र उपस्थित करना बड़ा है।

वामती देवीके साथ मेरा परिचय १९१९ में हुआ है। गाढ़ परिचय १९२१ में हुआ। उनकी सरलता, चातुरी और उनके अतिथि-सत्कारकी बहुतेरी बातें मैंने सुनी थीं। उनका अनुभव भी ठीक-ठीक हुआ था। जिस प्रकार दार्जिलिंगमें देशबुदके साथ मेरा मवव घनिष्ट हुआ उसी तरह वासती देवीके साथ भी हुआ। उनके वैधव्यमें तो परिचय बहने ही बढ़ गया है। जबसे वे दार्जिलिंगसे शवको लेकर कलकत्ते आई हैं तबसे मैं कह सकता हूँ कि उनके साथ ही रहा हूँ। वैधव्यके बाद पहली मुलाकात उनके दामादके घर हुई। उनके आस-पास बहुतेरी बहने बैठी थीं। पूर्वश्रममें तो जब मैं उनके कमरेमें जाता तो खुद वही सामने आती और मुझे बुलानी। वैधव्यमें मुझे क्या बुलाती? पुतलीकी तरह स्तम्भित बैठी अनेक ब्रह्मोंमेंसे मुझे उन्हें पहचानना था। एक मिनट तक तो मैं खोजता ही रहा। मागमें सिंदूर, ललाटपर कुकुम, मुहमें पान, हाथमें चूड़िया और साड़ीपर लैस, हँस-मुख चेहरा—इनमेंमें एक भी चिन्ह मैं

न देखू तो वासती देवीको किस तरह पहचानू ? जहाँ मैंने अनुमान किया था कि वे होंगी वहाँ जाकर बैठ गया और गौरसे मुख-मुद्रा देखी । देखना असह्य हो गया । चेहरा तो पहचानमें आया । रुदन रोकना अशभव हो गया । छातीको पत्थर बनाकर आश्वासन देना तो दूर ही रहा ।

उनके मुखपर सदा-शोभित हास्य आज कहा था ? मैंने उन्हें सात्वना देने, रिझाने और बातचीत करानेकी अनेक कोशिशें की । बहुत समयके बाद मुझे कुछ सफलता मिली ।

देवी जरा हँसी ।

मुझे हिम्मत हुई और मैं बोला ।

‘आप रो नहीं सकती । आप रोओगी तो सब लोग रोवेंगे । मोना (बड़ी लडकी) को बड़ी मुश्किलसे चुपकी रक्खा है । बेबी (छोटी लडकी) की हालत तो आप जानती ही है । सुजाता (पुत्रवधू) फूट-फूटकर रोती थी, सो बड़े प्रयाससे शांत हुई है । आप दया रखिएगा । आपमें अब बहुत काम लेना है ।’

वीरागनाने दृढता-पूर्वक जवाब दिया

“मैं नहीं रोऊंगी । मुझे रोना आता ही नहीं ।”

मैं इसका मर्म समझा, मुझे सतोष हुआ ।

रोनेसे दुःखका भार हल्का हो जाता है । इस विधवा बहनको तो भार हल्का नहीं करना था, उठाना था । फिर रोती कैसे ?

अब मैं कैसे कह सकता हूँ—“लो, चलो हम भाई-बहन पेट भर रो ले और दुःख कम कर ले ?”

हिंदू विधवा दुःखकी प्रतिमा है । उसने ससारके दुःखका भार अपने सिर ले लिया है । उसने दुःखको सुख बना डाला है । दुःखको धर्म बना डाला है ।

वामती देवी सब तरहके भोजन करती थी । १९२० तकके समयमें

उनके यहा छप्पन भोग होते थे और सैकड़ो लोग भोजन करते थे। पान-के बिना वे एक मिनट नहीं रह सकती थी। पानकी डिविया पास ही पड़ी रहती थी।

अब शृगार-भावका त्याग, पानका त्याग, मिष्ठानोका त्याग, माम-मत्स्यका त्याग, केवल पतिका ध्यान, परमात्माका ध्यान।

इस दुखको सहन करना धर्म है या अधर्म ? और धर्मोंमें तो ऐसा नहीं देखा जाता। हिंदू-धर्मशास्त्रियोंने भूल तो न की हो ? वासन्ती देवीको देखकर मुझे इसमें भूल नहीं दिखाई देती, बल्कि धर्मकी शुद्ध भावना दिखाई देती है। वैधव्य हिंदू-धर्मका शृगार है। धर्मका भूषण बैराग्य है, वैभव नहीं। दुनिया भले ही और कुछ कहे तो कहती रहे।

परंतु हिंदू शास्त्र किस वैधव्यकी स्तुति और स्वागत करता है ? १५ वर्षकी मुग्धाके वैधव्यका नहीं जो कि विवाहका अर्थ भी नहीं जानती। बाल-विधवाओंके लिए वैधव्य धर्म नहीं, अधर्म है। वासन्ती देवीको मदन म्बद आकर ललचावे तो वह भस्म हो जाय। वासन्ती देवीके शिवकी तरह तीसरी आख है। परंतु पंद्रह वर्षकी बालिका वैधव्यकी गोभाको क्या समझ सकती है ? उसके लिए तो वह अत्याचार ही है। बाल-विधवाओंकी वृद्धिमें मुझे हिंदू-धर्मकी अवनति दिखाई देती है। वासन्ती देवी-जैनीके वैधव्यमें मैं शुद्धधर्मका पोषण देखता हूँ। वैधव्य सब तरह, सब जगह, सब समय, अनिवार्य सिद्धांत नहीं है। वह उस स्त्रीके लिए धर्म है जो उसकी रक्षा करती है।

रिवाजके कुएमें तैरना अच्छा है। उसमें डूबना आत्महत्या है।

जो बात स्त्रीके सबबमें वही बात पुरुषके सबबमें होनी चाहिए। रामने यह कर दिखाया। मती सीताका त्याग भी वे सह सके। अपने ही किए त्यागसे खुद ही जन्मे। जबसे सीता गई तबसे रामचंद्रका तेज घट गया। सीताके देहका तो त्याग उन्होंने किया पर उसे अपने हृदयकी स्वामिनी बना लिया। उस दिनसे उन्हें न तो शृगार भाया, न दूसरा

वैभव । कर्तव्य समझकर तटस्थताके साथ राज्यकार्य करते हुए शांत रहे ।

जिस बातको आज वासती देवी मह रही है, जिसमेसे वे अपने विलासको हटा सकती है, वे बातें जबतक पुरुष न करेंगे तबतक हिंदू धर्म अधूरा है । 'एकको गूँड और दूसरेको थूहर' यह उन्टा न्याय ईश्वरके दरबारमें नहीं हो सकता । परंतु आज हिंदू पुरुषोंने इस ईश्वरीय कानूनको उलट दिया है । स्त्रीके लिए वैधव्य कायम रखा है और अपने लिए श्मशान-भूमिमें ही दूसरे विवाहकी योजना करनेका अधिकार ।

वामती देवीने अबतक किसीके देखते, आसूकी एक वूदतक नहीं गिराई है । फिर भी उनके चेहरेपर तेज तो आ ही नहीं रहा है । उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है कि मानो भारी बीमारीसे उठी हो । यह हालत देखकर मैंने उनसे निवेदन किया कि थोड़ा समय बाहर निकलकर हवा खाने चलिए । मेरे साथ मोटरमें तो बैठी, पर बोलने व्यो लगी ? मैंने कितनी ही बातें चलाईं—वे मुनती रही । पर खुद उसमें बराय नाम शरीक हुई । हवाखोरी की तो, पर पछताई । सारी रात नीद न आई । "जो बात मेरे पतिको अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनीने की । यह क्या शोक है ?" ऐसे विचारोंमें रात गई । भोवल (उनका लडका) मुझे यह खबर दे गया । आज मेरा मीनवार है । मैंने कागजपर लिखा है—"यह पागलपन हमें माताजीके सिरसे निकालना होगा । हमारे प्रियतमको प्रिय लगनेवाली बहुतेरी बातें हमें उसके वियोगके वाद करनी पड़ती हैं । माताजी विलासके लिए मोटरमें नहीं बैठी थी, केवल आरोग्यके लिए बैठी थी । उन्हें स्वच्छ हवाकी बहुत जरूरत थी । हमें उनका बल बढ़ाकर उनके शरीरकी रक्षा करनी होगी । पिताजीके कामको चमकाने और बढ़ानेके लिए हमें उनके शरीरकी आवश्यकता है । यह माताजीसे कहना ।"

"माताजीने तो मुझसे कहा था कि यह बात ही आपसे न कही जाय ।

पर मुझसे न रहा गया । अभी तो यही उचित मालूम होता है कि आप उन्हें मोटरमें बैठानेके लिए न कहें ।"—भोवलने कहा ।

वेचारा भोवल ! किसीका लौटाया न लौटनेवाला लडका आज बकरी जैसा बनकर बैठा है । उसका कल्याण हो ।

पर इस साध्वी विधवाका क्या ? वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है । सुधन्वा खोलते हुए तेलके कड़ाहमे भटकता था और मुझ-जैसे दूर रहकर देखनेवाले उसके दुःखकी कल्पना करके कापते थे । सती स्त्रियो, अपने दुःखको तुम सभालकर रखना ! वह दुःख नहीं, सुख है । तुम्हारा नाम लेकर बहुतेरे पार उतर गये हैं और उतरेंगे ।

वामती देवीकी जय हो ! (हि० न०, २७ २५)

८

: १६२ :

गणेशशंकर विद्यार्थी

गणेशशंकर विद्यार्थीकी मृत्यु हम सबकी स्पर्धाके योग्य थी । उनका रक्त वह सीमेष्ट है, जो अततोक्तत्वा दोनो जातियोको जोड़ेगा । कोई पैक्ट या समझौता हमारे दिलोको नहीं जोड़ेगा, पर जैसी वीरता गणेशशंकर विद्यार्थीने बताई है, आखिरकार वह अवश्य ही पाषाण-से-पाषाण हृदयोको पिघलावेगी, और पिघलाकर एक करेगी । पर यह जहर, किसी तरह क्यों न हो, इतना गहरा फैला गया है, कि गणेशशंकर विद्यार्थीके ममान महान, आत्मत्यागी और नितात वीर पुरुषका रक्त भी, आज तो इमे धो बहानेके लिए शायद काफी नु हो । अगर भविष्यमे ऐसा मौका फिर आवे तो इस भव्य बलिदानमे हम वैसा ही प्रयत्न करनेकी प्रेरणा प्राप्त करें । मैं उनकी दुःखिनी विधवा और उनके बच्चोके साथ अपनी

आंतरिक समवेदना प्रकट नहीं करता, पर गणेशशकर विद्यार्थीकी योग्य पत्नी और सतानके नाते उन्हें बघाई देता हूँ। वह मरे नहीं है। आज वह तबसे कहीं अधिक सच्चे रूपमें जी रहे हैं, जब हम उन्हें भौतिक शरीरमें जीवित देखते थे और पहचानते न थे। (हि० न०, १४.३१)

...

...

...

तीन कार्यकर्त्ता—दो हिंदू और एक मुसलमान—दगा मिटानेके खयालसे गये और उसी कोशिशमें काम आये। मुझे उनकी मौतका दुःख नहीं होता। रुलाई नहीं आती। इसी तरह श्री गणेशशकर विद्यार्थीने कानपुरके दगेमें अपनी जान कुरवान की थी। दोस्तोंने उनको रोका और कहा था, “दगेकी जगह न जाइए। वहा लोग पागल हो गये हैं। वे आपको मार डालेंगे।” लेकिन गणेशशकर विद्यार्थी इस तरह डरनेवाले नहीं थे। उन्हें यकीन था कि उनके जानेसे दगा जरूर मिटेगा। वे वहा पहुँचे और दगेके जोशमें पागल बने लोगोंके हाथों मारे गये। उनकी मौतके समाचार सुनकर मुझे खुशी ही हुई थी। यह सब मैं आपको भड़कानेके लिए नहीं कहता। मैं तो आपको यह समझाना चाहता हूँ कि आप मरनेका पाठ सीख ले तो सब खैर-ही-खैर है। अगर गणेशशकर विद्यार्थी, वसंतराव और रज्जवअली-जैसे कई नौजवान निकल पडे तो दगे हमेशाके लिए मिट जाय। (ह० से०, १४.७.३६)

: १६३ :

विनोबा भावे

श्री विनोबा भावे कौन हैं ? मैंने उन्हें ही इस सत्याग्रहके लिए क्यों चुना ? और किसीको क्यों नहीं ? मेरे हिंदुस्तान लौटनेपर सन् १९१६

में उन्होंने कालिज छोड़ा था। वे मस्कृतक पंडित हैं। उन्होंने आश्रममें शुरूसे ही प्रवेश किया था। आश्रमके सबसे पहले सदस्योंमेंसे वे एक हैं। अपने मस्कृतक अध्ययनको आगे बढ़ानेके लिए वे एक वर्षकी छुट्टी लेकर चले गये। एक वर्षके बाद ठीक उसी घड़ी, जबकि उन्होंने एक वर्ष पहले आश्रम छोड़ा था, चुपचाप आश्रममें फिर आ पहुँचे। मैं तो भूल ही गया था कि उन्हें उस दिन आश्रममें वापस पहुँचना था। वे आश्रममें सब प्रकारकी सेवा-प्रवृत्तियों—रमोर्डमें लगाकर पाखाना सफाईतक—में हिस्सा ले चुके हैं। उनकी स्मरण-शक्ति आश्चर्यजनक है। वे स्वभावसे ही अध्ययनशील हैं। पर अपने समयका ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा वे कातनेमें ही लगाते हैं और उममें ऐमे निष्णात हो गये हैं कि बहुत ही कम लोग उनकी तुलनामें रखे जा सकने हैं। उनका विश्वास है कि व्यापक कनाईको सारे कार्यक्रमका केंद्र बनानेसे ही गावोंकी गरीबी दूर हो सकती है। स्वभावमें ही शिक्षक होनेके कारण उन्होंने श्रीमती आशादेवीको दम्न-कारीके द्वारा बुनियादी तालीमकी योजनाका विकास करनेमें बहुत योग दिया है। श्री विनोदाने कताईको बुनियादी दस्तकारी मानकर एक पुस्तक भी लिखी है। वह बिलकुल मौलिक चीज है। उन्होंने हँसी उड़ानेवालोंको भी यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि कताई एक ऐसी अच्छी दस्तकारी है जिसका उपयोग बुनियादी तालीममें बखूबी किया जा सकता है। तकली कातनेमें तो उन्होंने क्रांति ही ला दी है और उसके अंदर छिपी हुई तमाम शक्तियोंको खोज निकाला है। हिंदुस्तानमें हाथकताईमें इतनी संपूर्णता किसीने प्राप्त नहीं की जितनी कि उन्होंने की है।

उनके हृदयमें छुआछूतकी गंधतक नहीं है। सांप्रदायिक एकतामें उनका उतना ही विश्वास है जितना कि मेरा। इस्लामधर्मकी भूवियोंको समझनेके लिए उन्होंने एक वर्षतक कुरानशरीफका मूल अरबीमें अध्ययन किया। इसके लिए उन्होंने अरबी भी सीखी। अपने पड़ोसी मुसलमान

भाइयोसे अपना सजीव संपर्क बनाए रखनेके लिए उन्होंने इसे आवश्यक समझा ।

उनके पास उनके शिष्यो और कार्यकर्ताओका एक ऐसा दल है जो उनके इशारेपर हर तरहका बलिदान करनेको तैयार है । एक युवकने अपना जीवन कोढियोकी सेवामे लगा दिया है । उसे इस कामके लिए तैयार करनेका श्रेय श्री विनोबाको ही है । औपधियोका कुछ भी ज्ञान न होनेपर भी अपने कार्यमे अटल श्रद्धा होनेके कारण उसने कुष्ठरोगकी चिकित्साको पूरी तरह समझ लिया है । उसने उनकी सेवाके लिए कई चिकित्साघर खुलवा दिए हैं । उसके परिश्रमसे सैकड़ो कोढी अच्छे हो गये हैं । हाल हीमे उसने कुष्ठ-रोगियोके इलाजके सबधमे एक पुस्तिका मराठीमे लिखी है ।

विनोबा कई वर्षोंतक वर्धाके महिला-आश्रमके संचालक भी रहे हैं । दरिद्रनारायणकी सेवाका प्रेम उन्हे वर्धाके पासके एक गावमे खींच ले गया । अब तो वे वर्धासे पाच मील दूर पौनार नामक गावमें जा बसे हैं और वहासे उन्होंने अपने तैयार किए हुए शिष्योके द्वारा गाववालोके साथ संपर्क स्थापित कर लिया है । वे मानते हैं कि हिंदुस्तानके लिए राजनैतिक स्वतंत्रता आवश्यक है । वे इतिहासके निष्पक्ष विद्वान हैं । उनका विश्वास है कि गाववालोको रचनात्मक कार्यक्रमके बगैर सच्ची आजादी नहीं मिल सकती और रचनात्मक कार्यक्रमका केन्द्र है खादी । उनका विश्वास है कि चरखा अहिंसाका बहुत ही उपयुक्त बाह्यचिह्न है । उनके जीवनका तो वह एक अंग ही बन गया है । उन्होंने पिछली सत्याग्रहकी लडाइयोमे सक्रिय भाग लिया था । वे राजनीतिके मंचपर कभी लोगोके सामने आये ही नहीं । कई साथियोकी तरह उनका यह विश्वास है कि सविनय आज्ञा-भंगके अनुसंधानमे शांत रचनात्मक काम कही ज्यादा प्रभावकारी होता है, इसकी अपेक्षा कि जहा आगे ही राजनैतिक भाषणोका अखंड प्रवाह चल रहा है वहा जाकर और भाषण दिए जाये । उनका पूर्ण विश्वास है कि

चरखेमें हादिक थद्धा रखे विना और रचनात्मक कार्यमें सक्रिय भाग लिए
बगैर अहिंसक प्रतिकार सम्भव नहीं ।

श्री विनोबा युद्धमात्रके विरोधी हैं । परन्तु वे अपनी अतरात्माकी
तरह उन दूसरीकी अतरात्माका भी उतना ही आदर करने हैं जो युद्धमात्रके
विरोधी तो नहीं हैं, परन्तु जिनकी अतरात्मा इस वर्तमान युद्धमें गरीब
होनेकी अनुमति नहीं देती । अगरचें श्री विनोबा दोनों दलोंके प्रतिनिधिके
तौरपर हैं यह हो सकता है कि सिर्फ हालके इस युद्धमें विरोध करनेवाले
दलका खास एक और प्रतिनिधि चुननेकी मुझे आवश्यकता अनुभव
हो । (ह० से०)

विनोबा लिख सकते हैं मगर वह कभी न लिखेंगे । शास्त्र-
रचनाके लिए समय निकालना उनकी दृष्टिमें अव्यर्थ होगा । मैं भी उसे
अव्यर्थ समझूंगा । ससारको शास्त्रकी भूख नहीं । नच्चे कर्मकी है और
हमेगा रङ्गेगी । जो इस भूखको मिटा सकता है, वह शास्त्र-रचनामें न पड़े ।
(ह० मे०, ३ ३ ४६)

: १६४ :

रशब्रुक विलियम्स

एक पत्र-नेसकने 'वावे क्रानिकल' पत्रमें काट कर यह कतरन भेजी है

“मि० रशब्रुक विलियम्सने 'माचेस्टर गार्डियन' में एक पत्र लिखकर
यह जाहिर किया है कि गये वर्षके आखिरी महीनोंके दरमियान कांग्रेसके
दक्षिण पक्षीय नेता एक ऐसा निश्चित रख अतिथार करते जा रहे थे कि
जिससे प्रातीय सरकारोंसे मिलते-जुलते किसी-न-किसी सम्मेलनपर केन्द्रीय

सरकारके सबधमें भी पहुचनेकी बात सरकारको सुभा सकते थे । इसलिए कांग्रेसको अपनी ताकतका हिसाब लगाना पड़ा । लीगके प्रतापसे, मुसलमानोका समर्थन तो उन्हें प्राप्त ही नहीं और बगैर ऐसे समर्थनके, जबतक कुछ नए मित्र न मिल जाय, तबतक केन्द्रीय सरकार बनाना नामुमकिन है । इसी वजहसे देशी राज्योंपर सारा ध्यान केंद्रित करना कांग्रेसके लिए जरूरी हो गया, जिससे देशी राज्योंसे ऐसे अनुकूल प्रतिनिधि प्राप्त किए जा सकें, जोकि कांग्रेसके कार्यक्रमसे सहानुभूति रखते हो ।”

मि० रशब्रुक विलियम्स भारतके पुराने ‘शत्रु’ हैं । असहयोगके दिनोमे हिंदुस्तानकी सरकारी वार्षिक पुस्तक इंडियन ईयर बुकका उन्होंने संपादन किया था, जिसमे अपनी दिमागी उपजकी उन्होंने कितनी ही बातें लिखी थी और जिन हकीकतोका उल्लेख वे छोड़ नहीं सके, उनको उन्होंने अपने रगमें रग दिया था । अखबारोमे प्रकाशित रिपोर्ट अगर सही है तो कहना चाहिए कि उन्होंने फिर अपना वही पुराना भेस ‘माचेस्टर गार्डीअन’ मे दिखाया है । (ह० से०, ११ ३ ३६)

: १६५ :

स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण और विवेकानन्दके बारेमे रोलाकी पुस्तके ध्यान और दिलचस्पीके साथ पढ़ ली है । रामकृष्णके बारेमे हमेशा पूज्यभाव तो रहा ही था । उनके बारेमे पढ़ा तो थोड़ा ही था, मगर कई चीजे भक्तोसे सुनी थी । उनपरसे भाव पैदा हुआ था । यह नहीं कह सकता कि रोलाकी पुस्तके पढ़नेसे उसमे वृद्धि हुई है । असलमे रोलाकी दोनो पुस्तके पश्चिमके लिए लिखी गई है । यह तो नहीं कहूंगा कि हमे उनसे कुछ नहीं मिल सकता ।

मगर मुझे बहुत कम मिला है। जिन बातोंका मुझपर प्रभाव पड़ा था, वे भी रोलाकी पुस्तकोंमें हैं। उसके सिवा जो नई बातें हैं उनसे प्रभावमें कोई वृद्धि नहीं हुई। मुझे यह नहीं लगा कि जितने भक्त रामकृष्ण थे, उतने विवेकानन्द भी थे। विवेकानन्दका प्रेम विस्तृत था, वे भावनाने भरपूर थे और भावनामें वह भी जाते थे। यह भावना उनके ज्ञानके लिए हिरण्यमय पात्र थी। धर्म और राजनीतिमें उन्होंने जो भेद किया था, वह ठीक नहीं था। मगर इतने महान व्यक्तिकी आलोचना कैसी? और आलोचना करने बैठ जाए तो कैसी भी आलोचना की जा सकती है। हमारा धर्म तो यह है कि ऐसे व्यक्तियोंसे जो कुछ लिया जा सके वह ले ले। तुलसीदासका जड-चेतनवाला दोहा मेरे जीवनमें अच्छी तरह रम गया है, इसलिए आलोचना करना मुझे पसन्द ही नहीं आता। मगर मैं जानता हू कि मेरे मनमें भी कोई आलोचना रह गई हो तो उसे जाननेकी तुम्हें इच्छा हो सकती है। इसीलिए मैंने इतना लिख दिया है। मेरे मनमें शका नहीं है कि विवेकानन्द महान सेवक थे। यह हमने प्रत्यक्ष देख लिया कि जिसे उन्होंने सत्य मान लिया, उसके लिए अपना शरीर गला डाला। सन् १९०१ में जब मैं बेलूर मठ देखने गया था, तब विवेकानन्दके भी दर्शन करनेकी वृत्ति इच्छा थी। मगर मठमें रहनेवाले स्वामीने बताया कि वे तो बीमार हैं। शहरमें है और उनसे कोई मिल नहीं सकता। इसलिए निराशा हुई थी। मुझमें जो पूज्यभाव रहा है, उसके कारण मैं बहुत-सी आपत्तियोंसे बच गया हू। उस समय कोई ऐसा प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं था, जिससे मैं भावनाके साथ मिलने की उम्मीद न जाता था। और ज्यादातर जगहोंपर मैं भी, कलकत्तेके लवे रास्तोंमें, पैदल ही जाता था। इसमें भक्तिभाव था, रूपण वचानेकी वृत्ति नहीं थी। वैसे मेरे स्वभावमें यह चीज भी हमेशा रही तो है ही।

(म० डा०, १७३२)

: १८६ :

वेरस्टेन्ट

‘प्रिटोरिया न्यूज’ के संपादक वेरस्टेन्ट भी खुले दिलसे भारतीयोंकी सहायता करने थे। एक बार प्रिटोरियाके टाउन हालमें वहाके मेयरकी अध्यक्षतामें गोरोकी एक विराट सभा हुई थी। उसका हेतु था एशियानिवासियोंकी बुराई और खूनी कानूनकी हिमायत करना। अफेले वेरस्टेन्टने इसका विरोध किया। अध्यक्षने उन्हें बैठ जानेकी आज्ञा दी, पर उन्होंने बैठनेसे साफ इन्कार कर दिया। इस पर गोरोने उनके बदनपर हाथ डालनेकी धमकी भी दी, तथापि वे टाउन-हालमें उसी प्रकार नरसिंहकी तरह गरजते रहे। आखिर सभाको अपना प्रस्ताव बिना पास किए ही उठना पड़ा। (द० अ० स० १९२५)

: १८७ :

अल्बर्ट वेस्ट

सबसे पहले अल्बर्ट वेस्टका नाम उल्लेखनीय है। कोमके साथ तो उनका संबंध युद्धके पहले हीसे हो गया, पर मुझसे इससे भी पहले उनका परिचय हुआ था। जब मैंने जोहासबर्गमें अपना दफ्तर खोला उस समय मेरे साथमें बालबच्चे नहीं थे। पाठकोको याद होगा कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका तार मिलते ही मैं एकदम खाना हो गया था और सो भी एक सालमें लौट आनेके विचारसे। जोहासबर्गमें एक निराश्रित भोजन-गृह था। उसमें मैं नियमसे सुबह-शाम भोजनके लिए जाता था।

वेस्ट भी वहीं आते थे । वही मेरा उनका परिचय हुआ । वह एक दूसरे गोरेके भागीदार बनकर एक छापाखाना चला रहे थे । सन् १९०४ में जोहासवर्गके भारतीयोंमें भीषण प्नेगका प्रकोप हुआ था । मैं रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषामें लगा और उसके कारण उस भोजन-गृहका मेरा जाना अनियमित हो गया । जब कभी जाता तो इस ख्यालसे कि मेरे मनमर्गका भय दूसरे गोरेको न हो, मैं सबसे पहले ही भोजन कर लेता था । जब लगा-तार दो दिन तक उन्होंने मुझे नहीं देखा तो वह घबड़ा गये । तीसरे दिन गुवह जब मैं हाथ-मुह धो रहा था वेस्टने मेरे कमरेका दरवाजा खटखटाया । दरवाजा खोलते ही मैंने वेस्टका प्रसन्न चेहरा देखा ।

उन्होंने हँसकर कहा—“आपको देखते ही मेरे दिलकी तसल्ली हुई । आपको भोजन-गृहमें न देखकर मैं घबरा गया था । अगर मुझसे आपकी कोई सहायता हो सकती हो तो जरूर कहें ।”

मैंने हँसते हुए उत्तर दिया—“रोगियों की शुश्रूषा करोगे ?”

“क्यों नहीं ? जरूर, मैं तैयार हूँ ।”

इस विनोदके बीच मैंने कुछ सोच लिया । मैंने कहा—“आपसे मैं दूसरे प्रकारके उत्तरकी अपेक्षा ही नहीं करता था । पर इस कामके लिए तो मेरे पास बहुतसे सहायक हैं । आपसे तो मैं इसमें भी कठिन काम लेना चाहता हूँ । मदनजीत यहीपर रुका हुआ है । ‘इंडियन ओपीनियन’ और प्रेस निराधार है । मदनजीतको मैंने प्नेगके कामके लिए रख छोड़ा है । आप अगर डर्वन जाकर उस कामको सभाल ले तो सचमुच यह बड़ी भारी सहायता होगी । पर मैं आपको अधिक नहीं दे सकूँगा । सिर्फ १० पाँड मासिक वेतन । हा, अगर प्रेसमें कुछ लाभ हो तो उसमें आपका आधा हिस्सा रहेगा ।”

“काम अवश्य जरा कठिन है । मुझे अपने भागीदारकी आज्ञा लेनी होगी । कुछ उगाही भी बाकी है । पर कोई चिंताकी बात नहीं । आज शामतककी मोहलत आप मुझे दे सकते हैं ?”

“अवश्य, हम लोग छ वजे शामको पार्कमें मिलेंगे ।”

“जरूर, मैं भी आ पहुँचूँगा ।”

छ वजे शामको हम मिले । भागीदारकी आज्ञा भी मिल गई । उगाही कामको मेरे जिम्मे करके दूसरे दिन शामकी ट्रेनमें मि० वेस्ट रवाना हो गये । एक महीनेके अंदर उनकी यह रिपोर्ट आई—

“इस छापेखानेमें नफा तो नामकी भी नहीं है । नुकसान-ही-नुकसान है । उगाही बहुत बाकी है; लेकिन हिसाबका कोई ठिकाना नहीं है । ग्राहकोके नाम भी पूरे नहीं लिखे गये हैं । मैं यह शिकायत करनेके खयालसे नहीं लिखता । आप विश्वास रखिए, मैं लाभके लालचसे यहाँ नहीं आया हूँ । अतः इस कामको भी नहीं छोड़ूँगा । पर मैं आपको यह तो सूचित किये ही देता हूँ कि बहुत दिनतक आपको क्षति-पूर्ति करनी होगी ।”

ग्राहकोको बढाने तथा मेरे साथ कुछ बातचीत करनेके लिए मदनजीत जोहासबर्ग आये थे । मैं हर महीने थोड़े-बहुत पैसे देकर घाटेकी पूर्ति किया ही करता था । इसलिए मैं निश्चय रूपसे यह जानना चाहता हूँ कि और कितना गहरा इस काममें मुझे उतरना होगा ? पाठकोसे मैं यह तो पहले ही कह चुका हूँ कि मदनजीतको छापेखानेका कोई अनुभव नहीं था । इसलिए मैं इस बातके विचार ही में था कि किसी अनुभवी आदमीको उनके साथमें रख दिया जाय तो बड़ा अच्छा हो । यह विचार मैं कर रहा था कि इधर प्लेगका प्रकोप शुरू हो गया । इस काममें तो मदनजीत बड़े कुशल और निर्भय आदमी थे, इसलिए मैंने उनको यही रख लिया । इसलिए वेस्टके स्वाभाविक प्रश्नका उपयोग मैंने कर लिया और उन्हें समझा दिया कि प्लेगके कारण ही नहीं, बल्कि स्थायी रूपसे उन्हें यहाँ रखना होगा । इसलिए उन्होंने उपर्युक्त रिपोर्ट भेजी । पाठक जानते ही हैं कि इसलिए छापेखानेको तथा पत्रको भी फिनिक्स ले जाना पडा । वेस्टके १० पौंड मासिक वेतनके बदले फिनिक्समें तीन पौंड हो गये । पर इन परिवर्तनोंमें वेस्टकी पूरी सम्मति थी । मुझे तो एक दिन भी ऐसा अनुभव

नहीं हुआ कि उन्हें कभी यह विचार ही पैदा हुआ हो कि मेरी आजीविका कैसे चलेगी। धर्मका अभ्यास न होनेपर भी वह एक अत्यंत धार्मिक मनुष्य है। वह बड़े ही स्वतंत्र स्वभावके मनुष्य है। जो वस्तु उन्हें जैसी दीखे उसे वैसी ही कहनेवाले है। कालेको कृष्णवर्णी नहीं, काला ही कहेंगे। उनकी रहन-सहन बड़ी सीधी-सादी थी। हमारे परिचयके समय वह ब्रह्मचारी थे। मैं जानता हू कि वह ब्रह्मचर्यका पालन भी करते थे। कितने ही साल बाद वह इंग्लैंड गये और अपने माता-पिताका क्रिया-कर्म करके अपनी गादी भी कर लाए। मेरी सलाहसे अपने साथमें स्त्री, सास और कुंवारी बहनको भी ले आये। वे सब फिनिक्समें ही बड़ी सादगीके साथ रहते थे और हर प्रकारसे भारतीयोंमें मिल जाते थे। मिस वेस्ट अब ३५ वर्षकी हुई होगी। पर अब भी कुमारी है। वह अपना जीवन बड़ी पवित्रताके साथ व्यतीत कर रही है। उन्होंने कोई कम सेवा नहीं की। फिनिक्समें रहनेवाले गिण्डोको रखना उन्हें अग्रेजी पढ़ाना, सार्वजनिक पाकशालामें रसोई करना, मकानोंको साफ रखना, किताबें सभालना, छापाखानेमें टाइप जमाना (कम्पोज करना) तथा छापाखानेका अन्य काम करना आदि सब काम वे करती थी। इन कामोंमेंसे कभी एक कामके लिए भी इस महिलाने आनाकानी नहीं की। आजकल वह फिनिक्समें नहीं है, पर इसका कारण यह है कि मेरे भारतवर्ष लौट आनेपर उनका हल्का-सा भार भी छापाखाना नहीं उठा सकता था। वेस्टकी सासकी अवस्था इस समय ८० वर्षसे भी अधिककी होगी। वह सिलार्डका काम बहुत अच्छा जानती है। और ऐसे काममें इतनी वयोवृद्धा महिला भी पूरी सहायता करती थी। फिनिक्समें उन्हें सब दादी (ग्रैंनी) कहते थे और उनका बड़ा सम्मान करते थे। मिस वेस्टके विषयमें तो कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं है। जब फिनिक्समेंसे बहुतसे आदमी जेल चले गये तब वेस्ट कुटुम्बमें मगनलाल गांधीके साथ मिलकर फिनिक्सका सब कामकाज सभाल लिया था। पत्र और छापाखानेका बहुत-सा काम वेस्ट करते थे। मेरी तथा

अन्य लोगोकी अनुपस्थितिमें गोखलेको तार वगैरह भेजना होता तो वेस्ट ही भेजते । अतमें वेस्ट भी पकड़े गये (पर वे फौरन ही छोड़ दिये गये थे) तब गोखले घबराये और एन्ड्रयूज तथा पियर्सनको उन्होंने भेजा । (द० अ० स०, १९२५)

वेस्टका जन्म विलायतके लाउथ नामक गावमें एक किसान कृटुबमें हुआ था । पाठशालामें उन्होंने बहुत मामूली शिक्षा प्राप्त की थी । वह अपने ही परिश्रममें अनुभवकी पाठशालामें पढ़कर और तालीम पाकर होशियार हुए थे । मेरी दृष्टिमें वह एक शुद्ध, सयमी, ईश्वर-भीरु साहसी और परोपकारी अंग्रेज थे । (आ० क०, १९२७)

अब, वेस्टका विवाह भी यही क्यों न मना लू ? उस समय ब्रह्मचर्य विषयक मेरे विचार परिपक्व नहीं हुए थे । इसलिए कुंवारे मित्रोका विवाह करा देना उन दिनों मेरा एक पेशा हो बैठा था । वेस्ट जब अपनी जन्मभूमिमें माता-पितासे मिलनेके लिए गये तो मैंने उन्हें सलाह दी थी कि जहां तक हो सके विवाह करके ही लौटना, क्योंकि फिनिक्स हम सबका घर हो गया था और हम सब किसान बन बैठे थे, इसलिए विवाह या वग-वृद्धि हमारे लिए भयका विषय नहीं था ।

वेस्ट लेस्टरकी एक सुदरी विवाह लाए । इस कुमारिकाके परिवारके लोग लेस्टरके जूतेके एक बड़े कारखानेमें काम करते थे । श्रीमती वेस्ट भी कुछ समयतक उस जूतेके कारखानेमें काम कर चुकी थी । उसे मैंने सुदरी कहा है, क्योंकि मैं उसके गुणोका पुजारी हूँ और सच्चा सौंदर्य, तो मनुष्यका गुण ही होता है । वेस्ट अपनी सासको भी साथ लाये थे । यह भली बुढ़िया 'अभी जिंदा है । अपनी उद्यमशीलता और हँसमुख स्वभावसे वह हम सबको शर्माया करती थी । (आ० क०, १९२७)

: १६८ :

स्वामी श्रद्धानन्द

पहाट-जैसे दीखनेवाले महात्मा मुर्शिगमके दर्शन करने और उनके गुरुकुलको देखने जब मैं गया तब मुझे बहुत शांति मिली। हरद्वारके कोलाहल और गुरुकुलकी शांतिका भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्माजीने मुझपर भरपूर प्रेमकी वृष्टि की। (आ० क०)

स्वामी श्रद्धानन्दजी पर भी लोग विश्वास नहीं करते हैं। मैं जानता हूँ कि उनकी तकरीरे ऐसी होती हैं, जिनपर कई बार बहुतोंको गुस्सा आ जाता है। परन्तु वे भी हिन्दू-मुस्लिम एकताको जरूर चाहते हैं, पर दुर्भाग्यसे वे यह मानते हैं कि हरएक मुसलमान आर्यसम्राज्य बनाया जा सकता है, जैसे कि शायद बहुतेरे मुसलमान मानते हैं कि हरएक गैर मुस्लिम किमी-न-किमी दिन इस्लामको कबूल कर लेगा। श्रद्धानन्दजी निरंतर और बहादुर आदमी हैं। अकेले हाथों उन्होंने गंगाजीके किनारेपर तराईके जंगलको एक जगमगाते गुरुकुलके रूपमें बदल दिया। उन्हें अपने तथा अपने कामपर श्रद्धा है, पर वे जल्दबाज हैं और थोड़ी-सी बातपर जोशमें आ जाते हैं। पर इन तमाम दोषोंके होते हुए मैं उन्हें ऐसा नहीं मानता जो समझाए न समझे। स्वामीजीको तो मैं उन्हीं दिनोंमें चाहने लगा हूँ जब मैं दक्षिण अफ्रीकामें था। हा, अब मैं उन्हें ज्यादा अच्छी तरह पहचानने लगा हूँ, पर इसमें मेरा प्रेम उनके प्रति कम नहीं हो पाया। मेरा प्रेम ही मुझमें यह कहला रहा है। (हि० न०, १६२४)

जिसकी उम्मीद थी वह हो गुजरा। कोई छ महीने हुए स्वामी श्रद्धानन्दजी सत्याग्रहाश्रममें आ कर दो-एक दिन ठहरे थे। बातचीतमें उन्होंने

मुझसे कहा था कि उनके पास जब-तब ऐसे पत्र आया करते थे जिनमें उन्हें मार डालनेकी धमकी दी जाती थी । किस सुधारकके सिरपर बोली नहीं बोली गई है ? इसलिए उनके ऐसे पत्र पानेमें अचभेकी कोई बात नहीं थी । उनका मारा जाना कुछ अनोखी बात नहीं है ।

स्वामीजी सुधारक थे । वे कर्मवीर थे, वचनवीर नहीं । जिसमें उनका विश्वास था, उसका वे पालन करते थे । उन विश्वासोके लिए उन्हें कष्ट भेलने पड़े । वे वीरताके अवतार थे । भयके सामने उन्होंने कभी मिर नहीं झुकाया । वे योद्धा थे और योद्धा रोग-गैय्या पर मरना नहीं चाहता । वह तो युद्धभूमिका मरण चाहता है ।

कोई एक महीना हुआ कि स्वामी श्रद्धानंदजी बहुत बीमार पड़े । डाक्टर असारी उनकी चिकित्सा करते थे । जितने अनुरागसे उनसे सभव था, डाक्टर असारी उनकी सेवा करते थे । इस महीनेके शुरूमें मेरे पूछनेपर उनके पुत्र प्रो० इन्द्रने तार दिया था कि स्वामीजी अब अच्छे हैं और मेरा प्रेम और दुआ मागते हैं । मैं उनके बिना मागे ही उनपर प्रेम और उनके लिए भगवानसे प्रार्थना करता ही रहता था ।

भगवानको उन्हें गहीदकी मौत देनी थी । इसलिए जब वे बीमार ही थे तभी उस हत्यारेके हाथ मारे गये, जो इस्लामपर धार्मिक चर्चाके नामपर उनसे मिलना चाहता था, जो स्वामीजीकी प्रेरणासे आने दिया गया, जिसने प्यास मिटानेको पानी मागनेके वहाने स्वामीजीके ईमानदार नौकर धर्मसिंहको पानी लेनेको बाहर हटा दिया और जिसने नौकरकी गैरहाजिरीमें विस्तर पर पड़े हुए रोगीकी छातीमें दो प्राणघातक चोटें की । स्वामीजीके अंतिम शब्दोंकी हमें खबर नहीं । लेकिन अगर मैं उन्हें कुछ भी पहचानता था तो मुझे बिलकुल सदेह नहीं है कि उन्होंने अपने परमात्मासे उसके लिए क्षमायाचना की होगी जो यह नहीं जानता था कि वह पाप कर रहा है । इसलिए गीताकी भाषामें वह योद्धा धन्य है जिसे ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है ।

मृत्यु तो हमेशा ही धन्य होती है मगर उस योद्धाके लिए तो और भी अधिक जो अपने धर्मके लिए यानी सत्यके लिए मरता है । मृत्यु कोई शैतान नहीं है । वह तो सबसे बड़ी मित्र है । वह हमे कष्टोंसे मुक्ति देती है । हमारी इच्छाके विरुद्ध भी हमे छुटकारा देती है । हमे बराबर ही नई आगाए, नए रूप देती है । वह नींदके समान मीठी है, किंतु तो भी किसी मित्रके मरनेपर शोक करनेकी चाल है । अगर कोई गृहीत मरता है तो यह रिवाज नहीं रहता । अतएव इस मृत्युपर मैं शोक नहीं कर सकता । स्वामीजी और उनके सबकी ईर्ष्याके पात्र है, क्योंकि श्रद्धानन्दजी मर जानेपर भी अभी जीते हैं । उससे भी अधिक सच्चे रूपमें वे जीते हैं, जब वे हमारे बीच अपने विनाल शरीरको लेकर घूमा करते थे । ऐसी महिमामय मृत्युपर जिस कुलमें उनका जन्म हुआ था, जिस जातिके वे थे, वे सभी धन्यताके पात्र हैं । वे वीर पुरुष थे । उन्होंने वीरगति पाई । (हि० न०, २३ १२ २६)

मेरे पास अखबारवाला आया था और कुछ जाहिर करनेका आग्रह समने दो बार किया । मैंने उसे कह दिया कि मुझसे कुछ कहना पार लगे मेरी ऐसी हालत नहीं है । श्रीमती नायडूने भी मुझे यही कहा कि कुछ सदेशा दो । उनसे भी मैंने इकार कर दिया । अब फिर मुझे यही आज्ञा होती है । इसलिए अपने उद्गार प्रकट करनेकी कोशिश करता हूँ, किंतु मेरी ऐसी दशा नहीं है कि मैं कुछ कह सकूँ । हा, तत्काल मेरे मनपर कैसा अमर हुआ यह मैं कह सकता हूँ सही । लालाजीका तार मेरे पास पहुँचते ही तुरत मैंने मालवीयजी आदिको खबर भेजी और लालाजी और स्वामीजीके सुपुत्र इद्रको तार भेजा । इस तारमें दुख या शोक प्रकट न करके मैंने तो जनाया कि यह सामान्य मृत्यु नहीं है । इस मृत्युपर मैं रो नहीं सकता । अगर्चेकि यह मृत्यु असह्य है तो भी मेरा दिल शोक करनेकी नहीं कहता । वह तो कहता है कि यह मृत्यु हम सबको मिले तो क्या ही अच्छा हो ?

स्वामी श्रद्धानन्दकी दृष्टिसे इस प्रसंगको धर्म प्रसंग कहेंगे । वे बीमार थे । मुझे तो कुछ खबर न थी, किंतु एक मित्रने खबर दी कि स्वामीजी भाग्यसे ही बच जाय तो बच जाय । पीछेसे मेरे तार के उत्तरमें उनके लडकेका तार मिला कि उन्हें धीरे-धीरे आराम हो रहा है । यह भी मालूम हुआ कि डाक्टर असारो बहुत अच्छी तरह सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं । इस प्रकारकी गंभीर बीमारीने वे बिछौनेपर पड़े थे और उस बिछौनेपर ही उनके प्राण लिए गये । मरना तो सबको है, किंतु यो मरना किस कामका । सारे हिंदुस्तानमें और पृथ्वी पर जहा-जहा हिंदुस्तानी लोग होंगे, वहा-वहा स्वामीजीके, स्वाभाविक बीमारी से, मरनेसे जो असर होता उसकी अपेक्षा इस अपूर्व मरणसे अजीब ही असर होगा । मैंने भाई इद्रको समवेदनाका एक भी तार या पत्र नहीं लिखा है । उन्हें और कुछ दूसरा कह ही नहीं सकता । इतना ही कह सकता हूँ कि तुम्हारे पिताको जो मृत्यु मिली है वह धन्य मृत्यु है ।

किंतु यह सब बात तो मैंने स्वामीजीकी दृष्टिसे, मेरी अपनी दृष्टिसे की है । मैं अनेक बार कह चुका हूँ कि मेरे लेखे हिंदू और मुसलमान दोनों ही एक हैं । मैं जन्मसे हिंदू हूँ और हिंदू धर्ममें मुझे शांति मिलती है । जब-जब मुझे अशांति हुई, हिंदू धर्ममेंसे ही मुझे शांति मिली है । मैंने दूसरे धर्मोंका भी निरीक्षण किया है और इसमें चाहे जितनी कमीया और त्रुटिया होवे तो भी मेरे लिए यही धर्म उत्तम है । मुझे ऐसा लगता है और इसीसे मैं अपनेको सनातनी हिंदू मानता हूँ । कितने सनातनियोंको मेरे इस दावेमें दुःख होता है कि विलायतसे आकर यह सुधरा हुआ आदमी हिंदू कैसा । किंतु मेरा हिंदू होनेका दावा इससे कुछ कम नहीं होता और यह धर्म मुझे कहता है कि मैं सबके साथ मित्रतासे रहूँ । इसीसे मुझे मुसलमानोंकी दृष्टि भी देखनी है ।

मुसलमानकी दृष्टिसे जब इस बातका विचार करता हूँ तो मुझे दूसरी ही बात मालूम पड़ती है । यह कांड मुसलमानके हाथ बन पड़ा धर्म-

चर्चाके वहाने घरमे प्रवेश करके उमने यह कृत्य किया। नौकरने तो कहा, “स्वामीजी बीमार हैं। आज नहीं मिल सकते।” दरवाजेपर हुज्जन हुई। स्वामीजीने मुनकर कहा, “अच्छा है, आ जाने दो।” और स्वामीजीमे उससे बात करनेकी शक्ति न रहनेपर भी उन्होंने बात की। बात करनेकी तो उनमे ताकत ही नहीं थी। स्वामीजीको तो उमे समझाकर विदा करनेको था, इसलिए बुलाकर कहा, “भाई, अच्छे हो जानेपर तुम्हे जितनी बहस करनी हो कर लेना, किन्तु आज तो बिछीनेपर पटा हू।” इस पर उमने पानी मागा। धर्मसिंहको स्वामीजीने आज्ञा दी, “इनको पानी पिला दो।” आज्ञाकारी नौकर पानी लेने जाना है तबतक तो यहा उमने रिवातवर निकाल ली। एकसे सतोष न हुआ तो दो गोली मारी। स्वामीजीने उमी समय प्राण खोए। धर्मसिंह आवाज मुनकर अपने मानिकका बचाने दौड़ा, किन्तु बचावे कौन? ईश्वरको स्वामीजीके शरीरकी रक्षा नहीं करनी थी। धर्मसिंहके ऊपर भी बार हुआ। उसे चोट लगी। वह अस्पतालमे है। मारनेवाला अब्दुल रज़ीद हिरासतमे है। ऐमे सयोगोंके बीच किए गये इस खूनमे मुसलमानोंके लिए हिंदुओंमे कैसा भाव पैदा होगा, इसका मुझे बहुत दुःख है और इसमे भी शका नहीं है कि हिंदू जनताका मुसलमानोंके प्रति उलटा रवाल होगा, क्योंकि आज दोनों जातियोंमे प्रेम नहीं है, विश्वास नहीं है।

हमारे लिए यह एक अच्छा शिक्षा-पाठ बनना चाहिए कि स्वामीजीका खून अब्दुल रज़ीदके हाथो हो। इससे हम एक-दूसरेको समझ ले।

श्रद्धानंदजी और मेरे बीच कैसा संवाद था, वह तो आज मैं यहां नहीं कहूंगा। मेरे सामने वे अपने दिलकी बातें कहा करते थे। कोई छ महीने हुए जब वे आश्रममे आये थे तब कहते थे, “मेरे पास धर्मकी कितने पत्र आते हैं। लोग धर्मकी देते हैं कि तुम्हारी जान ले ली जायगी, पर मुझे उनकी कुछ परवा नहीं।” वह तो बहादुर आदमी थे। उनसे बड़कर बहादुर आदमी मैंने मसामरे नहीं देखा। मरनेका उन्हें डर नहीं था, क्योंकि

वे सच्चे आस्तिक, ईश्वरवादी आदमी थे। इसीसे उन्होंने कहा मेरी जान अगर ले ही ली जाय, तो उसमें होना ही क्या है। (हि० न०, ६१ २७)

यह उचित ही है कि हिंदू महासभाकी ओरसे स्वामी श्रद्धानंदके स्मरणके लिए धनकी सहायता मांगी जाय। स्वामीजी मन्यास-धारणके वाद जिन कामोंके लिए जीते थे, उनके लिए चदा इकट्ठा करनेका हिंदू महासभाने निश्चय किया है। इस निश्चयके लिए मैं उसे साधुवाद देता हूँ। वे काम हैं, अस्पृश्यता-निवारण, गुद्धि और सगठन। ५ लाखकी अपील की गई है। 'अस्पृश्यता' के लिए और गुद्धि और सगठनके लिए भी उतनेकी ही। जिनका गुद्धिमें विश्वास है उन्हें इस अपीलपर सहायता देनेका पूरा अधिकार है।

मेरे लिए अछूतोंद्वाराके ही कोषकी कीमत है। इसकी अपनी निराली ही शक्ति है। हिंदू-धर्मके सुधार और इसकी सच्ची रक्षाके लिए अछूतोंद्वारा सबसे बड़ी वस्तु है। इसमें सब कुछ शामिल है और इसलिए हिंदूधर्मका यह सबसे काला दाग है। अगर यह मिट जाय तो शुद्धि और सगठनसे जो कुछ मिल सकेगा, वह सब हमें इससे अपने आपही मिल जायगा। और मैं यह इसलिए नहीं कहता कि अछूतोंकी, जिन्हें हर एक हिंदूको गले लगाना चाहिए, बहुत बड़ी सख्या है, किंतु इसलिए कि एक पुराने और असभ्य रिवाजको तोड़ डालनेके ज्ञान और उससे होनेवाली गुद्धिसे इतनी ताकत मिलेगी जो रोकी न जा सकेगी। इसलिए अस्पृश्यता-निवारण एक आध्यात्मिक क्रिया है। स्वामीजी उस सुधारके जीवित मूर्ति थे, क्योंकि वे इसमें आधासाभा सुधार नहीं चाहते थे। वे समझौता नहीं कर सकते, दब नहीं सकते थे। अगर उनकी चलती तो वे बात-की-बातमें हिंदू धर्मसे 'अस्पृश्यता' को निकाल बाहर करते। वे हर एक मंदिरको, हर एक कुएंको, सबकी बराबरीके हकके साथ अछूतोंके लिए खोल देते और इसका फल भुगत लेते। स्वामी श्रद्धानंदजी-

के लिए मैं इसमें अच्छा कोई स्मारक नहीं मोच सकता कि हर एक हिंदू आजमें अपने दिलोंमें 'अस्पृश्यता' की अपवित्रता निकाल दे श्री-उनके साथ सगोके समान बर्ताव करे। उस आदमीकी पैमाकी सहायता तो, मेरी समझमें, अस्पृश्यताको हिंदूधर्ममें मदाके लिए निकाल डालनेकी उसके दृढ़ निश्चयका चिह्न भर होगी।

स्वामीजीको सामुदायिक और वार्षिक रूपमें सम्मान प्रदर्शन करनेके लिए जनवरी, सोमवारका दिन, निश्चय किया गया है। मुझे आना है कि हर शहर-गावमें यह होगा। मगर इस प्रदर्शनका असल मतलब ही गायब हो जायगा अगर उसमें भाग लेनेवाले अपनेमेंसे उमीके साथ 'अस्पृश्यता' की अपवित्रताको दूर न करे। हर एक अछूतको उसमें शामिल होना चाहिए और क्या ही अच्छी बात होती अगर उमी दिन अछूतोंके लिए सभी मंदिर खोल दिए जाते। अगर सगठिन रूपसे उद्योग किया जाय तो उस दिन मूर्खान्तके पहले ही कोप भरा जा सकता है।

स्वामीजीमें मेरा पहला परिचय तब हुआ जब वे महात्मा मुशीरामके नामसे प्रसिद्ध थे। वह परिचय भी पत्राणें हुआ। उस समय वे कागडी गुरुकुलके प्रधान थे जो कि उनका सबसे पहला और बड़ा शिक्षा-क्षेत्रका काम है। वे सिर्फ पश्चिमी शिक्षापद्धतिमें ही सन्तुष्ट न थे। लड़कोंमें वे वैद-शिक्षाका प्रचार करना चाहते थे और वे पढ़ाने थे हिंदीके जरिए, अंग्रेजीके नहीं। शिक्षा-कालमें वे उन्हें ब्रह्मचारी रखना चाहते थे। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहियोंके लिए उस समय जो धन इकट्ठा किया जा रहा था, उसमें चंदा देनेके लिए लड़कोंको उन्होंने उत्साहित किया था। वे चाहते थे कि लड़के खुद कुली बन कर, मजदूरी कर के चंदा दे, क्योंकि वह युद्ध क्या कुलियोंका नहीं था? लड़कोंने यह सब पूरा कर दिखाया और पूरी मजदूरी कमाकर मेरे पास भेजी। इस विषयमें स्वामीजीने मुझे जो पत्र भेजा था, वह हिंदीमें था। उन्होंने मुझे 'मेरे प्रिय भाई' कहकर लिखा था।

इसने मुझे महात्मा मुशीरामका प्रिय बना दिया । इससे पहले हम दोनों कभी मिले नहीं थे ।

हम लोगोके बीचके सूत्र ऐन्ड्र्यूज थे । उनकी इच्छा थी कि जब कभी मैं देश लौटूँ, उनके तीनों शिष्यो, कवि ठाकुर, प्रिन्सीपल रुद्र और महात्मा मुशीराम से परिचय प्राप्त करूँ ।

वह पत्र पानेके बाद से हम दोनों एक ही सेनाके सैनिक बन गये । उनके प्रिय गुरुकुलमे हम १९१५मे मिले और उसके बाद से हर एक मुलाकातमे हम दोनों परस्पर निकट आते गये और एक दूसरेको ज्यादा अच्छी तरह समझने लगे । प्राचीन भारत, संस्कृत और हिंदीके प्रति उनका प्रेम असीम था । वेशक, असहयोगके पैदा होनेके बहुत पहले से ही वे असहयोगी थे । स्वराजके लिए वे अधीर थे । अस्पृश्यतासे वे नफरत करते थे और अस्पृश्योकी स्थिति ऊची करना चाहते थे । उनकी स्वाधीनता पर कोई बलन लगाना वे नहीं सह सकते थे ।

जब 'रौलट ऐक्ट' का आन्दोलन शुरू हुआ तो उसे सबसे पहले शुरू करनेवालोमे से वे थे । उन्होंने मुझे बहुत ही प्रेमसे भरा हुआ एक पत्र भेजा । किन्तु वीरमगाम और अमृतसर काडके बाद सत्याग्रहको स्थगित किया जाना वे नहीं समझ सके । उस समयसे हमारे बीच मतभेद शुरू हुए, किंतु उससे हम लोगोके भाई-भाईके सबबमे कभी कोई अंतर नहीं पड़ा । उस मतभेदसे मुझपर उनका बाल-सुलभ स्वभाव प्रकट हुआ । परिणामका विचार किए बिना ही, उन्हें जैसा मालूम था मुझमे सच्ची बात कह दी । वे अतिसाहसिक थे । समय बीतनेके साथ-साथ हम दोनोंमे जो स्वभावका अंतर था, उसे मैं देखता गया, किंतु उससे तो उनकी आत्माकी शुद्धता ही सिद्ध हुई । सबको सुनाकर विचार करना कुछ पाप नहीं है । यह तो एक गुण है । यह सत्यप्रियताका सर्वप्रधान लक्षण है । स्वामीजीने अपने विचार गुप्त रखे ही नहीं ।

बारडोलीके निश्चयसे उनका दिल टूट गया । मुझसे वे निराश हो ।

गए। उनका प्रकट विरोध बहुत जर्बंदस्त था। मेरे नाम उनके निजी पत्रोंमें और भी विरोध होता था, किंतु हमारे मतभेद पर जितना वे जोर देते थे, प्रेमपर भी उतना ही। प्रेमका विश्वास केवल पत्रोंमें ही दिला देनेसे वे सतुष्ट न थे। मौका मिलनेपर उन्होंने मुझे ढूढ़ निकाला और मुझे अपनी स्थिति समझाई और मेरी समझनेकी कोशिश की। मगर मुझे मालूम होता है कि मुझे ढूढ़नेका असल कारण यह था कि अगर जरूरत हो तो मुझे वे विश्वास दिला सकें कि एक छोटे भाईके समान मुझपर उनकी प्रीति जैसी-की-तैसी बनी हुई है।

आर्य समाज और उसके सस्थापक पर मेरे मतोंसे और उनके नामका उल्लेख करनेसे उन्हें बहुत कष्ट हुआ, परन्तु इस धक्केको सह लेनेकी शक्ति हमारी मित्रतामें थी। वे यह नहीं समझ सकते थे कि महर्षिके विषयमें मेरे मतों और अपने व्यक्तिगत शत्रुओंके प्रति ऋषिकी असीम क्षमाका एक साथ कैसे मेल बैठ सकता है। महर्षिमें उनकी इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उन पर या उनकी शिक्षाओं पर कोई भी टीका वे सह नहीं सकते थे।

शुद्धि आन्दोलनके लिए मुसलमान पत्रोंमें उनकी बड़ी कड़ी आलोचनाएँ और निन्दा की गई है। मैं स्वयं उनके दृष्टिविन्दुको स्वीकार नहीं कर सका था। अब भी मैं उसे नहीं मानता। किन्तु मेरी नजरमें, अपने दृष्टिविन्दुसे वे, अपनी स्थितिका पूरा वचाव करते थे, जबतक शुद्धि और तबलीग मर्यादाके भीतर रहे, तबतक दोनों ही बराबर छटके अधिकारी हैं।

.अगर हम हिन्दू और मुसलमान दोनों शुद्धिका आन्तरिक अर्थ समझ सकते तो स्वामीजीकी मृत्युसे भी लाभ उठाया जा सकता था।

एक महान सुधारकके जीवनके स्मरणोंको मैं सत्याग्रहाश्रममें, उनके कुछ महीनों पहलेके आखिरी आगमनकी बातके बिना खत्म नहीं कर सकता। मुसलमान मित्रोंको मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वे मुसलमानोंके दुश्मन

नहीं थे। कुछ मुसलमानोंका विश्वास वे वेशक नहीं करते थे, किन्तु उन लोगोंसे उनका कुछ द्वेष नहीं था। उनका ख्याल था कि हिन्दू दवा दिये गए हैं और उन्हें वहादुर बनकर अपनी और अपनी इज्जतकी रक्षा करने योग्य बनना चाहिए। इस बारेमें उन्होंने मुझसे कहा था कि “मेरे विषयमें बड़ी गलतफहमी फैली हुई है। मेरे विरुद्ध कही जानेवाली कई बातोंमें मैं बिलकुल निर्दोष हूँ। मेरे पास धमकीके कितने—एक पत्र आया करते हैं।” मित्रगण उन्हें अकेले चलनेसे मना करते थे। मगर यह परम आस्तिक पुरुष उनका जवाब दिया करता था, “ईश्वरकी रक्षाके सिवाय और किस रक्षाका मैं भरोसा करूँ ? उसकी आज्ञाके बिना एक तिनका भी नहीं हिलता। मैं जानता हूँ कि जबतक वह मुझसे इस देहके द्वारा सेवा लेना चाहता है, मेरा बाल बाला नहीं हो सकता।”

आश्रममें रहते समय उन्होंने आश्रम पाठशालाके लड़के-लड़कियोंसे बातें कीं। उनका कहना था कि हिन्दू-धर्मकी सबसे बड़ी रक्षा आत्मशुद्धिसे ही होगी, भीतरसे ही होगी। चारित्र्य और शरीरके गठनके लिए, ब्रह्मचर्यपर वे बहुत जोर देते थे। (हि० न०, ६.१ २७)

स्वामी श्रद्धानन्दके स्वर्गवासके विषयमें महासभाके सामने निम्नलिखित आशयका प्रस्ताव पेश किया गया था

“स्वामी श्रद्धानन्दजीका नामर्दी और दगाबाजीसे खून किया गया है, इसके लिए महासभा अपना तीव्र तिरस्कार प्रकट करती है और स्वदेश तथा स्वधर्मकी सेवामें अपना जीवन और शक्ति अर्पण करनेवाले, अत्यजों और वैसे ही पतितों और निर्बलोंकी सहायताको निडर होकर दौड़नेवाले इस वीर और महानुभावकी करुणाजनक मृत्युसे उसकी सम्मतिमें देशकी न पूरी होनेवाली हानि हुई है।”

यह प्रस्ताव पेश करनेका भार पहले मौलाना मुहम्मदअलीपर दिया गया था, किन्तु अंतमें सभापति सहोदयने गांधीजीसे वह प्रस्ताव पेश करनेकी

कहा। गांधीजीको लवा भाषण न करना था, किंतु अनायाम ही, अनिच्छाने, अथवा ईश्वरेच्छासे कहिए उन्हें लवा भाषण करना पडा।

उन भाषणमें सारी सभाके हृदयका तार मानो झनझना रहा था। भाषणमेंके बहुतसे उद्गार तो महात्मितिके भाषणवाले हो थे। किंतु एक-दो बातें ऐसी थीं जो उस भाषणमें अप्रकट थीं, इस भाषण में उनपर विस्तारसे विवेचन किया गया। महात्मितिमें उन्होंने कहा था—“इस खूनके लिए शोक करना भला नहीं मालूम होता। ऐसा खून तो हर एक वीर पुरुष चाहता है।” इस वाक्यको जरा सुधार करके उन्होंने कहा

वीर पुरुषको जब ऐसी मृत्यु मिलती है तो वह उसे मित्रके ममान गले लगाता है। किंतु इससे कोई यह नहीं चाहता कि उसका कोई खून करे। कोई भी अपने साथ अन्याय करे, गुनहगार बने, कोई भी मनुष्य दुष्कृत्य करे, ऐसी इच्छा ही करना अनुचित है।

स्वामीजी वीरोंके अग्रणी थे। अपनी वीरतामें उन्होंने भारतको आश्चर्य-वकित कर दिया था। इसका साक्षी मैं हू कि देशके लिए अपना शरीर कुर्बान करनेकी उन्होंने प्रतिज्ञा ली थी। वे अनाय-बधु थे। अछूतोंके लिए उन्होंने जितना किया उससे अधिक हिन्दुस्तानमें दूसरे किसीने नहीं किया है। उनकी दूसरी सेवाओंका वर्णन मैं यहां करना नहीं चाहता। स्वामीजीके जैसे वीर, देशभक्त, ईश्वरके अनन्यभक्त और सेवकका खून देशके लिए जैसा लाभदायक है, वैसा ही, उसे दुःख होना भी स्वाभाविक है, क्योंकि हम लोग अपूर्ण मनुष्य हैं।

हमारे यहां दो जातियां हैं। बदनसीबीसे वे एक-दूसरेको जहरीली नजरोसे देखती हैं। एक-दूसरेको दुश्मन मानती हैं। इसी कारण यह हत्या हो सकी है। मुसलमान मानते हैं कि स्वामीजी, लालाजी और मालवीयजी मुसलमानोंके दुश्मन हैं। उधर हिन्दू समझते हैं कि सर अबदुर्रहीम तथा दूसरे मुसलमान हिन्दुओंके शत्रु हैं। दोनोंके रयाल निहायत चोटे

है। स्वामीजी इस्लामके दुश्मन न थे, मालवीयजी और लालाजी नहीं हैं। लालाजी और मालवीयजीको अपने विचार प्रकट करनेका पूरा अधिकार है और उनके विचार जिन्हें गलत मालूम हो, उन लोगोंको उन्हें गाली देनेका अधिकार नहीं है। हिन्दुस्तानके नम्र सेवककी हैसियतसे मेरी यह सम्मति है। जब कभी हम अखबार देखे, भाग्यसे ही ऐसा कोई मुसलमान अखबार मिलता हो जिसमें इन देश-सेवकोंको गाली न दी गई हो। उन्होंने क्या गुनाह किया है? वे जिस रीतिसे काम करना चाहते हैं, उसमें हम भले ही शामिल न हो, किन्तु मेरा मत है कि मालवीय-जी अपनी सेवाओंसे भारत-भूषण बने हुए हैं। (तालिया) तालियोसे आप देश-सेवा नहीं कर सकते। मैं आज जो कुछ बोल रहा हूँ वह ईश्वर-को सामने रखकर। मेरे हृदयके भीतर आग जल रही है। उसकी दो-चार चिनगारिया ही मैं तुम्हें दे रहा हूँ, जिसमें हम उनकी आत्मबलिसे पूरा लाभ उठावे और उनके पवित्र रुधिरसे अपना दिल शुद्ध करे। सच्ची दृष्टिसे मैं आज वही शुद्धि चाहता हूँ जो श्रद्धानन्दजी चाहते थे। मालवीयजीको मैंने भारत-भूषण कहा है, किन्तु लालाजी भी जो मानते हैं उसे ही कहनेवाले हैं। उनकी भी देश-सेवा कुछ कम नहीं है। सर अबदुर्रहीम मानते हैं कि मुसलमानोंको बगालमें अधिक नौकरिया मिलनी चाहिए। उनकी राय हमें भले ही न रुचे मगर इसके लिए हम क्या उन्हें गाली देंगे? मुहम्मदअली कहते हैं कि गांधीके लिए मुझे मान है, आदर है मगर जो मुसलमान कुरानशरीफपर ईमान लाता है, उसका ईमान गांधीके ईमानसे कहीं अच्छा है। इसपर हम बुरा क्यों मानें? स्वामीजी आत्म-बलि-दानसे दूसरा ही धर्म बतला गये हैं। उन्होंने एक बार मुझसे पूछा था कि आर्यसमाज उदार कैसे नहीं? आप क्या जानते हैं कि महर्षि दयानन्दने अपनेको जहर देनेवालेके साथ क्या किया था। मैंने जवाब दिया कि मैं महर्षिकी क्षमाशीलताको जानता हूँ। मगर स्वामीजी तो महर्षिके भक्त थे। उन्होंने सारी कथा कह सुनाई। महर्षि क्षमाशील थे, क्योंकि

उनके आगे युधिष्ठिरका उज्ज्वल उदाहरण था। वे उपनिषदोंके भक्त थे। श्रद्धानन्दजी भी वैसे ही क्षमाशील थे। गुद्धिपर वाते करते समय उन्होंने एक बार कहा था कि “मैं मुसलमानोंको हिन्दुओंका दुश्मन नहीं मानता।” ‘आत्मवत् सर्वभूतेषु’ के सिद्धान्तका उपदेश करनेवाले और गीताके भक्त श्रद्धानन्दजी किसीको दुश्मन क्योंकर मान सकते थे? उन्होंने कहा, “मैं मुसलमानको भाई मानता हूँ, मित्र मानता हूँ, किन्तु हिन्दूको भी भाई मानता हूँ और उसकी सेवा करना चाहता हूँ।”

मेरा धर्म मुझे बतलाता है कि कोई मुसलमान मेरे मुँहपर थूके तो भी मैं उसे भाई और मित्र समझूँ। मैं बतलाता हूँ कि इन तीनोंमेंसे कोई मुसलमानोंका दुश्मन नहीं है। वैसे ही सर अवदुर्रहीम या मिया फजली-हुसैन हिन्दुओंके शत्रु नहीं। मिया फजलीहुसैनने मुझसे कहा था कि मैं काग्रेसवाला हूँ और मुझे हिन्दुओंसे मुहब्बत है, मगर इसमें मुसलमानोंकी सेवा क्यों न करूँ? वे कहते हैं कि आधी नीकरिया मुसलमानोंको मिलनी चाहिए। इसपर तुम कहो कि एक भी नहीं देनी चाहिए। मगर इसपरसे हिन्दुओंका दुश्मन उन्हें क्योंकर माना जायगा? हम अपनी कात्पनाशक्तिका दुरुपयोग करके कात्पनिक दुश्मन बना लेते हैं। मैं फिर कहता हूँ कि सर अवदुर्रहीम, जिन्ना, अलीभाई हिन्दुओंके शत्रु नहीं और मालवीयजी तथा लालाजी मुसलमानोंके दुश्मन नहीं हैं। मुसलमान भी आज इकरार करते हैं कि श्रद्धानन्दजीमें बुराई न थी, वे मैंले दिलके आदमी न थे, उनके वे दुश्मन न थे।

रशीदको मैंने भाई क्यों कहा है, यह तुम अब समझ सके होंगे। मैं तो उसे गुनहगार भी नहीं मानता। गुनहगार तो मैं हूँ, लालाजी हैं, मालवीयजी हैं, अलीभाई हैं। गीतामें कहा है ‘समत्वं योग उच्यते’। इन्मान इन्मानके बीचमें फर्क न करो। ब्राह्मण और चाडाल, हाथी और गायके बीच अन्तर न रखो। इससे मैंने कहा कि रशीद मेरा भाई है और वह गुनहगार भी नहीं है।

आज श्रद्धानन्दजीके लिए आसू वहानेका समय नहीं है। आज तो क्षत्रियता बतानेका अवसर है। क्षत्रियता क्षत्रियका खास गुण भले ही न हो मगर ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र सभी उसे दिखा सकते हैं। खासकर आजका 'स्वराज युग' हम सबके लिए क्षत्रियताका युग है। इसलिए रोनेकी बात छोड़ दे और श्रद्धानन्दजीके बलिदानसे, रशीदके किये खूनसे जो पाठ मिले उसे हृदयमे धरे। (हि० न०, १३ १ २७)

स्वामीजीका देहात हुआ ही नहीं है। देहात तो तब होगा जब हम उनकी सच्ची देहको मिटानेकी कोशिश करेंगे, अगर्चे कि सच्ची बात तो यह है कि हमारी कोशिशसे भी उनकी देहका नाश होनेको नहीं है। जबतक यह गुरुकुल कायम है, जबतक एक भी म्नातक गुरुकुलकी सेवा करता है, तबतक स्वामीजी जीते ही हैं। स्वामीजीका शरीर तो किसी दिन गिरनेको था ही। पर स्वामीजीका सबसे बड़ा काम गुरुकुल है, उन्होंने अपनी सारी शक्ति इसमे लगा दी थी, इसे पैदा करनेमे उन्होंने अधिक-स-अधिक तपश्चर्या की थी। तुमने सत्यकी प्रतिज्ञा ली है। अगर तुम अपने वचन का पालन करोगे तो किसीकी शक्ति नहीं कि वह गुरुकुलको मिटा दे।

पर गुरुकुलको चिरस्थायी रखनेके लिए उस वीरता, ब्रह्मचर्य और क्षमा की जरूरत है, जो हमने उनके जीवनमे देखी। वीरताका लक्षण क्षमा, और ब्रह्मचर्य और वीर्यका सयम है। वीरता और वीर्यकी रक्षारो तुम देश और धर्मकी पूरी-पूरी रक्षा कर सकोगे। मैं जानता हू कि यह काम मुश्किल है। तुम्हारे यहांके बहुतसे विद्यार्थियोंके पत्र मेरे पास पड़े हुए हैं। कोई मेरी स्तुति करता है तो कोई गाली देते हैं। स्तुति तो नाकाम चीज है उसका असर मेरे ऊपर नहीं होता। परंतु जब विद्यार्थी चिढ़कर गाली देते हैं तो मुझे चिंता होती है क्योंकि क्रोधसे वीर्यका नाश होता है। स्वामीजीके सामने मैंने ब्रह्मचर्यकी अपनी व्याख्या रखी थी और वे मेरे साथ सम्मत थे। किसी स्त्रीका मलिन स्पर्श न करनेमे ही ब्रह्मचर्य नहीं होता। हा, ब्रह्मचर्य

वहासे गुत्तर होना है । परक्षमाकी पराकाष्ठा ब्रह्मचर्यका लक्षण है । पिछले साल स्वामीजी जब टकारियासे पीछे लौटते समय मुझसे मिलने गये थे तो उन्होंने मुझसे कहा कि 'हिंदूधर्मकी रक्षा नीतिमे ही सम्भव है ।' अगर तुम वैदिक आचार और विचारकी रक्षा करना चाहते हो तो तुम यह वस्तु याद रखो कि तुम्हें पग-पगपर रुपये मिल जायगे, मगर ब्रह्मचर्यका, नीतिका पाया यहापर न होगा तो तुम्हारा गुल्कुल मिट्टीमें मिल जायगा । इस भूमिके तो आत्मा नहीं है । इसको आत्मा तुम्हो हो । अगर तुम आत्म-बल खो दोगे और 'उदरनिमित्त बहुकृतवेप' जैसे बन जाओगे तो तुम्हारी सारी शिक्षा बेकार जायगी ।

मैं आज तुम्हारे आगे चर्खा और खादीकी बात करने नहीं आया हूँ । तुम्हारा पहला काम ब्रह्मचर्य और वीरताका—क्षमाका है । उसे भूल जाओगे तो स्वामीजीका काम कायम नहीं रहेगा । रशीदकी गोलीसे स्वामीजीका क्या हुआ ? वे तो उस गोलीसे ही अमर हुए ।

स्वामीजीका दूसरा काम अछूतोद्धार था । जिन जव्दोमे मालवीयजीने खादीकी वर्षालत की, मैं नहीं कर सकता । पर इतना जरूर कहूंगा कि अगर हम हमेशा गरीबी और अछूतोकी फिर रखेंगे तो खादी से अलग नहीं रह सकते ।

ईश्वर तुम सबके ब्रह्मचर्य, सत्य और तुम्हारी प्रतिज्ञाओकी रक्षा करे, गुल्कुलका कल्याण करे और स्वामीजीका हर एक काम परमात्मा चालू रखे । (हि० न०, ३१ ३ २०)

अगर कोई मुझे 'महात्मा' के नामसे पुकारते भी थे तो मैं यही मोच लेता था कि महात्मा मुशीरामजीके बदले भूलमे मुझे किमीने पुकार लिया होगा । उनकी कीर्ति तो मैंने दक्षिण अफ्रीकामे ही सुन ली थी । हिंदुस्तानसे धन्यवाद और सहानुभूतिका सदेश भेजनेवालोमे एक वे भी थे और मैं

जानता था कि हिंदुस्तानकी जनताने उन्हें उनकी देग-सेवाओंके लिए महात्माकी उपाधि दी थी। (२११४२)

: १६६ :

कुमारी श्लेजीन

अब एक पवित्र बालाका परिचय देता हूँ। गोखलेने उसे जो प्रमाणपत्र दिया उसको पाठकोके सामने रखे बिना मैं नहीं रह सकता। इस बालाका नाम मिस श्लेजीन है। मनुष्योंको पहचाननेकी गोखलेकी शक्ति अद्भुत थी। डेलागोआवेसे जजीवार तक बातचीत करनेके लिए हमें अच्छा शांत समय मिल गया था। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय तथा अग्रेज नेताओंसे उनका अच्छा परिचय हो गया था। इनमेंसे मुख्य पात्रोंका आपने सूक्ष्म चरित्र-चित्रण कर बताया और मुझे बराबर याद है कि उन्होंने मिस श्लेजीनको भारतीय तथा गोरोंमें भी सबसे पहला स्थान दिया।

“इसका जैसा निर्मल अतःकरण, कामके वक्त एकाग्रता, दृढ़ता मैंने बहुत थोड़े लोगोंमें देखी है। और बिना किसी आशा-प्रलोभनके इसे भारतीय आंदोलनमें इस तरह सर्वापिण करते हुए देखकर तो मैं आश्चर्य-चकित हो गया हूँ। इन सभी गुणोंके साथ-साथ उसकी होशियारी और फूर्तीलापन उसे इस युद्धमें एक अमूल्य सेविका बना रहा है। मेरे कहनेकी आवश्यकता तो नहीं, पर फिर भी कहे देता हूँ कि तुम इसे मत छोड़ना।”

मेरे पास एक स्काचकुमारी गार्टहर्ड और टाइपिस्टका काम करती थी। उसकी भी प्रामाणिकता और नीतिशीलता बेहद थी। मुझे अपने जीवनमें यो तो कई कटु अनुभव हुए हैं, पर इतने सुंदर चारित्र्यवान् अग्रेज तथा भारतीयोंसे मेरा सव्य हुआ है कि मैं तो उसे सदा अपना अहोभाग्य

ही मानता आया हू। इम स्काच कुमारी मिस टिकके विवाहना अवसर आया और उमका वियोग हुआ। मि० कैलनवेक मिस श्लेजीनको लाए और मुझे कहने लगे,

“इस बालाको इसकी माने मुझे सौंपा है। यह चतुर है, प्रामाणिक है, पर इसमें मजाककी आदत और स्वाधीनता हृदसे ज्यादा है। शायद इसे उद्धत भी कह सकते हैं। आप सभाल सकें तो इसे आप अपने पास रखें। मैं इसे आपके पास तनखाहके लिए नहीं रखता।”

मैं तो अच्छे गार्टहैंड टाइपिस्टको २० पौंड मासिक वेतन तक देनेके लिए तैयार था। मिस श्लेजीनकी योग्यता और शक्तिका मुझे कुछ पता नहीं था। मि० कैलनवेकने कहा

“अभी तो इसे महीनेके छ पौंड दीजिएगा।”

मैंने फौरन मजूर कर लिया। शीघ्र ही मुझे उसके विनोदी स्वभावका अनुभव हुआ। पर एक महीनेके अंदर तो मुझे उसने अपने वशमें कर लिया। रात और दिन जिस समय चाहो काम देती। उसके लिए कोई बात असंभव या मुश्किल तो यी ही नहीं। इस समय उसकी उम्र १६ वर्षकी थी। सवकिल तथा सत्याग्रहियोंको भी उसने अपनी निस्पृहता तथा सेवाभावसे वशमें कर लिया था। यह कुमारी आफिस और युद्धकी एक चौकीदार बन गई। किसी भी कार्यकी नीतिके विषयमें उसके हृदयमें शका उत्पन्न होते ही वह स्वतंत्रता-पूर्वक मुझमें वाद-विवाद करनी और जबतक मैं उसकी नीतिके विषयमें उसे कायल न कर देता तबतक उसे कभी सन्तोष नहीं होता था। जब हम सब लोग गिरफ्तार हो गए और अगुआओं में से लगभग अकेले काछलिया बाहर रह गए तब इस कुमारिकाने लाखोंका हिसाब सभाला था। भिन्न-भिन्न प्रकृतिके मनुष्योंमें काम लिया था। काछलिया भी उसीका आश्रय लेते, उसीकी सलाह लेते थे। हम लोगोके जेलमें चले जानेपर टोकने ‘इंडियन ओपीनियन’ की जिम्मेदारी अपने हाथोंमें ली, पर वह बृद्ध पुरुष भी ‘इंडियन ओपीनियन’के

लिए लिखे हुए लेख मिस श्लेजीनसे पहले पास कर लेते । और मुझे से उन्होंने कहा,

“अगर मिस श्लेजीन नहीं होती तो मैं कह नहीं सकता कि अपने कामसे मुझे खुद भी संतोष होता या नहीं । उसकी सहायता और सूचनाओंकी सच्ची कीमत आकना बहुत मुश्किल है ।”

और कई बार उसकी सूचनाएँ उचित ही होगी, यह समझकर मैं उन्हें मजूर भी कर लिया करता । पठान, पटेल, गिरमिटिया, आदि सब जातिके और सभी उम्रके भारतीयोंसे वह सदा धिरी हुई रहती थी । वे उसकी सलाह लेते और वह जैसा कहती वैसा ही करते । दक्षिण अफ्रीकामे अक्सर ग़ोरे लोग भारतीयोंके साथ एक ही डब्बेमे नहीं बैठते । ट्रान्सवालमे तो उनको एक जगह बैठनेकी मनाही भी करते हैं । वहा तो यह भी बानून था कि सत्याग्रही तीसरे ही दर्जेमे सफर व रे । इतना होते हुए भी मिस श्लेजीन जानबूझ कर भारतीयोंके डब्बेमे बैठती और गार्डके साथ भगडा भी करती । मुझे भय था और श्लेजीनको भी इस बातकी शका थी कि वह कहीं गिरफ्तार न हो जाय । पर यद्यपि सरकारको उसकी शक्ति, उसका युद्ध-विषयक ज्ञान और सत्याग्रहियोंके हृदयपर उसने जो अधिकार प्राप्त कर लिया था उसका पता था, तथापि उसने मिस श्लेजीनको गिरफ्तार नहीं किया । और इसमे उसने सचमुच बुद्धि और विवेकसे ही काम लिया । मिस श्लेजीनने कभी अपने छ के सवा छ पौड होने की न तो इच्छा ही की और न कुछ वहा ही । उनकी कितनी ही आवश्यकताओंका जब मुझे पता लगा तब मैंने उनके दस पौड कर दिए । उन्होंने बड़ी हिचकिचाहटके साथ उम्रको स्वीकार किया, पर उससे आगे बढ़ानेसे तो उन्होंने साफ इन्कार वर दिया । उन्होंने कहा :

“इससे अधिककी मुझे आवश्यकता ही नहीं और यदि इतनेपर भी ले लू तो जिस उद्देश्यसे मैं आपके पास आई हू वही व्यर्थ हो जाय ।”

इस उत्तरके आगे मैं चुप हो गया। पाठक गायद यह जाननेके लिए उत्सुक हो रहे होंगे कि मिस इलेजीनने कहा तक शिक्षा पाई थी? वे केप यूनीवर्सिटीकी इन्टरमीडिएट परीक्षामे उत्तीर्ण हो चुकी थी। शार्टहैंड वर्गारामें पहले दर्जेके प्रमाणपत्र प्राप्त किए थे। युद्धमे मुक्त होनेपर वे उसी यूनीवर्सिटीकी ग्रेजुएट हुईं और इस समय ट्रान्सवालकी किसी कन्या पाठशालामे प्रधानाध्यापिका हैं। (द० अ० स० १९२५)

यह वहन आज ट्रान्सवालमे किसी हाईस्कूलमे शिक्षिकाका काम करती हैं। जब मेरे पास यह आई थी तब उसकी उम्र १७ वर्षकी होगी। उसकी कितनी ही विचित्रताओंके आगे मैं और मि० कैलेनवेक हार खा जाते। वह नौकरी करने नहीं आई थी। उमे तो अनुभव प्राप्त करना था। उसके रंगो-रेशमे कही रंग-द्वेषका नाम न था। न उसे किसीकी परवाह ही थी। वह किसीका अपमान करनेमे भी नहीं हिचकती थी। अपने मनमे जिनके मवबमे जो विचार आते हो वह कह डालनेमे जरा सकोच न करती थी। अपने इस स्वभावके कारण वह कई बार मुझे कठिनाइयोमे डाल देती थी, परंतु उसका हृदय शुद्ध था, इससे कठिनाइया दूर भी हो जाती थी। उसका अंग्रेजी ज्ञान मैंने अपनेसे हमेशा अच्छा माना था, फिर उसकी वफादारीपर भी मेरा पूर्ण विश्वास था। इससे उसके टाइप किए हुए कितने ही पत्रोपर बिना दोहराए दस्तखत कर दिया करता था।

उसके त्याग-भावकी सीमा न थी। बहुत समय तक तो उसने मुझसे सिर्फ ६ पींड महीना ही लिया और अतमे जाकर १० पींडमे अधिक लेनेसे साफ इन्कार कर दिया। यदि मैं कहता कि ज्यादा ले लो तो मुझे डाट देती और कहती

“मैं यहा वेतन लेने नहीं आई हू। मुझे तो आपके आदर्श प्रिय हैं। इस कारण मैं आपके साथ रह रही हू।”

एक बार आवश्यकता पडनेपर मुझसे बसने ४० पौड उधार लिए थे और पिछले साल सारी रकम उसने मुझे लौटा दी ।

त्याग-भाव उसका जैसा तीव्र था वैसी ही उसकी हिम्मत भी जवरदस्त थी । मुझे स्फटिककी तरह पवित्र और वीरतामें क्षत्रियको भी लज्जित करनेवाली जिन महिलाओंसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनमें मैं इस बालिकाकी गिनती करता हूँ । आज तो वह प्रौढ़ कुमारिका है । उसकी वर्तमान मानसिक स्थितिसे मैं परिचित नहीं हूँ, परन्तु इस बालिकाका अनुभव मेरे लिए सदा एक पुण्य-स्मरण रहेगा और यदि मैं उसके सबधमें अपना अनुभव न प्रकाशित करूँ तो मैं सत्यका द्रोही बनूँगा ।

काम करनेमें वह न दिन देखती थी, न रात । रातमें जब भी कभी हो, अकेली चली जाती और यदि मैं किसीको साथ भेजना चाहता तो लाल-पीली आखें दिखाती । हजारों जवामर्द भारतीय उसे आदरकी दृष्टिसे देखते थे और उसकी बात मानते थे । जब हम सब जेलमें थे, जबकि जिम्मेदार आदमी शायद ही कोई बाहर रहा था, तब उस अकेलीने सारी लडाईका काम सम्हाल लिया था । लाखोंका हिसाब उसके हाथमें, सारा पत्र-व्यवहार उसके हाथमें और 'इंडियन ओपीनियन' भी उसी हाथमें—ऐसी स्थिति आ पहुँची थी, पर वह थकना नहीं जानती थी ।

मिस श्लेजीनके बारेमें लिखते हुए मैं थक नहीं सकता, पर यहाँ तो सिर्फ गोखलेका प्रमाण-पत्र देकर समाप्त करता हूँ । गोखलेने मेरे तमाम साथियोंसे परिचय कर लिया और इस परिचयसे उन्हें बहुतोसे बहुत सतोष हुआ था । उन्हें सबके चरित्रके बारेमें अज्ञान लगानेका शौक था । मेरे तमाम भारतीय और यूरोपीय साथियोंमें उन्होंने मिस श्लेजीनको पहला नंबर दिया था

“इतना त्याग, इतनी पवित्रता, इतनी निर्भयता और इतनी कुशलता मैंने बहुत कम लोगोमें देखी है । मेरी नजरमें तो मिस श्लेजीनका नंबर तुम्हारे सब साथियोंमें पहला है ।” (आ० क०, १९२७)

: २०० :

आईनर

मेरा तो खयाल है कि ससारमे ऐसा एक भी स्थान और जाति नहीं, जिसमे यथा समय और सम्बन्ध मिलनेपर बढ़िया-मे-बढ़िया मनुष्य-पुष्प न पैदा होते हो। दक्षिण अफ्रीकामे सभी स्थानोपर मैं इसके उदाहरण सीमाव्यवस्था देख चुका हूँ। पर केपकालोनी मे मुझे इसके उदाहरण अधिक सख्यामे मिले। उनमे सबसे अधिक विद्वान् और विख्यात् है श्री मेरीमैन। इन्हे लोग दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहते। केपकालोनी मे आप अध्यक्ष भी रह चुके हैं। यदि श्री० मेरीमैनके जैसे श्रेष्ठ नहीं तो उनसे दूसरे नवम्मे वहाके आईनर और मोन्टोनोके परिवार है। कानून के विख्यात हिमायती श्री, डब्ल्यू० पी, आईनर इसी आईनर-परिवार-मे हो गये हैं। केपकालोनीके प्रधान मण्डलमें भी वे रह चुके हैं। श्री मेरीमैन और ये दोनो परिवार हमेशा हवगियोका पक्ष लेते और जब-जब उनके हकोपर हमला होता तब-तब उसके लिए वे भगडत। और यद्यपि वे सब भारतीयो और हवशी लोगोको भिन्न-भिन्न दृष्टिसे देखते तथापि उनकी प्रेमवारा भारतीयोकी ओर भी अवश्य बहती। उनकी दलील यह थी कि हवशी लोग गोरोके पहलेमे यहा रह रहे हैं और उनकी यह मानृभूमि है। इसलिए उनका स्वाभाविक अधिकार गोरोमे नहीं छीना जा सकता। किंतु प्रतिस्पर्धाके भयमे बचनेके लिए यदि भारतीयोके खिलाफ कुछ कानून बनाए जाए तो वह विलुल अन्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। पर इतनेपर भी उनका हृदय तो हमेशा भारतीयोकी ओर ही झुकता। स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पवारे थे तब उनके सम्मानमे केपटाउन हालमे जो सभा बुलाई गई थी उसके अध्यक्ष श्री आईनर ही थे। श्रीमेरीमैन ने भी उनसे बड़े प्रेम और विनय-

पूर्वक वातचीत की और भारतीयोंके प्रति अपना प्रेम-भाव दर्शाया ।
 क्रेपटाउनके समाचार-पत्रोमे भी पक्षपातकी मात्रा इधर-उधर समाचार
 पत्रोकी अपेक्षा सदा कम रहती । (द० अ० स० १६२५)

: २०१ :

ओलिव श्राईनर

दूसरी महिला है ओलिव श्राईनर । दक्षिण अफ्रीकाके विख्यात श्राईनर-
 कुटुबमे उनका जन्म हुआ था । वे बड़ी विदुषी थी । श्राईनर नाम इतना
 विख्यात है कि जब उनकी शादी हुई तब उनके पतिको श्राईनर नाम ग्रहण
 करना पड़ा, जिससे ओलिवका श्राईनर कुटुबके साथ सबध दक्षिण अफ्रीकाके
 गोरोंसे लुप्त न हो जाय । यह कोई उनका वृथाभिमान नहीं था । मेरा
 विश्वास है कि उन महिलाके साथ मेरा अच्छा परिचय था । उनकी सादगी
 और नम्रता उनकी विद्वत्ताके समान ही उनका आभूषण थी । कभी एक
 दिन भी उनके दिमागमे यह खयाल नहीं आया कि उनके हवशी नौकर
 और स्वयं उनके बीच कोई अंतर है । जहा-जहा अंग्रेजी भाषा बोली
 जाती है, तहा-तहा उनकी 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक आदरके साथ पढ़ी जाती
 है । वह गद्य है, पर काव्यकी पक्तिमे रखने योग्य है । और भी उन्होने
 बहुत-कुछ लिखा है । इतनी विदुषी, इतनी बड़ी लेखिका होनेपर भी
 अपने घरमे रसोई करना, घर साफ-सुथरा रखना तथा बर्तन आदि साफ
 करना आदि कामोंसे न तो वह कभी शर्माती और न कभी परहेज करती थी ।
 उनका यह खयाल था कि वह उपयोगी मेहनत उनकी लेखन-शक्ति को मद
 करनेके बदले उत्तेजित ही करती थी और उनके प्रभावसे भाषामे एक
 प्रकार की मर्यादा और व्यवस्थितता आ जाती थी । इस महिला ने भी

दक्षिण अफ्रीकाके गोरोमें उनका जो कुछ भी वजन था, उसका उपयोग भारतीयोंके पक्षमें किया था । (द० अ० स०)

ओलिव थाईनर दक्षिण अफ्रीकामें बड़ी लोकप्रिय महिला है । जहाँ-जहाँ तक अंग्रेजी भाषा बोली जाती है वहाँ-वहाँ तक उनका नाम विख्यात है । मनुष्यमात्रपर उनका असीम प्रेम था । जब देखिए तब यही मालूम होता कि उनकी आँखोंसे अविरल प्रेमकी धारा बह रही है । इसी देवीने 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक लिखी है । 'ड्रीम्स'की लेखिकाके नामसे उनकी कीर्ति चारों ओर तभीसे है । उनका स्वभाव इतना सरस और सीधा-सादा था कि इतने बड़े खान्दानमें पैदा होकर और इतनी बड़ी जिदुपी होनेपर भी घरपर वे अपने वर्तन खुद ही साफ करती । (द० अ० स०)

: २०२ :

सुल्तान शहरियार

शहरियार साधारण आदमी नहीं है । वह काफी बड़ा आदमी है । लेकिन उसकी भी नजर आप लोगोपर यानी हिंदुस्तानपर ही है (प्रा० प्र०, ३ ५ ४७)

: २०३ :

जॉर्ज बर्नार्ड शा

बर्नार्डिं गा अंग्रेजीको ऊँचा समझते हैं। अंग्रेज समझते हैं कि उनके-जैसा खूबसूरत कौन है। वे बहुत अच्छा मजाक करते हैं। कहते हैं कि अंग्रेज कुछ गलती नहीं करते। वे धर्मके लिए ही सब-कुछ करते हैं। वे कहते हैं कि अंग्रेज धर्मके लिए लड़ाई करता है। लूट करता है तो भी वह धर्मके नामपर, क्योंकि किसीके पास अधिक पैसा क्यों रहे। हमें गुलाम बनाता है तो भी धर्मके नामपर—अच्छा बनानेके लिए। राजाका खून करता है तो वह भी धर्मके लिए अर्थात् जनमतके लिए। वे सब काम धर्मके नामपर करते हैं। (प्रा० प्र०, ८७४७)

: २०४ :

श्रीनिवास शास्त्री

मेरे लिए वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री सदृश सच्चे आदमी बहुत कम है, पर उनके आचरणोंसे मुझे विस्मय होता है। उनका विश्वास है कि मैं भारतवर्षको अधकार-पूर्ण गढेमें लिए चला जा रहा हूँ, पर इससे मेरे प्रति उनका अनुराग कम नहीं हो गया होगा। मुझे पूर्ण आशा है कि इस असहयोग आंदोलनने हजारों व्यक्तियोंको यह बात सुझा दी होगी कि हम लोग व्यक्ति-विशेषकी अप्रतिष्ठा और अनादर न करके भी उसके आचरण, कार्यवाही और कार्यप्रणालीकी आलोचना और विरोध कर

सकते हैं। मनुष्य सदा अपूर्ण होता है, इससे हमें दूसरीकी ओर सदा नर्म रहना चाहिए और जहातक हो एकाएक किसी तरहका दोषारोपण नहीं करना चाहिए। (य० ३०, २५ ५ २१)

• •

• •

• •

दक्षिण अफ्रीका निवासी भारतीयोंको यह सुनकर बड़ी तसल्ली होगी कि माननीय शास्त्रीने पहला भारतीय राजदूत बनकर अफ्रीकामें रहना स्वीकार कर लिया है, वगैरें कि सरकार वह स्थान ग्रहण करनेके प्रस्तावको आखिरी बार उनके सामने रखे। भारत सेवक-समिति और शास्त्रीजीने यह बड़ा ही त्याग किया है, जो वे इस निर्णयपर पहुंचे हैं। यह तो एक प्रकट रहस्य है कि यदि यह प्रस्ताव नहीं किया जाता तो वे भारतमें अपना काम छोड़कर इस जिम्मेदारीको अपने सिरपर लेनेके जरा भी इच्छुक नहीं थे। परंतु जब उनसे साग्रह यह अनुरोध किया गया कि वे ही एव ऐसे आदमी हैं, जो उस समझौतेके अनुसार कार्य शुरु कर सकते हैं, जिसके स्वीकृत करानेमें उनका बहुत भारी हाथ रहा है, तो उन्हें इस प्रार्थना और आग्रहको मजूर करना ही पड़ा। दक्षिण अफ्रीकासे समय-समयपर जो तार भेजे गये वे उनसे हमें पता चलता है कि वहाके अंग्रेज भी इस बातके लिए कितने उत्सुक थे कि शास्त्रीजी ही इस सम्माननीय पदको ग्रहण करें। शास्त्रीजीकी वक्तृत्व-शक्ति, निस्पृहता, मधुर विवेकशीलता और असीम सच्चाईने यूनियन सरकार और वहाके यूरोपीय लोगोंके हृदयमें उनके लिए चाह और आदर उत्पन्न कर दिया, जब वे हवीवुल्ला शिष्ट मंडलके साथ कुछ दिनोंके लिए दक्षिण अफ्रीका गये थे। मैं खुद जानता हू कि हमारे दक्षिण अफ्रीका-निवासी भाई इस बातके लिए कैसे असीम चिंतानुर थे कि किस प्रकार शास्त्रीजी ही, वहा भारतके पहले राजदूत बनकर जाय। और श्रीयुक्त श्रीनिवास शास्त्रीजीके लिए भी तो जिन्हें परमात्माने ऐसे उदार हृदयमें भूषित किया है, ऐसे सर्वसम्मत अनुरोधको अस्वीकार करना असंभव था। अब यह प्राय निश्चित है कि शीघ्र ही

उनकी वाक्यदा नियुक्ति होकर, उसकी खबर प्रकाशित कर दी जायगी ।

इन पहले राजदूतका काम भी उनके लिए निश्चित कर दिया जायगा । नि सदेह, यूनियन सरकार और हमारे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय भाई भी भारतके इस पहले राजदूतसे बड़ी-बड़ी आशाएँ तो करते ही होंगे । चूंकि शास्त्रीजी स्वयं भारतीय और एक विख्यात पुरुष हैं, नि सदेह यूनियन सरकार जरूर यह सोचती होगी कि जहाँ तक भारतीयोंसे सबंध है, उन्हें समझा-बुझाकर शास्त्रीजी सरकारके प्रस्तावों आदिका काम सरल कर देंगे । दूसरे शब्दोंमें यों कहिए कि यूनियन सरकार उनसे आशा करती है कि शास्त्रीजी उसकी बातोंको भारतीय समाज तथा भारत सरकारके सामने महानुभूति-पूर्वक रखेंगे । इधर भारतीय समाज भी आशा करता है कि शास्त्रीजी इस बातका जरूर आग्रह करेंगे कि समझौतेका सम्मानयुक्त, बल्कि उदारता-पूर्वक पालन हो । दो प्रतिस्पर्धी उम्मीदवारोंको सतुष्ट करना यों कठिन तो है ही, पर दक्षिण अफ्रीकामें, जहाँ कि जातियों और दलोंके स्वार्थोंमें आश्चर्यजनक पारस्परिक विरोध है, यह काम कहीं अधिक मुश्किल है । किंतु मैं जानता हूँ कि अगर इस सूक्ष्म तराजूको अपने हाथमें कोई उठा सकता है और दक्षिण अफ्रीकासे सबंध रखनेवाले सभी दलोंको सतुष्ट कर सकता है तो अकेले शास्त्रीजी ही एक ऐसे आदमी हैं । मेरा खयाल है कि यूनियन सरकारके मंत्री यह तो अपेक्षा नहीं रखते होंगे कि भारतीय समाजको उसके न्याय्य स्वत्वोंको दिलानेमें शास्त्रीजी एक डच भर भी पीछे हट जाय । हाँ, अधिक-से-अधिक शास्त्रीजी यह कर सकते हैं कि वे भारतीयोंको १९१४ के समझौतेका उल्लंघन करके आगे बढ़नेसे रोकें, कम-से-कम तबतक तो जरूर रोकें, जबतक कि वहाँके भारतीय अनुकरणीय आत्मसंयम और अपने अन्य व्यवहार द्वारा १९१४ में प्राप्त किए समझौतेसे आगे बढ़नेकी अपनी पात्रताको सिद्ध नहीं कर देंगे । अतः यदि हमारे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय

भाई इस भारतके प्रतिनिधिके कामको सरल और अपनी परिस्थितिको सुरक्षित कर लेना चाहे तो वे उनसे बड़े-बड़े चमत्कारोकी आशाएँ करना छोड़ दे। उनका यह अनुमान गलत होगा कि “चूंकि हम अभी एक सम्माननीय मम नीता करा चुके हैं और उसपर अमल करानेके लिए भारतका एक महान् पुरुष हमारे यहाँ आ रहा है, इसलिए अब तो हमारी परिस्थिति-में एकदम कायापलट हो जायगा।” उन्हें याद रखना चाहिए कि माननीय शास्त्रीजी वहाँ उनके वकील बनकर, उनके प्रत्येक व्यक्तिगत शिकायतके लिए लड़नेको नहीं जा रहे हैं। उनको मामूली व्यक्तिगत शिकायतें सुना-सुनाकर परेशान करना उस सोनेके अंडे देनेवाले पक्षीकी हत्या करनेके समान है। वे तो वहाँ भारतीय सम्मानके रक्षक बन कर जा रहे हैं। सर्वसाधारण भारतीय समाजके स्वत्व और स्वाधीनताकी रक्षाके लिए वे वहाँ जा रहे हैं। शास्त्रीजी वहाँ यह देखनेके लिए जा रहे हैं कि यूनियन सरकार कहीं कोई नवीन रूखावटी कानून न बनाने पाए। अलावा इसके वे देखेंगे कि वर्तमान कानूनोंका पालन उदारता-पूर्वक तो हो रहा है। उनके पालनमें भारतीयोंके स्वत्वोको कोई हानि तो नहीं हो रहा है, आदि। अतः यदि उनके कोई व्यक्तिगत शिकायत की भी जाय तो वह किसी व्यापक सर्वसाधारण नियमका उदाहरण-स्वरूप हो। इसलिए यदि व्यक्तिगत मामलोंमें शास्त्रीजीकी सहायता मागनेमें दक्षिण अफ्रीकाका भारतीय समाज दूरदर्शी समयसे काम न लेगा तो वह उनकी परिस्थितिको असह्य और उस महान् उद्देश्यके लिए उन्हें असमर्थ बना देगा जिसके लिए वे वहाँ विशेष रूपसे भेजे गये हैं। और सचमुच एक राजदूतकी उपयोगिता केवल यही समाप्त नहीं हो जाती कि वह केवल सरकारी पदसे सन्तुष्ट रखनेवाले अपने कर्तव्यका पालन भर कर ले, बल्कि उसकी वह अप्रत्यक्ष सेवा कहीं अधिक उपयोगी है जो सरकारी तथा गैरसरकारी कामोंको लेकर उससे मिलने-जुलनेवाले लोगोंपर उसके मिलनसार स्वभाव और सच्चरित्रके प्रभाव द्वारा होता है। अतः यदि हमारे देशभाई शास्त्री-

जीकी दिमागी आर हृदयके महान् गुणोंका उपयोग करना चाहें तो वे मेरी वताई उपर्युक्त मर्यादाओंका जरूर खयाल रखें ।

मैं समझता हूँ कि यदि श्री गान्धीजी जावेगे तो श्रीमती गास्त्री भी उनके साथ दक्षिण अफ्रीका जावेगी । दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले भा-
तीयोंके लिए यह बड़े ही लाभकी बात है । भारतीय बहनों प्रेमसे श्रीमती
गास्त्रीको वहाँ बंद ले । उन्हें वे समाज-सेवाका एक अमूल्य नावन पावेगी ,
क्योंकि दक्षिण अफ्रीकामें फैली हुई हजारों बहनोका जीवन उचा उठानेमें
वे बहुत सहायक होगी । (हि० न०, २८ ४ ०७)

..

.

.

इस सप्ताहमें मिले एक पत्रमें एक सज्जनने क्लर्कसूडोपकी प्रसिद्ध
घटना का, जिसके बारेमें दक्षिण अफ्रीकाके अखबारोंके पन्ने-के-पन्ने भरे
रहते हैं, आखो देखा सच्चा वर्णन किया है । यूनियन सरकारके नि सकोच
पूरी और स्पष्ट माफी माग लेनेसे यद्यपि इस घटनापर राजनैतिक दृष्टिसे
अब कुछ भी कहना बाकी नहीं रह जाता है और न कुछ कहनेकी जरूरत
ही है तो भी इस पंडितके सामने जिसका कि परिणाम श्रीगास्त्रीके लिए
प्राणतक भी हो सकता था, उन्होंने जो उदारता और हिम्मतका व्यवहार
किया है उसकी प्रशंसा कितनी ही क्यों न की जाय वह कम ही होगी ।
मेरे सामने जो पत्र है उससे मालूम होता है कि जिस सभामें वे व्याख्यान
दे रहे थे, उसको तोड़ देनेके लिए डेप्युटिमेयरके नेतृत्वमें जो दल आया था
उसने वक्तिया बुझा दी, फिर भी वह भारतमाताका सच्चा सपूत और
प्रतिनिधि अपने स्थानपर यत्किंचित भी धड़काए बिना डटा रहा, जरा भी
न हटा और जब भड़का होनेके कारण सभाके हालमें श्रोताओंको
सास लेना भी मुश्किल हो गया तब वे बाहर गए और वहाँ, जैसे कोई बात
ही नहीं हुई हो, इस घटनाके प्रति इंगारा तक न करते हुए उन्होंने अपना
व्याख्यान पूरा किया । यो तो इस घटनाके पहले ही दक्षिण अफ्रीकाके
यूरोपियनोंमें वे प्रिण्ट हो गये थे, परंतु गास्त्रीजीके इस वीर हिम्मतभरे

श्रीर उदार आचरणने वहाके यूरोपियनोके विचारमें उन्हें श्रीर भी अधिक गौरवान्वित कर दिया है । श्रीर क्योंकि उन्हें अपने लिए यश नहीं चाहिए था (शास्त्रीजीसे अधिक कीर्त्तिमें लजानेवाले मनुष्य कदाचित ही मिल सकेंगे) उन्होंने जिस कामके वे प्रतिनिधि थे, उमके लाभमें अपनी लोकप्रियताका बडी योग्यता श्रीर सफलता-पूर्वक उपयोग किया । दक्षिण अफ्रीकामें उनके बहुत ही थोडे समयके निवासमें उन्होंने अपने देश-वासियोंका गौरव बहुत बढा दिया है । हम यह आशा करे कि वहाके भारतीय अपने आदर्श व्यवहारसे अपनेको उस गौरवके योग्य प्रमाणित करेंगे ।

परतु दक्षिण अफ्रीकाके मुन्किल श्रीर नाजुक प्रश्नको हल कर्नमें उनके कार्यका महत्व केवल इसी पर, जो एक घटना-मात्र है, निर्भर नहीं है । हम उनके दफ्तरकी भीतरी कार्रवाहीके विषयमें, मिवा उनके परिणामोके कुछ नहीं जानते । पर इसमें उन्हें उस सारी राजनीतिकलाका उपयोग करना पडता था जो अपने पक्षके सत्य होनेके विश्वाससे प्राप्त होती है तथा जो झूठ, कपट तथा नीचताको कभी बरदाश्त नहीं कर सकती । परतु हम यह जरूर जानते हैं कि सस्कृत श्रीर अग्रेजीकी अपार विद्वत्ता श्रीर जुदा-जुदा विषयोका ज्ञान, वाक्यपटुता इत्यादि कुदरतसे प्रचुरतामें मिली हुई बरिशगोको अपने कार्यके लिए उपयोग करनेमें, उन्होंने कोई कसर नहीं की है । चुनदा यूरोपियनोके बडे श्रोतृ-समूहके आगे वे भारतीय तत्त्वज्ञान श्रीर सस्कृतिपर व्याख्यान देते थे, जिससे उनके दिलोपर बडा असर होता था श्रीर उस पक्षपातके परदेको, जिसके कारण यूरोपियनोका बडा समूह अवतक भारतीयोंमें कोई गुण ही नहीं देख सकता था, उन्होंने पतला कर दिया है । दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके प्रश्न में, ये व्याख्यान ही नायद उनका सबसे बडा श्रीर अधिक स्थायी हिस्सा है ।

शास्त्रीजीकी जगहके लिए योग्य व्यक्ति चुनना भारत सरकारके

लिए एक बड़ा गंभीर प्रश्न होना चाहिए। दक्षिण अफ्रीकामे और भी अधिक ठहरनेके लिए उनपर जितना भी दबाव डाला गया उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया है। दक्षिण अफ्रीकासे आये पत्रोंसे मालूम होता है कि वहाँके भारतीय श्री शास्त्रीके आनेकी तैयारीके कारण कितने चिंतित हैं। श्रीशास्त्रीने जिस कार्यको सफलता-पूर्वक आरंभ किया है और जिसके वे प्रतिनिधि रहे हैं उसको जारी रखनेके लिए यदि कोई लायक व्यक्ति न मिला तो यह बड़े ही दुःखकी बात होगी। मुझे आशा है कि दक्षिण अफ्रीकामे भारतके एजेंटके पदको सरकार और प्रजाकीय दल, दोनोंहीके लिए खुला रखनेका अब वायसरायके आफिसमे रिवाज पड़ गया है। यह आशा की जाती है कि इसके लिए जो कोई भी चुना जाय वह सरकार और प्रजा दोनोंको समान रूपसे मान्य होगा और जो केवल भारत सरकारका ही नहीं, किंतु भारतके लोगोका भी प्रतिनिधि होगा। (हि० न०, १८ १० २८)

श्री श्रीनिवास शास्त्री भारतके एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान हैं। शिक्षकके रूपमे उनकी तभीसे ख्याति रही है, जबकि इनमेसे बहुतेरे विद्यार्थी या तो पैदा ही नहीं हुए थे या अपनी किशोरावस्थामे ही थे। उनकी महान् विद्वत्ता और उनके चरित्रकी श्रेष्ठता दोनों ही ऐसी चीजे हैं, जिनके कारण ससारकी कोई भी यूनीवर्सिटी उन्हें अपना वाइस चांसलर बनानेमे गौरव ही अनुभव करेगी। ('विद्यार्थियोंसे')

मौतने न सिर्फ हमारे बीचसे, बल्कि समूची दुनियाके बीचसे भारत-माताके एक बड़े-से-बड़े सपूतको उठा लिया है। उनके परिचयमे आने-वाला हर कोई देख सकता था कि वे हिंदुस्तानको बहुत ही प्यार करते थे। पिछले दिनो जब मैं उनसे मद्रासमे मिला था, उन्होंने सिवा हिंदुस्तान और उसकी सस्कृतिके, जिनके लिए वे जीए और मरे, दूसरी किसी बातकी

चर्चा ही नहीं की । जब वे मृत्युगय्यापर पड़े दीखते थे, तब भी मुझे विश्वास है कि उनको अपनी कोई चिंता नहीं थी । उनका संस्कृत-ज्ञान अंग्रेजीके उनके अगाध ज्ञानसे ज्यादा नहीं तो कम भी न था । मुझे एक ही बात और कहनी है और वह यह कि अगरचे राजनीतिमें हमारे खयाल एक-दूसरेसे मिलते नहीं थे, तो भी हमारे दिल एक ही थे और मैं यह कभी सोच नहीं सकता कि उनकी देवभक्ति हमारे किसी बड़े-मे-बड़े देवभक्तमें कम थी । शास्त्रीजी जिंदा है, यद्यपि उनका नामधारी शरीर भस्म हो चुका है । (ह० से०, २१ ४४६)

: २०५ :

खुशालशाह

ब्रिटेन और भारतके परस्परके दोन राष्ट्रीय ऋणके सत्रवमें जाच करनेके लिए कांग्रेस महासमितिके जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्तमान अवसरपर एक अत्यंत महत्वकाका लेख है । राष्ट्रीय महासभाका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे बिना न रहेगा । श्री बहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशालशाह और श्री कुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनंदनके अधिकारी हैं । 'यगडडिया'के विदेशी पाठक जानते हैं कि श्री बहादुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनों ही एक बार एडवोकेट-जनरल थे । खुशालशाह भारत प्रयात अर्थशास्त्री हैं, कितनी ही बहुमूल्य पुस्तकोंके लेखक हैं और बहुत वर्ष तक (आज अभी तक) बंबई यूनीवर्सिटीके अर्थशास्त्रके अध्यापक थे । ये तीनों सज्जन सदैव काममें घिरे रहते हैं, इसलिए राष्ट्रीय महासभाके सौंपे हुए इस उत्तरदायि-

त्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नहीं था। रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैंने इस लिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोका लिखा हुआ लेख नहीं, वरन् जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले हैं, और जो धाधलीवाज उपदेशक नहीं, वरन् स्वयं जिस विषयके ज्ञाता हैं, उसीपर लिखने वाले और अपने गब्दोको तौल-तौलकर व्यवहारमें लानेवालोकी यह कृति है। (हि० न०, ६८३१)

: २०६ :

पीर महबूबशाह

पीर महबूबशाह गिरफ्तार हो गए। वे बड़े ही बहादुर आदमी थे। मुझे उनके दोष तथा निर्दोषिताके बारेमें कुछ नहीं कहना है। पर जो अभियोग उनपर चलाया गया था यदि वह ठीक है तो वह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनकी भाषामें उत्तेजना फैलाने और शांति भग करनेके भाव थे और इस अवस्थामें उन्हें जो दंड दिया गया है अर्थात् दो वर्षके लिए साधारण कारावास, बहुत ही हलका है। यदि अपराध साबित हो गया तो कोई भी दंडसे बच नहीं सकता, चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो और चाहे वह कितना ही बड़ा सरकारी पदाधिकारी क्यों न हो। जिस बातके लिए मैं उनकी प्रशंसा करने बैठा हूँ वह उनकी वीरता, धीरता और उदासीनता है। उन्होंने वीरता तथा धीरताके साथ अपने मुकदमेकी पैरवी करने तथा सफाई देनेसे इन्कार कर दिया और उदासीनताके साथ कानून-नियुक्त अदालतके निर्णयको स्वीकार करना तय किया। इससे मुझे विदित होता है कि उन्हें इस असहयोग संग्रामका तत्त्व मिल गया है। उनके अनु-

यायियोने उनकी इस दडानाको जिस प्रकार सहन किया है उससे भी अतिशय सतोष होता है ।

वादको समाचार मिला कि पीरसाहबने माफी माग ली और वे रिहा कर दिये गए । इससे तो हमारी प्रत्यक्ष दुर्बलता प्रकट होती है । दासताकी कमजोर हवामें पालित तथा पोषित होनेके कारण कभी-कभी हम लोगो-मेंसे बड़े लोग भी साधारण भ्रम्मावातमें काप उठते हैं और उसके सामने सिर झुका देते हैं । हम लोगोने पश्चिमी मभ्यताका अनुकरण अवश्य किया, पर उसके अन्तर्गत जो शिक्षा लेनी पड़ती है उसके अभ्यस्त न होकर हमने अपनी अवस्था इतनी खराब कर डाली है कि मादी सजाकी साधारण कठिनाइया भी हममें नहीं भेली जाती । पर पीर महबूबशाहकी माफीसे हमें हताश नहीं होना चाहिए । मान लीजिए कि एक आदमी कई घोंडोपर असबाब लादे चला जा रहा है । मार्गमें एक घोंडा थक गया । तो क्या अन्य घोंडोका यह कर्तव्य नहीं है कि वे अपने साथीके भारको आपसमें बांट लें ? इसी तरह हमें थोड़ा और प्रयास करके यह बोझ अपने ऊपर ले लेना चाहिए । हम लोग मनुष्य हैं, समझदार जीव हैं, यह समझ लिया जा सकता है कि जब हमारा एक साथी फिसल पड़ता है तो उसका बोझ सभालनेके लिए हमें कितना प्रयास करना चाहिए । (य० इ०, १२.६२०)

: २०७ :

जनरल शाहनवाज

जनरल शाहनवाज आज आए थे । बिहारसे मेरे चले जानेपर भी वे वहापर काम करते हैं । वेतन नहीं लेते । फिर भी वाकायदा

पंद्रह दिनकी छुट्टी लेकर घर जा रहे हैं। उन्होंने बताया कि बिहारमें जो मुसलमान लौटकर नहीं आते थे और जिन्हें हिंदू पहले डराते थे वे भी अब लौट आये हैं, क्योंकि समझानेपर हिंदू अपना धर्म समझ गए और उन्होंने मुसलमानोंके स्वागतके लिए लगातार दो दिनतक परिश्रम करके उनका रास्ता साफ किया और जो भोपड़िया ढह गई थी उनके बनानेमें भी योग दिया। दूसरे देहातोमें भी ऐसा ही अच्छा काम हुआ है। (प्रा० प्र०, ५५४७)

: २०८ :

राजकुमार शुक्ल

राजकुमार शुक्ल नामके एक किसान चपारनमें रहते थे। उनपर नीलकी खेतीके सिलसिलेमें बड़ी बुरी बीती थी। वह दुख उन्हें खल रहा था और उसीके फलस्वरूप सबके लिए इस नीलके दागको धो डालने का उत्साह उनमें पैदा हुआ था।

जब मैं काग्रेसमें लखनऊ गया था तब इस किसानने मेरा पल्ला पकड़ा।

“वकीलबाबू, आपको सब हाल बताएंगे।”

कहते हुए चपारन चलनेका निमंत्रण मुझे देते जाते थे।

यह वकीलबाबू और कोई नहीं, मेरे चपारनके प्रिय साथी, बिहारके सेवा-जीवनके प्राण, वृजकिशोरबाबू ही थे। उन्हें राजकुमार शुक्ल मेरे डेरेमें लाए। वह काले अलपकेका अचकन, पतलून वगैरा पहने हुए थे। मेरे दिलपर उनकी कोई अच्छी छाप नहीं पड़ी। मैंने समझा कि ये इस भोले किसानको लूटनेवाले कोई वकील होंगे।

मैंने उनसे चपारनकी थोड़ी-सी कथा सुन ली और अपने रिवाजके मुताबिक जवाब दिया, “जबतक मैं खुद जाकर सब हाल न देख लू तबतक मैं कोई राय नहीं दे सकता। आप कांग्रेसमें इस विषयपर बोले, किंतु मुझे तो अभी छोड़ ही दीजिए।” राजकुमार शुक्ल तो चाहते थे कि कांग्रेसकी मदद मिले। चपारनके विषयमें कांग्रेसमें वृजकिशोरबाबू बोले और सहानुभूतिका एक प्रस्ताव पास हुआ।

राजकुमार शुक्लको इसमें खुशी हुई, परंतु इतने ही से उन्हें सतोष न हुआ। वह तो खुद चपारनके किसानोंके दुख दिखाना चाहते थे। मैंने कहा, “मैं अपने भ्रममें चपारनको भी ले लूंगा और एक-दो दिन वहाके लिए दे दूंगा।” उन्होंने कहा—“एक दिन काफी होगा, अपनी नजरोंमें देखिए तो सही।”

लखनऊसे मैं कानपुर गया था। वहा भी देखा तो राजकुमार शुक्ल मौजूद।

“यहांसे चपारन बहुत नजदीक है। एक दिन दे दीजिए।”

“अभी तो मुझे माफ कीजिए, पर मैं यह वचन देता हू कि मैं आऊंगा जरूर।” यह कहकर वहा जानेके लिए मैं और भी बघ गया।

मैं आश्रममें पहुंचा तो वहा भी राजकुमार शुक्ल मेरे पीछे-पीछे मौजूद।

“अब तो दिन मुकर्रर कर दीजिए।”

मैंने कहा—“अच्छा, अमुक तारीखको मुझे कलकत्ते जाना है, वहा आकर मुझे ले जाना।” कहा जाना, क्या करना, क्या देखना, मुझे इसका कुछ पता न था। कलकत्तेमें भूपेनबाबूके यहा मेरे पहुंचनेके पहले ही राजकुमार शुक्लका पडाव पड चुका था। अब तो इस अपढ़-अनघड परंतु निश्चयी किसानने मुझे जीत लिया।

१९१७ के आरम्भमें कलकत्तेसे हम दोनों रवाना हुए। हम दोनोंकी एक-सी जोड़ी—दोनों किमान-से दीखते थे। राजकुमार शुक्ल और मैं—हम दोनों एक ही गाडीमें बैठे। सुबह पटना उतरे।

पटनेकी यह मेरी पहली यात्रा थी। वहा मेरी किसीसे इतनी पहचान नहीं थी कि कही ठहर सकू।

मैंने मनमें सोचा था कि राजकुमार शुक्ल हैं तो अनघड किसान, परतु यहा उनका कुछ-न-कुछ जरिया जरूर होगा। ट्रेनमें उनका मुझे अधिक हाल मालूम हुआ। पटनेमें जाकर उनकी कलाई खुल गई। राजकुमार शुक्लका भाव तो निर्दोष था, परतु जिन वकीलोको उन्होंने मित्र माना था वे मित्र न थे, बल्कि राजकुमार शुक्ल उनके आश्रितकी तरह थे। इस किसान मवकिल और उन वकीलोके बीच उतना ही अंतर था, जितना कि बरसातमें गगाजीका पाट चौड़ा हो जाता है।

मुझे वह राजेद्रवावूके यहा ले गये। राजेद्रवावू पुरी या और कही गये थे। बगलेपर एक-दो नौकर थे। खानेके लिए कुछ तो मेरे साथ था, परतु मुझे खजूरकी जरूरत थी, सो बेचारे राजकुमार शुक्लने बाजारसे ला दी।

परतु बिहारमें छुआछूतका बडा सख्त रिवाज था। मेरे डोलके पानीके छींटेसे नौकरको छूत लगती थी। नौकर बेचारा क्या जानता कि मैं किस जातिका था? अदरके पाखानेका उपयोग करनेके लिए राजकुमारने कहा तो नौकरने बाहरके पाखानेकी तरफ उगली उठाई। मेरे लिए इसमें असमजसकी या रोषकी कोई बात न थी, क्योंकि ऐसे अनुभवोंसे मैं पक्का हो गया था। नौकर तो बेचारा अपने धर्मका पालन कर रहा था और राजेद्रवावूके प्रति अपना फर्ज अदा करता था। इन मजेदार अनुभवोंसे राजकुमार शुक्लके प्रति जहा एक ओर मेरा मान बढ़ा, तहा उनके सबधमें मेरा ज्ञान भी बढ़ा। अब पटनासे लगाम मैंने अपने हाथमें ले ली। (आ० क०)

: २०६ :

स्टोक्स

मिस्टर स्टोक्स ईसाई है। वह परमात्माके प्रकाशके सहारे चलना चाहते हैं। उन्होंने भारतवर्षको अपना घर बना लिया है। उन्होंने कोटा-गिरिमें अपना निवासस्थान बनाया है और एकातमें रहकर पहाड़ी जातियोंके उद्धारमें ही वे अपनी सारी शक्ति लगा रहे हैं। वहीसे निरपेक्ष होकर वे असहयोगकी गति भी देख रहे हैं। उन्होंने कलकत्ताके 'सर्वेन्ट' तथा अन्य पत्रोंमें असहयोगपर तीन लेख लिखे हैं। जिस समय मैं बंगालमें दौरा कर रहा था मैंने इन लेखोंको पढ़ा था। मिस्टर स्टोक्स असहयोग आंदोलनके पक्षमें है, पर पूर्ण स्वाधीनताके परिणामको सोचकर वे डर जाते हैं अर्थात् उन्हें इस बातकी आशंका है कि यदि अंग्रेज भारतको एकदम छोड़कर चले जायेंगे तो यहाँ अनेक तरहके उपद्रव उठ खड़े होंगे। उन्हें भय लगता है कि तुरत ही विदेशियोंके आक्रमण होने लगेंगे, जैसे उत्तर पश्चिमसे अफगान और पहाड़ी गुर्खे भारतपर एक साथ ही टूट पड़ेंगे। पर कार्डिनल न्यूमनके शब्दोंमें मैं उम भविष्यकी बातकी चिंता नहीं करता। (य० ड०, २६ १२ २०)

: २१० :

जनरल स्मट्स

मैंने जनरल स्मट्सको इस आशयका पत्र लिखा कि उनका नवीन वक्तव्य सुलहका भग करता है। अपने पत्रमें मैंने उनके उस भाषणकी

और भी उनका ध्यान आकर्षित किया, जो सुलहके बाद एक सप्ताहके अंदर ही उन्होंने दिया था। उस भाषणमें उन्होंने ये शब्द कहे थे “ये लोग (एशियावासी) मुझे एशियाटिक कानून रद करनेके लिए कह रहे हैं। जबतक ऐच्छिक परवाने वे नहीं ले लेते तबतक उस कानूनको रद करनेसे मैंने इन्कार किया है।” अधिकारी लोग प्रायः ऐसी बातोंका जवाब नहीं देते जो उन्हें उलझनमें डालती हैं। अगर देते भी हैं तो गोल-मोल। जनरल स्मट्स इस कलामें सिद्धहस्त हैं। उन्हें आप चाहे जितना लिखे, उनके विरुद्ध चाहे जितने भाषण करे, पर यदि वे उत्तर देना नहीं चाहेंगे तो उत्तरमें उनके मुहसे एक शब्द भी निकलवाना असंभव है। सभ्यताका यह सामान्य नियम उनके लिए बधनकारक नहीं हो सकता था कि प्राप्त पत्रोंका उत्तर देना ही चाहिए। इसलिए अपने पत्रके उत्तरमें मुझे किसी प्रकारका सतोष प्राप्त नहीं हो सका।

अल्बर्ट कार्ट राईट हमारे मध्यस्थ थे। मैं उनसे मिला। वह स्तब्ध हो गए और मुझसे कहने लगे, “सचमुच मैं इस आदमीको समझा ही नहीं सकता। एशियाटिक कानूनको रद करनेवाली बात मुझे बिल्कुल ठीक-ठीक तरहसे याद है। मुझसे जो वन पड़ेगा मैं जरूर करूंगा। पर आप जानते हैं कि जहां यह आदमी किसी एक बातको पकड़ लेता है तहां फिर दूसरेकी नहीं चलती। अखबारोंके लेखोंकी तो वह जरा भी परवाह नहीं करता। इसलिए मुझे पूरा डर है कि मेरी सहायताका आपको कोई उपयोग न होगा।” हास्किन वगैरासे भी मैं मिला। उन्होंने जनरल स्मट्सको एक पत्र लिखा। उन्हें भी बड़ा ही असंतोषकारक उत्तर मिला। मैंने ‘इंडियन ओपीनियन’में भी ‘विश्वासघात’ शीर्षक कई लेख लिखे, पर जनरल स्मट्स बयो इन बातोंकी परवाह करते? तत्त्ववेत्ता अथवा निष्ठुर मनुष्यके लिए आप चाहे जितने कड़वे विशेषणोंका प्रयोग करे, उनपर कोई असर न होगा। वे तो अपना निश्चित काम करनेमें मस्त रहते हैं। मैं नहीं जानता कि जनरल स्मट्सके लिए इन दो विशेषणोंमेंसे

किस विशेषणका उपयोग ठीक हो सकता है। यह तो मुझे ज़रूर बख़ूब करना होगा कि उनकी वृत्तिमें एक तरहकी 'फिलामफी'—सिद्धांत-निष्ठा है। मुझे याद है कि जिस समय हमारा पत्र-व्यवहार जारी था, अम्ब-वारोमें लेख लिखे जा रहे थे, तब तो मैं उन्हें निष्ठुर ही समझता था। पर अभी तो यह युद्धका पूर्वार्ध—केवल दूसरा वर्ष था। युद्ध तो आठ वर्ष तक जारी रहा। इस बीचमें मैं उनसे कई बार मिला। वादकी हमारी बातों-से मेरा यह खयाल कुछ बदल गया और मैंने महसूस किया कि जनरल स्मट्सकी धूर्तताके विषयमें दक्षिण अफ्रीकामें बनी हुई सामान्य धारणामें कुछ परिवर्तन होना जरूरी है। दो बातें मैं पूरी तरह समझ गया। एक तो यह कि उन्होंने अपनी राजनीतिक विषयमें एक मार्ग निश्चित कर लिया है और वह केवल अनीतिमय तो हरगिज नहीं। पर साथ ही मैंने यह भी देख लिया कि उनके राजनीति-शास्त्रमें चालाकीके लिए और मौका पड़नेपर सत्याभासके लिए भी स्थान है।^१ (द० अ० स०, १९२५)

उसके बाद जनरल स्मट्सका उदाहरण लीजिए। वह अकेला जनरल नहीं है। उसका पेशा तो वकालतका है। वकीलोमें अटर्नी जनरल होनेके साथ ही वह कुशल किसान भी था। प्रिटोरियाके पास उसकी बहुत बड़ी जमींदारी है। वहां जैसे फलके वृक्ष हैं, वैसे ग्रामपामके प्रदेशोंमें कहीं नहीं पाए जाते। ये सब ऐसे लोगोंके उदाहरण हैं, जो समारके विख्यात सेनानायक थे और साथही जो रचनात्मक कार्यके महत्वको जानते थे। ('विजयी वारडोली' पृष्ठ ३६०)

^१ यह छपते हुए हम यह जान गए कि जनरल स्मट्सकी सरदारीका भी अंत हो सकता है।—मो० क० गांधी

: २११ :

सापुरजी सकलातवाला

‘बधु’ सकलातवालाकी आतुरताका पार नहीं। उनकी बातोमें सच्चाई झलकती है। उनके त्याग बहुत बड़े हैं। गरीबोंके लिए उनके प्रेमका लोहा सभी मानते हैं। इसलिए मेरे नाम उनकी खुली भावुक अपीलपर मैंने उतनी ही गभीरतासे विचार किया है, जितनी ऐसे सच्चे देशभक्त और विश्वप्रेमीके पत्रके लिए चाहिए। अगर मुझे सच्चाईके जवाबमें सच्चाईका व्यवहार करना है, या अपने धर्मका सच्चा वने रहना है तो ‘हा’ कहनेकी मेरी लाख इच्छा रहनेपर भी मुझे ‘नहीं’ ही कहना होगा। मगर मैं अपने खास ढंगपर उनकी अपीलके जवाबमें ‘हा’ कह सकता हूँ। उनकी शर्तोंपर मैं उनसे सहयोग करूँ—इसकी उनकी अतिशय बलवती इच्छाके नीचे यह बड़ी शर्त मानी हुई है ही कि मैं ‘हा’ तो तभी कहूँ जब उनकी दलीलसे मेरे दिल और दिमागको सतोष हो जाय। सच्चे विश्वासके कारण ‘नहीं’ कहना, उस ‘हा’ से लाख दर्जे अच्छा और बड़ा है, जो किसीको महज खुश करनेके लिए या जो उससे भी बुरी बात है, चिंतासे बचनेके लिए कहा जाय।

उनके साथ हार्दिक सहयोग करनेकी पूरी इच्छा होते हुए भी मैं अपना रास्ता बद देखता हूँ। उनकी वास्तविकताएँ कपोल-कल्पित हैं और उनके आधारपर निकाले गये नतीजे जरूर ही निराधार हैं। जहाँ कहीं वे वास्तविकताएँ सच हैं, मेरी सारी शक्ति उनके जहरीले असर (मेरे प्रति) को ही दूर करनेमें लग जाती है। मुझे इसका खेद है। मगर हम जरूर दुनियाके दो छोरोंपर हैं। मगर खैर, एक बड़ी चीज हम दोनोंमें समान है। दोनोंका ही कहना है कि देश और विश्वका भला ही हमारे एकमात्र उद्देश्य है। इसलिए इस समय हम लोग उलटी दिशाओंमें

जाते हुए भले ही मालूम पड़ते हों, मगर मेरी आशा है कि एक दिन हम मिलेंगे जरूर। मैं वचन देता हूँ कि अपनी भूल समझने ही मैं काफी क्षति-पूर्ति करूंगा। इस बीच मैं मेरी भूल ही, चूँकि मैं उसे भूल नहीं मानता, मेरा अवलव और तसल्ली होगी। (हि० न०, १७ ३ २०)

: २१२ :

सत्यपाल

डॉ० सत्यपालने सार्वजनिक जीवनसे हटनेके लिए नाहक ही मेरा उल्लेख किया है। अगर अंतरात्माकी प्रेरणासे उन्होंने सार्वजनिक जीवनसे हटनेका निश्चय किया है तब तो उनका निर्णय ठीक है; लेकिन अगर लाला दुनीचंदको लिखे हुए मेरे निर्दोषपत्र के कारण ऐसा किया है तो उन्होंने बहुत बड़ी गलती की है। अब तो वह पोस्टकार्ड पंजाबके उस सारे वातावरणके सवधमें था, जिसके फलस्वरूप न केवल इस या उस व्यक्तिके बल्कि खुद मेरे खिलाफ अविश्वासकी भावना पैदा हुई है। कोई आलोचक चाहे तो इसे कायरता कह सकता है, लेकिन यह चाहे कायरता हो या आत्मविश्वासका अभाव हो, पर जबतक मुझमें यह चीज मौजूद है तबतक मैं मध्यस्थताके लिए बेकार हूँ। इसलिए डॉ० सत्यपालकी प्रेरणासे जब सरदार मंगलसिंह और लुधियानाके दूसरे मित्र वर्धा आये तो मैंने उनसे कहा कि मैं तो इस कामके लिए बेकार हूँ, लेकिन राष्ट्रपतिकी हैसियतसे राजेद्रवाबू पंजाब जानेके लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं। उन्होंने यह मजूर भी कर लिया है कि स्वास्थ्य ठीक रहा और दूसरे काम-काज आड़े न आए तो जल्दी-से-जल्दी वह वहाँ जायेंगे। लेकिन मैंने तो इन मित्रोंको सुझाया है कि अपने-आप अपनी मदद करनेके बराबर कोई मदद नहीं

है। अतः उन्हें अपनी खुदकी मेहनतसे ही अपने घरको व्यवस्थित करना चाहिए। डॉ० सत्यपाल अगर अपनी अतरात्माकी प्रेरणासे सार्वजनिक जीवनसे नहीं हटे हैं तो बहुत देरतक वह अपनेको उससे बाहर नहीं रख सकेंगे। खुद उनकी प्रकृति ही इस कृत्रिम आत्मसंयमके विरुद्ध विद्रोह करेगी। इसलिए मैं इससे अच्छा एक तरीका सुझाता हूँ। वह यह कि वह दलबन्दीसे अलग हो जाय। पुराने भगड़े-स्टोको भूल जाय और पजावमें सच्ची एकता पैदा करनेके काममें जुट पड़े। यह कैसे किया जा सकता है, यह मैं नहीं कह सकता। मेरे पास ऐसी कोई सामग्री भी नहीं है जो इसके लिए कोई कार्यक्रम बना सकूँ। अतः खुद उन्हींको यह सोचना चाहिए। मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूँ कि अगर वह सचमुच चाहते हैं तो ऐसा कर सकते हैं। यह तो हरएक जानता है कि पजावमें उनके अनुयायी हैं, वह एक अदम्य कार्यकर्त्ता हैं और उन्होंने काफी कुर्बानी की है, इसलिए पजावके कांग्रेसियोंमें अगर कोई एकता पैदा कर सकता है, तो निश्चय ही वह डॉ० सत्यपाल हैं। लेकिन चाहे वह हो या कोई और, जो कोई ऐसा करे उसे अपनेको भूलकर अपने या अपने दलके हितसे जनताके हितको तरजीह देनी चाहिए, क्योंकि वही वास्तवमें कांग्रेसका भी हित है। मेरी हिचकिचाहटके पीछे मेरी जो यह तीव्र भावना है उसपर भी ध्यान रखना जरूरी है कि पजावके कांग्रेसियोंको मनमें कोई गाठ रक्खे वगैरें आपसमें हिलमिल जाना चाहिए और एक होकर काम करना चाहिए। (ह० से०, १६ न ३६)

: २१३ :

तोताराम सनाढ्य

वयोवृद्ध तोतारामजी किसीकी सेवा लिए बगैर गए। वे सावरमती आश्रमके भूषण थे। वे विद्वान् नहीं थे। मगर जानी थे, भजनोके भजार होते हुए भी वे गायनाचार्य न थे। वे अपने इक-तारेसे और भजनोसे आश्रमके लोगोको मुग्ध कर देने थे। जैसे वे थे, वैसी ही उनकी पत्नी थी। वह तो तोतारामजीमे पहले ही चली गई।

जहा बहुतसे आदमी एक साथ रहते हो, वहा कई प्रकारके झगडे होते ही हैं। मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं है कि जब तोतारामजी या उनकी पत्नी ने उनमे भाग लिया हो, या किसी झगडेके कभी कारण बने हो। तोतारामजीको धरती प्यारी थी, खेती उनका प्राण थी। आश्रममे वर्षों पहले वे आये और उसे कभी नहीं छोड़ा। छोट-बड़े, स्त्री-पुरुष उनकी रहनुमाईके भूखे रहते और उनके पाममे अचूक आश्वामन पाते।

वे पक्के हिंदू थे। मगर उनके मनमे हिंदू, मुसलमान और दूसरे सब धर्म बराबर थे। उनमे छुआछूतकी गंध न थी। किनी विनका व्यसन न था।

राजनीति मे उन्होंने भाग नहीं लिया था, फिर भी उनका देश-प्रेम इतना उज्ज्वल था कि वह किसीके भी मुकाबले सड़ा रह सकता था। त्याग उनमे स्वाभाविक था। उसे वे सुगोभित करते थे।

ये सज्जन फिजी द्वीपमे गिरमिटिए मजदूरकी तरह गए थे। और दीनबन्धु एन्ड्रूज उन्हें ढूँढ लाए थे। उन्हें आश्रममे रानेका यत्न थी बनारसीदास चतुर्वेदीको है।

उनकी अंतिम घड़ी तक उनकी जो कुछ सेवा हो सकती थी, वह भाई

गुलाम रसूल कुरैशीकी पत्नी और इमाम साहबकी लडकी अमीना बहनने की थी ।

परोपकाय सता विभूतय (सज्जन पुरुष परोपकारके लिए ही जीते हैं) यह उक्ति तोतारामजीके बारेमे अक्षर-अक्षर सच थी । (ह० से०, १८ १.४८)

: २१४ :

तेजबहादुर सप्रू

आज सप्रूकी राय आई । उन्हें वैधानिक प्रश्नके सामने इस सवालका महत्व तुच्छ लगता है । इस निर्णयके देनेमें उन्हें साफ नीयत और ईमानदारीकी कोशिश दिखाई देती है । बापूने जरा सी आलोचना की :

सप्रूका काम मुजेसे उलटा है । जातीय माग पूरी हो जाय तो मुजेको विधानकी परवाह नही, सप्रूको विधान मिल जाय तो कुछ भी हो जाय उसकी परवाह नही । (म० डा०, १६ ८ ३२)

आज सुबह फिर निर्णयपर बातें हुईं । जयकर, सप्रू और चिंतामणिकी रायोपर चर्चा हुई । बापू कहने लगे

यह आशा रख सकते हैं कि जयकर सप्रूसे यहा अलग हो जायगे ।

वल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नहीं है ।

बापू आशा इस लिए रख सकते हैं कि विलायतमे भी इस मामलेमे इनके विचार अलग ही रहे थे । वैसे तो क्या पता ?

वल्लभभाई—चिंतामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढ़ाई ।

बापू • क्योंकि चिंतामणि हिंदुस्तानी है, जब कि सप्रूका मानस यूरोपियन

है ! चित्तामणि समझते हैं कि इस निर्णयमें ही बहुत कुछ विधान आ जाता है । सप्रू यह मानते हैं कि विधान मिल गया तो फिर इन बातोंकी चिंता ही नहीं । (म० डा०, २१ ८ ३२)

: २१५ :

सम्पूर्णानन्द

श्री जयप्रकाशनारायण और श्री सपूर्णानन्दजीने साफ शब्दोंमें कह दिया है कि हम २६ जनवरी को ली जानेवाली प्रतिज्ञामें जो भाग जोड़ा गया, है उसके खिलाफ है । मुझे उनका बड़ा लिहाज है । वे योग्य हैं, वीर हैं और उन्होंने देशके खातिर कष्ट उठाए हैं । लड़ाईमें वे मेरे साथी बन सके तो इसे मैं अपना सीभाग्य समझू । मैं उन्हें अपने विचारका बना सकू तो मुझे कितनी खुशी हो । लड़ाई आनी ही है और मुझे उसका नायक बनना है तो यह काम मैं ऐसे सहायकोंके भरोसे नहीं कर सकता जिनका कि कार्यक्रमपर अबूरा विश्वास हो या जिनके दिलमें उसके वारेमें शकाए हो । (ह० से०, २० १ ४०)

: २१६ :

साकरबाई

महासभा-सप्ताहमें मुझे बंबईके श्रीगोविंदजी वसनजी मिठाईवाला की माताके पत्र मिले थे, पर उसी समय मैं उनका उपयोग 'नवजीवन'में

न कर सका । श्रीगोविंदजीपर बबईकी अदालतमें एक फौजदारी मुकदमा चल रहा है । उसकी वाते बबईके अखबारोमें आ गई हैं । उनकी चर्चा मैं यहा नहीं करना चाहता । इस मुकदमेंमें श्रीगोविंदजीकी माता श्रीमती साकरवाईकी जो वीरता दिखाई देती है उसीकी तरफ मैं पाठकोका ध्यान दिलाना चाहता हूँ । साकरवाई बड़ी हिम्मतके साथ पुलिसके पास गई । अदालतमें भी अपने बेटेके पास कैदियोंके कटरेके सामने खड़ी रही, जिससे अपने बेटेके चित्तमें किसी तरहकी कमजोरी न आने पावे । श्री गोविंदजी का लालन-पालन बड़े ऐशोआराममें हुआ है । बबईके दगेके समय उन्हें जो चोटे आई थी वे तो अभी ठीक ही नहीं हुई हैं । उन्हें जेलकी यातनाएँ सहनेका कभी अवसर नहीं हुआ । मित्र लोग उनको जमानतपर छुड़वानेका प्रयत्न करते हैं । यह कहकर कि यह मुकदमा तो निजी है, राजनैतिक नहीं, सफाई पेश करनेकी प्रेरणा करते हैं । इन सब भयोसे बचानेके लिए तथा सत्यकी रक्षाके लिए साकरवाई अपने बेटेके पिजड़ेके सामने खड़ी रही । अपनी उपस्थितिसे मानो उसको सुरक्षित कर दिया । साकरवाईकी हिम्मत तो देखिए, उन्होंने स्वयं ही श्री गोविंदजीको जमानतपर छुड़ानेसे मना कर दिया । वे बहन जानती थी कि असहयोगकी प्रतिज्ञा करनेवाला मनुष्य अदालतमें अपनी सफाई दे ही नहीं सकता, फिर मुकदमा चाहे खानगी हो चाहे सार्वजनिक, सच्चा हो या बनावटी । सो उन्होंने इस प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिए अदालतमें जानेका साहस किया । (हि० न०, ८ १ २२)

: २१७ :

सांडर्स

‘स्टेड्समैन’ और ‘इंग्लिशमैन’ दोनों दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नका महत्त्व समझते थे । उन्होंने मेरी लबी-लबी बातचीत छापी, ‘इंग्लिशमैन’ के मि० सांडर्सने मुझे अपनाया । उनका दफ्तर मेरे लिए खुला था, उनका अखबार मेरे लिए खुला था । अपने अग्रलेखमें कमी-वेगी करनेकी भी छूट उन्होंने मुझे दे दी । यह भी कहू तो अत्युक्ति नहीं कि उनका-मेरा गामा-स्नेह हो गया । उन्होंने भरसक मदद देनेका वचन दिया । मुझमें कहा कि दक्षिण अफ्रीका जानेके बाद भी मुझे पत्र लिखिएगा और वचन दिया कि मुझसे जो-कुछ हो सकेगा करूंगा । मैं देखा कि उन्होंने अपना यह वचन अक्षरशः पाला और जबतक उनकी तबीयत खराब न हो गई, उन्होंने मेरे साथ चिट्ठी-पत्री जारी रखी । मेरी जिदगीमें ऐसे अकल्पित मीठे सवय अनेक हुए हैं । मि० सांडर्सको मेरे अदर जो सबसे अच्छी बात लगी वह थी अत्युक्तिका अभाव और सत्यपरायणता । उन्होंने मुझमें जिरह करनेमें कोई कसर न रखी थी उसमें उन्होंने अनुभव किया कि दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंके पक्षको निष्पक्ष होकर पेश करनेमें तथा उनकी तुलना करनेमें मैंने कोई कमी नहीं रखी थी । (आ० क०)

: २१८ :

वी० डी० सावरकर

गांधीजीने बतलाया कि लोकमान्यकी यह जन्मभूमि सारे भारत-वर्षके लिए तीर्थ-भूमि है । यह भी याद दिलाया कि श्री सावरकर भी

यही रहते हैं और सावरकरके साथ अपने परिचय, इंग्लैंडमें उनके साथ वार्तालापकी बात की, उनके स्वार्थ-त्याग और देशसेवाका उल्लेख करके बतलाया कि उनके साथ जबर्दस्त मतभेद होते हुए भी मित्रता तो पहले ही जैसी बनी हुई है ।

“मतभेद चाहे जितना हो, तो भी प्रेमभाव तो चलता रहना चाहिए । अगर ऐसा न हो तो मुझे मेरी पत्नीका भी दुश्मन बनना चाहिए । इस दुनियामे ऐसे दो व्यक्तियोंको मैं नहीं जानता जिनमे मतभेद कतई न हो । गीताका समदृष्टिका उपदेश माननेवाला होकर मैंने तो अपनी जिदगीमे ऐसा प्रयत्न किया है कि जिसके साथ मतभेद हो, उसके साथ भी उतना स्नेह रखना जितना अपने माता, पिता, भाई-बहन, या पत्नीके साथ ।”

सभामें जानेसे पहले गाधीजीने, काले पानीसे, तपश्चर्या करके लौटे हुए भाई सावरकरके घर जाकर उनसे भेंट कर ली थी । पाच-दस मिनटमें बहुत बात क्या हो सकती थी ? गाधीजीको यहा पर इसका पता चला कि अस्पृश्यता और शुद्धिके संबन्धमें उनके विचारोंको उल्टा स्वरूप दिया जाता है । पर और अधिक चर्चाके लिए उन्होंने सावरकरसे पत्र-व्यवहार करनेका आग्रह किया :

आप जानते हैं कि सत्यके प्रेमीके तौरपर, सत्यके लिए मरणपर्यंत लड़नेवालेके तौरपर, मेरे मनमे आपका कितना आदर है । आखिर हम दोनोंका ध्येय तो एक ही है । इसलिए आप जिस-जिस विषयमे मेरे साथ चर्चा करना चाहे उस विषयमे खूब पत्र-व्यवहार चलाइए और अगर आपकी इच्छा हो तो शुद्धि, खादी वगैरहके विषयमे खुलासा कर लेनेके लिए मैं दो-तीन दिन निकालकर आपके साथ रत्नागिरिमे रहनेको तैयार हूँ ।”

श्री सावरकरने कहा, “आप जैसे मुक्तको मैं बंदी बनाना नहीं

चाहता ।" पत्र लिखनेकी सलाह उन्होंने खुशीसे स्वीकार कर ली ।
(हि० न०, १७ ३ २७)

: २१६ :

अप्टन सिक्लेयर

आजकल तो The Wet Parade (दि वेट परेड) पढ रहे हैं और बड़ी दिलचस्पीके साथ । सिक्लेयरके बारेमें कहा

यह आदमी तो अद्भुत सेवा कर रहा दीखता है । समाजकी एक-एक गदगीको लेकर बैठा है और उसका खुले आम भडाफोड करता है । (म० डा०, १२ ३ ३२)

अमरीकाके लेखकोंके बारेमें राजाजीको कुछ भ्रम हो गया है । हार्डीका साहित्य मैंने पढा नहीं है । ज़ोलाका भी नहीं पढा है । इसका मुझे हमेशा दुःख रहा है । मगर सिक्लेयरका विलकुल तिरस्कार नहीं किया जा सकता । प्रचारकी दृष्टिसे लिखे हुए उपन्यासोंमें प्रचारका ही दोष मानकर उन्हें हरगिज हलका नहीं बनाया जा सकता । प्रचारकोंके लिए तो उसकी सारी कला उसीमें भर दी जाती है । अपने खयालको वह छिपाता नहीं । और फिर भी कहानीमें रसको आच नहीं आने देता । Uncle Tom's Cabin (टामकाकाकी कुटिया) साफ तौरपर प्रचारके लिए लिखी गई चीज है । मगर उसकी कलाकी बगवरी कौन कर सकता है ? सिक्लेयर एक जबरदस्त सुधारक है और सुधारके प्रचारके लिए उसने अलग-अलग उपन्यास लिखे हैं और यह कहा

जाता है कि सब रससे भरे हैं। समय मिला तो मैं उन्हें पढ़ूँगा।
(म० डा०, २६ ६.३२)

: २२० :

सिंह

भारतवर्षके इस सम्मानित सेवकके सम्मानमें ओरोकी अजलियोंके साथ-साथ मैं भी अपनी श्रद्धाजलि अर्पण करता हूँ। जब कभी भारत-वर्षके सेवकोंकी सेवाओंका मूल्य आका जायगा, लार्ड सिंहकी सेवाएँ बहुमूल्य गिनी जायगी। सभी राजनैतिक बातोंमें उनकी सलाह पूछी जाती थी। उसकी कीमत भी बड़ी समझी जाती थी। लार्ड सिंहकी मोतसे देश गरीब ही हुआ है। (हि० न०, ८ ३ २८)

: २२१ :

श्रीकृष्ण सिन्हा

मुसलमानोंको वहाँ (बिहारमें) डरनेका क्या कारण है? दो अच्छे मुसलमान-सेवक उनकी सेवा कर रहे हैं। फिर वहाँके मन्त्रि-मंडल में श्रीकृष्ण सिन्हा है, जो पूरे सजग हैं। (प्रा० प्र०, २८ ५ ४७)

: २२२ :

सिमंडज

मुझे इतना तो जरूर ही कह देना चाहिए कि विलायतमें हमने एक क्षण भी बेकाम नहीं जाने दिया। बहुतमें गस्ती-पत्र वगैरा भेजना तथा इसी प्रकारके अन्य सब काम एक आदमीमें कभी नहीं बन सकते। उनमें बड़ी मददकी जरूरत होती है। बहुत-सी सहायता तो ऐसी है जो पैसे खर्च करनेपर मिल सकती है, पर मेरा ८० मान का अनुभव यह है कि यह उतनी गहरी और फलशील नहीं होती जैसी कि शुद्ध स्वयंसबकोकी होती है। सौभाग्यवश हमें वहां ऐसी ही सहायता मिली थी। बहुतसे भारतीय नौजवान जो वहां अव्ययन कर रहे थे वे हमारे आम्रपान बने रहते और उनमें से कितने ही बिना किसी प्रकारके लोभके नुबह-गाम हमें हमेशा सहायता करते रहते। पते लिखना, नकले करना, टिकिट चिपकाना या डाकघरमें जाना, आदि। किसी भी कामके लिए मुझे यह याद नहीं आता कि उन्होंने यह कहा हो कि यह काम हमारे दर्जको शोभा नहीं देता, इसलिए हम नहीं कर सकते। पर इन सबको एक तरफ बैठा देनेवाला और मदद करनेवाला एक अंग्रेज मित्र दक्षिण अफ्रीकामें था। वह भारतमें रह चुका था। इसका नाम था सिमंडज। अंग्रेजीमें एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि जिन्हें परमात्मा चाहता है उन्हें वह जल्दी उठा लेता है। भरजवानीमें इस परदु खभजन अंग्रेजको यमदूत ले गये। 'परदु खभजन' विशेषण किमी खास उद्देश्य से ही लगाया गया है। यह भला भाई जब बवर्डमें था तब, अर्थात् १८६७में, प्लेगके भारतीय बीमारोके बीच बेवडक होकर उसने काम किया था और उनकी उसने सहायता की थी। छूतके रोगके रोगियोंकी सहायता करते समय मृत्युमें जरा भी न डरना यह भाव तो मानो उसके खूनमें भर दिया गया था।

जाति अथवा रंगद्वेष उसे छूतक न गया था। उसका स्वभाव बड़ा ही स्वतंत्र था। उसने अपना एक सिद्धांत बना रखा था कि माइनोंरिटी अर्थात् अल्पसंख्यकों के साथ ही हमेशा सत्य रहता है। इसी सिद्धांत के अनुरूप वह जोहासवर्ग में मेरी ओर आकर्षित हुआ। वह कई बार विनोद में कहता कि याद रखिए आपका पक्ष बड़ा हुआ नहीं कि मैंने उसे छोड़ा नहीं, क्योंकि मैं यह मानने वाला हूँ कि बहुमत के हाथ में सत्य भी असत्य का रूप धारण कर लेता है। उसने बहुत कुछ पढ़ा था। जोहासवर्ग के एक करोड़पति सर जॉर्ज फेरर का वह खास विश्वस्त मंत्री था। शोर्टहैंड लिखने में बाका था। विलायत में हम पहुंचे तब वह अनायास कही में आ मिला। मुझे तो उसके घरबार की कोई खबर नहीं थी। पर हम तो जनता के सेवक अर्थात् अखबारों की चर्चा के विषय ठहरे। इसलिए उस भले अंग्रेज ने हमें फौरन ढूँढ़ लिया और जो कुछ सहायता हो सकती थी वह करने की तैयारी ब्रताई। उसने कहा, “अगर चंपरासी का काम भी कहोगे तो जरूर करूंगा। पर यदि शोर्टहैंड की आवश्यकता हो तो आप जानते ही हैं कि मेरे जैसा कुशल लेखक आपको कभी नहीं मिल सकता।” हमें तो दोनों सहायताओं की आवश्यकता थी। और इस अंग्रेज ने रात-दिन एक भी पैसा न लेते हुए हमारा काम कर दिया, [यह कहते हुए मैं लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूँ। रात के बारह-चारह और एक-एक बजे तक तो वह हमेशा टाइप-रायटर पर ही डटा रहता। समाचार पहुंचाना, डाकखाने जाना यह सब सिमडज करता और सब हँसते-हँसते। मुझे याद है कि इसकी मासिक आय लगभग ४५ पाँड थी। पर यह सब वह अपने मित्रों बगैरा की सहायता में लगा देता। उसकी उम्र उस समय करीब ३० साल की होगी। पर अब तक अविवाहित ही था और आजीवन वैसे ही रहना भी चाहता था। मैंने इसे कुछ तो लेने के लिए बहुत आग्रह किया, पर उसने साफ इन्कार कर दिया। वह कहता, “यदि मैं इस सेवा के लिए मजदूरी लूँ तो अपने धर्म से भ्रष्ट हो जाऊँ।” मुझे याद है कि आखिरी रात को हमें

अपना काम समेटते, असचाव बाधते सुवहके तीन वज गए थे । पर तबतक भी वह जागता ही रहा । हमें दूसरे दिन स्टीमरपर बैठकर ही वह हमसे जुदा हुआ । वह वियोग बड़ा दुःखदाई था । मैंने तो यह कई बार अनुभव किया है कि 'परोपकार' केवल गेहुए रगके लोगोंकी ही विरासत नहीं है । (द० अ० स०)

: २२३ :

सुखदेव

'अनेकोमेसे एक' का लिखा हुआ पत्र स्वर्गीय सुखदेवका पत्र है । श्री सुखदेव भगतसिंहके साथी थे । यह पत्र उनकी मृत्युके बाद मुझे दिया गया था । समयभावके कारण मैं इसे जल्दी ही प्रकाशित न कर सका ।

लेखक 'अनेकोमेसे एक' नहीं है । राजनैतिक स्वतंत्रताके लिए फासी-को गले लगानेवाले अनेक नहीं होते । राजनैतिक खून चाहे जितने निघ हो तो भी जिस देश-प्रेम और साहसके कारण ऐसे भयानक काम किए जाते हैं, उनकी कद्र किए बिना रहा नहीं जा सकता । और हम आजा रखे कि राजनैतिक खूनियोका सप्रदाय बढ नहीं रहा है । यदि भारत-वर्षका प्रयोग सफल हुआ, और होना ही चाहिए, तो राजनैतिक खूनियोका पेशा सदाके लिए बढ हो जायगा । मैं स्वयं तो इसी श्रद्धासे काम कर रहा हूँ । (हि० न०, ३० ४ ३१)

उमर सुभानी

श्री उमर सुभानीजीकी बड़ी अचानक और अकाल मृत्यु हो गई । हमारे बीचसे एक महान देशभक्त और कार्यकर्ता उठ गया । एक समय बवईमें श्री उमर सुभानीकी तूती बोलती थी । बवईका कोई सार्वजनिक कार्य, उमर सुभानीके दिन विगडनेसे पहले ऐसा न होता था जिसमे उनका हाथ न हो । फिर भी वह कभी सामने मचपर नहीं आते थे । मचको तैयार कर देते थे । बवईके सौदागरोंमे वे बहुत प्रिय थे । उनकी सूझ प्रायः बहुत तीक्ष्ण और बेलाग होती थी । उनकी उदारता दोषकी हद तक पहुँच जाती थी । पात्र-कुपात्र सब हीको वह दान दिया करते थे । प्रत्येक सार्वजनिक कार्यके लिए उनकी थैलीका मुँह खुला रहता था । जैसा उन्होंने कमाया वैसा ही खर्च भी किया । उमर सुभानी हर कामकी हद कर देते थे । उन्होंने आढतके काममे भी हद कर दी और इसीसे उनपर तबाही आ गई । एक महीनेमे ही उन्होंने अपनी आमदनीको दुगुना कर लिया और दूसरेही महीनेमे दिवाला पीट लिया । परन्तु उन्होंने अपनी हानिको तो वहादुरीसे सह लिया, परन्तु उनके अभिमानने उन्हें सार्वजनिक कार्योंसे हटा लिया, क्योंकि अब उनपर इन कामोंमे लाखों रुपया खर्च करनेको नहीं था । वह माध्यमिक रास्तेपर चलना जानते ही नहीं थे । यदि चदेकी फेहरिस्तमे सबसे पहले वह नहीं रह सकते तो वस फिर वह उस फेहरिस्तकी तरफ मुँह मोड़कर भी न देखेंगे । इसलिए गरीब होते ही वह सार्वजनिक कार्योंसे हाथ खींचकर बैठ गए । जहा कही और जब भी कोई सार्वजनिक कार्य होगा उमर सुभानीका नाम विला याद आये न रहेगा और न उनकी देशकी सेवा ही कोई भूल सकता है । उनका जीवन हर अमीर नौजवानके लिए आदर्श और चेतावनी दोनों है । उनका जोश-

भरा देशभक्तिका कार्य आदर्श योग्य है। उनका जीवन हमें बताता है कि रुपया रखकर भी एक मनुष्य काविल हो सकता है और उस रुपएकी मार्व-जनिक कार्योंकी भेट कर सकता है। उनका जीवन अमीर नीजवानोंको, जो बड़े-बड़े काम करनेकी धुनमें रहते हैं, चेतावनी भी देता है।

उमर सुभानी कोई निर्वुद्ध सीदागर नहीं था। जिस समय उनको हानि हुई उस समय और भी बहुतसे सीदागरोको हानि हुई थी। उन्होंने जो बहुत-सी रुई भर ली थी उसको हम मूर्खता नहीं कह सकते। वह बवईके सीदागरोमें अच्छा स्थान रखते थे, फिर भी उन्होंने इस प्रकार और लाभके ध्यानसे रुपया क्यों लगाया ? परंतु वह तो देशभक्तकी हैसियतसे हीसला बढ़ाए रखना अपना कर्तव्य समझते थे। उनका जीवन और नाम जनताकी जागीर था और उन्हें बहुत सोच-समझकर काम करना चाहिए था। मैं समझता हूँ कि काम बिगड़ जानेके बाद सब लोग अक्लमदीकी बातें बताया करते हैं, परंतु मैं उनके दोष ढूढ़नेके अभिप्रायसे कुछ नहीं कह रहा हूँ। मैं तो चाहता हूँ कि हम सब इस देशभक्तके जीवनसे शिक्षा ले। आनेवाली सतानको किसी कामके बिगड़ जानेसे शिक्षा लेनी ही चाहिए। दूसरोंकी गलतियोंसे भी हमें कुछ सीखना ही चाहिए। हम सबको उमर सुभानीकी तरह अपने हृदयमें देशप्रेम रखना चाहिए। हम सबको दान देनेमें उमर सुभानी होना चाहिए। हम सबको उमर सुभानीकी तरह धार्मिक द्वेषसे दूर रहना चाहिए। परंतु हम सबको उमर सुभानीकी तरह लापरवाह और असावधान होनेसे बचना चाहिए। यही इस देशभक्तने हम सबके लिए वसीयत छोड़ी है और हम सबको उस वसीयतसे लाभ उठाना चाहिए।

मेरी उनके वृद्ध पिता और उनके परिवारके साथ अत्यंत सहानुभूति है और मैं उनके साथ उनके शोकमें सम्मिलित हूँ। (हि० न०, १५, ७, २६)

: २२५ :

हसन शहीद सुहरावर्दी

यहापर मैं कैसे भूल सकता हू कि शहीदसाहबने कलकत्तेमें बड़ा काम किया । अगर वह नहीं करते तो मैं ठहरनेवाला नहीं था । शहीदसाहबके लिए हम लोगोके दिलमें बहुत सदेह थे । अभी भी हैं । उससे हमको क्या ? आज हम सीखे कि कोई भी इन्सान हो, कैसा भी हो, उससे हमको दोस्ताना तौरसे काम करना है । हम किसीके साथ किसी हालतमें दुश्मनी नहीं करेंगे, दोस्ती ही करेंगे । शहीदसाहब और दूसरे चार करोड़ मुसलमान पड़े हैं । वे सब-के-सब फरिश्ते तो हैं ही नहीं । ऐसे ही सब हिंदू और सिख भी फरिश्ते थोड़े ही हैं । अच्छे और बुरे हममें हैं, लेकिन बुरे कम हैं । (प्रा० प्र०, १८ १ ४८)

: २२६ :

अब्दुल्ला सेठ

नेटालका बदर यो तो डरबन कहलाता है, पर नेटालको भी बदर कहते हैं । मुझे बदरपर लिवाने अब्दुल्ला सेठ आए थे । जहाज धक्केपर आया । नेटालके जो लोग जहाजपर अपने मित्रोको लेने आए थे, उनके रग-ढगको देखकर मैं समझ गया कि यहा हिंदुस्तानियोका विशेष आदर नहीं । अब्दुल्ला सेठकी जान-पहचानके लोग उनके साथ जैसा बरताव करते थे उसमें एक प्रकारकी क्षुद्रता दिखाई देती थी, और वह मुझे चुभ रही थी । अब्दुल्ला सेठ इस दुर्दशाके आदी हो गए थे । मुझपर जिनकी

दृष्टि पड़ती जाती वे मुझे कुतूहलसे देखते थे, क्योंकि मेरा लिवाब ऐसा था कि मैं दूसरे भारतवासियोंमें कुछ निराला मालूम होता था। उन समय फ्रॉक कोट आदि पहने था और सिरपर बगाली ढगकी पगड़ी दिए था।

मुझे घर लिवा ले गए। वहां अब्दुल्ला सेठके कमरेके पानका कमरा मुझे दिया गया। अभी वह मुझे नहीं समझ पाए थे, मैं भी उन्हें नहीं समझ पाया था। उनके भाईकी दी हुई चिट्ठी उन्होंने पढ़ी और वेचारे पसोपसोमें पड़ गए। उन्होंने तो समझ लिया कि भाईने तो यह नफेद हाथी घर बंधवा दिया। मेरा माहवी ठाट-वाट उन्हें बड़ा खर्चीला मालूम हुआ, क्योंकि मेरे लिए उस समय उनके यहां कोई वास काम तो था नहीं। मामला उनका चल रहा था ट्रामवालमें। सो तुरंत ही वहां भेजकर वह क्या करते? फिर यह भी एक खवाल था कि मेरी योग्यता और ईमानदारीका विज्ञान भी किम हदतक किया जाय? और प्रिटोरियामें खुद मेरे साथ वह रह नहीं सकते थे। मुद्दालेह प्रिटोरियामें रहते थे। कहीं उनका बुरा असर मुझपर होने लगे तो? और यदि वह मामलेका काम मुझे न दे तो और काम तो उनके कर्मचारी मुझमें भी अच्छा कर सकते थे। फिर कर्मचारीमें यदि भूल हो जाय तो कुछ कह-सुन भी सकते थे। मुझसे तो कहनेमें रहे। काम या तो बारकुनीका था या मुकदमेका—तीसरा था नहीं। ऐसी हालतमें यदि मुकदमेका काम मुझे नहीं मीपते हैं तो घर बैठे मेरा सर्व उठाना पड़ता था।

अब्दुल्ला सेठ पढ़े-लिखे बहुत कम थे। अक्षर-ज्ञान कम था, पर अनुभव-ज्ञान बहुत बड़ा था। उनकी बुद्धि तेज थी और वह खुद भी इस बातको जानते थे। अभ्यासमें अंग्रेजी इतनी जान ली कि बोलचालका काम चला लेते। परंतु इतनी अंग्रेजीके बलपर वह अपना सारा काम चला लेते थे। बैंकमें मैनेजरोंमें बातें कर लेते, यूरोपियन व्यापारियों से नौदा कर लेते, वकीलोंको अपना मामला समझा देते। हिंदुस्तानियोंमें उनका

काफी मान था। उनकी पेढी उस समय हिंदुस्तानियोमे सबसे बड़ी नहीं तो, बड़ी पेढियोमे अवश्य थी। उनका स्वभाव वहमी था।

वह इस्लामका बड़ा अभिमान रखते थे। तत्त्वज्ञानकी बातोंके शौकीन थे। अरबी नहीं जानते थे, फिर भी कुरान-शरीफ तथा ग्राम तौरपर इस्लामी-धर्म-साहित्यकी वाकफियत उन्हें अच्छी थी। दृष्टांत तो जवानपर हाजिर रहते थे। उनके सहवाससे मुझे इस्लामका अच्छा व्यावहारिक ज्ञान हुआ। जब हम एक-दूसरेको जान-पहचान गए तब वह मेरे साथ बहुत धर्म-चर्चा किया करते।

दूसरे या तीसरे दिन मुझे डरवन अदालत दिखाने ले गये। वहाँ कितने ही लोगोसे परिचय कराया। अदालतमे अपने वकीलके पास मुझे बिठाया। मजिस्ट्रेट मेरे मुहकी ओर देखता रहा। उसने कहा—“अपनी पगड़ी उतार लो।”

मैंने इन्कार किया और अदालतसे बाहर चला आया।

मेरे नसीबमे तो यहाँ भी लडाईं लिखी थी।

पगड़ी उतरवानेका रहस्य मुझे अब्दुल्ला सेठने समझाया। मुसलमानी लिबास पहननेवाला अपनी मुसलमानी पगड़ी यहाँ पहन सकता है। दूसरे भारतवासियोको अदालतमे जाते हुए अपनी पगड़ी उतार लेनी चाहिए।

....पगड़ी उतार देनेका अर्थ था मान-भग सहन करना। सो मैंने तो यह तरकीब सोची कि हिंदुस्तानी पगड़ीको उतारकर अंग्रेजी टोप पहना करूँ, जिससे उसे उतारनेमे मान-भगका भी सवाल न रह जाय और मैं इस झगड़ेसे भी बच जाऊँ।

पर अब्दुल्ला सेठको यह तरकीब पसंद न आई। उन्होंने कहा—

“यदि आप इस समय ऐसा परिवर्तन करेंगे तो उसका उलटा अर्थ होगा। जो लोग देशी पगड़ी पहने रहना चाहते होंगे उनकी स्थिति विषम हो जायगी। फिर आपके सिरपर अपने ही देशकी पगड़ी

शोभा देती है। आप यदि अंग्रेजी टोपी लगावेंगे तो लोग 'वेटर' समझेंगे।”

इन वचनोंमें दुनियावी समझदारी थी, देशाभिमान था और कुछ सकुचितता भी थी। समझदारी तो स्पष्ट ही है। देशाभिमानके बिना पगड़ी पहननेका आग्रह नहीं हो सकता था। सकुचितताके बिना 'वेटर' की उपमा न सूझती। गिरमिटिया भारतीयोंमें हिंदू, मुसलमान और ईसाई तीन विभाग थे। जो गिरमिटिया ईसाई हो गए, उनकी सतति ईसाई थी। १८६३ ई०में भी उनकी सख्या बड़ी थी। वे सब अंग्रेजी लिवासमें रहते। उनका अच्छा हिस्सा होटलमें नौकरी करके जीविका उपार्जन करता। इसी समुदायको लक्ष्य करके अंग्रेजी टोपीपर अब्दुल्ला सेठने यह टीका की थी। उसके अंदर वह भाव था कि होटलमें 'वेटर' बनकर रहना हलका काम है। आज भी यह विश्वास बहुतोंके मनमें कायम है।

कुल मिलाकर अब्दुल्ला सेठकी बात मुझे अच्छी मालूम हुई। मैंने पगड़ीवाली घटनापर, पगड़ीका तथा अपने पक्षका समर्थन अखबारोंमें किया। अखबारोंमें उसपर खूब चर्चा चली। 'अनवेलकम विजिटर'—अनचाहा अतिथि—के नामसे मेरा नाम अखबारोंमें आया और तीन ही चार दिनोंके अंदर अनायास ही दक्षिण अफ्रीकामें मेरी ख्याति हो गई। किसीने मेरा पक्ष-समर्थन किया, किसीने मेरी गुस्ताखीकी भरपेट निंदा की।

मेरी पगड़ी तो लगभग अततक कायम रही। वह कब उतरी, यह बात हमें अंतिम भागमें मालूम होगी। (आ० क० १९२७)

: २२७ :

विलियम विल्सन हंटर

दक्षिण अफ्रीकाके सवालके महत्वको भारतीयोसे भी पहले समझने-वाले ओर वैसी ही कीमती सहायता करनेवाले सज्जन सर विलियम विल्सन हंटर थे। वे 'टाइम्स'के भारतीय विभागके संपादक थे। इनके पास ज्योंही पहला पत्र पहुँचा त्योंही उन्होंने उसमें दक्षिण अफ्रीकाकी स्थितिको यथार्थ स्वरूपमें जनताके सामने रख दिया। जहाँ-जहाँ उचित मालूम हुआ वहाँ-वहाँ उन्होंने खानगी पत्र भी लिखे। अगर कोई महत्वपूर्ण प्रश्न छिड़ जाता तो इनकी डाक बराबर नियमसे हर सप्ताह आती। अपने पहले ही पत्रमें उन्होंने लिखा था—“आपने वहाँकी स्थितिका जो हाल लिखा है उसे पढ़कर मैं दुःखित हूँ। आप अपना काम निःसन्देह विनय-पूर्वक, शांतिके साथ ओर समयसे ले रहे हैं। इस प्रश्नमें मैं पूरी तरहसे आपके साथ हूँ और न्याय प्राप्त करनेके लिए मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा सब करना चाहता हूँ। मुझे तो निश्चय है कि इस विषयमें हम एक इच्छाभी पीछे पड़े नहीं रख सकते। आपकी माँग तो ऐसी है कि कोई भी निष्पक्ष मनुष्य उसमें तिलमात्र रद्दी-बदल नहीं कर सकता।” करीब-करीब यही गब्द उन्होंने 'टाइम्स'के अपने पहले लेखमें लिखे थे और आखिर तक उसी बातपर कायम रहे। लेडी हंटरने अपने एक पत्रमें लिखा था कि जब उनकी मृत्युका समय आया तब उन दिनोंमें भी उन्होंने भारतीयोके प्रश्नपर एक लेखमाला लिखनेके लिए एक ढाँचा तैयार कर रखा था। (द० अ० स०)

: २२८ :

हरबत सिंह

कुछ दिन तो वाक्सरेस्टकी जेलमें हमने सुख-पूर्वक बिताए । यहाँ हमेशा नए कैदी आते रहते थे, इसलिए नित्य नई खबरे भी मिलती रहती थी । इन सत्याग्रही कैदियोंमें हरबतसिंह नामका एक बूढ़ा था । उसकी अवस्था ७५ वर्षसे भी अधिक होगी । वह कहीं खानोंमें नाकरी नहीं करता था । उसने तो वरमो पहले अपना गिरमिट पूरा कर दिया था । इसलिए वह हड़तालिया नहीं था । मेरे गिरफ्तार हो जानेपर लोगोंमें जोश खूब बढ़ गया था और वे नेटालमें ट्रान्सवालमें प्रवेश कर अपनेका गिरफ्तार करा दिया करते थे । हरबतसिंहने भी इनके साथ-साथ ट्रान्सवाल जानका निश्चय किया ।

एक दिन हरबतसिंहसे मैंने पूछा, “आप क्यों जेलमें आए ? आप जैसे बूढ़ोको मैंने जेलमें आनेका निमन्त्रण नहीं दिया है ।”

हरबतसिंहने उत्तर दिया

“मैं कैसे रह सकता था, जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके लड़के तक हम लोगोंके लिए जेल चले गए ?”

“लेकिन आप जेलके दु खोंको बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे । आप जेल छोड़कर चले जावें । क्या मैं आपके छूटनके लिए कोशिश करूँ ?”

“मैं जेल हरगिज नहीं छोड़ूँगा । मुझे एक दिन मरना तो हई है । फिर ऐसा दिन कहा, जो मेरी मौत यहीं हो जाय ।”

इस दृढ़ताको मैं कैसे विचलित कर सकता था ? वह तो इतनी विकट थी कि विचलित करनेपर भी डिग नहीं सकती थी । हरबतसिंह की जो भावना थी, ठीक वही हुआ । उसने जेल ही में अपनेको मृत्युके हाथोंमें सौंप दिया । उसका जब वाक्सरेस्टसे डरवन भगवाया गया था । सम्मान-

पूर्वक सैकड़ों भारतीयोंकी उपस्थितिमें हरबतसिंहका अग्नि-संस्कार किया गया। पर इस युद्धमें ऐसे एक नहीं, अनेकों हरबतसिंह थे। हा, जेलमें भरनेका सौभाग्य जरूर अकेले^१ हरबतसिंहको ही प्राप्त हुआ और इसी लिए दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें उसका नाम उल्लेखनीय भी हो गया। (द० अ० स० १९२५)

: २२६ :

एमिली हावहाउस

मिस हावहाउस लार्ड हावहाउसकी पुत्री हैं। बोअर युद्ध शुरू हुआ तब यह महिला लार्ड मिलनरके सामनेसे होकर ट्रान्सवाल पहुँची थी। जब लार्ड किचनरने अपनी जगत्प्रसिद्ध कासेन्ट्रेशन कैप ट्रान्सवाल और फ्रीस्टेटमें बैठाई उस समय यह महिला अकेली बोअर ओरतोमें घूमती और उन्हें दृढ़ रहने, धीरज रखनेके लिए उपदेश करती और उत्साह देती। वह स्वयं मानती थी कि इस युद्धमें अंग्रेजोंकी ओर न्याय नहीं है, इसलिए स्वर्गीय स्टेडकी तरह परमात्मासे प्रार्थना करती थी कि इस युद्धमें अंग्रेजोंका पराभव हो जाय। इस प्रकार बोअरोंको सेवा करनेपर जब उसने देखा कि जिस अन्यायके खिलाफ बोअर लोग लड़े थे, वैसा ही अन्याय अज्ञानके कारण वे ही अब भारतीयोंके प्रति कर रहे हैं तब उससे नहीं रहा गया। बोअर जनता उसका बड़ा सम्मान करती थी और उनपर बहुत प्रेम रखती थी। जनरल बोथाके साथ उसका बहुत निकट संबंध था। उन्हींके यहाँ वह ठहरती थी। खूनी कानून रद्द करवानेके लिए उसने अपनी ओरसे कुछ उठा न रक्खा। (द० अ० स० १९२५)

समाचारपत्रोंसे हमें विदित हुआ है कि कुमारी एमिली हावहाउस-की मृत्यु हो गई है। वह एक बहुत गरीब और बड़ी बहादुर स्त्री थी। वे पुरस्कारका कभी न रयाल करते हुए सेवा किया करती थी। उनकी सेवा ईश्वरार्पण की हुई मानव-समाजकी सेवा थी। वे गरीब अंग्रेजी कुलमें उत्पन्न हुई थी। वे अपने देशके प्रति प्रेम रखती थी और इसी कारण वे उसके द्वारा किए गये किसी अन्यायको सहन नहीं कर सकती थी। उन्होंने बोअर-युद्धके घोर अत्याचारको समझ लिया था। उन्होंने विचार-किया कि उस युद्धके मुलगानेमें इंग्लैंडका सरासर कमूर है। उन्होंने ऐसे समयमें उस युद्धकी निंदा अत्यंत कड़ी भाषामें की थी, जब कि इंग्लैंड उसके पीछे दीवाना हो रहा था। वे दक्षिण अफ्रीका गई और वहां उनकी आत्माने उन गिबिर-कारागारोंके खडे किए जाने तथा उनमें पगजित वीरोंके बालबच्चोंको जबरदस्ती लाकर रखनेकी पशुताका घोर विरोध किया, जिन शिविर-कारागारोंको लार्ड किचनरने युद्धमें विजय प्राप्त करने-के लिए आवश्यक ठहराया था। यह उसी समयकी बात है जब कि विलियम स्टेडने, अंग्रेजोंकी पगजयके लिए, ईश्वर-प्रार्थना करवाई थी। एमिली हावहाउस, यद्यपि वे दुर्बल थी, तथापि शारीरिक अशुविधाओंका कुछ भी रयाल न करके दक्षिण अफ्रीका फिर गई और वहां उन्होंने अपन प्रति अपमान तथा उसमें गए-गुजरे वर्तविका आह्वान किया। वे वहां कैद कर ली गई और वापस लौटा दी गई। उन्होंने उन सबको एक सच्ची बहादुर स्त्रीकी भांति सहन किया। उन्होंने बोअर-जातियोंके दिल मजबूत किए और उनसे कहा कि आशाको कदापि न त्यागो। उन्होंने उनमें यह भी कहा कि यद्यपि इंग्लैंड मदमें चूर है, तथापि इंग्लैंडके अनेक पुरुषों तथा स्त्रियोंमें बोअर लोगोंके प्रति सहानुभूति है और किसी-न-किसी दिन उनकी बात सुनी जायगी। और यही हुआ। सर हैनरी कैम्पबेल वैनरमैन जन-साधारण चुनावमें बड़े बहुमतसे लिबरल दलके नेता चुने गए और उन बोअर लोगोंके नुकसानकी पूर्ति यथासंभव की गई, जिन्होंने युद्धम क्षति

उठाई थी। युद्धके समाप्त होजानेपर उस अवसरपर जबकि दक्षिण अफ्रीका-का सत्याग्रह जारी था मुझे मिस हावहाउससे परिचित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। जो जान-पहचान हुई थी, वह क्रमशः जीवनपर्यंतकी मैत्री बन गई। हिंदुस्तानियो तथा दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारके बीच सन् १९१४ ई० वाले समझौतेमें उनका भाग कोई मामूली भाग न था। वे जनरल बोथाकी मेहमान थी। उस समय जनरल बोथाने कई बार मुलाकात-विषयक मेरे प्रस्तावोपर टालमटोलकी थी, उन्होंने हर मर्तवा 'गृहसचिव'के सामने अपनी बात पेश करनेको कहा था, परंतु मिस हावहाउसने जनरल बोथाके साथ यह आग्रह किया कि वे मुझसे अवश्य मिले। इसलिए उन्होंने 'केपटाउन' में जनरल साह्वके निवास-स्थानपर जनरल तथा उनकी पत्नी, स्वयं वे तथा मैं इनके बीचमें वार्तालापके निमित्त एकत्रित होनेका प्रवधान कराया। उनका नाम बोअर-लोगोमें एक ऐसा नाम था जिसके लेने-मात्रसे उन लोगोमें विश्वासका सिक्का जम जाता था और उन्होंने अपने सारे प्रभावको हिंदुस्तानी मामलेमें लगाकर मेरा मार्ग सरल बना दिया था। जब मैं हिंदुस्तानमें आया (और जबकि) रौलेट ऐक्टका आदोलन चल रहा था—उन्होंने मुझे यह लिखा कि मुझे यदि फासीके तख्तेपर नहीं तो कारागारमें अपना जीवन अंत करना पड़ेगा, और मैं इस बातसे चिंतित नहीं हू। उनमें इस त्यागकी शक्ति पूर्ण रूपसे मौजूद थी। यह तो उनकी अटल धारणा थी ही कि कोई भी आदोलन, बिना उसके पोषकके बलिदानके सफल नहीं हुआ करता। अभी पारसाल ही उन्होंने मुझे लिखा था कि मैं दक्षिण अफ्रीका निवासी भारतवासियोंके पक्षमें अपने मित्र जनरल हार्टजोगसे खूब लिखा-पढ़ी कर रही हू। उन्होंने मुझे यह भी लिखा था कि आप उनके (जनरलके) प्रति कुपित न हो और आप उनसे जो आशा रखते हो, उसका ह्याल मुझे दे।

हिंदुस्तानकी स्त्रियोंको चाहिए कि वे इस अंग्रेज महिलाको याद रखें।

उन्होंने कभी विवाह नहीं किया। उनका जीवन स्फटिककी भांति स्वच्छ था। उन्होंने अपनेको ईश्वर-मेवाके लिए अर्पित कर रक्खा था। उनका स्वास्थ्य तो विलकुल गया-बीता था। उनको लकवेकी बीमारी थी। परंतु उनके उस दुर्बल और रोगग्रस्त शरीरमें वह आत्मा दीप्यमान थी, जो कि राजाओं और शाहगाहोंके समैन्य बलको भी ललकार सकती थी। वे किसी मनुष्यमें डरती न थी, क्योंकि उनको केवल ईश्वरना भय था।
(हि० न०, २२ ७ २६)

: २३० :

हासिकन

जैसे-जैसे आंदोलन आगे बढ़ता चला वैसे-वैसे अंग्रेज भी उसमें रस लेने लगे। मुझे यह कह देना चाहिए यद्यपि ट्रान्सवालके अंग्रेजी असवार अक्सर उस खूनी कानूनके पक्षमें ही लिखते और गोरोके विरोधका समर्थन करते थे, तथापि अगर कोई प्रख्यात भारतीय उनमें कोई लेख भेजते तो उन्हें वे खुशीसे छापते थे। सरकारके पास भारतीयोंकी जो दरदवास्ते जाती थी उन्हें भी वे या तो पूरी छापते थे या उनका सार दे देते थे। बड़ी-पड़ी सभाएं होती थी। उनमें कभी-कभी वे अपने रिपोर्टर भी भेजते थे। और जहां ऐसा न हो वहां यदि सभाकी रिपोर्ट हम लिखकर भेज देते और वह छोटी होती तो उसे भी छाप देते थे।

गोरोका यह विवेक भारतीयोंके लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ। आंदोलनके बढ़ते ही कितने ही गोरोका भी मन उमने आकर्षित कर लिया। इस श्रेणीके ऐसे गोरे अगुवा जोहासवर्गके एक लखपति मि० हान्निन थे। उनमें रगट्टेपका तो पहले ही से अभाव था। पर आंदोलन शुरू होने-

पर भारतीयोंकी हलचलमे उन्होंने अधिक दिलचस्पी दिखाई । (द० अ० स०)

: २३१ :

नारायण हेमचंद्र

लगभग इसी दरमियाने स्वर्गीय नारायण हेमचंद्र विलायत आए थे । मैं सुन चुका था कि वह एक अच्छे लेखक है । नेशनल इंडियन एसोसिएशनवाली मिस मैनिंगके यहा उनसे मिला । मिस मैनिंग जानती थी कि सबसे हिल-मिल जाना मैं नहीं जानता । जब कभी मैं उनके यहा जाता तब चुपचाप बैठा रहता । तभी बोलता, जब कोई बातचीत छेड़ता ।

उन्होंने नारायण हेमचंद्रसे मेरा परिचय कराया ।

नारायण हेमचंद्र अंग्रेजी नहीं जानते थे । उनका पहनावा विचित्र था । वेढगी पतलून पहने थे । उसपर था एक बादामी रंगका मैला कुचैला-सा पारसी काटका वेडोल कोट । न नेकटाई, न कालर । सिरपर ऊनकी गुथी हुई टोपी और नीचे लंबी दाढ़ी ।

वदन डकहरा, कद नाटा कह सकते हैं । चेहरा गोल था, उसपर चेचकके दाग थे । नाक न नोकदार थी न चपटी । हाथ दाढ़ीपर फिरा करता था ।

वहाके लाल-गुलाल फैशनेबल लोगोमे नारायण हेमचंद्र विचित्र मालूम होते थे । वह औरोसे अलग छटक पड़ते थे ।

“आपका नाम तो मैंने बहुत सुना है । आपके कुछ लेख भी पढ़े हैं । आप मेरे घर चलिए न ?”

नारायण हेमचद्रकी आवाज जरा भरई हुई थी । उन्होंने हँसते हुए जवाब दिया—

“आप कहा रहते हैं ?”

“स्टोर स्ट्रीट में ।”

“तब तो हम पडोसी हैं । मुझे अंग्रेजी सीखना है । आप सिखा देंगे ?”

मैंने जवाब दिया—“यदि मैं किसी प्रकार भी आपकी सहायता कर सकू तो मुझे बड़ी खुशी होगी । मैं अपनी शक्ति भर कोशिश करूँगा । यदि आप चाहें तो मैं आपके यहाँ भी आ सकता हूँ ।”

“जी नहीं, मैं खुद ही आपके पास आऊँगा । मेरे पास पाठमाला भी है । उसे लेता आऊँगा ।”

समय निश्चित हुआ । आगे चलकर हम दोनोंमें बड़ा स्नेह हो गया । नारायण हेमचद्र व्याकरण जरा भी नहीं जानते थे । ‘घोडा’ क्रिया और ‘दीडना’ सजा बन जाती है । ऐसे मजेदार उदाहरण तो मुझे कई याद हैं । परन्तु नारायण हेमचद्र ऐसे थे, जो मुझे भी हजम कर जाय । वह मेरे अल्प व्याकरण-ज्ञानसे अपनेको भुला देनेवाले जीव न थे । व्याकरण न जाननेपर वह किसी प्रकार लज्जित न होते थे ।

“मैं आपकी तरह किसी पाठशालामें नहीं पढ़ा हूँ । मुझे अपने विचार प्रकट करनेमें कहीं व्याकरणकी सहायताकी जरूरत नहीं दिखाई दी । अच्छा, आप बगला जानते हैं ? मैं तो बगला भी जानता हूँ । मैं बगलमें भी घूमा हूँ । मर्होष देवेन्द्रनाथ टैगोरकी पुस्तकोका अनुवाद तो गुजराती जनताको मैंने ही दिया है । अभी कई भाषाओंके सुंदर ग्रंथोंके अनुवाद करने हैं । अनुवाद करनेमें भी शब्दार्थपर नहीं चिपटा रहता । भाव-मात्र दे देनेसे मुझे सतोष हो जाता है । मेरे बाद दूसरे लोग चाहे भले ही सुंदर वस्तु दिया करें । मैं तो बिना व्याकरण पढ़े मराठी भी जानता हूँ, हिंदी भी जानता हूँ और अब अंग्रेजी भी जानने लग गया हूँ । मुझे तो

सिर्फ शब्द-भंडारकी जरूरत है। आप यह न समझ लें कि अकेली अंग्रेजी जान लेने-भरसे मुझे सतोष हो जायगा। मुझे तो फ्रांस जाकर फ्रेंच भी सीख लेनी है। मैं जानता हूँ कि फ्रेंच साहित्य बहुत विशाल है। यदि हो सका तो जर्मन जाकर जर्मन भाषा भी सीख लूँगा।”

इस तरह नारायण हेमचंद्रकी वाग्धारा बे-रोक बहती रही। देश-देशांतरोंमें जाने व भिन्न-भिन्न भाषा सीखनेका उन्हें असीम शोक था।

“तब तो आप अमेरिका भी जरूर ही जावेंगे ?”

“भला इसमें भी कोई सदेह हो सकता है ? इस नवीन दुनियाको देखे बिना कहीं वापस लौट सकता हूँ ?”

“पर आपके पास इतना धन कहाँ है ?”

“मुझे धनकी क्या जरूरत पड़ी है ? मुझे आपकी तरह तड़क-भड़क तो रखना है ही नहीं। मेरा खाना कितना और पहनना क्या ? मेरी पुस्तकोंसे कुछ मिल जाता है और थोड़ा-बहुत मित्र लोग दे दिया करते हैं, वह काफी है। मैं तो सर्वत्र तीसरे दर्जमें ही सफर करता हूँ। अमेरिका तो डेकमें जाऊँगा।”

नारायण हेमचंद्रकी सादगी बस उनकी अपनी थी। हृदय भी उनका वैसा ही निर्मल था। अभिमान छूतक नहीं गया था। लेखकको नाते अपनी क्षमतापर उन्हें आवश्यकतासे भी अधिक विश्वास था।

हम रोज मिलते। हमारे बीच विचार तथा आचार-साम्य भी काफी था। दोनों अन्नाहारी थे। दोपहरको कई बार साथ ही भोजन करते। यह मेरा वह समय था, जब मैं प्रति सप्ताह सत्रह शिलिंगमें ही अपना गुजर करता और खाना खुद पकाया करता था। कभी मैं उनके मकानपर जाता तो कभी वह मेरे मकानपर आते। मैं अंग्रेजी ढंगका खाना पकाता था, उन्हें देशी ढंगके बिना सतोष नहीं होता था। उन्हें दाल जरूरी थी। मैं गाजर इत्यादिका रसा बनाता। इसपर उन्हें मुँहपर बड़ी दया आती। कहींसे वह मूँग ढूँढ लाए थे। एक दिन मेरे लिए मूँग पकाकर लाए, जो

मैंने बड़ी रुचि-पूर्वक खाए। फिर तो हमारा डम तरहका देने-लेनेका व्यवहार बहुत बढ गया। मैं अपनी चीजोंका नमूना उन्हें चखाता और वह मुझे चखाते।

इस समय कार्डिनल मैनिंगका नाम सबकी जवानपर था। डाकके मजदूरोंने हड़ताल कर दी थी। जॉनवर्न्स और कार्डिनल मैनिंगके प्रयत्नोंमें हड़ताल जल्दी बढ हो गई। कार्डिनल मैनिंगकी नादगीके विषयमें जो डिसरैलोंने लिखा था, वह मैंने नागदग हेमचंद्रको सुनाया।

“तब तो मुझे उस साधु पुरुषसे जरूर मिलना चाहिए।”

“वह तो बहुत बड़े आदमी हैं। आपने क्योंकर मिलेंगे?”

“इसका रास्ता मैं बता देता हूँ। आप उन्हें मेरे नाममें एक पत्र लिखिए कि मैं एक लेखक हूँ। आपके परोपकारी कार्योंपर आपको धन्य-वाद देनेके लिए प्रत्यक्ष मिलना चाहता हूँ। उसमें यह भी लिख दीजिएगा कि मैं अंग्रेजी नहीं जानता। इसलिए—अपना नाम लिखिए—बतौर दुभाषियाके मेरे साथ रहेंगे।”

मैंने इस मजमूनका पत्र लिख दिया। दो-तीन दिनमें कार्डिनल मैनिंगका कार्ट आया। उन्होंने मिलनेका समय दे दिया था।

हम दोनों गये। मैंने तो, जैसा कि रिवाज था, मुलाकाती कपड़े पहन लिए। नारायण हेमचंद्र तो ज्यों-के-त्यों, सनातन। वही कोट और वही पतलून। मैंने जरा मजाक किया, पर उन्होंने उसे साफ हँसीमें उड़ा दिया और बोले—

“तुम सब सुधारप्रिय लोग डरपोक हो। महापुरुष किसीकी पोशाककी तरफ नहीं देखते। वे तो उसके हृदयको देखते हैं।”

कार्डिनलके महलमें हमने प्रवेश किया। मकान महल ही था। हम बैठे ही थे कि एक दुबलेमें ऊँचे कदवाले वृद्ध पुरुषने प्रवेश किया। हम दोनोंसे हाथ मिलाया। उन्होंने नारायण हेमचंद्रका स्वागत किया।

“मैं आपका अधिक समय लेना नहीं चाहता। मैंने आपकी कीर्ति

सुन रखी थी। आपने हड़तालमें जो शुभ काम किया है, उसके लिए आपका उपकार मानना था। संसारके साथ पुरुषोंके दर्शन करनेका मेरा अपना रिवाज है। इसलिए आपको आज यह कष्ट दिया है।”

इन वाक्योंका तरजुमा करके उन्हें सुनानेके लिए हेमचद्रने मुझसे कहा।

“आपके आगमनसे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। मैं आशा करता हूँ कि आपको यहाँका निवास अनुकूल होगा और यहाँ के लोगोंसे आप अधिक परिचय करेंगे। परमात्मा आपका भला करे!” यो कहकर कार्डिनल उठ खड़े हुए।

एक दिन नारायण हेमचद्र मेरे यहाँ धोती और कुरता पहनकर आए। भली मकान-मालकिनने दरवाजा खोला और देखा तो डर गई। दौड़कर मेरे पास आई (पाठक यह तो जानते ही हैं कि मैं बार-बार मकान बदलता ही रहता था) और बोली— “एक पागल-सा आदमी आपसे मिलना चाहता है।” मैं दरवाजेपर गया और नारायण हेमचद्रको देखकर दग रह गया। उनके चेहरेपर वही नित्यका हास्य चमक रहा था।

“पर आपको लड़कोने नहीं सताया?”

“हां, मेरे पीछे पड़े जरूर थे, लेकिन मैंने कोई ध्यान नहीं दिया तो वापस लौट गए।”

नारायण हेमचद्र कुछ महीने इंग्लैंडमें रहकर पेरिस चले गए। यहाँ फ्रेचका अध्ययन किया और फ्रेच पुस्तकोंका अनुवाद करना शुरू कर दिया। मैं इतनी फ्रेच जान गया था कि उनके अनुवादोंको जाच लूँ। मैंने देखा कि वह तर्जुमा नहीं, भावार्थ था।

अतमे उन्होंने अमेरिका जानेका अपना निश्चय भी निवाहा। बड़ी मुश्किलसे डेक या तीसरे दर्जेका टिकट प्राप्त कर सके थे। अमेरिकामें जब वह धोती और कुरता पहनकर निकले तो असभ्य पोगाक पहननेका

जुर्म लगाकर वह गिरफ्तार कर लिए गये थे। पर जहातक मुझे याद है, वादमे वह छूट गए। (आ० क० १६२७)

: २३२ :

अकबर हैदरी

स्व० सर अकबर हैदरी अपूर्व गुणोंकी राशि थे। वे एक बड़े विद्वान, दार्शनिक और सुधारक थे। वे एक चुस्त मुसलमान थे, परंतु इस्लाम और हिंदू धर्ममें वह परम्पर विरोध नहीं पाते थे। उन्होंने अन्य धर्मोंका भी अभ्यास किया था। उनकी मित्रमंडलीकी विविधता ही उनकी उदारवृत्तिकी द्योतक थी। दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंससे हम इकट्ठे एक ही जहाज में लीटे थे। जहाजपर सव्याकी जो हमारी प्रार्थना होती थी उसमें वे नियमित आते थे। गीताके श्लोक और हम जो भजन गाते थे उनमें वह इतना रम लेते थे कि उन्होंने महादेव देसाईसे उन सबका अनुवाद अपने लिए करा लिया था। उन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा की थी कि हिंदुस्तान पहुचनेपर साम्प्रदायिक ऐक्यके लिए हम दोनों साथ दौरा करेंगे, परंतु ईश्वरने कुछ और ही मोच रखा था। स्व० लार्ड विलिंगडनने मेरे लिए दूसरा ही कार्यक्रम तय्यार कर रखा था। मुझे सत्याग्रह आंदोलनमें कूदना पड़ा और सर अकबर और मेरे बीच तय किया हुआ प्रोग्राम लटकता ही रह गया। वे श्री अरविंदसे प्रभावित हुए थे। जिस समय पांडीचेरीके ऋषि श्री अरविंद अपने भक्तोंको त्रैमासिक दर्शन देते हैं उस समय वे अचूक तीर पर बहा रहते थे।

सर अकबरकी मृत्युसे देशकी भारी हानि हुई है। उनके दुखी कुटुंबके प्रति मेरी हार्दिक समवेदना है। (ह० से०, १८ १ ४२)

: २३३ :

सेम्युअल होर

सेम्युअल होरके भाषणके शब्द बापूको फिरसे सुनाने पर बापू बोले :

इसकी बात मुझे अच्छी लगती है । इसे एक भी बीच-वचाव करने वालेकी गरज नहीं है, क्योंकि इसका कोई विश्वस्त आदमी नहीं है । ऐसोके साथ लडनेमे मजा आता है । ऐसे आदमीके हाथसे ही भला होगा । सेकीसे यह आदमी हजार गुना अच्छा है । वह तो सोचे कुछ और कहे कुछ । यह आदमी जो सोचता है, वही कहता है । एक बार मैंने उससे पूछा—आप यह मानते है न कि यहा जो इतने सारे आदमी है, उनमेसे किसीकी शक्तिपर भी आपका विश्वास नहीं है ? वह बोला—

“अगर सच्चे दिलसे कहा जाय तो मुझे कहना चाहिए कि यह बात सच है, मुझे विश्वास नहीं है ।”

मैंने इसी बात पर उसे बधाई दी थी कि मुझे आपकी ईमानदारी बहुत पसंद है ।

प्रोवाने ‘टाइम्स’में होरको जवाब दिया है । बापू कहने लगे .

बड़ा गौरवपूर्ण पत्र कहा जायगा और ‘टाइम्स’का इसे छापना यही जाहिर करता है कि खुद ‘टाइम्स’को भी सेम्युअल होरका वर्णन पसंद नहीं आया । यह आदमी बेहया हो गया दीखता है । सच्चा तो था ही, मगर इसकी सच्चाईमे भी बेहयाई थी । जब उसने कहा कि उसे किसी भी हिंदुस्तानीकी बुद्धि या शक्तिपर विश्वास नहीं है । (म० डा० ३ ५ ३२)

सर सेम्युअल होरसे तो बहुत बार मिलता था । इतना मुझे कहना

चाहिए कि वह मेरे साथ साफ दिलसे बात करता था। यह नहीं था कि मेरे साथ एक बात और दूसरेके साथ दूसरी बात। सबके साथ उमने एक ही बात की। वह साफ कहता था, “मत्ता तो हमारे हाथोमे है। तुम नोग मुझे सलाह दे सकते हो। उसपर अमल करना न करना हमारे हाथकी बात है। वह तुम्हे हमपर ही छोटना होगा।” मैंने कहा, “आजादी तो जब आवेगी तब, मगर आज इतना तो हो कि उस आनेवाली, आजादीकी कुछ झलक आपके कामोमे दिखाई दे। कानून चाहे कुछ भी हो, लेकिन प्रथा तो ऐसी बने कि हमारे कामोमे हमारी सलाहसे आप चले। अभी घनश्यामदास और पुरुषोत्तमदास हमारे अर्थशास्त्री हैं। अर्थशास्त्रमे वे हमारे नुमाइंदे हैं। हिंदके अर्थशास्त्रके मामलोमे आप उनकी सलाहमे चलें।” मगर वह कहने लगा, “यह तो हो नहीं सकता।” (का ०क०, ३ १२ ४२)

: २३४ :

हार्निमैन

इतनेमे प्रजाको मोता छोडकर सरकार मि० हार्निमैनको चुन ले गई। मि० हार्निमैनने ‘वर्कई कानिकल’ को एक ब्रचड बंकिन बना दिया था। इस चोरीमे जो गदगी थी उसकी बदबू मुझे अबतक आया करती है। मैं जानता हू कि मि० हार्निमैन अवाधुधी नहीं चाहते थे। मैंने सत्याग्रह कमेटीकी सलाहके बिना ही पंजाब सरकारके हुक्मको तोडा था सो उन्हें पसंद नहीं था। मैंने सविनय-भंगको जो मुल्लवी किया, उसमे वह पूरे सहमत थे। मेरे सत्याग्रह मुल्लवी रखनेका डंढा प्रकट करनेके पहले ही पत्र द्वारा उन्होंने मुझे मुल्लवी रखनेकी सलाह दी थी

और वह पत्र बर्बड और अहमदाबाद के फासले के कारण, मेरा इरादा जाहिर कर चुकने के बाद मुझे मिला था। इसलिए उनके देश-निकाले पर मुझे जितना आश्चर्य हुआ, उतना ही दुःख भी हुआ। (आ० क० १९२७)

बर्बड सरकार और मेरे खयाल से भारत सरकार भी अपने को इसलिए बधाई दे सकती है, क्योंकि उन्होंने हिंदुस्तान के और एक बहादुर अंग्रेज के साथ जो अन्याय किया था उसे बड़ी आनाकानी के साथ आज हटाकर दूर किया है। उन्होंने हार्निमैन को भारत में, जिस देश पर उन्हें बड़ा प्रेम है और जिस के लिए वे बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं, आने से न रोकने की बड़ी हिम्मत की है। यह कोई भी नहीं जानता है कि हार्निमैन को अकस्मात् यहाँ से देशनिकाला देने का सच्चा कारण क्या था। उन पर कोई मुकद्दमा न चलाया गया था और न उन्हें उन पर लगाए गये अपराधों से इन्कार करने का अवसर ही दिया गया था।

इस प्रकार अपनी ही इच्छा से जबरदस्ती समुद्र पार भेज देने के ऐसे दृष्टांतों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत सरकार का कैसा अनुत्तरदायी अधिकार है। हार्निमैन के वनिस्वत और किसी ने भी ऐसे अधिकार को रोकने के लिए अधिक कोशिश और वहस न की थी और आखिर वे ही उसके बलि हो गए थे। श्री हार्निमैन के स्वागत में मैं भी अपना नम्र हिस्सा देता हूँ। उनके लौट आने से स्वराज्य के लिए जो शक्तियाँ युद्ध कर रही हैं उनमें सामर्थ्य और उत्साह की वृद्धि होगी और उससे जो लोग ऐसे यशस्वी युद्ध में लगे हुए हैं उनके हृदय में बड़ा ही आनंद होगा। उनके सामने जो कठिन कार्य पड़ा हुआ है उसे करने के लिए श्री हार्निमैन को तदुत्तरी और दीर्घ आयुष्य प्राप्त हो ! (हि० न०, १४ १ २६)

हार्निमैन अब गधे हाँकने लगे हैं। बापू कहने लगे

यह हार्निमैन का दूसरा पहलू है। (म० डा०, ८ ८ ३२)

आज अखबारोंमें पहलेकी पूर्तिमें और नरम दलके लोगोंके अवावमें हुआ होरका भाषण आया ।

शामको इसी भाषणपर हार्निमैनका लेख पढा । बापूको यह लेख बहुत पसंद आया । इसमें हार्निमैन होरको राजनैतिक नीतिसे शून्य और वेशर्म कहा है । बापूने कहा—यह ठीक है । सारा लेख पढकर कहने लगे

'यह आदमी आजकल जोरदार लेख लिख रहा है ।—(म० डा०, भाग २)

×

×

×

हार्निमैन समझनेकी शक्ति रखता है, इसलिए सारा लेख बढिया लिखा है । (म० डा०, भाग २)

